अर्थान्तर

कन्हैयालाल ओझा

अपने पाठक के प्रति

क्या आशाएँ लेकर एक पाठक किसी उपन्यास को पढ़ना चाहता है, यह जानना प्रत्येक उपन्यास लेखक के लिए बहुत आवश्यक है। किन्तु उसका पाठक तो एक नहीं है, न उसकी रुचि ही एक है, न उसकी आवश्यकता ही एक। नितान्त-शुद्ध मनोरंजन के अलावा, स्वस्थ और गम्भीर पाठक शायद जीवन को अधिक निकट से देखने की ही आकाक्षा लेकर उपन्यास के निकट उपनीत होता है। इससे उसे अपने ही जीवन-संघर्ष मे बल मिलने की प्रत्यक्ष और परोक्ष कामना भी होती है। इसके अलावा शायद अपनी आकृति, प्रकृति और विकृति को कॉच ही मे नहीं, शब्दों के शिल्प मे भी देखने का उसका उत्साह हो।—शब्दों का यह दर्पण ऐसा हो कि उसे यथार्थ भी दिखाई दे और आदर्श भी। अपनी शक्ति का ज्ञान उसे होना ही चाहिए, ताकि अपनी कमजोरियों का लेखा-जोखा कर वह उनका हल भी प्राप्त करने मे प्रयत्नवान् हो।

इतना होने पर भी यह बात सही है कि जितने प्रकार के पाठक हों उतने लेखक नही हो सकते। पाठक को लेखक का आग्रह हो सकता है, किन्तु लेखक को किसी पाठक का आग्रह कैसे हो? पाठक मे यदि सहानुभूति न भी हो तो भी लेखक शिकायत नही कर सकता। पाठक ही तो लेखक का विधाता है!

मेरे उद्देश्य की चरम-सिद्धि पाठक है, जिसकी ऑखों के सामने इन अक्षरों का बहाना लेकर मैं नतशिर खड़ा हो गया हूँ। मेरा कोई आग्रह नहीं, कोई वाद नही। जीवन को मैंने सदैव ही जीने योग्य माना है, उसमे मेरी परम आसक्ति है, और मनुष्य को मैंने समझा है जीवन की चूड़ान्त-निष्पत्ति। प्रयत्न और भूल (Trial and error) के विधान से वह अपने मार्ग की बाधाओं को परखता है, उनसे जूझता है उन पर विजय पाता है। यदि कभी असफल हो जाता हो, तो भी वह परास्त नहीं होता, अपनी शक्ति में आस्था नही खोता। नए मार्ग उसके सामने नई बाधाएं ला खड़ी करते है, पर उनसे घबराना उसने नहीं सीखा! वस्तुतः इसीलिए वह जीवित है। जिस दिन वह इनसे घबरा उठेगा, उसी दिन उसकी मौत है। वह अपने अस्तित्व मे नहीं, अपने विश्वास मे जीवित है, अपने विश्वास की दृढ शक्ति मे। उस विश्वास की शक्ति की प्रतीति कराना ही मुझे इष्ट है!

युग की विशिष्ट धाराओं के अनुकूल मनुष्य के जीवन-यापन के ढाँचे, समाज नीति आदि बराबर बदलते आ रहे हैं, किन्तु इसके बावजूद मूल मे बहने वाली जीवन-साधन की अटट धारा कहीं टटी नहीं लगती। अवश्य ही जीवन

प्रसाधन का स्थान जीवन-साधन के बाद आता है। साधन-प्रसाधन की चर्चा हम सिद्धि की पृष्ठभूमि ही में कर सकते हैं। स्वभावतः प्रश्न यह होगा कि जीवन की सिद्धि क्या है?

जीवन के रहस्य से तो हमारा स्पष्ट परिचय नही है। जीवन के उसी रूप को जानने का दावा हम कर सकते हैं, जो हमारे सामने है। जन्म तथा मृत्यु नाम की घटनाओं के पहले और बाद की अवस्थाओं का कोई प्रामाणिक परिचय हमारे पास नहीं, अतः उसकी सिद्धि की बात कहना क्या हमारे लिए वातुलता नहीं होगी? जीवन की, जन्म और मरण के बीच की, जितनी लम्बाई को हम जानते हैं, उसी की सार्थकता का माप-दण्ड लेकर हम चलें तो क्या एक दर्जे तक हमारा उद्देश्य सफल नही हो जाता? यदि ऐसा है, तो क्या इसी साधना मे हमारी सिद्धि नहीं? हमारी साधना का साधन, 'अर्थ' भी इसीलिए प्रयत्न के प्रमाण मे साधन, और उपभोग के प्रमाण मे साधना है—जीवन की साधना। वह जीवन से ऊपर नहीं। साधन और साधना के इसी तादात्म्य के कारण उसकी पवित्रता का भी महत्व है।

अर्थ का वास्तविक उत्पादक है श्रम! अर्थ यदि सिद्धि मान लिया जाए, जैसा कि हमारी इस सभ्यता का अभिशाप है, तो हम अर्थ के प्रकृत अधिकारी श्रम को उसके अधिकार से वञ्चित कर देते हैं। तब श्रम भीख माँगता है, और सत्य, ईमानदारी, दया, धर्म और जीवन तक को खरीद लेता है अर्थ? जब जीवन पराश्रित या अर्थाश्रित हो जाता है, तो उसमे जीवन-शक्ति नहीं रहती। मनुष्य को सबसे अधिक खतरा यही है।

'अर्थान्तर' की यही समस्या पाठक के हाथ मे है। मेरी समस्त आशा, मेरा समस्त विश्वास, मेरी एकान्त कसौटी पाठक है। मैंने तो अपना हास, रुदन, भय, क्रोध कुछ भी अपना नहीं रक्खा, वह पाठक के सामने है। उसकी पसन्द ही मे इनकी सार्थकता है। जितनी मुझे उसके आशीर्वाद की आकांक्षा है, उतनी ही उसके अभिशाप की भी —मैं बढ़ूँ तो उसकी पसन्दगी का सम्बल लेकर, उसकी नापसन्दगी के प्रकाश में अपनी कमजोरियों को एक तरफ रखकर।

मैं अपने हर पाठक से याचना करता हूँ कि वह मुझे अपनी सम्मति अवश्य लिख कर भेजे। उसकी पसन्द और नापसन्द के दो शब्दों का मेरे निकट अत्यन्त महत्व होगा।

विनीत,

२५ मार्च १९५८ — कन्हैयालाल ओझा 'स्नेह'

सत्रारंभ का प्रथम दिन था। सारी कक्षा खचाखच भरी हुई थी। यद्यपि सामान्यतः पढाई प्रारम्भ होने को अब भी एकाध माह लग जायगा, बल्कि पढाई प्रारम्भ होने तक अनुपस्थिति पढाई के विलोम-अनुपात मे बिरलतर होती हुई ही देखी गई है, किन्तु सत्रारम्भ विशेष महत्व का दिन है। इस दिन नए चेहरों से साक्षात्कार होता है, इसी दिन प्रथम बार आँखें खोजती हैं, शिकार करती हैं, शिकार होती हैं। वर्ष भर की खुशी-नाखुशी का पहला पृष्ठ आज खुलता है। अतः कॉलेज के सामान्य समय के पूर्व ही से काफी भीड उपस्थित हो जाना स्वाभाविक है। और अब तो समय भी हो गया है।

साहित्य की पञ्चम वर्ष की कक्षा यद्यपि अपेक्षाकृत छोटी है, पर अन्य कक्षाओं की तरह ही भरी-पूरी है। फिफ्टी-फिफ्टी तो नहीं, किन्तु थर्टी-सेव्हण्टी के अनुपात में सह-शिक्षार्थी सारी कक्षा मे अपने-अपने स्थान पर बैठे हुए अपने पड़ोसी को सीधी-तिरछी दृष्टि से आँकने का प्रयत्न कर रहे हैं। कुछ, जिनमे पहले से परिचय था, और ऐसे काफी हैं, आपस मे बातचीत कर रहे थे। कुछ परिचय प्रारम्भ कर रहे थे, कोई अपने पडोसी से असन्तुष्ट-क्षुब्ध होकर दृष्टि का अंकुश कहीं दूसरी जगह अटकाने का प्रयत्न कर रहा था। प्रत्येक सीट पर दो-दो व्यक्ति बैठे हुए थे—किसी पर दोनों महिलाएँ, किसी पर दोनों पुरुष, पर अधिकाश पर एक छात्र और दूसरी छात्रा, जहाँ तक कि थर्टी-सेवण्टी के अनुपात में सम्भव था; किन्तु जरा ध्यान से देखा जाता तो दो सीटें ऐसी थीं, जिन पर एक-एक व्यक्ति ही बैठा हुआ था। अभी प्राध्यापक महोदय के आने के चिह्न न थे!

उन दो सीटों मे एक पर एक छात्रा थी, और अव्यक्त मे शायद सकोच अनुभव कर रही थी कि वह अपनी सीट पर अकेली क्यों बैठी हुई है। अन्य सभी विद्यार्थियों की तरह वह भी खूब सजी-धजी थी। आज के दिन ही यदि कोई सजधज कर न आया, तो फिर वर्ष भर तक वह क्या कक्षा की खाक छानेगा? पहला मारे सो मीर! और जब मुफ्त मे पैसा मिलता है तो होड़ ही क्यों न की जाय? पढाई मे स्पर्द्धा करना समय की अपेक्षा रखता है, और इस स्पर्द्धा मे मुफ्त की पूँजी से काम नहीं चलता, स्वयम् परिश्रम करना पड़ता है, किताबों मे आँखों की रोशनी खपानी पडती है और बुद्धि के औजार को, कोमल-चिकने फिसलने वाले पदार्थों से हटाकर कठोर शाण पर पैना करना पड़ता है। लडकियाँ और फिर कॉलेज की, यों ही नितलियाँ होती हैं। उन्हें रंग-बिरंगी तड़क-भड़क वाली पोशाक की विशेष-आवश्यकता है। और लड़के भी पीछे रहना नहीं चाहते। इन दिनों भी गरम या गेबर्डीन के सूट पहने हुए हैं। ट्रापिकल और ऊनी वस्त्रों में रंग, कम से कम, हलका-गहरा और तड़क-भडक भी चल जाती है, सादे सूती कपड़ों मे तड़क-भड़क के लिए गुजाइश कम है।

सो, लडकी की पोशाक वैसी ही है जैसी किसी कॉलेज-गर्ल की होनी चाहिए। उसके आधे खुले जूड़े मे फूल गुँथे हुए हैं, सेंट की भीनीं मादक महक भी उनमे से निकल कर चारों ओर फैल रही है। हलकी लिपस्टिक से रंजित उसके आरक्त-अधर पर आतिथ्योत्सुक सहज मुसकान भी है, नमित दृष्टि मे सकोच-मिश्रित कुछ अपाग, तिरछी-भवों मे क्षीण-कप, मुग्ध-श्रुतियों मे किंचित आग्रह, यह सब कुछ तो तब दिखाई देगा, जब आप उसकी ओर अपलक देखना प्रारम्भ कर देंगे और हाँ, यदि आप कुछ सुन्दर भी हैं। आपकी समझ से आपके सुन्दर होने से काम नहीं चलेगा। लेकिन यह बात बाद की रही। और कुछ अधिक देखने के लिए, कि उसने साड़ी किस रग की, कैसे पहन रक्खी है, उसके जम्पर का क्या रग है, गले की क्या डिजाइन है, उससे कितना भाग आवृत, कितना अनावृत रहता है, शारीरिक-सौष्ठव का कौन-सा अश कहाँ से किस तरह उठ कर दृष्टि को पुकारता है, आदि-आदि के लिए मैं आपसे आग्रह नही करूँगा। यदि पहली ही दृष्टि में यह सब कुछ नहीं दिखाई दे जाता, तो नाक के ऊपर आपके गढे आँखें नहीं हैं, और कुछ बे खुशी से हो सकते हैं!

किसी नए कवि की उच्छ्वासमई कल्पना के समान इस छात्रा का नाम भी है कल्पना। और इस विशिष्ट अवर्णनीय-परिधान की यही एकमात्र अधिकारिणी नहीं है। लगभग सभी छात्राओं का ऐसा ही परिधान है। केवल अन्तर

है तो यही कि इसका परिधान थोड़ा अधिक मूल्यवान मालूम पडता है जो उसके साधारणतः सम्पन्न होने का परिचायक है।

यों तो इस उमर की लडकियों को सुन्दर के अतिरिक्त और कुछ कहा जा सकता हो, ऐसा न तो कही नियम है, और न किसी लेखक के लिए ऐसी कोई सुविधा ही! किन्तु जब कोई सौन्दर्य की ज्वलत रश्मियों से अपनी आँखों की दृष्टि को चौंधिया लेता है, तो उसे सहज प्रकाश मे भी कुछ श्यामता दिखाई दे जाना स्वाभाविक है। कल्पना कुमारी कुछ श्याम, कुछ पृथुल और कुछ अधिक गहरी मालूम देती हैं। उच्छृंखल यौवन को बाँध रखने वाली कोई अँगिया वहाँ नहीं दिखाई देती। बल्कि किसी भावी रिसर्च-स्कालरशिप के उम्मीदवार ने यह भी अनुसंधान किया था कि कल्पना देवी के चेहरे पर कहीं-कहीं चेचक के कुछ दाग़ है, जो दूर से तो दिखाई नहीं ही देते हैं, किन्तु पास से भी उनको एकाएक नहीं पकडा जा सकता। लेकिन इन सब के अलावा उनके मन की गहराई शायद ऐसी है कि इसी को उनके अकेले बैठे रहने का कारण मान लिया जा सकता है!

दूसरा अकेला बैठा हुआ युवक निर्मल कुमार है। उसे आप जितना अधिक सुन्दर पाइएगा, कम है। उसका सूट सादा किन्तु मूल्यवान है, उसकी भावभगी उसकी सुरुचि का परिचय देती है। उसकी आँखों का भाव गहरा और तृप्त दिखाई देता है। उनमे किसी को खोज लाने की व्याकुल-उत्सुक चचलता नही है। देह का रग, सुन्दर स्वास्थ्य और साधनों की सम्पन्नता के कारण काफी निखरा हुआ, प्रज्वलित निर्धूम अग्नि-शिखा की भाँति रक्त के उच्छ्वास से दीप्त, और सध्याकाश की मेघ मुक्त-आभा-सा शान्त और नीरव है! शायद इस अग्नि की प्रखरता से डर कर ही कोई इसके पास बैठने का साहस न कर सका हो! किन्तु तब भी उसकी दृष्टि मे एक सारल्य है, एक स्थिर चाचल्य है, और है एक अहेतुक आर्द्रता। सबकी चचल दृष्टियाँ वहाँ जाकर एक क्षण रुकती हैं, और परावर्त्तित हो जाती है। केवल वह कक्षा के द्वार से बाहर किसी अलक्ष्य पर अपनी दृष्टि जमाए हुए है!

कक्षा में एक छात्र उठ खड़ा हुआ। लम्बा चौड़ा, सुसज्जित, सुदर्शन युवक, नाम विनयचन्द्र! विनयचन्द्र कॉलेज हॉकी टीम के कप्तान थे, इसके अतिरिक्त कक्षा में उनका महत्व उनकी लम्बाई के लिए भी कम न था। लम्बाई के साथ बुद्धि का जैसा कुछ सम्बन्ध प्रसिद्ध है, वह उन पर भी लागू होता था। वे स्वयम् इस नियम को स्वीकार करते थे, किन्तु अपने आप को अपवाद मान-कर। वेश-गरिमा भी उनकी उनके महत्व के अनुकूल थी। नीले ब्लेज़र का स्पोर्ट्स-कोट, जिसके ऊपर के जेबों पर हॉकी से सम्बन्ध रखने वाले दो

मोनोग्राम बने हुए थे। टाई की जगह गले मे गहरे हरे रंग का बिन्दीदार स्कार्फ पड़ा हुआ था। हॉकी स्टिक यों सदैव साथ रहती थी, किताबों से प्राप्त होने वाले ज्ञान को भी कदुक बना कर वह जीवन के क्षेत्र मे अपनी इच्छा-नुसार हॉक ले जाने की चेष्टा करते जान पडते थे, पर ज्ञान था कि उस स्टिक को अपने पीछे पडी हुई लाठी समझ कर भैंस की तरह पकड़ ही मे नहीं आता था। हॉ, उनका रग अवश्य पक्का था, जो कि पक्के खिलाड़ी के सर्वथा उपयुक्त ही था।

विनयचन्द्र प्राध्यापक की कुर्सी तक आए, और अपने आपको प्राध्यापक समझकर उसी अदा से टेबल के कोने पर बैठते हुए बोले :—

"गर्ल्स एण्ड बॉइज, आ' एम ग्लॅड—(लडकियो और लड़को, मैं प्रसन्न हूँ—)"

प्रथम पक्ति के एक छात्र ने बैठे ही बैठे कहा : "आइ टेक एन आब्जेक्शन टू योर ॲड्रेसिंग अस लाइक दिस—(हमे, इस प्रकार सम्बोधन करने का मैं विरोध करता हूँ)"

"आ' एम् सॉरी फ्रेण्ड्स, (मित्रों, मुझे दुःख है।) लेकिन आप लोगोंको जानना चाहिए कि मैं केवल नाटक कर रहा हूँ।"

"यस यस—केरी ऑन, ओ० के० (कहते चलो, ठीक है।)" दूसरे छात्र ने कहा।

मिस्टर विनयचन्द्र उसी लहजे मे अंग्रेजी मे बोलते गए: "इस वर्ष कई नए चेहरोंको देखकर मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ। शीघ्र ही उनका परिचय पाकर मैं अपने आपको सौभाग्यशाली समझूँगा; किन्तु इसके पहले मैं आपको नए चेहरों के महत्व पर ही कुछ कहना चाहूँगा। यह साहित्य की कक्षा है, और जितना यहाँ साहित्य की नई धाराओं का मूल्य है, उतना ही बल्कि, उससे अधिक नए चेहरों का है। क्योंकि सच पूछा जाए तो ये नए चेहरे ही है, जहाँ से साहित्य प्रेरणा प्राप्त करता है। अतः चेहरा जितना नया होगा, साहित्य की धारा भी उतनी ही नई होगी—"

कुछ विद्यार्थी सुन रहे थे, और ऑखें चुराकर मुस्करा रहे थे। कुछ का इधर ध्यान ही नही था। लड़कियाँ सोच रही थीं कि इशारा उन्हीं की ओर है, अतः वे और भी सिकुड़ने का प्रयत्न कर रहीं थीं। तभी एक दूसरा छात्र उठ खड़ा हुआ और बोला :—

"चेहरे का 'नयापन' एक दार्शनिक विचार है। मैं पूछना चाहता हूँ कि यह देखने वाली ऑख की सापेक्ष्यता से है, या दिखाई देनेवाली ऑखकी सापेक्ष्यता से?"

"इट्स ए रेलेवेण्ट क्वेश्चन—(यह युक्तियुक्त प्रश्न है ।) आप लोगों में से कोई इसका उत्तर दे सकता है ?"

—तभी कक्षा के द्वार पर एक नया छात्र आ खड़ा हुआ—नया छात्र, विचित्र वेश-भूषा , शहर के आधुनिकतम कॉलेज मे इस तरह की वेश-भूषा मे कोई आ सकता है, यही आश्चर्य की बात थो । उस बेचारे ने विनयचन्द्र को स्वभावतः ही प्रोफेसर मान लिया, और दरवाजे से पूछ बैठा : "मे आई कमि'न सर ? (मैं भीतर आ सकता हूँ ?)"

सभी छात्र हँस पडे । विनयचन्द्र ने उसकी ओर गृद्ध दृष्टि से देखा : "यू बूअर, ह्वाट केज यू हैव हैड टु ब्रेक टु कम डाउन टु दिस हैव्हन ? (तुम जंगली, किस पिंजरे को तोड कर इस स्वर्ग मे आ पहुँचे हो ?)"

फिर एकबार और सब लड़के हँस दिए । बाहर लडका अप्रतिभ हो गया । उसने कहा : "आइ गॉट नेसेसरी एडमिशन सर ! (मुझे आवश्यक प्रवेश मिल गया है महाशय ।)"

"आइ सी । यू गॉट एडमिशन (मैं समझा । तुम्हें प्रवेश मिल चुका है !)" फिर कक्षा के छात्रों की ओर देखकर बोला : "यू' उड बेअर द ब्रण्ट ऑफ दिस रस्टिक्स परफॉर्मेंस ? विथ योर परमिशन ! (आप इस गँवार का प्रदर्शन सहन करेंगे ? यदि आपकी इजाजत हो तो—)"

निर्मल कुमार ने कहा : "प्लीज, इनफ ऑफ योर टॉमफुलरी ! ए स्ट्रेंजर फ्रॉम कण्ट्री साइड बट डेस्टीण्ड टू बी वन ऑफ अस । (तुम्हारी बेवकूफी बहुत हुई । आगन्तुक देहाती है , किन्तु एक दिन हम मे से ही एक होगा ।)"

"चीरियो बॉय, स्टेप इन ! (अच्छा लडके, भीतर आ जाओ !)"

अप्रतिभ लड़का भीतर आया, सभी लडकों के चेहरे पर हँसी दीप्त हो उठी थी, छात्राओं ने भी रूमाल से मुँह ढाँप रखा था । लड़का और भी अधिक संकोच और जड़ता में गड़ गया । कहीं पर उसे सीट नहीं दिखाई दी । तब विनयचन्द्र ने इशारा किया : 'देअर्स ए सीट फॉर यू ! (वहाँ तुम्हारे लिए जगह है ।)"

लड़के ने इशारे का अनुसरण करके देखा कि वहाँ एक महिला अकेली बैठी हुई है । वह फिर घबरा गया । लड़की के पास वह कैसे बैठेगा ? लड़की जिसके पास मे एक बहुत बढिया 'वॉलेट' है, जिसके बहुमूल्य वस्त्रों पर उसकी दृष्टि भी पड गई तो वे मैले हो उठेंगे । वहाँ जाकर बैठे वह ? लड़के उसका मजाक उड़ा रहे हैं ! वह पीछे की पक्ति की ओर बढ़ा । वहाँ पर सब सीटें भरी हुई थीं, कि उसे दिखाई दिया कि एक और सीट है, जिस पर एक ही छात्र बैठा हुआ है । यद्यपि उसके वस्त्र भी वैसे ही हैं कि उसकी

दृष्टि के स्पर्श से भी मैले हो उठें, पर लड़की से तो आखिर लड़का ही ठीक है। वह उसी ओर बढ़ा और बोला :—

"क्या मेरे यहाँ बैठने से आपको आपत्ति होगी ?"

"नहीं!"

"धन्यवाद!" लडका सकुचा कर एक कोने मे बैठ गया और उसने सन्तोष की साँस ली।

निर्मल ने कहा: "अच्छी तरह से बैठ जाओ, झिझको मत। शहर मे पहली दफा आए हो?"

"धन्यवाद, जी हाँ, यहाँ पहली ही दफा आया हूँ।"

"बी० ए० कसे किया ?"

"एक स्कूल मे अध्यापक था, प्राइवेट ही पास किया है। जब डिस्ट्रिक्ट बोर्डकी स्कॉलरशिप मिल गई, तो थोडा और प्रबन्ध करके यहाँ आने के प्रयत्न मे सफल हो सका हूँ।"

"स्कॉलरशिप ?"

"जी हाँ, उस अंचल मे प्रथम आनेवाले लड़के को प्रति-वर्ष वे स्कॉलरशिप देते हैं।"

"तो इस वर्ष तुम प्रथम आए हो।"

"यह भी तकदीर मे बदा था, मिस्टर—"

"निर्मल!"

"थैंक्यू मिस्टर निर्मल! कितना अच्छा नाम है आपका, और कितने भिन्न हैं आप इस सारे समुदाय से!—सो तकदीर मे बदा था कि अंचल में मैं ही अंधों मे काणा राजा मान लिया जाऊँ! यों यूनिवर्सिटी ने भी मुझे फर्स्ट क्लास दे दिया!"

"दैट्स रीअली क्रेडिटेबल (यह वास्तव मे श्रेयास्पद है)। आपको क्या कह कर बुलाया जाता है ?"

"पुकारा तो मैं छिम्मी के नाम से जाता हूँ, पर नाम है मेरा चिमनलाल!"

"दैट्स गुड मिस्टर चिमनलाल!"

"नहीं, आप छिम्मी कह कर ही पुकारें। इतना बड़ा नाम लेते हुए आपको तकलीफ भी होगी।"

निर्मल कुमार ने हँस दिया।

तभी दरवाजे में एक और छात्र ने प्रवेश किया। चिमनलाल की तरह वह युवक न था, थी वह युवती। दरवाजे पर वह रुकी भी नहीं। अधरों पर उसके मन्द मुसकान बिखरी हुई थी। हाथ के अपने लाल बटुए को घुमाती

हुई उसने विनयचन्द्र से कहा : "गुड मार्निंग विनय, यू हियर ? व्हाट्स अप योर स्लीव्हज ? (विनय, तुम यहाँ ? क्या इरादा है ?)" फिर बिना उसके उत्तर की प्रतीक्षा किए, वह कक्षा की ओर मुडी, और बोली : "गुडमॉर्निंग एव्हरी बॉडी, न्यू ऑर ओल्ड ! आइ होप यू हैव हैड ए नाइस वैकेशन। (मैं आशा करती हूँ आप लोगों ने अपना अवकाश अच्छी तरह बिताया है।)"

कुछ विद्यार्थियों ने उत्तर दिया : "गुडमॉर्निंग मिस नमिता ! सो डिलाइ-टेड टु सी यू अमंग्स्ट अस अगेन ! (फिर तुम्हे अपनों मे पाकर बहुत आल्हा-दित हूँ)"

देखा गया कि निर्मल की दृष्टि स्फीत हो उठी है। नमिता भी इधर-उधर देखकर उसी की सीट की ओर बढ़ी। उसकी आशा थी कि वहाँ, उसकी बगल मे उसके लिए जगह खाली है . किन्तु आगे बढते ही उसने देखा कि एक अर्ध सभ्य जंगली लड़का शायद निर्मल की कॉपी उठाकर कुछ पढ रहा है। उसने एक अर्थपूर्ण दृष्टि निर्मल के ऊपर डाली। निर्मल ने विवशता से भरी हुई दृष्टि से चिमनलाल की ओर देखा, पर किया क्या जा सकता था। आखिर नमिता ने इधर-उधर देखकर कल्पना की सीट पर लक्ष्य किया। फिर वहीं से बोली : "हैलो कल्पना, हाउ डू यू डू ? आइ होप आ' एम नॉट अन वेलकम (मैं सोचती हूँ, मेरा आना अप्रिय नहीं है)" .

"सर्टनली नॉट (निश्चय ही नहीं)" कह कर कल्पना उठी, नमिता का स्वागत किया और उसे अपने पास बिठा लिया।

पढ़ाई तो इस दिन कुछ होना नहीं थी , किन्तु फिर भी कॉलेज में काफी चुहल रही। युवाओं की सभा थी, मुफ्त के पैसे थे, शिक्षा का दम्भ था, फैशन के जमघट मे कोई पीछे रहना नहीं चाहता था। जिम्मेदारी कुछ थी नहीं; किन्तु उससे उत्पन्न आनन्द अपने नए रूप मे वहाँ मौजूद था, फिर क्यों कोई उसे न लूटे !

चिमनलाल ने नए वातावरण को देखा तो दंग रह गया। वह एक गरीब किसान का लड़का था। गाँव से प्रति दिन चार मील दूर चल कर उसने अपर प्राइमरी पास किया, और अठारह मील दूर के कस्बे मे रहकर मिडिल। उसके बाद ही घर की खेती छोडकर वह कस्बे के स्कूल में अध्यापक हो गया। फिर तो परीक्षाएँ पास करना उसके लिए आसान हो गया और वह यहाँ तक आ पहुँचा। किन्तु कॉलेज का दरकिनार, उसे शहर का वातावरण भी अब तक नहीं उपलब्ध हुआ था ! वह कस्बे की पाठशालाओं मे ही सामान्य अध्यापक रहा। दिन को स्कूल मे पढ़ाता, शाम को घर मे घुस कर किताबें रटता, और परीक्षाएँ पास करता। साधारण वेतन से अपना गुजारा करता, विशेष कुछ बच ही न पाता

कि वह अपने जीवन स्तर को ऊँचा करने की सोचे। न वातावरण ही ऐसा था कि उसकी कामना को कोई लक्ष्य प्राप्त होता। अतः उसकी गाढे की धोती, गाढ़े की कमीज और गाढे का ही छोटा कोट उसे बराबर साथ देते आ रहे थे। उन्हे धोबी के यहाॅ जाने की जरूरत न थी। इतवार को कस्बे के तालाब पर दो आने के नील मिले साबुन से उनका परिष्कार हो जाता था। लेकिन यहाॅ की दुनिया ही निराली थी!

सारे दिन कक्षा मे प्राध्यापकों से लगाकर सब छात्र-छात्राओं की दृष्टि का वह लक्ष्य रहा। कॉलेज की इस ऊँची कक्षा मे ऐसे व्यक्ति का पदार्पण एक आश्चर्य की घटना थी। अधिक उत्तम होता यदि ये महाशय अजायबघर के किसी कोने मे अपने लिए स्थान खोजते। महिलाओं को तो मनोरंजन का एक साधन मिल गया था। बल्कि इण्टरवल मे एक कुमारी ने पास आकर उनके चेहरे के कण्टूर तक देख डाले! फीता शायद नहीं था उसके पास, वरना वह उसकी नाक की उठान को नापने का प्रस्ताव भी कर देती!

नमिता कुमारी की दृष्टि का भी वह लक्ष्य बना। पर उसके मूल मे किसी दूसरे ही भाव की व्याप्ति थी! चिमनलाल का सहानुभूति का प्रथम परिचय निर्मल कुमार से ही था। अतः प्रत्येक किसी भी बात में —और चाहे जितनी छोटी बात हो, चिमनलाल के लिए वह बहुत बड़ी थी, वह निर्मल पर प्रश्नों की झड़ी लगा देता। अतः निर्मल इच्छा करके भी दूर बैठी हुई नमिता को अपने ध्यान का अश नहीं दे सकता था। इसके अतिरिक्त चिमनलाल ने नमिता का स्थान भी हथिया लिया था। यदि वह न होता तो नमिता वहीं पर बैठती, वस्तुतः सभी अन्य छात्र इस बात को जानते थे और इसीलिए निर्मल की वह बैठक खाली थी! वरना उसके साथ बैठने की इच्छा करने वाली युवतियों की कमी न थी!

जब सब कॉलेज से निकले तो देखा कि चिमनलाल फिर भी निर्मल के साथ है। निर्मल ने कहा : 'देन गुडबाइ फ्रेंड! वी मीट टुमॉरो! (अच्छा नमस्ते मित्र, फिर कल मिलेंगे?)"

"गुड बाई, बट,. .आप कहाॅ रहते हैं?"

"यहीं कॉलेज स्ट्रीट मे रहता हूँ!"

"ओह। मेरी तो, अभी देखिए, कोई व्यवस्था ही नहीं है।"

"अभी ठहरे कहाॅ हो?"

"यही धर्मशाला मे! होटल मे तो खर्चा बहुत लगता है।"

"क्यों नहीं होस्टल में रह जाते!!"

"कहीं अलग से अगर सस्ती-सी जगह मिल जाए, तो वहीं रह लूँगा।

बहुत कुछ तरद्दुद से बच जाऊँगा, और खर्चा भी अधिक नही पड़ेगा। रहा सवाल खाने-बनाने का, सो मुझे इसकी आदत है।"

"क्या कहा, खाना बना लेते हो ?"

हँस कर चिमनलाल ने कहा : "हाँ, माँ कहती थी कि सब्जी तो मैं इतनी बढिया बना सकता हूँ कि शायद वह भी नहीं बना सके। देखिए कभी सुयोग मिला, तो आप को अपने हाथ से पका कर खिलाऊँगा।"

"दैट्स रिअली व्हेरी नाइस ऑफ यू ! थैंक्स (यह तुम्हारी बड़ी अच्छी बात है। धन्यवाद)"

"तो आपका मकान तो बहुत बडा होगा ?"

"गुजारा करने भर के लिए। बात यह है कि मकान एक मित्र ही का है, बहुत कुछ तो किराए पर उठाया हुआ है !

"किराए पर उठाया हुआ ? तब तो निर्मल बाबू, एक कमरे की गुजाइश मेरे लिए निकल सकती है ?"

निर्मल ने हँस कर कहा : "यह शहर है छिम्मी, यहाँ सब कुछ मिल जाते हैं, पर मकान नहीं मिलता। जिनका घर-मकान है उनको भी नहीं। रेण्ट-कण्ट्रोल का नाम तो तुम ने सुना ही होगा ? बस इस युग में मकान बनाना और लडकी पैदा करना एक ही बात है। मुझे खुद को बडी तकलीफ है। किसी जमाने मे जब कि मेरे मित्र निहायत छोटे थे और ड्रेसिंग करने की उनको आवश्यकता न थी, तब उनका होने वाला ड्रेसिंग रूम किराए उठा दिया गया। तब का किराएदार तो मर गया, किन्तु आज उसकी तीसरी सब-टेनन्सी की पीढी उस ड्रेसिंग रूम को किचन (रसोई घर) के तौर पर काम मे ले रही है। और नोटिस पर नोटिस देने के बावजूद वे अपने स्टडी रूम ही को स्टडी-कम-ड्रेसिंग रूम (अध्ययन और सज्जा कक्ष) बनाने के लिए बाध्य हुए हैं।"

जब निर्मल उस तरफ मुड़ने को हुआ तो चिमनलाल ने कहा : "क्या यही मकान है आपका ?"

हँस कर निर्मल ने कहा : "नहीं, यह तो कॉफी हाउस है कॉफी हाउस, वुड यू हैव ए कप ऑफ कॉफी ? (कॉफी पियोगे ?")

"कॉफी, मैंने तो कभी पी नहीं !"

"तो आज पीलो !"

"पर मैं तो दूसरों की छुई हुई चीज नही खाता-पीता ?"

"अच्छा, देन वी पार्ट कम्पनी। (अच्छा तो हम साथ छोड़ते हैं !)" कह कर निर्मल ने हाथ बढाया, पर फिर कुछ समझ कर उसने ही खींच लिया !

चिमनलाल ने, जैसे कुछ हुआ ही न हो, कहा : "यहाँ किसी को आने से मना तो नहीं करते न ! तो चलिए, जब तक आप कॉफी पिएँगे मैं थोड़ी देर बैठ कर आप से गपशप ही लडाऊँगा ।"

निर्मल को चिमन पर कुछ क्रोध हो आया। चिपकने की भी कोई हद है ? किन्तु देखा कि यह लडका तो बडा ही सरल है। दाँव-पेंच, मिथ्याभिमान कुछ नही जानता। शहर मे नया आया हुआ है। शहरी वातावरण से परिचय पाने मे कुछ समय तो लगेगा ही। और नमिता हुई तो क्या हुआ, कॉफी-हाउस मे एक आनन्द यह भी रहेगा।

कॉफी हाउस के सभी कर्मचारी, बैरे से लगा कर मैनेजर तक, निर्मल को जानते मालूम पडते थे। सभी ने उसे सलाम किया। सामने मध्य मे एक ब्लॉक बना हुआ था, सध्या के कुछ घटों के लिए निर्मल कुमार उसमे बैठते थे, उनकी मित्र मडली के लिये यह स्वरक्षित था।

जैसे ही स्प्रिग का दरवाजा ठेल कर दोनों भीतर प्रविष्ट हुए, चिमनलाल ने देखा कि कॉलिज की वह अप्रतिम सुन्दरी नमिता देवी उसी ब्लाक मे एक ओर प्रतीक्षाकुल बैठी हुई हैं। निर्मल कुमार को चिमनलाल के साथ देख कर नमिता कुमारी को भी एकाएक आश्चर्य, क्रोध और घृणा-सी हुई, और उन्होंने एक तीक्ष्ण दृष्टि निर्मल के ऊपर डाली। निर्मल ने एक ही क्षण में नमिता कुमारी के मन का भाव पढ लिया, और मुस्करा कर बोले :

"लेट मी इन्ट्रोड्यूस टू यू माई— रादर अवर न्यू फ्रैंड मिस्टर चिमनलाल—(मेरे या अपने नए मित्र चिमनलाल) ।"

"बेटर यूअर अलोन (आपके अकेले के ही)" और उसने अपने हाथ उठा दिए !

निर्मल नमिता के पास ही बैठ गया, चिमनलाल सामने ! एकटक दृष्टि से वह नमिता की ओर देखता रहा ; किन्तु नमिता की विद्युद् दृष्टि का सामना करना उसके बूते का न था। वह नीची दृष्टि से ही नमिता को ताकने लगा !

नमिता ने इशारे से आँखों ही आँखों मे निर्मल से पूछा : "क्या जगली को पकड़ लाए हो तुम भी !"

निर्मल ने उसी तरह उत्तर दिया : "क्या करूँ, छोड़ता ही नहीं था ! ऐसा चिपका कि बस !" फिर प्रकाश मे बोला : "मिस्टर चिमनलाल होस्टल में नही रहना चाहते हैं, चाहते हैं कि बाहर ही अगर कहीं एकाध कमरा रहने को मिल जाए तो खाना तो आप बना लेंगे !"

"खाना बना लेंगे ?—क्या होटल खोलने का इरादा है मिस्टर चिमनलाल ?"

सीधा अपने प्रति सम्बोधन सुन कर ही चिमनलाल के हृदय की धड़कन बढ़ गई। सकोच के साथ बोला—

"जी, होटल मे रहने के लिए निर्मल बाबू भी कह रहे थे ; किन्तु व्यर्थ पैसे बरबाद करने से क्या लाभ ?"

इतनी सीधी-सी बात जो नहीं समझ पाया उसकी बुद्धि के परिमाण पर नमिता को आनन्द प्राप्त हुआ, यद्यपि निर्मल को किंचित दया अनुभव हुई। नमिता ने हँस कर कहा : "बल्कि यदि लाभ की दृष्टि से कुछ कमा ही लिया जाए! क्या बुरा है? ख्याल तो बड़ा अच्छा है श्रीमान चिमनलालजी—"

'जी, इतना बडा नाम क्यों लेती हैं! मुझे सभी कोई छिम्मी कह कर पुकारते है। निर्मल बाबू से भी मैंने अनुरोध किया है कि आखिर जब इतने छोटे से नाम से मजे मे काम चल जाता है, तो इतने बडे नाम को लेने की तकलीफ क्यों की जाए ?"

जवाब नमिता ने ही दिया : "बडे आदमियों के बड़े नाम होते हैं। मैं तो यह भी नहीं समझ पाती कि आपका नाम वास्तव में चमनलाल है या चिमनलाल। चमनलाल से तो कुछ संगति बिठाई जा सकती है, किन्तु चिमन-लाल, बल्कि चिलमलाल—"

निर्मल ने कहा : "बैरे से कुछ लाने को कह भी रखा है या खाली अपनी बातों से ही पेट भरोगी ?"

"देखा न चिमनलालजी, मेरी बातें तो अभी से इनके कानों को आघात पहुँचाने लगी है। इसीलिए कहती हूँ कि शायद इतना बड़ा नाम लेने में चाहे बोलने वालों को कष्ट न हो, किन्तु सुनने वाले को तो बोलने वाले के स्वर की प्रखरता सहन करनी ही पडती है। यदि यही आपका भी मन्तव्य हो तो मैं भी आपके नाम को छोटा करके ही पुकारा करूँगी!"

"आपका स्वर तो बडा ही मीठा है!—" कहने को चिमनलाल कह तो गया, पर दूसरे ही क्षण वह लज्जा से गड़ भी गया, किन्तु नमिता ने खड़े होकर सलाम झुकाते हुए कहा : "शुक्रिया कदरदानी का।—पर आप लजाते क्यों हैं ?—स्त्री का स्वर वास्तव मे मीठा होता ही है, और पुरुष के कानों मे तो उसकी मधुरता की सीमा नहीं रहती! निर्मल बाबू से पूछ लीजिए।"

"आप मजाक कर रही हैं!" चिमनलाल ने निर्मल बाबू की ओर देख कर कहा।

निर्मल ने मुस्कराकर नमिता की ओर अँगुलि-निर्देश करते हुए कहा : "मैं नहीं, आप!"

नमिता बोली : "मजाक ही सही, हर्ज क्या है, यदि उससे मनोरंजन हो सके। छिम्मी बाबू कोई बुरा थोड़े मान लेंगे!"

"जी नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है! बल्कि मुझे खुशी ही होगी।"

"तो आप होटल खोलना चाहते है ? बडा मजा रहेगा निर्मल, हम सब लंच वहीं खाया करेगे। और मिस्टर छिम्मी, कॉफी का भी प्रबन्ध वहाँ रखिएगा—" इतने मे बैरे ने आकर सलाम किया—

"ओह—बैरा, बडा जल्दी आया तुम—बस कल से तुम्हारा कॉफी हाउस बन्द !—हम हमारा खुद का कॉफी हाउस खोलेगा—"

निर्मल ने कहा : "किन्तु आज का आर्डर तो दे दीजिए मेम साहिब !"

"ओ० के०, माफ किया ! तीन कॉफी और—आप क्या खाइएगा मिस्टर चिमनलाल ?"

"जी, मैं तो किसी के हाथ का छुआ नहीं खाता !"

"दैट्स रीअली हाइजिनिक ! (वास्तव मे यह स्वास्थ्य के लिए उचित है।) बेरा, हाथ से छू कर कोई चीज नही आएगी। सब चीज नॉट टच्ड बाइ हैण्ड्स एटऑल ! कॉटा, चम्मच, छुरी—तब तो नॉन वेजिटेरियन डिश भी चलेगी न मिस्टर छिम्मी !"

"नही, नहीं, मेरा मतलब यह नही है ! मैं जरा प्राचीन विचारों मे पला हुआ हूँ। घर से बाहर का खाना मैं नहीं खाता !"

"घर से बाहर नहीं खाते ? फिर यहाॅ जब तक कि आपका होटल नहीं खुल जाता, क्या उपवास कीजिएगा ?"

निर्मल ने देखा कि नमिता चिमन को बनाए बिना रहेगी नहीं, तो हँसी दबा कर उसने बैरे को आर्डर दे दिया और इशारा किया कि वह सामान ले आए !

चिमन कह रहा था : "जी, मैं खुद ही नहीं समझा, होटल खोलने की कौन-सी बात है ? मैं तो यहाॅ पढने के लिए आया हूँ।"

"सो तो ठीक है, पर आपने कहा था न, सब सी-डिअरी बिजिनेस, जो कि आप कर सकते हैं ?"

चिमनलाल ने कातर आँखों से निर्मल की ओर देखा। वह अप्रतिभ भी हो गया कि दोनों ही उसकी ओर देख कर आपस में हँस रहे हैं।

निर्मल ने कहा : "तुम्हारी अकल भी खूब है नमिता ! छिम्मी बाबू को रहने के लिए एक मकान चाहिए ! तुम दे सकती हो ? यों यदि तुम्हारी निगाह मे कोई अन्य मकान हो !"

"पर होटल के काबिल मकान—"

"होटल के लिए नहीं, रहने के लिए। ये होस्टल में रहना नहीं चाहते !"

"हमारे दिल की कोठरी मे तो जगह है नहीं छिम्मी बाबू !" और ओंठों

को दाँतों से दबा कर वह मुस्करा उठी। चिमनलाल फिर संकुचित हो उठा !

निर्मल ने कहा : "कौन रहता है उसमे ?"

"तुम्हे क्यों बताएँ ? तुम तो उम्मीदवार हो नही ! अगर चिमन बाबू पूछते—"

"अगर उनकी तरफ से मैं पूछूं ?'

"तो मेरी तरफ से चिमनलाल जवाब देंगे !"

बैरे ने आकर ट्रे मे कॉफी और टोस्ट रख दिए, और चल दिया।

नमिता ने कहा : "बस, यही कंजूसी का आर्डर ? अरे, आज तो मूँजीपन छोड़ते। आखिर बूढ़ा जो इतना कमा रहा है, वह किस दिन काम आएगा ? और दो ही कप—क्या इन बैरों के आँखें भी नहीं होतीं !—"

निर्मल ने कहा : "नहीं, चिमनलाल कुछ नही पिएँगे !"

"क्यों ?—यह क्या हाथ की छुई है ?—चीनी मिट्टी का बर्त्तन, पानी से धोई हुई, अग्नि पर उबाली हुई, और दूध से तैयार की हुई, हाथ से कहीं छुआ नहीं , फिर भी अपवित्र ? सुनो मिस्टर चिमनलाल, शहर मे रहना है, और कॉलेज मे पढ़ना है, तो यह साधूपना ताक पर रक्खो। छुआ-छूत का खयाल ही रखना था तो अंग्रेजी क्यों पढ़े ? अरे जिस जबान से गोपाल सहस्रनाम पढ़ा जाता है, उससे म्लेच्छों की अण्डे-मुर्गी वाली भाषा बोलने से क्या तुम अपवित्र नहीं हो उठे हो ?—और यदि यह सब नहीं चाहते तो माँ की गोद से अधिक निरापद स्थान कही नही है !"

निर्मल ने कहा : "बात बहुत कुछ तो सच है छिम्मी। दुनिया गाँवों की सीमा से बहुत आगे बढ़ गई है ! उसे तुम्हे देखना ही चाहिए। यदि यह न भी मानो, तो भी कौओं मे हँस बन कर नही रहा जा सकता।"

नमिता और निर्मल कॉफी, टोस्ट, ऑमलेट उडाते रहे, और चिमनलाल सतृष्ण नेत्रों से देखता रहा। आखिर घण्टे भर बाद सब लोग बाहर निकले—तीनों—अपने-अपने घरों की ओर जाने के लिए !

★

२ :

चिमनलाल शरीर से तो अपने आवास पर लौट आया, पर उसका मन कहाँ रह गया , यह उसके लिए भी जानना सम्भव न था। एक तो दूसरे कॉलेज का जीवन, उसमें रमने वाले निर्द्वन्द्व आधुनिकतम प्राणी निर्मल, नमिता आदि जैसे उसने पहले कभी देखे न थे। इन सबका उसे जब एका-एक एकदम सम्पर्क प्राप्त हुआ, तो उसकी कामना को पंख लग गए। चित्र-पट उसने अवश्य देखे हैं उनमें चित्रित दृश्यों के साथ उसके आसपास के जीवन में कोई सामजस्य नहीं था, अतः उनमें वास्तविकता की कल्पना करना उसके लिए एकदम दुस्संभव था। कविता की विवृति के समान वह उसे केवल कल्पना के लिए सवेद्य समझता था। एक ही झटके से मानों उसकी आँखें बन्द हो गईं, और आज वह किसी परी के अतीन्द्रिय देश में आ पहुँचा है। अभी तो उसे अपनी दृष्टि ही का विश्वास प्राप्त करना पड़ेगा।

कमरे में घुसकर उसने बत्ती जो जलाई तो सारा कमरा उसे अँधेरा मालूम दिया। कोने मे बना हुआ धर्मशाला का एक छोटा-सा कमरा, जिसमें सदैव ही मुसाफिर आते-जाते रहते। नीली पुती हुई दीवारों पर कई जगह पेंसिल या कोयले द्वारा, या कहीं-कही पर किसी तीखी चीज से दीवार के प्लास्टर पर खरोंचे हुए, कमरे के कई पूर्व अधिकारियों के नाम तथा तिथि आदि अंकित थे , प्लास्टर कई जगहों पर यों ही उखड़ रहा था। कई जगहों पर अच्छे-बुरे चित्र, कहीं भद्दी गालियाँ, कही भद्र-वाक्य, और चिमनलाल को किंचित हँसी आई, कि उन्हीं मे से एक वह भी था सबेरे तक, जबकि एक कोने में उसने भी पेंसिल से अपना नाम, आने की तिथि तथा

निवास का ग्राम वहाँ पर लिख दिया था। अवश्य ही उसकी लिखावट अन्य लिखावटों से भिन्न, स्पष्ट और सुन्दर थी। उसने सोचा यदि कोई मनचला बाद का अधिकारी उसके नाम के साथ कुछ अन्य रिश्ता जोड़ दे, जैसा कि अन्य कई नामों के साथ हुआ है, तो उसे कैसा लगेगा? उसने पहले हाथ से उस लिखावटको पोंछ देना चाहा, इससे केवल उसके हाथ ही नीले हो पाए। एक कागज से उसने प्रयत्न किया, उसमे भी जब सफल न हुआ तो उसने एक कपड़े की शरण ली और अन्त मे खिडकी पर लगी हुई एक कील निकालकर उसने वहाँ के प्लास्टर ही की मरम्मत कर दी।

फैले हुए बिस्तर पर बैठ कर उसने सबसे पहले अपनी पूँजीको तौलना चाहा। वह अब शहर मे आ गया है, शहर मे, जो गाँवों को बहुत पीछे छोड़कर आगे बढ गए हैं। साधूपना ताक मे रखकर ही शहर मे रहा जा सकता है, नमिता कुमारी ने कहा है, निर्मल कुमार भी समर्थन कर रहा था। टीन के अपने बक्सको जब उसने खोला तो ऊपर ही ऊपर उसे काँच दिखाई दिया। उठाकर उसने उसे अपने चेहरे के सामने रोक लिया!

तो यह है चिमनलाल उर्फ छिम्मी, बी० ए०, या एम० ए० प्रीवियस! ऊहूँ, यह ऐनक ठीक नहीं दीखती। फ्रेम बदलवानी ही है, ये गोल-गोल शीशे भी बड़े गँवारू दीखते है। तीन कोनेवाले से भी बढिया वह चार कोने वाले शीशे जिनकी नीचे की कोर ऊपरवाली से कुछ छोटी हो। और यह परसों बनाई हुई दाढी? सवेरे तक तो कुछ भी मालूम नही देता था, और टर्न अभी परसों हैं, किन्तु अभी-अभी कैसी बढ़ी हुई दिखाई देती है। शायद शहर मे इसको बढिया उपजाऊ खाद मिल गई हो! कल सवेरे तो बनाना ही पड़ेगा, ऐसा दीखता है!—और बालोंको अब खुले रखना पड़ेगा! नारियल का तैल कुछ बुरा तो नही, लेकिन उन लोगों के बालों से कैसी बढ़िया महक उठ रही थी! दीखता है, शहर में नारियल के तैल का रिवाज नहीं है।

और कपड़े? यह कमीज सवेरे जब धोया था तो कैसा साफ दिखाई देता था?—यह धोती यहाँ कैसे चलेगी? कॉलेज मे धोती बाँधता ही कौन है! नहीं, नहीं, ये सब बदलना पड़ेंगे! पर कैसे? पैसे कहाँ हैं? उसने बक्स मे गहरे हाथ डालकर एक लिफाफा निकाला, जिसमे नोट रखे हुए थे। निकालकर उसने उन्हे गिना, कुछ सन्तोष प्राप्त किया हो, ऐसा नही दिखाई दिया। और अभी उसे खाना भी तो खाना है?—एक नोट जेब मे रखा, बक्स बन्द किया, कमरे मे ताला लगाया और मिस्टर चिमनलाल एकबार फिर बाहर निकल गए!

चिमनलाल—नाम भी शहराती नही। तभी तो सुनकर निर्मल और

नमिता दोनों ही मुस्कुरा उठे थे ?—निर्मल और नमिता—कितने बढ़िया नाम हैं। अगर उसका भी कहीं निर्मल नाम होता! पर अब नाम बदला ही कैसे जा सकता है! यूनिवर्सिटी वगैरा सब कही तो चिमनलाल मशहूर हो गया है, अब कोई निर्मल कुमार कैसे बन सकता है।

कोई ऐसा उपनाम क्यों नही रख लिया जाए ?—जैसे विमल या कमल—सबसे बढ़िया रहे परिमल, किन्तु बच्चू! तुम कौन से कवि हो कि तुम्हें 'परिमल' उपनाम रखने की जरूरत पड़ गई! उपनाम तो कवि लोग ही रखते है तो क्या चिमनलाल कवि नहीं हो सकते ? शहर आने पर भी, नमिता देवी के दर्शन का ही नही, उनसे बात तक कर सकने का सौभाग्य प्राप्त करके भी क्या किसी के लिए कवि होना कठिन है ? बस, घर लौट कर ही मिस्टर चिमनलाल—नही नहीं, श्री परिमल एक कविता बनाएँगे! कविता की क्या मजाल, कि वह चिमनलाल से न बने!

—कि सामने दिखाई दिया 'दि ईस्ट एण्ड रेस्ट्राँ'!—बिजली के नीले हरे प्रकाश मे कभी जलता हुआ, कभी बुझता हुआ, मानों आँखों के इशारे से बुला रहा हो! चिमनलाल कि आँखें चार हो गई।

शहर मे रहना है और कॉलेज मे पढना है, तो साधूपना ताक पर रक्खो। दकियानूसीपन से काम नही चलेगा। तो आज ही से, अभी से क्यों नहीं शुरूआत की जाय ?

धडकते हृदय से चिमनलाल रेस्टराँ मे प्रविष्ट हो गया! और एक खाली कुर्सी देख कर उस पर बैठ गया। एक बैरे ने सलाम की और उसके हाथ मे मेनू का कागज पकड़ा दिया। कॉफी हाउस मे निर्मल के साथ वह मेनू की कारगुजारी देख चुका था। देख कर उसने सोचा: उन लोगों ने कॉफी पी थी। क्यों न कॉफी ही पी जाए ? 'जायका तो मालूम पड़ जायगा! और जब कॉलेज मे उसे पढना है तो कॉफी तो उसे पीना ही पड़ेगी। उसने कहा: "एक कप कॉफी!"

"और कुछ खाइएगा नहीं ?"

"खाऊँगा क्यों नहीं ?—अच्छा तो आधा कप कॉफी!"

"आधा कप ?"

"हाँ भाई आधा कप। कुछ खाऊँगा भी तो! तुम्हीं नें तो कहा था ?"

"यहाँ पूरा ही कप मिलता है। आधा नहीं!"

"नहीं मिलता ? तो फिर पूरा ही सही!"

"और खाइएगा क्या ?"

"क्या दे सकते हो ?"

"यह मेनू मे देखिए न ?—जो आपको पसन्द हो !"

"ओह !" चिमनलाल ने फिर मेनू को उलट-पुलट डाला। बोला: "एक कटलेट दो !"

"वेजिटेबल कटलेट या मटन—"

"नहीं नहीं, मटन नहीं, खाली कटलेट—"

"खाली कटलेट ?—यानी वेजिटेबल ?"

"हाँ हाँ ! जल्दी ले आओ !" कहीं और गलती न हो जाए, इसलिए उसने मेनू को नीचे रख दिया, और इधर-उधर दृष्टि डाली। पास ही एक टेबल के चारों तरफ तीन-चार युवक और दो युवतियाँ चाय-बिस्कुट आदि खाते हुए बातें कर रहे थे। उसने उधर कान दिया।

एक सज्जन कह रहा था: "भई, इस कहानी मे वही बात तो नहीं है ! मैं पर्दे पर हालीवुड का 'लव्ह' नहीं बताना चाहता कि इधर देखा और उधर प्रेम ! मैं इण्डियन-प्रेम दिखाना चाहता हूँ इण्डियन, धीरे-धीरे, आहिस्ता-आहिस्ता, वन इन्सीडॅण्ट लीडिंग टु अनादर (एक घटना दूसरी घटना तक जाती हुई)—ऐसा प्रेम बतलाना चाहता हूँ इस कहानी मे।"

दूसरे ने कहा: "सिनेमा के पर्दे पर प्रेम को इतना धीरे-धीरे चलने की फ़ुरसत कहाँ रहती है मियाँ ? देखने वाला कही देर बर्दाश्त कर सकता है ? वह तो चाहता है, देखा और प्रेम, चट मॅगनी और पट ब्याह ! लव्ह एट फर्स्ट साइट (प्रथम दर्शन मे प्रेम) ! यहाँ अमेरिकन इण्डियन मे कोई भेद-भाव नहीं होता !"

—तो ये सिनेमा कम्पनी से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्ति हैं। शायद किसी कहानी के बारे मे सोच रहे हैं। बात तो बडी मार्के की है !

युवती कह रही थी: "पर इसमे इस बूढे दादा की क्या जरूरत है ?"

पहले व्यक्ति ने कहा: "आहा, बूढ़ा ही तो सारी फिल्म की जान है। यह ऐसा रोल दे रहा हूँ मैं कि सिने-वर्ल्ड मे एक अजीब चीज होगी !"

दूसरी युवती ने कहा: "लेकिन इस कहानी मे बूढा, एट इट्स बेस्ट बट ए गो-बिट्वीन (कहानी की उत्तमता के लिये एक दलाल-मात्र) रह गया है ! शायद यही है इण्डियन लाइफ का नमूना !"

—और फिल्मी-परदे पर किसी भारतीय कथा को अवतरित करना चाहते हैं !—चाहते हैं, और चेष्टा भी कर रहे हैं कि भारतीय वातावरण इसमे चित्रित किया जाए। कहानियाँ तो चिमन ने भी लिखी थीं, जब वह मेट्रिक पास हुआ था, और जैसा कि सिनेमा वाले प्रायः चाहते रहते है, वह कहानी भी प्रेम ही की थी ! जब उसे सुनने वाला कोई नहीं मिला था, तो रसोई घर में बैठ कर खाना बनाती हुई माँ को कितने बड़े उत्साह से उसने वह कहानी सुनाई

थी, और फिर उसे सुन कर किस तरह पहले तो माँ के नाक-भौंह बदल गए थे, और बाद मे किस तरह उसने मुस्करा कर कहा था कि बड़ा हो गया है, अगर बाप जिन्दा होते तो कहीं न कहीं हाथ पीले करने की तजवीज कर ही देते, पर खैर बाप नहीं, तो क्या हुआ—वगैरा वगैरा, बातें पुरानी हैं, पर वह कहानी अभी तक वैसी ही नई है!

बैरा कॉफी, और वेजिटेबल कटलेट की प्लेट रख गया!

कुछ क्षणों तक सतृष्ण नजरो से इधर-उधर देख कर उसने कॉफी को मुँह से लगाया। चाय उसने पहले जरूर पी थी, पर कॉफी पीने का यह पहला ही मौका था। कॉफी कहीं ऐसी लगती है? मालूम देता है जल गई है। रंग भी कितना काला, कुछ वैसी बदबू भी आ रही है, और रहा-सहा स्वाद तो साफ बता ही रहा है! बैरा को आने दिया जाए। पूरे पैसे कैसे ले लेगा? शहर है, और उसने सुन रक्खा है, यहाँ ठगी पग-पग पर चलती है। चले, वह भी होशियार है!

रेस्टराँ मे काफी भीड़ थी। कोई क्या खा रहा है कोई क्या? सिगरेट पर सिगरेटें उड़ रही हैं, सारे कमरे मे धुआँ छाया हुआ है। वह आदमी उधर कोने मे बैठा हुआ क्या मजे से सामने बैठी हुई युवती के मुँह पर धुएँ के गुब्बारे छोड़ रहा है, और वह युवती हँस-हँसकर उसे मना करने का नाटक दिखाती हुई वही क्रीड़ा दुहराने को प्रेरित कर रही है। सिगरेट पीना, यानी तम्बाकू, बुरा तो जरूर है, पर शहर मे और कॉलेज मे यदि रहना है तो—और नमिता कुमारी ने मुझे जगली तो इसीलिए समझा न, कि न मैं कॉफी पीता हूँ न सिगरेट—ऐ भाई—ऐ बॉय!—यह भी खूब है; बुलाया मैंने लड़के को, और आ रहा है यह खूँसट! कोई हर्ज नहीं: "देखो, एक सिगरेट—"

"एक सिगरेट नहीं मिलता बाबू, पैकेट मिलता है पूरा पैकेट!"

"पूरा पैकेट?—"उसने कुछ सोचा, शायद पूँजी के बारे मे; फिर बोला, "अच्छा, पूरा पैकेट ही ले आओ!"

"बाबू, सिगरेट बाहर से मिलेगा। पैसे दे दीजिए, ले आता हूँ!"

"कितने पैसे?"

"कौन-सी लीजिएगा?"

कौन-सी?—तो इसमे भी घटिया-बढ़िया होती है? प्रकाश मे बोला: "अच्छा वह जो नीला-नीला-सा पैकेट होता है न?"

हँसकर बैरे ने कहा: "कैप्सटन?—होटल के बैरे इतनी अग्रेजी तो जानते हैं बाबू, और सिगरेट-बिगरेट इन सब की अलग-अलग ब्रैण्ड भी पहचानते हैं!"

चिमनलाल ने सिर हिलाया तो बैरा बोला: "ग्यारह आने दीजिए!"

"ग्यारह आने?"

"जी हाँ, ग्यारह आने ! सारे शहर मे यही भाव है। आपके यहाँ अगर सेल्सटैक्स न हो तो शायद दस आने मे मिल जाता होगा, पर यहाँ तो ग्यारह ही आने लगते हैं।"

चिमनलाल ने एक रुपये का नोट बैरे को दे दिया।

सिगरेट का पैकेट रखकर जब बैरा चला गया तो चिमनलाल को मालूम हुआ कि माचिस का तो उसने ख्याल ही नहीं किया था। अब कैसे जलाए सिगरेट वह ? पास मे एक जोड़ा बैठा हुआ था। उसने युवक से कहा—

"जरा दियासलाई दीजिएगा ?"

"माफ कीजिए, जब मेरे पास दियासलाई नहीं होती, मैं धूम्रपान नहीं करता।"

"पास नही होती बल्कि जब तक हाथ मे नहीं होती, तब तक मैं भी नहीं करता। इसीलिए कह रहा था कि यदि आपके पास हो तो मेरे हाथ मे दे दीजिए।"

युवक ने मुस्कराकर जेब से माचिस निकाली और अपने ही हाथ से दियासलाई जलाकर मुस्कराते हुए चिमन की ओर बढाई। चिमन ने भी हँस कर कहा : "माफ कीजिए। दियासलाई मेरे हाथ मे होगी तभी।" युवक ने दियासलाई की डिबिया बढा दी।

चिमन ने डिबिया ले तो ली पर ऊपर पखा चल रहा था। दो-तीन तीलियाँ खराब करने पर भी वह सिगरेट नहीं सुलगा सका। देखकर सामने बैठी हुई युवती मुस्करा दी, युवक हँस पड़ा ! चिमन थोड़ा अप्रतिभ हुआ तो उसके अधर के दबाव से सिगरेट छूट कर फर्श पर गिर पड़ी। युवक कहकहा लगा उठा !

"यू डोण्ट नो हाउ टु लाइट ए सिगरेट ! (तुम सिगरेट जलाना नहीं जानते।)"

चिमन ने सिगरेट का पैकेट जेब मे डाला, और माचिस बढाते हुए बोला : " नहीं, अब नही पीऊँगा।"

युवक ने कहा : "मैं जला देता हूँ।"

"थैंक्यू, बट आइ डोण्ट फील लाइक स्मोकिंग नाउ ! (मैं अभी सिगरेट पीना नही चाहता।)"

युवक ने कहा : "फार माइ प्लेजर्स सेक (मेरे आनन्द के खातिर)" और उसने जेब से एक सिगरेट केस निकाला। एक सिगरेट अपने मुँह मे दबाई, और केस चिमनलाल की ओर बढा दिया। झिझकते-झिझकते चिमनलाल ने एक सिगरेट निकाल ही ली। युवक ने उठकर दियासलाई जलाई, और चिमन की ओर किया। चिमन देख ही चुका था। सिगरेट ओंठों मे दबाकर माचिस से छुआते हुए उसने जो जोर से कश लिया, तो

सारा धुआँ उसके दिमाग़ मे पहुँच गया। युवक "थैंक्स" कहकर युवती के साथ आगे बढ़ गया।

लेकिन चिमनलाल की हालत देखने काबिल हो गई। सिगरेट कभी पी नहीं, कश काफी जोर से खींचा गया था, अतः धुआँ गले की पकड से छूट कर नाक मे होता हुआ दिमाग़ पर चढ गया। और खाँसी, आँसू आदि के साथ ही साथ आँखें लाल हो गईं। दूसरे सिगरेट भी थी केसल! जो नौसिखियों को अनुकूल आ ही नही सकती। फिर भी चिमनलाल ने अपने आप को बहुत जल्दी सम्हाल लिया, उसने सोचा कि सारे हॉल की समवेत-दृष्टि उसे एक ही क्षण में परास्त कर देगी, यदि उसने तनिक भी ढिलाई की तो।

उसने फिर समुदाय के ऊपर दृष्टि डाली। सभी लोग तो सिगरेट पी रहे हैं, और बडे मजे से पी रहे है। क्या उसी की सिगरेट इतनी कड़वी है? उस युवक ने भी तो इसी सिगरेट को पिया था। वह तो बिलकुल ही सौम्य रहा! उसने राख-दानी पर से फिर सिगरेट उठा कर मुँह को लगाया, डरते-डरते कश खींचा। इस बार धुँए मे वह उग्रता न थी, पर कड़वाहट अवश्य थी, फिर भी जब उसने मुँह के ओंठों को त्रिभुजाकार बना कर धुँए को बाहर फेंका, तो उसमे उसे एक बड़ी मोहकता दिखाई दी। धुँए के छल्ले धीरे-धीरे आगे बढने लगे, उसमे मानो नए युग की रवानी तैर रही थी, मानो नई सभ्यता का इतिहास उड रहा था, उसमे बलखाती हुई परियाँ नाच रही थीं, उसमें यौवन के सपने थिरक रहे थे, उसमे फैशन का नशा लरज रहा था। चिमनलाल ने फिर कश खींचा, फिर छल्ले उड़ाए, पैरों को फैलाकर वह कुर्सी की सीट से सटकर बैठ गया, आँखें बन्द कर लीं। लेकिन बन्द आँखों मे भी धुँए का वह इन्द्रजाल उसे स्वर्ग की सैर कराता रहा। उसे मालूम हुआ, उस कड़वाहट के बावजूद यदि इस कलियुग मे कोई पुण्यमय सदेह स्वर्ग है, तो वह है सिगरेट की टिप से निर्गत इस धुँए का वह अम्बार जिसमे आज का युग जीवित है, जिसमे आज की आकाक्षाएँ लिपटी हुई हैं, जिसमे आज की प्रगति का पैमाना छिपा हुआ है।

बैरे ने आकर सलाम किया : "बाबू और कुछ होगा?"

चौंक कर चिमन ने आँखें खोलीं, काफी देर से बैठा हुआ है वह। उसे जब कुछ सूझा नहीं, तो बोला :

"ओः तुम्हारी कॉफी बिलकुल रद्दी थी!"

"रद्दी?"

"थर्ड क्लास!"

"स्ट्रॉंग पिएगा बाबू?"

स्ट्रॉग ?—शायद यह अच्छी लगती हो। चिमन ने कहा : "अच्छा एक ले आओ। और देखो, खाने के लिए क्या लाओगे ?"

"जो आप बोलेगा—बेजिटेरियन या नॉनबेजिटेरियन ?"

"बेजिटेरियन, बिलकुल बेजिटेरियन—लेकिन—" चिमनलाल ने सोचा, अण्डा तो बिलकुल बेजिटरियन माना गया है। उसने कहीं पढ़ा तो था कि अण्डा और दूध दोनों एक जैसे ही पदार्थ हैं, बल्कि महात्मा गाँधी से भी शायद इस बारे मे शास्त्रार्थ हुआ था। उन्होंने क्या उत्तर दिया, यह तो उसे याद नहीं, पर अण्डा आखिर सोलह आने दूध जैसा नहीं तो पन्द्रह आने तो होता ही है! महात्मा गाँधी के मत का एक आना उसमे बाद किया जा सकता है, और अब महात्मा गाँधी जीवित ही कहाँ है ?

उसने कहा : "अण्डे का क्या प्रिपरेशन है ?"

"अण्डे का प्रिपरेशन ?—"

"नहीं समझा ?-अण्डे से बनी हुई क्या चीज है ?"

बैरे ने कहना तो चाहा कि अण्डे से बनी हुई तो मुर्गी है, पर वह ग्राहकों से अदब करने के कायदे को जानता है। उसने कहा : "अण्डे की कोई चीज बनी हुई तो नहीं। पर जो आप कहेगे सो बना दी जाएगी!"

"जल्दी से जल्दी क्या बन सकता है ?"

"आमलेट!"

"अच्छा तो साथ मे एक आमलेट दो।"

"सिंगल या डबल ?"

कुछ सोच कर चिमन ने कहा : "सिंगल!"

जब बैरा चला गया तो चिमनलाल ने सोचा, जाने कितने का बिल होजाएगा! ग्यारह आने तो उसने सिगरेट ही मे खर्च कर दिए हैं। ग्यारह आने का उपयोग करने के लिए उसे एक आने की माचिस खर्च करना पड़ेगी और अब यह आमलेट, स्ट्राग कॉफी, जाने क्या इनका बिल होजायगा। और यदि शहर मे रहना है चिमनलाल, तो देखना होगा कि बटुआ ढीला न होजाए!

बैरा जब खाने-पीने का सामान रख कर चला गया तो चिमनलाल ने सोचा कि इस भीड़ मे यदि कभी कोई बिल न भी चुकाए और उठकर चल दे तो किसी को क्या पता लग सकता है ? जिस बैरे ने उसे सामान दिया है, उसके अन्य और कई ग्राहक हैं, वह उनकी फार्मायश भी पूरी कर रहा है। सब ओर ध्यान रखना उसके लिए संभव भी नहीं है। चाहे तो वह आसानी से उसकी नजर बचा सकता है।

पर यह क्या उचित है? खाने-पीने की चीजों मे इस तरह धोखा? हजम कैसे हो सकेंगी ये वस्तुएँ? यदि कोई नया उपद्रव शुरू हो गया तो? शहर ठहरा, अपना कहने को कोई नही। आफत यहाँ, कहते हैं, पग-पग पर मुँह बाए खडी रहती है। और आफत न भी हो, तो भी क्या वह इतना गया बीता है, कि इतनी तुच्छ बात को हृदय मे स्थान दे?

बाजू मे बैठे हुए व्यक्ति ने कहा: "बैरा, हमारा बिल?"

बैरे ने जेब से बिल निकाल कर हाथ की खाली प्लेट पर रख दिया।—तो ये बिल पहले ही बनवा लेते हैं, और माँगते ही ग्राहक को थमा देते हैं। ठीक तो है, जैसे ही सामान लाए, बिल बनवा लिया। नहीं तो याद ही कैसे रह सकता है? ओः, तो मैनेजर तो बैरे से पैसे वसूल कर ही लेगा, चाहे ग्राहक से वह पैसे वसूल करे या नहीं। चिमनलाल ने देखा कि बैरा चैंज लेकर लौटा और उसने प्लेट ग्राहक के सामने बढा दिया। एक चवन्नी ग्राहक ने प्लेट मे डाल दी, बैरा ने सलाम किया।—तो ये लोग इनाम भी पाते हैं---क्या?—हाँ, याद आया, टिप कहते हैं इसे।

मरेगा बेचारा बैरा ही, गरीब आदमी है, जूठन उठाता है, क्रोकरी-कटलरी धोता है, बीसेक रुपए तनख्वाह पाता होगा, और महीने मे दस-बीस टिप के मार लेता होगा। फिर भी इस जमाने मे चालीस-पचास रुपये से क्या होता हैं? और यदि एकाध रुपये की इस तरह चपत पड़ जाए?--नहीं-नही; चिमन इतना नीच नहीं है। वह बराबर पैसे चुकाएगा और चवन्नी नहीं तो कम-से कम दुअन्नी तो जरूर ही 'टिप' देगा।

विचारों मे उसे यह भी पता नहीं रहा कि आमलेट की प्लेट वह सफा उड़ा चुका है, और उसे यह भी पता न रहा कि वह कैसा लगा! बुरा तो अवश्य नहीं लगा, बल्कि बहुत कुछ अच्छा ही लगा है, आमलेट वह मजे से खा सकेगा। उसने कॉफी को मुँह लगाया।

पर यह क्या? इतनी कडवी? और वही जल जाने की बदबू?—स्पेशल कॉफी उस साधारण कॉफी से भी अधिक खराब? नहीं-नहीं ये बड़े हरामजादे हैं साले! कम तनख्वाह पाते हैं तो क्या हुआ? शहर जो ठहरा! ये छँटे हुए शैतान हैं। और क्या पता बिल भी एकाध रुपये ही का हो?—सुनते हैं आमलेट तो काफी मँहगा मिलता है! और कॉफी? चाय के कप का ही दो आना ले लेते हैं। फिर यह कप तो स्पेशल था!—यदि पैसा रहा तो—

चिमनलाल ने निगाह दौडाई। देखा कि वह बैरा जो उसको सर्व कर रहा था, उस कोने मे किसी दूसरे ग्राहक को 'वेट' कर रहा है। मौका अच्छा

है। चिमनलाल उठ खडा हुआ; आगे बढने को हुआ, कि एक दूसरे बैरे से उसकी निगाहे चार हो गई। क्या उसने उसे चोर समझ लिया ?—और वह हाथ उठा कर क्या उसे पकड़ना चाहता है ? --नहीं-नही, अपनी ओर देखते देख उस बेचारे ने सलाम किया, किन्तु चिमनलाल के सारे शरीर में पसीना बह निकला। हृदय की गति चौगुनी हो गई। जेब में हाथ डाल कर उसने एक इकन्नी निकाली, और बैरे को थमा दी, बैरे ने फिर सलाम मारा। चिमनलाल भागा, सिर पर पैर रख कर, और दरवाजे से बाहर होते-होते तक वह डरता रहा कि पीछे से कोई उसका कोट न खींच ले। बाहर निकल कर भी वह जल्दी से भीड मे घुल-मिल कर अपने आप को बिलकुल खोया हुआ पाने लगा।

रास्ते में उसने सोचा कि यदि यहाँ पर ईमानदारी का नाट्य कर सको, तो बडी सरलता से बेईमानी की जा सकती है, और कोई उसे पहचान नहीं सकता। ईमानदारी का सिक्का यहाँ पर नहीं चलता, जो चलाने की चेष्टा करते हैं, वे धोखा ही नहीं खाते, बल्कि भूखों भी मरते हैं! युग ही ऐसा है; यहाँ पूँजी की कीमत नहीं है, कीमत है 'क्रेडिट' (विश्वास) की, जो उधार का ही दूसरा नाम है। अतः पूँजी की चिन्ता करने की जरूरत नहीं है, जरूरत है सिर्फ क्रेडिट बनाए रखने की! और क्रेडिट बनाए रखने मे विशेष कुछ लगता नहीं!

"कहीं चलिएगा बाबू?" सामने देखा तो एक रिक्शावाला खड़ा है!

"कहाँ?"

"जहाँ आपकी मर्जी हो?—सैर के लिए, या किसी पिक्चर, या कोई अच्छा-सा माल—"

"माल?"

"जी हाँ!" फिर धीरे बोला: "मेम साहिब, हिन्दुस्तानी! जैसा आप चाहे?"

चिमनलाल का माथा घूम गया, बोला: "कहते क्या हो?"

"बिलकुल प्राइवेट, बाबू—थोडी ही दूर है, बस!"

चिमनलाल की हिम्मत ने जवाब दे दिया। वह आगे बढ़ गया, पर उसका मस्तिष्क उसी रिक्शेवाले के चारों ओर चक्कर खाने लगा।—तो, यहाँ पर यह भी होता है? पेशेवर नहीं, बल्कि प्राइवेट। पैसा तो जरूर लगता ही होगा! तो क्या पेट की चपेट ही उन्हे इतना नीचा बना देती है? उसके सिवा और कारण ही क्या हो सकता है? जिसको कभी देखा नहीं, जिसके बारे में सुना नहीं, उसको कोई अनायास किस रिश्ते से बुला सकता है! यदि पैसा ही मध्यस्थ

न हो ! और फिर प्राइवेट, पेशेवर नही !

रास्ते मे तमाम चीजे फुटपाथ पर बिक रही थीं। बेचने वाले सामने आकर खड़े हो जाते और विक्रय की वस्तुओं को आपकी आँखों के सामने नचाते हुए आपसे खरीदने का अनुरोध करते : बहुत सस्ती है, यदि यही माल सामने वाले स्टोर से खरीदिए तो चौगुना वसूल न करले तो जो चाहे सजा दीजिए। सजा देने का आप को हक है या नहीं, और उसे सजा स्वीकार करने की गरज है या नही, यह कोई बात नही। यह क्रीम, असली पॉण्ड्स क्रीम सिर्फ एक रुपये छह आने मे, असली तो है ही, सील देख लीजिए...क्या कहा सील नकली है ? सील भी कहीं नकली होती है ! सील लगी हुई है, इसका मतलब ही यह है कि यह नकली नहीं। सील तो पहरेदार है, पहरेदार और यह न पूछिए कि पहरेदार भी कभी चोर हो सकता है !

रास्ते मे पूरी-मिठाई की दूकान थी। चिमनलाल ने सोचा कि पूरियाँ खाकर आज तो पेट पूरा भर लिया जा सकता है। वह दूकान में घुस गया। रास्ते के सारे व्यापार को उसने देखा ही था। उसे बडी वितृष्णा हुई अपने आप से भी ! कैसी जगह मे वह आ गया है ? कैसे प्रलोभन हैं, कैसी मजबूरियाँ हैं, और कैसी सीमाएँ हैं मनुष्य की ? इस प्रवाह मे बहने वाले किस माई के लाल के पैर ज़मीन पर रह सकते हैं ? इस हवा का प्रभाव ही है कि पहले दिन ही खुद चिमनलाल के पैर डगमगा गए ? चेष्टा करेगा वह कि कैसे इस शहरी सभ्यता मे स्थिर रहा जा सकता है।

कौर मुँह मे देते ही उसे मालूम हुआ मानों पूरियाँ शुद्ध तेल की भी नहीं हैं। उसने पूछा : "क्या तेल की पूरियाँ हैं !"

"जो मेरे घी को नकली साबित करदे उसे सौ रुपया इनाम ! देखते नही यह क्या लिखा है !" और उसने दूकान पर लगी हुई एक तख्ती की ओर इंगित कर दिया, जिस पर लिखा हुआ था 'नक्कालों से सावधान ! शुद्ध घी का बना हुआ माल। नकली साबित करने वाले को सौ रुपया इनाम !' इस ललकार के सामने क्या कहा जा सकता है ?

दूकानदार ने फिर कहा : "कार्पोरेशन के इन्स्पेक्टर साहब रोज मुआयना कर जाते हैं, रोज। उनका सार्टिफिकेट मौजूद है। क्या मजाल है जो कोई मेरे माल को नकली बता दे ! मैं कोर्ट में हरजाने की नालिश कर सकता हूँ ऐसा कहने वाले के खिलाफ ! खुली दूकान पर ऐसा इलजाम लगाने के पहले आपको जिनिस की परख होना जरूरी है।"

दूकानदार सचमुच जबर्दस्त आदमी है। कार्पोरेशन का इन्स्पेक्टर यदि प्रमाणित कर गया है—और अवश्य कर गया होगा, ऐसे लोगों की खातिर

तवज्जह मे कभी अन्तर नहीं आता—तो उसको चुनौती देना सामान्य बात नहीं है। चिमनलाल ने कहा : "सेठजी मेरा मतलब था, शायद घी कुछ पुराना हो।"

"पुराना कैसे हो सकता है? बिलकुल ताजा, गाँव से मँगाया हुआ, घर की भैंसों का है।"

चिमनलाल ने चुप रहना ही उचित समझा, वह किसी तरह खरीदी हुई पूरियाँ निगलता गया और हाथ धोकर अन्त मे जब जाने को हुआ, तो एक क्षण के लिए उसके मस्तिष्क में आया, क्या इन सड़े हुए तैल के पदार्थ का वह पैसा देगा? रेस्टराँ जैसा वह यहाँ भी कर सकता है, बल्कि दूकान के सामने खुले मे बैठ कर खाने की सुविधा होने से, यहाँ उस रीति का पालन करने मे और भी सरलता है; किन्तु नहीं, जहाँ तक हो सके उसे प्रलोभनों को अलग रखना चाहिए। उसने पूछा : "कितने पैसे हुए सेठजी?"

सेठ ने नौकर से पूछा : "अरे, बाबू को कितनी पूरी दी थी?"

"पाव भर?"

"सिर्फ पाव भर? और कुछ नहीं? और जिसमे इतना तूफान कि घी अच्छा नहीं है?—लाइए आठ आने के पैसे निकालिए।"

चिमनलाल ने फिर भी कुछ बोलना उचित न समझ, पैसा निकालने के लिए जेब मे हाथ डाला। पर यह क्या? हाथ आगे घुसता ही चला गया; जेब ही नदारद! और उसमे पड़े पैसे? किसी ने जेब ही कतर ली!

सेठ ने हँस कर कहा : 'अब समझा दोस्त, पैसे हजम कर जाने का बहाना था पर मैं भी कच्ची गोलियाँ नहीं खेला हूँ। [illegible] जैसे लोग ही बाजार की साख बिगाड़ते हैं। दे दूँ पुलिस में?"

चिमनलाल की भावना को ठेस लगी। कोई खास हानि नहीं हुई थी, केवल पाँचेक रुपए जेब मे थे। और यहाँ पर भी अगर वह चाहता तो सरलता से खिसक सकता था। पर ईमानदार बनने जा रहा था वह। उसका पुरस्कार उसे मिल गया? हाथ की घडी खोल कर सेठ के सामने रखते हुए उसने कहा : "आठ आने के पैसे दे जाऊँ, तो ले जाऊँगा!"

सेठ ने यह कहते हुए घड़ी को कान से लगाया: "टॉय रिस्टवाच तो नहीं है?--चलती तो है! और भाई, एक बात और बता दो। चोरी की तो नहीं है न?–पर मेरा क्या जाता है, ये जो सब गवाह हैं! बस पैसे देजाना और अपनी चीज ले जाना। और उसने घड़ी को केश बक्स के हवाले किया।

नई दुनिया के नए सपनों मे डूबते-उतराते हुए जब चिमनलाल अपनी धर्मशाला मे पहुँचा तो रात के ग्यारह बज रहे थे। पर कई मुहल्लों मे तभी खन्नक शुरू हो रही थी।

★

: ३ :

चिमनलाल को शहर मे छः माह बीतें उसके पहले उसका कलेवर बदल गया ; उसका कलेवर बदले, उसके पहले उस की बेशभूषा बदल गई ; उसकी बेशभूषा बदले, उसके पहले उसका नाम चिमनलाल से बदल कर बाबू च्यवन प्रकाश हो गया, और नाम बदले उसके पहले उसकी आत्मा बदल गई !

निर्मल कुमार स्वयम् इस शहर का निवासी नहीं हैं ; किन्तु उसे यहाँ रहते-रहते कई वर्ष हो गए हैं। माध्यमिक से लगाकर अब तक की उसकी सारी शिक्षा यहीं सम्पन्न हुई है। बल्कि लम्बे अवकाश मे भी वह यहीं रहता है। कस्बे के घरमे उसका मन नहीं लगता। वहाँ केवल उसका विधुर बाप है, जो प्रैक्टिस करता है, बिजिनेस करता है, खाता-पीता है और मौज करता है। दूर के रिश्ते में निर्मल की एक बुआ भी है, जो विधवा है, परन्तु निर्मल का पिता उसे बराबर सहायता दिया करता है। सारे कुटुम्ब में निर्मल इकलौता है। अतः पिता की ओर से खूब स्वाधीनता है, खाने-पहनने की, पढ़ने-लिखने की, खेलने-कूदने की और मनमाना पैसा खर्च करने की। जबसे वह यहाँ आया है तभी से नमिता से उसकी पहचान हो गई है। प्रारम्भ नमिता के मकान ही में किराए पर एक कमरा लेकर रहने से हुई थी, अन्त कहाँ जाकर होगा कहा नहीं जा सकता, किन्तु अगली सीढ़ी दोनों के विवाह की है, इसमें किसी को संशय नहीं था। अब तो महीनों से उसे किराया भी नहीं देना पड़ता।

च्यवन प्रकाश आने के साथ ही निर्मल कुमार की इच्छा-अनिच्छा के बावजूद उसका साथी बन ही गया था। निर्मलको उसने जैसे-तैसे प्रेरित किया ही,

फल यह हुआ कि उसे भी उसी मकान मे एक कमरा मिल गया। तीनों साथ हो गए, तो च्यवन प्रकाश को पर लग गए।

जितना वजीफा मिलता था वह पर्याप्त न था, किन्तु निर्मल और नमिता के प्रयत्नों से एक तो उसे अच्छी ट्यूशन मिल गई थी, दूसरे स्थानीय दैनिक पत्र कार्यालय में घण्टे भरका रात्रि का कुछ काम भी मिल गया था। अतः च्यवन-प्रकाश का काम खूब अच्छी तरह चल निकला था।

जैसा कि उसने आवश्यक समझा था, शहर मे आते ही वह शहर के जीवन को स्वीकार करने के लिए उद्यत हो उठा था, और आज वह पक्का शहराती है। अण्डे-मुर्गी उडाने मे अब उसे आपत्ति नहीं है, यदि संगति हो तो 'बार' में जाने से भी वह नही हिचकिचाता। आँखें सेंकने के लिए बाजार की सड़कों पर सन्ध्याओं में विचरने के लिए भी उसे अवकाश का अभाव नहीं रहता। क्लास-रूम में वह बड़ा सुख पाता है, इसलिए कि शिक्षा के द्वारा सँवारे हुए रूप की ऐसी भव्य हाट उसे अन्यत्र नहीं दिखाई देती। पढने-लिखने मे भी वह कोई खास भट्टाचार्यों में नहीं—जरूरत पड़ने पर वह किताब की किताब रट सकता है—सिर्फ एक बात है—क्लास-रूम मे स्मोक करना निषिद्ध है, बिना दो-तीन बार बाहर गए उसका काम नहीं चलता। और अब तो उसमें नागरिक जनोचित कोमलता भी आने लग गई है, जिसे यार लोग कभी-कभी नखरा कहा करते हैं। यहाँ तक कि दर्पण मे बराबर देखते रहकर उसने यह भी स्वीकार कर लिया है कि उसका रग भी कुछ-कुछ निखर रहा है।

ठीक है कि वेश-भूषा उसकी कोट-पतलून की नहीं हुई! क्या कारण है इसके बारे में नमिता कुमारी कभी-कभी कहा करती हैं कि चेष्टा करने के बाद भी उन्हे इतनी अच्छी तरह टाई बाँधना नहीं आता, जैसी कि निर्मल कुमार बाँधते हैं। जब रात्रि को कमरे मे अकेले बैठकर बार-बार बाँधने पर भी टाई की गाँठ मे, आवश्यक सौष्ठव नहीं भरा जा सका तो झल्लाकर उन्होंने उसको एकदम से तिलाजलि दे डाली। टाई पहले उसके पेण्ट की कमर पर बँधने लगी, और पेण्ट के साथ ही उसका निर्वासन हुआ। फिर तो च्यवन प्रकाश ने यही उचित समझा कि गाढे का स्थान खादी ले-ले। बाल उनके काफी बढ गए, मूँछें जो कई दिनों से आधी थीं, वे साफ हो गईं। बालों को वे इस तरह सजाते थे कि मानों उन्हें कँघा कभी छुआया ही नहीं जाता। कुछ विद्रोहिनी लटें प्रायः ही उनका कपाल चूमा करती थीं, और अब चश्मे का फ्रेम तथा उसके लैंस का रंग भी बदल चुका है। कक्षा मे अब उनका विशिष्ठ स्थान है। पहले दिन का भर पूर बदला वे ले चुके हैं।

उस दिन रात को आठ बजे निर्मल कुमार के कमरे में च्यवन प्रकाश बैठा

हुआ सिगरेट के कश पर कश खींच रहा था। चर्चा किसी बड़े गम्भीर विषय पर चल रही मालूम देती थी।

धुआँ उड़ाते हुए च्यवन ने कहा : "मैं कहता हूँ स्त्री मे सौन्दर्य के सिवा और कुछ नहीं होता।"

मुस्कराते हुए निर्मल कुमार ने कहा : "और की उसे अपेक्षा ही क्या है ?"

"अपेक्षा क्यो नही है ! वह पुरुष के कन्धे से कन्धा भिड़ाकर जो चलना चाहती है। बुद्धि और प्रतिभा के अभाव मे यह कैसे सम्भव है ?"

"पहले तो जिनका अभाव तुम स्वीकार करते हो, मैं उसे नहीं मानता। दूसरे यदि अभाव मान भी लिया जाए, तो उससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता !"

"नहीं पड़ता ? कैसे ?"

"इसलिए कि तुम्हारे द्वारा निर्धारित किए हुए अपने लक्ष्य को पाने के लिए नारी को चेष्टा ही नही करनी पड़ती। पुरुष स्वयम् अपना कन्धा आगे बढ़ा दे तो ?"

"सो पुरुष क्यों करने लगा ?"

"कदाचित् उसके रूप के कारण। पुरुष मे कन्धा भिढाकर चलने की इच्छा नारी की उतनी नहीं, जितनी पुरुष की है। आँखें खोलकर ही जरा आज के साहित्यको देख डालो, यदि विश्वास न हो तो समाज के व्यस्त जीवन को झकझोरकर देखो, पुरुष तो नारी के पावड़ों पर पलकें बिछाए हुए हैं !"

"उसी समाज में स्त्री की निमन्त्रक-मूर्ति नहीं देखी क्या ? नग्न स्कंध की उसकी सेमीज, चारों ओर से खिंचकर उभार को उन्नततर करनेवाली उसकी अधूरी अँगिया, अधरों पर रक्त छिड़क कर चुम्बन के बहाने डस जाने की उसकी तीव्र प्यास—"

निर्मल कुमार आराम कुर्सी पर पीठ के बल झुककर खिलखिला उठा : "पराजय हो गई तुम्हारी च्यवन, तुम्हारे ही हथियार से। कहा था न मैंने उसका रूप ही उसका बहुत समर्थ हथियार है। उसके बाद उसे अन्य किसी शस्त्र की आवश्यकता ही नहीं है। और मैं तो तब भी कहता हूँ कि वही तरकस का अन्तिम तीर भी नहीं है।"

"तो तुम नारी के सौन्दर्य को इतना महत्व देते हो ?"

"इतना कितना ? कहा न मैंने कि मैं तो इसे ही अन्तिम तीर भी नहीं मानता !"

"और प्रतिभा ?"

"प्रतिभा चाहे उसमे न हो, पर प्रमा तो उसीमें होती है ! बुद्धि चाहे उसमें न मिले, पर उसकी ऋद्धि तो उसीमें मिलेगी !"

"मालूम देता है निर्मल, तुम्हारी आँख कहीं लड़ गई है !"

मुस्कराकर, आँखों को अर्द्ध निमीलित करते हुए निर्मल ने कहा : "कहा न था मैंने कि सौन्दर्य का आकर्षण दुर्निवार होता है !"

"किन्तु आँख ही नहीं, तुम दिल और दिमाग दोनों खो चुके हो !"

"बुरा क्या है ? एक है प्रतिभा का आसन, दूसरा बुद्धि का ; तुम्हारे मत से अगर किसी के पास इनका अभाव है, तो इन्हे पाकर वह तो धन्यम्मन्य हो उठेगा !"

"परन्तु तुम ?"

"इस 'तुम' की प्रथक् व्याप्ति रह जाती है क्या ?"

"तो तुम प्रेम के उस सर्वाहारी रूप को मानते हो ?"

"सर्वाहारी क्यों कहते हो उसे ?"

"वह बाँधता जो है ?"

"भूलते हो च्यवन। वह बाँधता नही, वह मुक्त करता है। तुम इसे नहीं समझोगे। वही समझ सकता है जिसने प्रेम किया हो, जो प्रेम के इस बंधन में बँध कर उन्मुक्त हो चुका हो ! मन की सच्ची उपलब्धि उत्थान की उस उन्मुक्ति मे है, जहाँ पर उसे एकता प्राप्त हो जाए! वह चढ़ाई सीधी निरवलम्ब खड़ी दीवार के द्वारा सम्भव नहीं है, वह है केवल पिरामिड के द्वारा, जो समस्त आधार का सत्व ग्रहण करता हुआ दिग् दिगन्त की ऊंचाइयों मे उठ कर केवल एक बिन्दु मे पर्यवसित हो जाता है !"

"और तुम्हारे इस प्रेम का पात्र !"

"नहीं जानते ?"

"फिर भी तुमसे सुनना चाहता हूँ !"

इतने ही मे दरवाजे के परदे को हाथ से ढकेलती हुई नमिता कुमारी ने प्रविष्ट होकर कहा : "मेरा नाम न लेना निर्मल !"

च्यवन एकाएक व्यति व्यस्त हो उठा ; किन्तु उत्तर के लिए तब भी वह निर्मल की ओर देखता रह गया !

निर्मल ने मुस्करा कर कहा : "आदेश नही है मित्र ! किन्तु जिसे तुम जानते हो, उसे कहने की ही क्या आवश्यकता है ?"

"रहने दो, लेकिन मेरी भी एक बात मान लो निर्मल, प्रेम के जिस मनोन्मेशकारी रूप की हम बात करने के आदी हैं, वह एक बहुत बडे धोखे के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यदि वह एक दल का दूसरे दल के साथ न हुआ, तो अपने आप के लिए तो है ही।"

"तुम्हें ऐसा समझने की सुविधा है च्यवन ! तुमने ढेरों पुस्तकें पढ़ी हैं,

और मैंने केवल अपने आराध्य की आँखो को पढा है, क्यों नमिता ?"

च्यवन के पास सोफे पर बैठते हुए नमिता ने कहा : "खाली उसकी आँखों को पढ़ा है ? हृदय को नहीं पढ़ा ?"

"उसको पढ़ने की जरूरत ही क्या है ? उसकी कथा लिखी हुई ही कहाँ है ? आकाश की गहराइयों मे कोई कहाँ तक उड़ सकता है ?"

च्यवन ने कहा : "नमिता कुमारी, आप बड़ी सौभाग्यशालिनी हैं !"

"? और आप नही ?"

"मै भी हूँ , पर इसलिए कि इस भावुकता के बन्धन मे बँध कर मुक्त नहीं हुआ हूँ । मैं बिना किसी बन्धन के ही मुक्त हूँ । रहा सवाल आकाश की ऊँचाइयों का, सो मैं इस जमीन पर ही जमा रहना पसन्द करता हूँ !"

"मेरा अभिनन्दन !" नमिता ने कहा : "क्या पीजिएगा कॉफी या चाय !"

निर्मल ने हँस कर कहा : "क्या हॉट ड्रिंक्स की बात करती हो नमिता ! पापा के रूम मे अगर कुछ ह्विस्की हो तो सोडा मैं मँगवाए देता हूँ ।" हँसती हुई नमिता बाहर चली गई ।

च्यवन ने कहा : "तो तुम भी शौक रखते हो ? छिपे रुस्तम निकले यार !"

"रूस्तम तो छिपा हुआ ही अच्छा लगता है । पर मेरी खुशी पीने में नहीं, पिलाने मे है ।"

च्यवन ने गम्भीर होकर कहा : "निर्मल, नमिता लाखों में एक है , किन्तु एक बात मेरी भी मान लो, नारी मे ताजगी नहीं है, उसमे प्रवाह नहीं है । पुरुष उससे अटक कर बासी होता रहता है, और प्रवाह की सारी गन्दगी वहीं आकर एकत्रित हो जाती है !"

"यदि ऐसा है तो पुरुष बड़ा क्षुद्र है !"

"नहीं निर्मल ; यदि नमिता लाखों में एक है तो निर्मल करोड़ों मे एक !"– और उसने नई सिगरेट के लिए अपना सिगरेट केस निकाला । निर्मल ने कहा : "न तुमने नमिता को पहचाना है, न निर्मल को ! दोनों की ऊपरी सतह ही तुमने देखी है !"

सिगरेट जला कर च्यवन बोला : "तुम्हारे पास पैसा है निर्मल बाबू , शिक्षा है, रूप है, और इन सबसे ऊपर इनका उचित उपयोग करने के लिए संस्कृत-रुचि है !"

"यही तो मनुष्य है !"

"कुछ अन्तर है निर्मल; ये ही मनुष्य नही, किन्तु ये मनुष्य को बनाते अवश्य हैं !"

"नमिता भी मनुष्य है !"

"है ! किन्तु जिस दिन ये उपकरण नहीं रहेंगे ?"

"उस दिन मनुष्य नहीं रहेगा ! निर्मल नहीं रहेगा !"

"और नमिता ?"

"जब निर्मल नहीं है तो—"

"नमिता नहीं रहेगी ?"

"निर्मल का इससे क्या आता है ?"

नमिता ने प्रवेश करके कहा : "पापा के कमरे मे तो उनकी ही पार्टी चल रही है।"

"देन च्यवन , आइ होप यू वुड पार्डन मी इफ आइ काण्ट हैल्प। (तो च्यवन मैं अगर कुछ न कर सकूँ तो आशा है माफ कर दोगे !)"

"डोण्ट माइण्ड (चिन्ता न करो !)"

नमता ने कहा : "कॉफी आ रही है !"

"दैट्स ग्रॅण्ड। (बहुत अच्छा ।)" निर्मल ने कहा, फिर मुस्करा कर नमिता से बोला : "नमिता, च्यवन कह रहा है कि तुम मुझ से प्रेम नहीं करती ।"

"मैं ? क्यों करने लगी प्रेम तुम से ?"

"सो ही तो च्यवन की समझ मे नहीं आ रहा है।"

"च्यवन बाबू की कह रहे हो ! ये चाहते हैं कि मैं इन्हे प्रेम करूँ।"

च्यवन के हाथ से सिगरेट नीचे गिर पड़ी, नमिता मुस्करा दी। च्यवन ने सिगरेट को जूते से कुचलकर कहा : "तुम मिथ्या कह रहे हो निर्मल। मैं तो स्त्री के प्रेम मे विश्वास ही नहीं करता !"

"सो तो ठीक है , किन्तु पुरुष के प्रेम में ?--यानी पुरुष जो स्त्री के लिए प्रदर्शित करता है ! मेरा ख्याल है आपका यही मतलब था !" नमिता ने पूछा।

"पुरुष को वह निठल्लापन प्राप्त ही कहाँ है कि प्रेम करे।"

नौकर कॉफी की ट्रे और खाने के लिए कुछ पेस्ट्री रख गया।

नमिता ने हँस कर कहा : "इसलिए आज की नारी चाहती है कि बाहर के क्षेत्र मे स्वयम् प्रवेश करके पुरुष को समय की सुविधा दे दे। तब तो शायद वह प्रेम कर सकेगा न ? यदि एक दम के निठल्लेपन से ऊब जाए तो चूल्हा-चक्की वह कर सकता है, और चूँकि अभी प्रकृति के ऊपर विजय पाना शेष है, अतः साल दो साल मे जब कि नारी को कन्फाइनमेंट हो तो वह शौक से उसे दो-चार माह के लिए रिलीव भी कर सकता है।"

"इस समाज मे ऐसी स्थिति नही आ सकती।"

"आप लोगों की कोशिश तो यही रहेगी ! आप स्त्री के प्रेम मे विश्वास नहीं करते, इसलिए कि विश्वास करने पर हानि आप ही की है। प्रेम तो

बासी नही होता, किन्तु प्रेम का पात्र तो बासी हो ही जाता है। पुरुष को चाहिए नित्य नया माल—यह क्या निर्मल? नही-नहीं, तुम्हे कॉफी नहीं चलेगी, रात को सो नही सकोगे, और अभी तुम्हे खाना भी तो खाना है!"

इन लोगों को सीधी बातों मे मग्न देखकर तबतक निर्मल कुमार ने हँसते हुए कॉफी तैयार कर दी थी, और स्वयम् भी प्याले को ओंठों से लगाना ही चाहता था!

निर्मल ने कहा: "पर च्यवन का साथ तो मुझे देना चाहिये।"

"मैं जो दे रही हूँ! उनके लिए मै तुमसे अधिक कामना की वस्तु हूँ निर्मल!"

च्यवन ने कहा: "बिलकुल झूठ है। मैं अपने मित्र निर्मल कुमार पर सारी दुनिया न्यौछावर कर सकता हूँ!—पर निर्मल, यह आदेश है, तुम्हे मानना चाहिए!"

"मुझे क्या मिलेगा?"

"ईर्ष्या की आग नही?" नमिता ने कहा।

"पर रात को सोना तो तुम्हे भी है। खाना भी खाना ही होगा!"

"खाना तो मै खा चुकी हूँ; और रहा सवाल सोने का, सो मुझे अभी तो बहुत कुछ पढ़ना बाकी है।"

च्यवन ने हँसकर कहा: "खाना तो मुझे भी खाना है, और सोना भी है ही, किन्तु—"

नमिता ने हँसकर कहा: "होटल का खर्च ज्यादा नही बढ़ेगा च्यवन बाबू।"

"बिलकुल ठीक कहती हैं आप। बल्कि यदि आपका हिस्सा भी मेरे लिए छूट जाए, खाना आप खा ही चुकी, हैं पेट को अधिक कष्ट नहीं देना चाहिए; तो होटल का खर्चा बिलकुल ही बच जायगा। पर सोऊँगा खूब रात को; चाहे कॉफी पिला दीजिए, या ह्विस्की!—सोने का मुझे वरदान मिला हुआ है!" कहकर च्यवन ने कॉफी को ओंठों से लगा लिया।

निर्मल ने कहा: "सपने देखते हो या नहीं!"

"सपने देखने वाले सो नहीं सकते।"

"वाह। तो तुम्हे मालूम नहीं है! नया सिद्धान्त है कि सपने नींद की रक्षा करते हैं।"

"तुम देखते हो क्या?" च्यवन ने पूछा।

"मुझे जरूरत क्या है?—देखते नहीं, मेरी नींद की रक्षा सपने नहीं करते, स्वप्नों सी मधुर सत्य की देवी करती हैं।" और आँखों मे मुस्करा कर उसने नमिता की ओर देखा।

तभी एक नौकर ने आकर कहा . "निर्मल बाबू , आपका तार है।"

"तार ?—कहाँ है ? ले आओ यहीं।" नौकर चला गया तो निमल के मुँह पर दूर एक बादल की छाया क्षिप्त हो गई।

नमिता ने पूछा : "क्या हो सकता है तार ?"

"क्या कहूँ ?"

"कहाँ से आ सकता है ?" च्यवन ने पूछा।

"सिवा घर के और हो ही कहाँ से सकता है ?—और यदि घर से हो तो — पिताजी और बुआ के सिवा मेरा है ही कौन ?—लो यह आ ही गया !"

निर्मल कुमार ने तार लेकर दस्तखत कर दिए। नौकर लौट गया।

निर्मल कुमार ने काँपते हाँथों से तार खोला। जैसे ही उसने लिखावट के ऊपर दृष्टि डाली, उसके हाँथ से तार नीचे गिर पड़ा। उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया, सारे चेहरे पर मुर्दनी फैल गई !

नमिता ने तार उठा कर पूछा : "किसका है ? क्या लिखा है ?"

निर्मल कुमार से जवाब नही दिया गया। अपनी शून्य आँखो को नमिता के चेहरे पर गडा दी। उसकी विवश-मुद्रा मानों कह रही थी, तुम खुद पढ लो !

"मैं पढ सकती हूँ ?"

निर्मल केवल एक गहरी साँस ही ले सका। नमिता ने तार को ऊपर उठा कर देखा, लिखा था : 'योर फादर डेड। कम फर्स्ट मीन्स। कालिका-प्रसाद।" नमिता ने तार च्यवन के हाथ मे बढा दिया !

च्यवन निर्मल के इतिहास से अधिक परिचित नही है। वह चुप रहा, किन्तु नमिता ने कहा : "धीरज रखो निर्मल, इस तरह अधीर होने से कैसे काम चलेगा ?"

सात्वना के शब्दों को सुनते ही उसकी भरी हुई आँखें बहने लग गईं। नमिता ने उनको पोछ दिया। पाँच मिनट तक कोई कुछ नहीं बोल सका।

च्यवन ने पूछा : "क्या बीमार थे ?"

जवाब दिया नमिता ने : "नहीं , यह पहली सूचना है !"

"यह कालिका प्रसाद कौन है ?"

"सो तो मुझे भी नही मालूम ! कौन है ये निर्मल ?"

"हाँ ?"—निर्मल ने कुछ सुना ही नहीं था !

नमिता ने कहा : "यों घबराने से क्या होगा ?—जरा हिम्मत से काम लो !"

"हिम्मत से ? ठीक है नमिता, हिम्मत से काम लेना चाहिए। मेरे पिता की मृत्यु हो गई। क्यों हो गई, कुछ पता नही ! इसके पहले कोई सम्वाद नहीं। सम्वाद भेजने वाला कालिका प्रसाद, जिसे मै जानता नही। हे भगवन् ,

क्या रहस्य है यह ? अब क्या होगा ?—अब मेरा कौन रहा ?"

"सब ठीक ही होगा निर्मल, मैं जो हूँ तुम्हारे साथ !"

"हाँ, तुम मेरे साथ हो नमिता ?—ओह—बडी गरमी है। च्यवन, जरा पंखा खोल दो भाई !—और नमिता—"

"कहो !"

"मुझे पहली गाडी से जाना भी तो है ! तार मे लिखा है न ? — गाड़ी कब जाती है यहाँ से ?—च्यवन, जरा टेलीफोन से पूछो न तुम—तुम मेरे साथ चलोगी न नमिता ?"—च्यवन टेलीफोन करने के लिए पास के कमरे मे चला गया।

नमिता ने कहा : "तुम्हारे घर ?—पर अभी मैं कैसे चल सकूँगी ?"

"हाँ, हाँ, कैसे चल सकोगी नमिता ! माफ करना, मेरे होश ठिकाने नही है। घटना इतनी अप्रत्याशित है, और जाने क्यो मुझे कुछ ऐसे रहस्य का आभास दिखाई दे रहा है, कि मैं समझ ही नहीं पाता कि क्या हो गया। मेरी नैया कही डूब न जाए !"

निर्मल की यह कातर वाणी सुन कर नमिता की आँखें भर आईं।

देख कर निर्मल ने कहा : "तुम क्यों रोती हो नमिता ! निश्चिन्त रहो, मैं इस धक्के को सहन कर लूँगा। माता-पिता सदैव किसी के जीवित नहीं रहते। माँ को मैं जानता नही ; जन्म के साल भर बाद ही वह चली गई ; और पिता को कुछ विशेष जानता होऊँ सो भी बात नहीं ! दूर की बुआ ने ही मुझे पाला-पोसा, बडा किया, और स्नेह का दान दिया है ! उनका अभाव ही मेरे लिए उनके महत्व का परिचायक हुआ है ! किन्तु भविष्य—"

"भविष्य की चिन्ता तुम्हें अकेले को नहीं करनी है निर्मल—"

"किन्तु मुझे अँधेरा दिखाई देता है। उस अँधेरे में तुम्हें नही घसीटना चाहता ! और फिर भी तुम्हारे बिना मैं क्या रह जाऊँगा नमिता ! नमिता, तुम मेरा हाथ थामे रहोगी न ?"

"मुझ पर विश्वास नहीं होता निर्मल ? तुम्हें किस बात की चिन्ता है जब तक कि मैं तुम्हारे साथ हूँ !"

"सचमुच कोई चिन्ता नहीं है ! पर मुझे जाने की तैयारी करना है। एक गाडी शायद दस बजे भी तो जाती है !"

"च्यवन अभी पूछ कर आते हैं ! तुम चिन्ता न करो, मैं सब तैयारी कर दूँगी। —पर, चलो मुँह धोलो, फिर कुछ पेट में डाल लो। वहाँ पर जाने क्या बीते !"

"नही ; मैं कुछ नहीं खा सकूँगा नमिता ! मुझे भूख बिलकुल नही है। मेरी भूख बिलकुल मर गई !"

"क्या सयोग है, कुछ कॉफी के साथ ही खा लेते, पर वह भी मैं ने मना कर दिया !"

"अच्छा ही किया नमिता। नहीं तो रास्ते मे तकलीफ पाता !--कहो च्यवन, क्या खबर लाए !"

च्यवन ने आकर कहा : "एक गाडी यहाँ से दस पैतीस पर छूटती है !"

"तो ठीक है, अभी भी डेढ़ घंटा शेष है। नमिता, नौकर को बुला दो, मेरे कपड़े तैयार कर दे।"

नमिता ने स्वयम् अपने हाथ से कपड़े चुन कर उसका सूटकेस और बिस्तर तैयार कर दिया, फिर जाकर अपने पिता को बुला लाई। पिता ने निर्मल को बडी सात्वना दी, और कहा कि कोई बात हो तो वह निस्सकोच उन्हे खबर दे ! फिर उन्होंने कहा : "नमिता, जाओ मेरे ड्रावर मे कुछ नोट पड़े हैं, निर्मल को दे दो !"

"नहीं, नही, मुझे पैसे की बिलकुल आवश्यकता नही है पिता जी !"

"पागल बच्चे मेरे, पैसे पास मे रहने से बहुतेरी सुविधाएँ हो जाती हैं। जरूरत पड़े तो लिखना, मैं और भिजवा दूँगा। सकोच मत करना !"

निर्मल कुमार दस पैतीस की गाडी से रवाना हो गए। नमिता और च्यवन प्रकाश स्टेशन तक उन्हे छोड आए !

★

: ४ :

स्वर्गीय श्री जनार्दन प्रसाद सामान्य व्यक्ति न थे, हरफन के मौला, सब रंगमें रँगे हुए,—यह नहीं कि जो रंग चढ़ गया, सो चढ़ गया, और फिर दिल भी कोई एक नहीं कि जिसे दे दिया उसी के हो गए! दूध के लिए घर पर गाय बाँधकर उसकी सेवा-टहल करने के कायल नहीं थे। कहनेको वकील थे, बी० ए०, एलएल बी० पास किया था, कभी वकालत भी की थी, पर अब करते थे व्यवसाय—रूई का व्यवसाय यानी सट्टा। चाँदी बरसती थी, और चन्द्रमुखियों की चाँदनी से उनके घर और मन के आँगन में चार चाँद लग जाते थे। अन्तकाल के समय भी उनका मस्तक एक ऐसी ही लावण्यमई तरुणी की गोद में पुण्य संग्रह करते-करते सो गया था। जिए तो भाग्यशाली की भाँति ही जिए!

जो पैसा आया, वह यों ही बह जाता था। दूर के रिश्ते में एक चचेरी विधवा बहन थी, जो राखी के प्रत्येक त्यौहार पर उनके घर पहुँच जाती थी। तपस्या थी; दो-चार घण्टे राह देखना भी पड़ जाता था, पर जब भाई घर लौटते तो बहन को बड़ी उत्सुकता से पलकें बिछाए राह देखते पाते। राखी बाँधती या नहीं, किन्तु दूसरी राखी तकका एक तरह से महीना बँध जाता। इसके अतिरिक्त भी जब-तब वह अपने बन्धु की कल्याण-कामना के लिए धरना देने आ ही जाती थी। दूसरी ओर निर्मल कुमार था, शहर में कॉलिज में पढ़ता था। कॉलिज की पढाई के भी क्या कहने! और फिर छात्रों का वहीं रह-कर माता-पिता को कभी कष्ट न देना कितना सुखकर है!—केवल मास की पहली तारीख पर मनीऑर्डर भेज दो, फिर छुट्टी, कोई चिन्ता करने की

जरूरत नही। लम्बे अवकाश मे यदि कभी लड़का घर आए, तो बाप उसे सैर और यात्रा के लाभ की एक लम्बी फहरिस्त बता देता, और पैसे पाकर कौन बेटा सफर करना नही चाहता ? और अब बच्चेको कही ॲक्रिया मिल गई मालूम देती है, अवकाश मे भी उसे घर आना नहीं सुहाता। पिता को और क्या चाहिए ?

जवानी मे किसी महाभागा से परिचय हो गया था। यह परिचय इसलिए याद रखना पड गया कि लडकी अनायास ही माॅ बनने के आसार प्रकट करने लगी। यद्यपि जनार्दन प्रसाद का विवाह हो चुका था, पर लड़की तब भी कुमारी थी। भगवान के इस अनायास-अनुग्रह की दोनों व्यक्ति अवहेलना करना चाहते थे, प्रयत्न किए , किन्तु माॅ की जाई को एक दिन माॅ बनना ही पडता है, इस सिद्धान्त की रक्षा के लिए भगवान का वह अनुग्रह सार्थक हुआ ही। लड़की के सम्बन्धियों ने जब लडकी की भर्त्सना की तो इस टूटे हुए पहाड को छाती पर रखकर लडकी ने अपने नवजात शिशु को जनार्दन प्रसाद के घर ले जा पटका, और खुद का भविष्य एक अधे कुएँ को सौंप दिया।

गले पड़े ढोल को बजाना आवश्यक हो गया। पत्नी को माॅ बने बिना ही सन्तान मिली, पर पति की उड़ती हुई दृष्टि का सधान न मिला। आखिर दो-एक बरस तक लडके ही की सेवा कर वह भी परलोक सिधारी , तब से जनार्दन प्रसाद आदर्श जीवन बिताने लगे। अपने पालित-पुत्र का मुॅह देखकर और गत-पत्नी की स्मृति को चिर-जीवित रखने के लिए फिर उन्होंने विवाह नहीं किया, कहना चाहिए दूसरी गाय घर पर नहीं बाॅधी , और बछड़े को ठाण से दूर रख दिया। तब से निर्मल कुमार दूर ही दूर रहा, यह जाने बिना कि वह जनार्दन प्रसाद का ठीक अर्थ में जायन्दा पुत्र नहीं है !

फिर भी पिता के दिल मे पुत्र के लिए स्थान था—सच तो, उनके कई दिलों मे से एक दिल पुत्र के लिए भी था ! आखिर था तो वह उन्हीं का पुत्र ! पुत्र का अपने से दूर रहना जितना जनार्दन प्रसाद के लिए लाभदायक था, उतना ही, प्रत्युत उससे अधिक पुत्र के लिए था ! अपने प्रत्यक्ष स्नेह की क्षतिपूर्ति वह प्रचुर अर्थ दान से करते रहते थे। निर्मल कुमार अपने में मगन था। परन्तु पिता के लिए उसके मन मे अडिग भक्ति थी। जिन-जिन परिस्थितयों मे वह पल कर बड़ा हुआ था, उनमें भाव-प्रवण तो उसे होना ही था। अतः जब वह देखता कि इस युग मे अन्य छात्रों को अपने पिता से पैसा प्राप्त करने के लिए नित्य नए बहाने खोजना पडते तब उसके पिता उसे खर्च करने के लिए कितनी बडी राशि सौंप कर निश्चिन्त हो जाते तो उसकी श्रद्धा को कूल नहीं मिलता था। फिर भी प्रायः ही उनके निकट

जाकर रहने का उसे सुयोग नहीं मिलता था। पिता व्यवसाय मे व्यस्त रहते थे, और इधर उसे ऑफ़िया भी मिल ही गई थी। जब कभी वह घर जाता उसे विधवा बुआ के यहाँ उसके उपद्रवी लडकों के तथा उसके विधुर देवर के साथ दो-तीन दिन बिताने भारी पड जाते।

यों बुआ अपने पुत्रों से अधिक मोह निर्मल कुमार के लिए प्रदर्शित करती, किन्तु निर्मल था कि उसे तृप्ति ही न मिलती। बुआ के कुटुम्ब से वह सदैव ही डरता रहता और उसके मन मे नित्य 'भाग-भाग' ही मची रहती। इसी तरह जनादन-प्रसाद की गृहस्थि चलती जा रही थी।

किन्तु एकाएक अवरोध हो गया। जनार्दन प्रसाद को पैसे का अभाव न था। वे वकील थे, व्यवसाई थे, सट्टा करते थे। सट्टे मे पैसा पानी की तरह बहता है। चार के चार सौ और फिर चार सौ का अण्डा, सब कुछ सामान्य-सी बात थी, इससे वे घबराते भी न थे! एक दिन रात्रि को किसी महिमामई मगला मुखी के शयन कक्ष मे सगीत की मधुर-तान मे लय होते-होते अकस्मात् ही जब वह निलय हो गए, तो लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसके बाद ही, सुना, बाजार का भाव बिगड़ जाने से उनकी विपुल-सम्पत्ति हाथ से खिसक गई। कहते हैं, उन्हे पहले ही इसका आभास लग गया था, इसलिए उस रात्रि को विष खाकर वह सगीत का प्रसाद पाते-पाते ही लेट गए। कुछ व्यक्तियों ने उसे रहस्य की मृत्यु बताया! मृत्यु स्वयम् रहस्य है, उसमें फिर एक और रहस्य की नियोजना करना कोई विशेष महत्व नहीं रखता।

निर्मल की किसी को सुधि आई मालूम नहीं देती। दुःख के रौद्र क्रंदनमय व्यापार मे शायद बुआ भी खोगई, यद्यपि क्रिया-कर्म करने का भार उसीने स्वेच्छा से अपने ऊपर ले लिया था। अतः निर्मल कुमार को काफी समय तक इसका पता ही न लगा।

दोस्त-दुश्मन सभी के होते हैं। जनार्दन प्रसाद का एक दुश्मन भी निकल आया, कालिका प्रसाद। वह भी जनार्दन प्रसाद की कृपा का अधिकारी रह चुका था। उन्ही के सर्वदा उत्साह और बहुधा सहायता से वह भी कानून पास करके एक वकील हो सका था! निर्मल कुमार का भी उसे कुछ-कुछ खयाल था। इधर जब जनार्दन प्रसाद का क्रिया-कर्म समाप्त होने को आ रहा था, तब उसने सुना कि कोर्ट में एक दरखास्त पहुँची है, कि जनार्दन प्रसाद लावारिस फौत हो चुका है। अतः उसकी शेष सम्पत्ति की एक मात्र अधिकारिणी उसकी विधवा बहिन है, इत्यादि इत्यादि! एकाएक जब किसी उपाय की उसे न सूझी तो सबसे पहले जासूसी करके उसने निर्मल कुमार का पता लगाया, और फिर उसे तार देकर बुलवा लिया। आगे क्या करना है यह

तभी सोच लिया जा सकेगा ! बल्कि निर्मल कुमार भी पढ-लिख कर बडा हो गया है । दो मस्तिष्क मिल कर बहुत कुछ कर सकते है ।

निर्मल कुमार आया तो सीधा अपने घर पहुँचा ! उस दिन तेरही थी, बुआ की सारी पल्टन, अपने सेनापति , बुआ के देवर , बसन्त कुमार के साथ मोर्चे पर डटी हुई थी ! बुआ ने क्रन्दन से सारे तीन मजिले मकान को अपने सिर पर उठाते हुए निर्मल का स्वागत किया । अश्रु-अवरुद्ध आँखों से न निर्मल कुमार को वर्त्तमान दिखाई दिया, न भविष्य, वह बुआ की गोद मे रोते-रोते ही लुढक गया !

सिर सहलाते हुए बुआ ने कहा : "मेरा बेटा, जिसने कभी दुःख का दरवाजा तक न देखा , जब यह पहाड टूट पडा, तो मुझे साहस नहीं हुआ बेटा, कि तुम्हे खबर कर दूँ ! जो कुछ हुआ, उसे मैं ही सह सकूँ, दुःख की आँच भी तुम तक न पहुँच पाए, यही मेरी कामना थी, फिर भी तुम्हे खबर मिल ही गई ! अच्छा ही हुआ, आखिर एक दिन तो तुम्हें पता लगना ही था । पर तुम चिन्ता न करो बेटा ! मेरे शिशिर और हेमन्त से तुम कोई दूसरे नहीं हो !"

रोते-रोते ही निर्मल ने कहा : "मेरा क्या होगा बुआ ?"

"कुछ नहीं होगा निर्मल, तुम निश्चिन्त रहो । सब भगवान पार लगाएँगे आँसू पोंछ डालो अपने ! आज उनकी तेरहीं है ! उनकी आत्मा को दुःख होगा, यदि उन्होंने तुमको इस तरह रोते हुए देखा !"

"बुआ, क्या पिता जी बीमार थे ?

"सो तो थे ही ! साल भर से ही उनका शरीर लटता जा रहा था । कितना मैंने कहा कि निर्मल को बुला लो, इधर व्यवसाय मे भी घाटा पडता जा रहा था । सट्टे की हालत तुम तो जानते ही हो निर्मल, समझाने पर भी नहीं माने । आखिर सारी सम्पत्ति दाँव पर लग गई, तो उस दिन रात को हृदय की-धड़कन रुक गई । कहते रहे, मेरे बच्चे का क्या होगा ? — उसे कोई तकलीफ न हो । पर भगवान् के आगे किसका वश चलता है ?"

—तो मरते समय तक इस हतभागे की चिन्ता को वे न भुला सके ? और वह है कि अन्तिम समय मे भी वह उनके निकट नहीं पाया जा सका ! शहर मे कालेज जीवन की रगीनियों मे अपने को खोकर केवल नमिता के लिए अपने चारो ओर के सब दरवाजे उसने बन्द कर लिए ! यही जीवन जी रहा है तू निर्मल ?

क्रिया-कर्म बुआ का बडा लडका हेमन्त कुमार कर रहा था । निर्मल कुमार की चित्तवृत्ति मे किसी प्रकार की विकृति थी ही नहीं । यद्यपि बुआ ने

आशंका की थी कि कहीं इसी बात को लेकर कुछ उपद्रव न हो जाए, पर लड़का जो अपने कमरे मे घुसा तो बाहर ही नहीं निकला। यहाँ तक कि सारी क्रिया के समाप्त होने पर रात को दस बजे, जब बुआ उसे बुलाने के लिए गई, तो देखा कि वह सो गया था, शायद रोते-रोते ही सो गया था, गालों पर अश्रु कीं धाराएँ सूख गई थी। बुआ ने उसे सोने दिया।

दूसरे दिन उसे ज्वर हो आया। घर के अधिवासियो ने सोचा कि कालेज मे पढनेवाला आधुनिक युवक और अपने बाप ही का तो बेटा है, दस बजे तक सोते रहना कोई आश्चर्य की बात नही। बुआ ने आकर खाने के लिए पूछा, और कह दिया कि यात्रा की थकावट से कुछ हरारत हो गई दीखती है; स्नान करने से ताजगी आ जाएगी। पर निर्मल कुमार लेटा ही रहा। शाम को कठिनाई से उसने कुछ दूध भर पिया।

तीसरे दिन बुखार आप ही आप उतर गया, यद्यपि कमजोरी तथा मन की अवस्था तब भी उसे बाहर जाने से रोक रही थी। उस दिन उसे ढेर सारे सहानुभूति के तार और पत्र मिले। शहर से आते समय वह किसी से मिल नहीं सका था। दूसरे दिन मित्रों को मालूम हुआ कि निर्मल के पिता का देहान्त हो गया है!

निर्मल ने डाक को सुविधा के साथ देखने के लिए रख दिया। उसके मन मे शान्ति नहीं थी। उसके पिता की मृत्यु तक की सूचना उसे नहीं दी गई थी, और जब सूचना मिली, तो वह किसी दूसरे ही व्यक्ति कालिका प्रसाद द्वारा! इधर बुआ की अतिरिक्त सतर्कता, पुत्र हेमन्त के साथ उसकी कानाफूसी, घर के दूसरे प्राणियों का अतर्कित व्यवहार, सब उसकी आशका को बलवत्तर करते जा रहे थे। पर यहाँ किससे पूछे? कौन उसका साथी है? कौन उससे सहानुभूति रखता है?

सब से पहले तो उसे कालिका प्रसाद का पता लगाना चाहिए। क्या बुआ से या बुआ के देवर से पूछना उचित होगा? नहीं, जब उसने इनकी इच्छा के प्रतिकूल उसे यहाँ के सम्वाद दिए हैं, तो वह इनकी इच्छा का पात्र तो नहीं हो सकता। पोस्ट आफिस मे उस तार की मूल प्रति सुरक्षित होगी। वहाँ से पता लगाया जा सकता है!

जब कालिका प्रसाद का पता लग गया, तो दोनों में सहानुभूति होते हुए देर न लगी! कालिका प्रसाद यद्यपि निर्मल की उमर के न थे, फिर भी उन्हे बूढ़ा नहीं कहा जा सकता; बल्कि उन्हें जवान ही कहना चाहिए। पैंतीस-चालीस में कोई बूढा नही हो जाता। वकील हैं, पढे लिखे हैं, और धीरे-धीरे उनकी प्रैक्टिस भी जम रही है। निर्मल से उनकी सहानुभूति हो

जाना स्वाभाविक है !

कालिका प्रसाद ने कहा : "तुम्हारे पिता जैसे कुछ रहे हों, निर्मल, पर उनमें एक बहुत बडा गुण था , यद्यपि वही गुण उनकी समस्त बुराइयों की जड़ है, फिर भी अपने आप मे मैं उस गुण को बहुत बडा गुण मानता हूँ। वह थी अर्थ के प्रति उनकी अनासक्ति ! अर्थ के इस युग मे चित्तवृत्ति का यह वरदान सब किसी को नही मिलता। मैं मानता हूँ कि अर्थ वह जादूगर है कि विश्व की समस्त सिद्धियाँ उसके करतलगत हो जाती हैं। अपनी शक्ति के बल पर वह पाप को पुण्य, और पुण्य को पाप कर सकता है। वह चाहे तो ईमानदारी की धज्जियाँ उडा दे या उसे स्वर्ण के सिहासन पर बिठा दे। वह जिसे छूता है स्वर्ण बना देता है, या धूल बना देता है ! किन्तु फिर भी वह जादूगर है, जो सत्य की वस्तुस्थिति पर परदा डाल देता है , इस परदे ही से उसका काम चलता है। जो इसके जादू को चुनौती दे सकता है, वह निश्चय ही अति मानव है निर्मल !"

निर्मल चुपचाप बैठा हुआ समस्त मनप्राण से कालिका प्रसाद की बातें सुनता रहा।

"मैं ही नहीं, जो भी उनके सम्पर्क मे आया, उनके द्वारा उपकृत हुआ ! मैं आज जो कुछ हूँ, उन्ही की कृपा का फल है ! और जो कुछ तुम्हारी बुआ हैं, वह भी उन्हीं की कृपा का फल है !" और इसके साथ ही उसने देखा कि ऑखों मे ऑसू भरे निर्मल ने कहा : "मै जो आज इतना पढ़ सका हूँ—"

"तुम उनके पुत्र हो, निर्मल, किन्तु हॉ, अपने सौभाग्य के लिए नहीं : बल्कि अपने दुर्भाग्य के लिए तो तुम्हे अपने पिता ही की ओर देखना होगा !"

"दुर्भाग्य ?"

"हॉ निर्मल, दुर्भाग्य के सिवा उसे क्या कहा जा सकता है ! पैसे का उन्हे मोह नहीं था, ठीक है , किन्तु इससे पैसे के महत्व में कोई अन्तर नही पड जाता ! यदि ईमानदारी की धज्जियाँ उससे उड सकती हैं, तो उसको स्वर्ण के सिंहासन पर बैठाने के लिए भी वही समर्थ है। इस सामर्थ्य के अभाव में स्वर्ण भी पीतल हो जाता है।"

"आपका मतलब मैं नहीं समझा।"

"यही कि कमाने की अशेष क्षमता होते हुए भी उन्होंने भविष्य के बारे मे कुछ न सोचा ! यह अर्थ का युग है निर्मल, मनुष्यता की क्षमता का मापदण्ड अर्थ ही है ! जहॉ इसको सिद्ध मान लिया जाता है, वहॉ मनुष्यता के पैर उखड़ जाते हैं, पर जहॉ यह साधन के तौर पर स्वीकार किया जाता है, वहॉ

पर मनुष्यता के पैर जमाने के लिए दूसरा कोई सरलतर साधन है ही नहीं ! उनका जीवन तो बीत गया , किन्तु वे तुम्हारे लिए कुछ नही छोड गए ।"

"क्यों ? मुझे उन्होंने समर्थ बनाया है ! मै अपने पैरोपर खडा हो सकता हूँ ! मुझे केवल एक वर्ष और कॉलेज मे पढना है !"

"पर पैरों के नीचे की जमीन उन्होने ठोस नही रक्खी !"

"आप साफ कहिए न, कहना क्या चाहते हैं ? — मेरी बुआ है, मैं हूँ !"

"तुम्हारी बुआ तुम्हारे लिए नही है निर्मल ! इस धोखे को तुम जितना जल्दी समझ सको, अच्छा है ।"

"कहते क्या ह आप ?"

"ठीक कहता हूँ ! वे तुम्हे अपनी जायदाद से बेदखल करना चाहती हैं । तुम्हारी बुआ और उसके देवर बसन्तकुमार दोनों ही अदालत मे न्याय की रक्षा के लिए प्रस्तुत हुए थे !"

"न्याय की रक्षा के लिए ? —उनके साथ क्या अन्याय हुआ है ?"

"शायद, उनका कथन है कि जनार्दन प्रसाद लावारिस मरे हैं ; और तुम्हारी बुआ ही उनकी सबसे निकट की शेष आत्मीया हैं, अतः उनकी जायदाद पर उन्हीं का तथा उनके पुत्रों का अधिकार है !"

निर्मल कुमार आश्चर्य चकित हो केवल कालिका प्रसाद की ओर देखता रहा, कुछ कह नहीं सका !

कालिका प्रसाद कहते रहे : "इसीलिए तुम्हे उन्होंने सूचना नहीं दी , तुम्हारे पिता का समस्त क्रिया-कर्म उन्हीके पुत्रों के द्वारा हुआ । ये सब प्रमाण हैं कि उनका कोई वारिस नही है । मुझे यह दुरभिसंधि देर से मालूम हुई , पर मालूम होते ही मैंने तुम्हे तार के द्वारा यहाँ पर बुलवाने की चेष्टा की । पर तुम्हें यह क्या होगया एकाएक निर्मल ?"

निर्मल के चेहरे से समस्त रक्त उड गया ; किन्तु उसने प्रयत्न से मुस्करा कर कहा : "कुछ नहीं , मैं सुन रहा हूँ !"

कालिका प्रसाद ने सिर हिलाकर कहा : "ठीक है ! बहादुरों के लिए ही दुनिया है । साहस खोने से काम नहीं चलता !"

निर्मल ने कहा : "किन्तु बुआ को इसके लिए अदालत में जाने की क्या आवश्यकता पडी ?—अगर उन्हे जायदाद का इतना लोभ है तो उनके इशारे मात्र से मैं उसे छोड़ सकता हूँ ! मैं भी अपने पिता का पुत्र हूँ ।"

"सो तुम हो निर्मल , न केवल तुम्हारे अवयव प्रत्युत् तुम्हारा स्वभाव तक प्रमाणित करता है । पर वे शायद भिन्न ही प्रमाणित करना चाहती हैं !

तुम्हे यहाँ पर बहुत कमलोग जानते हैं, और जनार्दन प्रसाद ने तुम्हारे लिए कुछ प्रमाण भी नहीं छोडा।"

"अपने पिता की सन्तान होने के लिए पुत्र को प्रमाण की आवश्यकता नही है! रहा सम्पत्ति का दावा, सो उसका लोभ यदि मेरे पिता को नहीं था, तो मुझे भी नही है। यदि इससे दसगुनी सम्पत्ति भी होती तो मै उसे बड़ी सरलता से छोड़ देता!" फिर उठकर निर्मल ने कहा: "मैं आपका कृतज्ञ हूँ कि आपने मुझ से इतनी आत्मीयता दिखाई है। यद्यपि आप यहाँ पर मेरे सबसे बडे हितू है, किन्तु मै विश्वास दिलाता हूँ—मै किसी को अपना कम हितू नहीं समझता! मैंने सुना है कि मेरे पिता कुछ कर्ज भी छोड गए हैं। कह नही सकता कब यहाँ से चल दूँ, पर पिता का कर्ज और बुआ की आशंका को निर्मूल किए बिना शायद नही लौट सकूँगा। फिर भी जाने से पहले आपसे अवश्य मिलूँगा!"

और निर्मल कुमार घर लौट आया। आतेही उसने बुआ के कमरे की ओर पैर किए।—पास ही शिशिर खडा था, देखते ही उसने कहा: "माताजी सोई हुई है, तबीयत खराब है!"

"सोई हुई हैं!" वह दूसरी ओर से लौटा, तो मालूम दिया खिडकी मे से एक छायामूर्त्ति पीछे हट गई! जाते-जाते इशारे से वह शिशिर को अपने कमरे मे बुला गया।

शिशिर आठेक साल का बच्चा है, पिता की मृत्यु उसके जन्म के कुछ माह पूर्व ही हो गई थी! माँ की इस पर विशेष कृपा थी। लाड से जो कुछ होना था, वही हुआ!

निर्मल ने उसे कुछ लेमनचूस और दो आने पैसे दिए और कहा कि 'अपने लिए और लेमनचूस खरीद लेना!'—फिर उसकी पीठ पर हाथ रख कर बोला: "शिशिर, तुम मुझसे बोलते क्यों नही हो?"

"बोलता तो हूँ!"

"कहाँ! जब बुलाता हूँ तो भाग जाते हो! अगर मुझसे बाते करोगे तो मैं तुम्हे और पैसे दूँगा, और बडी अच्छी-अच्छी चीजे दूँगा, जो मैं शहर से लाया हूँ!

"पर माताजी नाराज होगी तो?"

"क्यों?—"

"उन्होंने कहा है कि हम लोग तुम्हारे कमरे मे नही आएँ, और न तुमसे अधिक बातचीत ही करे।"

"हूँ।" और निर्मल विचार मे खोगया।"

—पर शिशिर को लेमनचूस पाने की खुशी थी, उसे भविष्य मे भी यह

खुशी बनाए रखना है। अतः वह बोला : "पर क्यों भैया, तुम इतने बुरे तो नहीं हो !"

निर्मल ने शायद नही सुना, वह अपने मे उलझा रहा, पर शिशिर मानने वाला न था, उसने निर्मल का हाथ पकड कर हिलाते हुए कहा . "भैया, एक बात कहूँ ?"

"क्या ?"

"मुझे और लेमनचूस खरीद दोगे ?—मुझे ये बड़े अच्छे लगते हैं।"

"जरूर खरीद दूँगा !"

"और फिर माताजी से कहोगे तो नही ?"

"नही कहूँगा !"

"माताजी और चाचा दोनों भीतर बातें कर रहे हैं। जैसा कि मैंने कहा, माताजी की तबीयत खराब नही है। उन्होंने मुझे बाहर बिठा कर कहा कि अगर निर्मल भैया अन्दर आना चाहे, तो उन्हे अन्दर न आने देना। कहना कि माताजी की तबीयत खराब है, और वे आराम कर रही हैं।"

"हूँ !"

"और एक बात कहूँ भैया ?"

"कहो !"

"जब तुम आए थे न, तो उस दिन भी माताजी कह रही थीं कि यह अभागा कहाँ से आ मरा ! आज का दिन तो आखिरी है, क्रिया-कर्म मे अगर यह दखल देगा तो सब बना बनाया खेल चौपट हो जाएगा !"

शिशिर को फुरसत न थी कि वह निर्मल के चेहरे के चढ़ाव-उतार को देखे, नहीं तो देखता कि मानो उसके निरपराध भोले वचनों ने उसके चेहरे का समस्त रक्त चूस लिया है ! वह लेमनचूस चूसने की खुशी मे मस्त था ; उसकी जीभ से जो पानी टपक रहा था, वही पत्थर के शब्द बन कर निर्मल के हृदय पर आघात कर रहा था ; किन्तु इसकी शिशिर को न चिन्ता थी, न ध्यान ही ! जब उसने देखा कि निर्मल भैया उसकी बातों का जवाब ही नहीं देते तो फिर उसने अन्त में कहा :

"अब मैं जाऊँ भैया ? — माताजी ने कही देख लिया तो—"

निर्मल ने स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया।

"मुझे और लेमनचूस खरीद दोगे न ?"

"हाँ हाँ—" शिशिर कुमार बाहर चला गया, निर्मल कुमार को अकेला छोड कर।

—तो यह षड्यंत्र चल रहा है यहाँ पर ! जिस बुआ को अपने पिता के

बाँदें वह अपना सर्वस्व समझता था, वही उसका गला काटने के लिए तैयार है। यदि वह वैसे ही उसे कह देती तो—क्या उसके एक इशारे पर वह अपना समस्त सत्व उसको न सौंप देता ? हाय रे अर्थ ! यदि तू इतने अनर्थों की जड़ न होता तो मनुष्य को अपने सतोष के लिए किसी काल्पनिक स्वर्ग की अवतारणा क्यों करनी पडती !

अर्थ मे ऐसा मोहक है क्या ? — कालिका प्रसाद भी बडी-बडी बातें कर रहे थे कि अर्थ यह है, वह है—किन्तु स्वयम् उसे कभी पैसे का मोह न रहा ! जब कभी किसी ने उससे पैसे की याचना की, उसने मुक्त-मन से उसे दिया। किसी की ऐसी सहायता से न उसे कभी अलौकिक कार्य करने की प्रसन्नता हुई, न पैसे के हस्तातरण से किसी प्रकार का दुःख हुआ ! फिर पैसे को कारण करके यह जो मात्सर्य फैला हुआ है, वह क्यो ?

फिर भी उसे धोखा दिया जा रहा है, उसे मूर्ख बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है ! सम्पत्ति का परित्याग वह कर सकता है , किन्तु मूर्ख बनना ? वह सहन नही करेगा। जो उसे मूर्ख बनाना चाहते है, वे देखें कि वह मूर्ख नहीं है, न ही उसे सरलता से मूर्ख बनाया जा सकता है। वह अभी बुआ से जाकर सारी बातें कर लेता है !

निर्मल को एकाएक आवेश हो आया। वह उठा, और जिस कमरे मे शिशिर ने बुआ के होने का आभास दिया था, वहाँ दरवाजे पर, पहुँच कर बोला—दरवाजे पर पहले के मुताबिक शिशिर नही बैठा हुआ था।—

"मै कहता हूँ कि तुम्हारा यह षड्यन्त्र नही चलेगा बुआ ! अपने पिता की सम्पत्ति का मैं मालिक हूँ, मै , और किसी का साहस नही है जो मुझे उससे बेदखल कर सके ! मैं किसी को एक कौडी नही दूँगा, एक कौडी नही ! मेरे पिता के मर जाने ही से तुम लोगों ने मुझे अनाथ समझ लिया है , किन्तु मैं बच्चा नही हूँ, मैं सब समझता हूँ कि क्यों मुझे पिता की मृत्यु की सूचना नहीं दी गई। क्यों क्रिया-कर्म मेरे हाथ से नही कराए गए, और क्यों फिर मुझे यहाँ से जल्दी ही हटा देने की कोशिश की जा रही है। मैं तुम सब लोगों का भण्डा फोड करूँगा—" आदि आदि !

यह सुनकर भीतर से श्रीयुत बसन्त कुमार अपनी छँटी हुई छोटी-छोटी मूँछों पर तरतीब देते हुए दरवाजे से बाहर निकले, और बोले : "क्या शोर-गुल मचा रक्खा है यह ?"

"शोर-गुल कहते हैं इसे ? — आपके आराम मे खलल पड गया ? —दूसरों के आराम को जो छीनना चाहता है, दूसरों की शान्ति का जो गला दबा देना चाहता है, उसे अपने खुद के आराम का तो फिकर होना ही

चाहिए। पर मैं कहता हूँ, इतनी सरलता से टलने वाला मैं नहीं हूँ ! यह मेरा घर है, मैं यहीं रहूँगा, और मै कहता हूँ कि आप लोग इसी घर मे रह कर मेरे विरुद्ध षडयत्र नहीं कर सकते ! — कहाँ है मेरी बुआ ? मै उससे कहना चाहता हूँ कि सारी सेना को लेकर वह अपने घर लौट जाए।"

"तो अपनी बुआ से कहना चाहते हो ये सारी बातें ? वे अभी-अभी ताराचन्द वकील के यहाँ गई है।"

"वकील के यहाँ ?" — निर्मल के चेहरे पर फिर एकाएक राख छा गई।

सिर हिला कर बसन्त कुमार ने कहा : "वकील के यहाँ। यह अच्छा हुआ कि तुमने सारी बात जान ली। एक दिन जानना तो था ही, और जनाने के इस अप्रिय कार्य से हमें छुट्टी मिल गई। तुम्हारी बुआ जानती है निर्मल कि तुम जनार्दन प्रसाद के पुत्र नही हो।"

"मैं जनार्दन प्रसाद का पुत्र नही हूँ ?" चिल्लाकर निर्मल ने कहा।

"मेरे से अधिक तुम्हारी बुआ जानती ह।"

"और उनके पृष्ठ पर तुम हो।"

"वे मेरे मृत-भाई की विधवा है।"

"तो यह याद रखिए कि निर्मल कुमार भी कच्ची गोली नहीं खेला है। यदि आप लोग वकील के यहाँ जा सकते हैं, तो जरूर जाइए। जीत न्याय की होगी, किन्तु एक बात कहे देता हूँ, अब आप की इस घर में रहने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

"यही बात मैं तुम से कहने वाला था। शायद मेरी बात तुम न मानोगे। ठीक है, जब तक पुलिस आकर तुमसे यह न कहे, और तुमको यहाँ से विदा न कर दे, तब तक शौक से अपने कमरे मे चहलकदमी कर सकते हो !"

"अच्छा, तो बात यहाँ तक पहुँच गई है ? देखता हूँ मैं, क्या कर लेते हैं आप ?"

निर्मल कुमार अपने कमरे में पराजित-सैनिक-सा लौट आया। जो आवेश था, वह तो काफ़ूर हो ही गया, ऊपर से सारे मन पर वितृष्णा भी छागई। कमरे के पलग पर लेट कर छत की ओर देखते हुए सोचने लगा कि यह छत उसकी नही है, यह कमरा उसका नही है, बुआ, पिता कोई उसके नहीं हैं—यह सारा विश्व उसके लिए पराया होगया है ! और फिर भी वह इसी विश्व में इस जगह पलग पर हथियार हुए पड़ा है। न जाने कब पुलिस आकर उसे सड़क पर पटक देगी। म्युनिसीपेलिटी का मेहतर सवेरे आकर उसे झाड़ू से बुहार देगा, और दूर दिगन्त से वायु का हिलोरा उसे कहीं का कहीं उड़ा ले जाएगा, जहाँ कोई उसका नहीं है। इतनी निष्ठुर है दुनिया ?

इस घर से निर्मल का कोई विशेष परिचय नहीं था, अतः विशेष मोह भी नहीं था, किन्तु आज यहाँ की प्रत्येक वस्तु, घर की ईंट-ईंट तक उसकी पहिचानी हुई मालूम पड़ रही थी, मानों फर्श के प्रत्येक कण से उसकी आत्मीयता है, और इस घर से निकाल दिए जाने पर उसकी मानों आत्मा को ही उसके परिधान से प्रथक कर दिया जाएगा।

यों हीं सोचते-सोचते अँधेरा होगया। निर्मल कुमार अपने कमरे से बाहर नहीं निकल सका, न किसी ने आकर उसकी सुधि ही ली!

काफी रात होजाने पर एकाएक जब उसकी नीद खुली तो उसने अपने आप को बहुत परेशान पाया। शायद कोई दुःस्वप्न था, या उसके कमरे मे कोई घूम रहा है? उठ कर उसने बिजली का स्विच दबाया। सारे कमरे मे रोशनी हो गई, रात का एक बज रहा था। पास की टेबल पर औषधि की शीशी रखी हुई थी, वह उलट गई है और सारी औषधि नीचे फैल गई है। टेबल पर—ओह, इस डाक को तो निर्मल ने देखा ही नही। कब से पडी हुई है। उसे ध्यान ही नही रहा।

डाक खोल कर निर्मल ने देखा कि प्रायः सभी पत्र सहानुभूति के थे। नमिता का भी पत्र था, कल्पना ने भी लिखा था। नहीं लिखा तो केवल च्यवन प्रकाश ने। वह उससे मिल कर ही आया था, ऐसी कोई खास बात नहीं है।

कल्पना ने सबेदना प्रकाश करते हुए उससे धैर्य रखने की प्रार्थना की थी। ईश्वरेच्छा सर्वोपरि है, मनुष्य को उसका दान सदैव अनासक्ता भाव-से स्वीकार करना चाहिए, इसी मे मनुष्य का महत्व है। अन्त मे यह भी लिखा था कि यदि कल्पना किसी सेवा के योग्य समझी जाए, तो वह आभारी होगी!—वही औपचारिक पत्र।

नमिता का पत्र लम्बा था! विहित सम्बोधन के उपरान्त उसने लिखा था—

"जब तुमने कहा था कि क्या मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी, तो मन ने कितना चाहा कि तुम्हारी छाया बनकर तुम्हारे चरण से लिपट जाऊँ, और जहाँ भी तुम जाओ, तुम से ही घिरी रहूँ! किन्तु तभी समाज की समस्त बाधाएँ मेरे सामने आखडी हुई। तब भी, तुम तो जानते ही हो, मैं यहाँ हूँ, पर मेरा मन तुम्हारे चरणों पर पडा हुआ है!

"कितनी अवश हूँ कि मैं तुम्हारे पास सशरीर नही हूँ! जब तुम्हारे मन के आकाश मे बादल छाए हुए हों, तब भी यदि मैं दूर रहूँ तो क्या मेरा जीवन व्यर्थ नहीं है? तुम कहोगे (और केवल मुझे सात्वता देना के लिए, यह मैं जानती हूँ) कि तुम्हारे मन के आकाश मे बादल नहीं हैं! परन्तु, परन्तु पिता के स्नेह की छाया का मूल्य मैं भी तो जानती हूँ! मैं अवश्य

तुम्हारे उपयुक्त नहीं हूँ ; किन्तु जो कुछ हूँ , क्या उसका समस्त श्रेय मेरे पिता को नहीं है ?

"फिर भी इस दुनिया मे सब कुछ सहने के लिए है ! तुम्हीं कहा करते थे कि यदि दुनिया मे तुम्हारे पिता जैसा कोई पिता नहीं हैं, तो तुम्हारी बुआ जैसी भी कोई बुआ नही है ! मै आशा करती हूँ कि निश्चय ही अपनी स्नेह मई बुआ की गोद मे मस्तक रख कर तुमने इस दुःख को सहने की शान्ति पाई होगी !—नारी स्नेह और शान्ति का अवतार होती है । यदि नारी को स्नेह और शान्ति का वरदान मिला है, तो उसे हृदय की वह गहराई भी मिली है, जहाँ पहुँच कर वह अपना स्वार्थ का नल खो देती है ! और तुम ? तुम क्या ऐसे हो कि कोई नारी तुम्हे किसी भी भाव से घेरे रखने मे अपने को असमर्थ पामके ?—"

"कितने दिन वहाँ रहना होगा ? मेरा जी तुम्हारे बिना तडप रहा है ! मैं प्रत्येक क्षण तुम्हारे साथ रहना चाहती हूँ ! स्नेह और शान्ति की गहराई पाकर आवश्यक हो जाता है कि कोई उसे उलीचे, जल की सार्थकता इसमे है कि कोई प्यासा पास हो !

"मै पत्र की प्रतीक्षा करूँगी, और उससे अधिक तुम्हारे दर्शन की । तुम्हारे दुःख के बारे मे अधिक क्या लिखूँ, और क्या तुम्हें सात्वना दूँ ? क्या तुम्हारा दुःख मेरा दुःख नहीं है ? फिर भी यदि मैं तुम्हारे दुःख को भी अपने ही ऊपर ले पाती-—"

एक क्षण के लिए आँखें बन्द करके निर्मल ने मन ही मन अपनी बुआ की मूर्ति को स्पष्ट किया , जिसको वह विश्व मे अन्यतम मानता था, वह बुआ !—नमिता ने आगे अपने पत्र में लिखा था—

"मुझे इसमे आश्चर्य नहीं ! क्यों कि तुम्हारा स्वभाव ही ऐसा है । शत्रु का भी तुमने कभी अनहित नहीं चाहा । शायद बुराई तुमसे डरती है । तुम्ही कहो क्या अपने बड़े से बड़े लाभ के लिए भी तुमने कभी किसी का चित्त दुखाया है ? उस दिन बैडमिण्टन टूर्नामेण्ट में केवल च्यवन को जिताने के लिए क्या तुम स्वेच्छा से नही हार गए थे ? और जब सहयोगियों ने तुमसे कहा कि तुम जान कर के हारे हो, तो कैसी सफाई के साथ तुमने च्यवन के खेल की प्रशंसा की थी ? जो व्यक्ति अपने स्वार्थ को इस तरह भुला सकता है , वह निश्चय ही अपनी दुःख की समस्त-भावना को भी सरलता से दबा सकता है ! उसके मन के निकट यदि सुख का कोई मूल्य नहीं, तो दुःख का क्या मूल्य होगा ?—मेरा विश्वास है कि तुम अपने अन्तर की इस शक्ति को पहचानोगे, और अपने इस निविड़ दुःख मे तुम्हे प्रकाश का अभाव नहीं रहेगा !

"पिता जी ने फिर मुझे कहा है कि मैं तुम्हे लिख दूँ कि यदि मेरे पिता जीवित हैं, तो तुम्हे पिता का अभाव अनुभव नहीं करना चाहिए ! इसके अतिरिक्त उन्होंने और भी कुछ कहा है, जिसे मैं इस समय नहीं लिखूँगी। मैं जानती हूँ मेरे लिखे बिना भी तुम उसे जानते हो ! और इसीलिए मैं आशा करती हूँ कि आवश्यकता होते ही बिना सकोच तुम मुझे पत्र लिखोगे !"

प्रेम के पत्र केवल एकबार ही पढने के नही होते। यही नही, चक्षुरिन्द्रिय के इस ऐश्वर्य को दूसरी इन्द्रियाँ सहन नहीं कर सकतीं तब उनका स्वामी मन अपनी अर्द्धचेतन और अचेतन शक्ति को सहायता के लिए पुकारता है। तब वह पत्र प्रेमी के सम्मुख सशरीर होकर नाचता है, गाता है और अपने मृदु स्निग्ध कोमल स्पर्श से उसको रिझाता है। उस पत्र को दुनियाँ की कडी नजर से बचाने का रिवाज है। उसके आराम के लिए विधान है कि वह हृदय की लचीली शय्या पर स्वप्नों के देश मे सुरभित श्वास के कोमल हिंडोले मे झूलता हुआ सोजाए ! मध्य रात्रि की उस निविड बेला मे नमिता का यह पत्र निर्मल के लिए शान्ति ही का नही, सामर्थ्य का भी वरदान लाया। कृतज्ञता के भार से दबे हुए मन ने उसे प्रेरित किया, और वह तत्काल उत्तर लिखने के लिए बैठ गया !

मध्य रात्रि की स्वप्निल बेला थी। पत्र स्वयम् एक सुनहरे स्वप्न की जाली बुन चुका था। निर्मल का पत्र प्रारम्भ हुआ 'मेरे स्वप्नो की देवी नमिते' के नाम से।

"तुम्हारे पत्र ने आकाश को लाकर मेरे चरणों पर पटक दिया है ! अब मैं किस ऊँचाई की कामना करूँ ? स्नेह के इतने बडे कोश के प्राप्त होने के आश्वासन पर मेरा क्या दुःख शेष रह सकता है ? तुम आश्वस्त होओ नमिता, कि इस पत्र को पढ़लेने के बाद मेरा कोई कष्ट असहनीय नहीं रह गया है !

"फिर भी जब कष्ट की चर्चा आ ही गई है, तो कल्पना कर सकती हो कि ये कुछ दिन मेरे कैसे कष्ट मे बीते होंगे। कष्ट को सचमुच मैं कभी पकड़ाई नहीं दिया, इसमे दैव तो सहायक था ही पर मेरे मन ने भी कम सहायता नहीं दी थी। उसे कवित्व का प्रभाव चाहे न मिला हो पर कवि का स्वभाव मिला है ताकि बेदना मे भी वह अपने लिए वरदान खोजले, किन्तु मन की यह शक्ति भी यहाँ पर कुण्ठित हो गई। धूल से तेल निकालने के प्रयत्न को तुम कैसा समझती हो ? पर यदि पत्थर से तैल निकालने का प्रयत्न किया जाए तो कुण्ठित होने के सिवा क्या हाथ लग सकता है ?

"जिसे पाकर मैं पिता के अभाव को भूल सकता था, वह मातृस्थानीय बुआ ही मेरी सबसे बड़ी शत्रु हो गई ! अदालत द्वारा मुझे अपने स्वत्व से वंचित

करने का मेरे आने से पूर्व ही उन्होने षड्यत्र फैला दिया। कहता हूँ मैंने इस दुनिया मे अब तक किस तत्व को स्वत्व समझा है कि मेरी बुआ को अदालत की शरण लेना पड गई! पर जब यह भी सम्भव होगया, तो इसे भाग्य की विडम्बना के सिवा और क्या कहा जा सकता है! इसीलिए बुआ ने मुझे खबर तक देना उचित नही समझा। इसी दुरभिसधि के कारण मै अपने पिता का अन्तिम दर्शन नही कर सका। उनकी मृत्यु कहाँ, कैसे, और कब हुई इसको जानने का कोई उपाय नही है। मैं यहाँ पहुँचा ही तब, जब कि उनकी तेरह दिन की क्रिया समाप्त हो रही थी। और यात्रा की थकावट के बहाने, दुःख की क्लाति के व्याज से पुत्र के शेष विहित कर्त्तव्य से भी मैं वञ्चित कर दिया गया। मेरे पिता को पिण्डदान करवाया गया मेरी बुआ के बडे पुत्र हेमन्त के द्वारा। भौतिक मूल्य तो इन बातों का मेरे निकट कुछ नहीं है, किन्तु मन की गुहा मे जब इनके प्रेत अपनी अवास्तविक अभिशाप-छाया प्रक्षिप्त कर देते हैं, तो शान्ति और स्वास्थ्य के प्रकाश को सिमट कर रह जाने के सिवा चारा ही क्या है?"

इसके बाद कुछ कालिका प्रसाद का परिचय था, यह भी उसने लिखा कि किस प्रकार इस मुकदमे मे वे उसके अयाचित सहायक होगए हैं! उसने लिखा "सोचकर मैं स्वयम आश्चर्यान्वित हो उठता हूँ कि इस मुकदमे मे मेरे प्रवृत्त होने का क्या प्रयोजन है? इस षड्यत्र से मेरे जिस स्वत्व के खोए जाने की आशंका है, वह क्या अदालत के जोर से लौटाया जा सकता है? बुआ का स्नेह और उनकी भक्ति सचमुच मेरा बहुत बडा सम्बल होती, पर अदालत के ही अधिक्षेत्र में यदि वह बात होती, तो कौन कह सकता है, तुम्हारे लिए भी मुझे कहीं अदालत ही के निकट न उपाय चितहोना पड़ता!

"उस स्वत्व से तो वंचित होगया ही हूँ, इसलिए मेरे वकील की राय है, कि दूसरे भौतिक स्वत्व से भी क्यों वंचित होऊँ? अपने लिये चाहे न हो; किन्तु न्याय की रक्षा के लिए मुझे इस मुकदमे को लड़ना पड़ेगा। कैंची की दो धाराओं में से एक मुझे चुनना है। नहीं है क्या यह भी एक भाग्य का विनोद? बुराई से लोहा लेने के लिए उसके मार्ग पर आगे बढकर रास्ता रोकने की शिक्षा मेरी नहीं है। मार्ग छोड़कर अलग रह जाना कायरता चाहे कहलाए, पर जमा खर्च मे कुछ शेष पोते रह ही जाता है। फिर भी वकील कहता है कि बुराइयों के बिल तो पग-पग पर छिपे पड़े हैं इस दुनियाँ मे! बिल मे हाथ देना अवश्य खतरे को बुलाना है, किन्तु जब कि बिल से साँप निकल कर पैरों मे लिपट गया है, तब बिल से बचने का तो सवाल ही नहीं उठता! तब तो साँप-भर को देखना रह जाता है, कि वह कितना लम्बा है,

उसके विष का क्या प्रमाण है। उसका विष दन्त कहाँ है, और वह कैसे तोड़ा जा सकता है!—वकील का मन जो ठहरा।

"इसलिए मन से या विमन से, अपना मन कहलो, या वकील का विमन कहलो, मैं यहाँ ठहर कर मुकदमा लड रहा हूँ। किस लिए लड़ रहा हूँ, कितने के लिए लड रहा हूँ यह नहीं जानता! कहाँ जाकर यह लड़ाई समाप्त होगी यह भी नहीं कहा जा सकता। क्या मिलेगा इस लड़ाई मे यह भी कौन कह सकता है? यह तो है, कि मेरे मन का अपना स्वत्व तो मुझसे छिन गया है। कहाँ पाऊँगा उसे मैं?

"मैं जानता हूँ कि मन की यह अवस्था उत्तम नहीं है स्वास्थ्य तो इसमे है ही कहाँ?—यहाँ अपना कोई नही रहा! बुआ का छोटा लड़का शिशिर है, यदि उसको मुझसे अधिक लेमनचूस प्यारे हों तो उसे कैसे दोष दिया जा सकता है। मैं इसी मे घुला जा रहा हूँ कि मेरा लेमनचूस भी मुझे कभी मिलेगा?

चाहता हूँ यह व्यवधान टूट कर पल भर मे सब एकाकार हो जाए!—मै यहाँ नितान्त एकाकी हूँ। बुआ का चक्रव्यूह भी यही जमा हुआ है। अभिमन्यु की तरह मेरा उसमे प्रवेश तो सम्पन्न हो गया है, क्या निष्क्रमण भी उसी का मेरे भाग्य मे लिखा है? पर अभी तो हथियार मैंने नहीं रखे है।

"मुझे तुम्हारी बडी आवश्यकता है, बहुत बडी। इस दुधारी कैंची से कौन मेरा उद्धार करे?—तुम तो यहाँ पर आ नहीं सकती! पर क्यों? मैं ध्रुवतारा नहीं माँगता, पर इस दिगन्त-हीन महातिमिराच्छन्न मेघान्ध यामिनि मे मेरा कम्पास तो मुझे लौटा दो!—क्या केवल लोकाचार की एक मिथ्या-भावना ही हमारे पैर की इतनी बड़ी अर्गला हो जाएगी? नमिता, मेरी पुकार के लिए मुझे क्षमा कर देना। मरुस्थल की ज्वलत-मरीचिका मे कौन अभागा पानी को नहीं पुकारता?

"तुम्हारे पिता मेरे कोई दूसरे नहीं है। हम दोनों मे से एक जिसे पा लेता है, वह दोनों का है! तुम्हारे पिता को जैसा तुमने पाया है, वैसा मैंने भी तो अपने आप पाया है। हम दोनो की संयुक्त उपलब्धि का तो फिर परिमाण ही क्या?—फिर भी मन तुम्हारी कामना करने से नही मानता! तुम कहती हो बिना संकोच मुझे उनसे माँग लेना चाहिए। जिसे पाने से और कुछ पाना शेष नहीं रह जाता, इसके सिवा मैं उनसे और माँगूँगा क्या?—पर, सच कहती हो नमिता, बिना सकोच मैं उनसे वह माँग सकूँगा?—

"लिखे हुए की अपेक्षा तुम्हारा न लिखा हुआ ही मेरे निकट अधिक पठितव्य है। लिखा हुआ क्या कभी पर्याप्त होता है? इतना सब कुछ लिख

कर भी मैं कह ही क्या पाया हूँ ! यदि अनुभूति को शब्दों की सीमा न होती, तो प्रेमी का वह शेष-पत्र कभीका शब्दों की कैद हो चुका होता, और प्रेमी की अनुभूति को शेष माँगनी रह जाती केवल विष की पुडिया ! तब क्यों न मैं भी इस पत्र को यहीं शेष कर दूँ ?—फिर भी मेरी अतृप्त-पुकार तुम्हारे मार्ग पर दौड़ी जा रही है।

रात्रि के इस शेष काल मे
तुम्हारे प्रेम का अतृप्त पिपासी, निर्मल !"

रात्रि शेष हो रही थी, पूर्वाकाश मे उषा का रक्ताचल फैलना चाह रहा था, निर्मल की आँखों ने चट से नमिता की मूर्त्ति वहाँ पर अंकित कर दी। तो क्या इतनी शीघ्र उसकी पुकार वहाँ पहुँच गई ?

पास ही कल्पना का पत्र भी रक्खा था। उसे भी उसने उत्तर दे दिया। उसकी समबेदना के लिए धन्यवाद के अतिरिक्त उसने यह भी लिखा कि मित्रों की कृपा उसके ऊपर सदैव से रहती आई है ! उसी के बल पर वह अभी तक फलता-फूलता रहा है, और उसी के बल पर वह इस बन्धु-बान्धवहीन विश्व में जीवित रहने का बल प्राप्त करता रहेगा ! आदि-आदि !

पॅड मे से दो लिफाफे लेकर उसने दोनों के पते भी लिख डाले, सबेरा होते ही वह उन्हें पोस्ट करवा देगा। पत्रों और लिफाफों को उसने टेबल पर रख दिया, और बाहर खुली छत पर प्रातःकाल की मन्द समीरण का लाभ उठाने लगा।

सबेरा होते ही शिशिर आ धमका , बोला : "भैया, कल जो तुमने पैसे दिए थे न, उनके लेमनचूस तो मैं ला ही नहीं सका। माता जी ने रात को जेबें सम्हालीं, और बोलीं कि 'बोल, ये पैसे कहाँ से लाया, चुराए हैं ?"

"क्या कहा तुमने ?"

"मैंने कहा कि मुझे रास्ते मे पड़े हुए मिले थे।"

"फिर ?"

"'झूठ कहीं का' कह कर उन्होंने मुझे एक थप्पड़ मारा, और कहा कि मैं बिगड़ता जा रहा हूँ !" यह कहते-कहते ही उसकी मुद्रा रुआसी हो गई।

निर्मल ने कहा : 'अच्छा शिशिर, रो मत। पैसे तू और ले लेना। लेकिन मेरा एक काम करेगा ?"

"जरूर-जरूर भैया !"

"देख, मेरे कमरे में दो लिफाफे रक्खे हैं, इन्हे पोस्टबक्स मे छोड़ आएगा ?"

"अभी जाता हूँ भैया, माँ तो अभी भी सोई हुई हैं, उन्हें पता भी नहीं लगेगा।"

निर्मल शिशिर के साथ भीतर कमरे मे गया। पॅड मे से निर्मल ने लिफाफे निकाले और उन पर पता देखा, फिर उसने टेबल पर से लिखी हुई चिट्ठियाॅ उठा कर तह करना शुरू कीं। शिशिर घुटनों के बल बैठा हुआ देखता रहा।

शिशिर ने कहा : "भैया, मुझे चिपकाने दोगे? और टिकिट भी तो लगाते हैं न इन पर?"

हॅसकर निर्मल ने कहा : "तू चिपकाएगा?—अच्छा, और यह दो टिकिट ले। यह खत इस लिफाफे मे और यह इसमे। फिर एक-एक टिकिट दोनों के ऊपर, समझा न? मेरे सामने चिट्ठी लिफाफे मे रख! हाॅ ठीक है—अच्छा, मैं नीचे जा रहा हूॅ, बाथरूम मे! लेकिन देख नीचे मुझे बताते जाना।"

जब निर्मल नीचे उतर गया, तो शिशिर ने लिफाफों को गौर से देखा। हरे रग के लिफाफे थे, चिपकाना अब भी शेष था। भीतर की ओर जालियाँ पड़ी हुई थी और ऊपर की ओर दहाड़ते हुए शेर का चित्र बड़ा भला लग रहा था। अच्छी तरह से देखने के लिए उसने पत्रों को पुनः वापिस निकाला, खूब मन लगा कर उसने उन्हे देखा, कि हवा का एक झोंका आया, लिखे हुए खत, टिकिट, लिफाफे सब उड़ कर कमरे मे इधर-उधर फैल गए। शिशिर बडा घबराया। उधर बड़े भाई हेमन्त की भी आवाज उसे सुनाई दी। यदि उसने कहीं उसे भैया के कमरे मे देख लिया, तो अवश्य वह माता जी से कह देगा, और फिर उसकी मरम्मत हुए बिना नहीं रहेगी।

जल्दी-जल्दी उसने कागज समेटे। एक पत्र को एक लिफाफे मे डाला, लिफाफे के किनारे को जीभ से चाट कर सिक्त किया और चिपका दिया, टिकिट उधर रखा हुआ था, वह भी उसी तरह लिफाफे पर चिपका दिया गया! किन्तु दूसरा टिकिट?—वह कहाॅ उड गया?—कही नजर तो नही आता!—लिफाफा तो यह रखा है, पर कागज कहाॅ चल दिया? यही है क्या?—

टिकिट उड कर छिप गया था, निर्मल के अटेची केस के नीचे; और लिखा हुआ पत्र मिल गया, दूसरे अन्य कागजों के साथ। खाली लिफाफा तब भी शिशिर के हाथ मे था, क्या करे वह उसका? उधर हेमन्त ने उसे न पाकर कहीं उसकी खोज करवा ली, तो वह बाजार भी नहीं जा सकेगा!

शिशिर ने झट से निश्चय कर लिया। खाली लिफाफा बड़ा सुन्दर था, उसे रक्खा उसने जेब मे, और दूसरे लिफाफे को पोस्ट बाक्स मे छोड़ने के लिए जल्दी से नीचे उतर गया। अपनी गडबड़ी को छिपाने के लिए उसने निर्मल से की हुई प्रतिज्ञा भी स्मरण न रखी। दूसरा लिफाफा अवश्य उसने पोस्ट बाक्स मे डाल दिया, और खाली लिफाफा उसकी जेब में पडा हुआ

उसकी कल्पना को सजग करता रहा। उसने एक और गडबड़ी कर दी, जिसका न उसे ध्यान था, न निर्मल को ही हुआ! नमिता का पत्र उसने कल्पना देवी के लिफाफे मे बन्द कर दिया था।

लौटने पर जब निर्मलने कल्पना का पत्र वहीं पडा देखा, तो शिशिर को बुलवाया, पर तब उसका पता नही लगा! उसने सोचा कि वह एक ही लिफाफा ले गया होगा, उसने दूसरा लिफाफा लेकर कल्पना का पत्र बन्द किया और शाम को बाहर जाते समय पोस्ट बाक्स मे छोड आया!

पूछने पर पहले तो शिशिर ने कहा कि दोनों ही पत्र उसने बम्बे में छोड़ दिए, पर बाद मे मंजूर कर लिया कि दूसरा टिकिट कही खो गया, इसलिए वह दूसरा लिफाफा नही डाल सका। दूसरा लिफाफा कहाँ है, इसका प्रश्न ही नहीं उठा, नहीं तो शिशिर अपनी जेब मे से निकाल कर बता सकता था। और दूसरे ही दिन निर्मल को अटेची केस के नीचे से वह टिकिट भी मिल गया। शिशिर को लेमनचूस के पैसे मिल गए।

: ५ :

नाम तो उसका कल्पना था ही , किन्तु किसी छायावादी कवि की सूक्ष्म-सौंदर्यपिनी-प्रतिभा का वरदान उसे नही कहा जा सकता। उसे मार्क्सवादी सर्वाहारा दल के किसी प्रगतिवादी कवि की ठोस चिन्ता धारा कहना अधिक उपयुक्त होगा ! फिर भी जब उसे कवि की कविता का आधार कहा गया है, तो उसकी काव्य-सुलभ कोमल-कमनीयता तो व्यक्त हो ही जाती है !

क्यों रूप के देवता उसके मामले मे विशेष-उत्साहित न हुए, यह तो नहीं कहा जा सकता , किन्तु जो महा भाग रूप की मनोन्मेशकारिणी गली के अपने प्रवेश-लोभ को सवरण करने मे समर्थ हो सका है, उसे अन्य कई सुविधाओं के राजमार्ग का प्रवेश पत्र अनायास ही प्राप्त हो जाता है ! दूसरों की दृष्टि को आकर्षित करने के लिए सौंदर्य के अकुश के अभाव मे उसे अपनी बुद्धि और प्रतिभा के अकुश को उत्सारित करना पडता है, जिससे कि ये और भी तीक्ष्ण हो उठते हैं। प्रायः देखा गया है कि रूप की स्फटिक शिला पर उनकी अणी कुछ कुन्द ही हो जाती है। दृष्टि की आसक्ति का सधान न पाने के कारण, परिचय के प्रभात में ही देखने वाला उसके हृदय के गूढतम द्वार को टटोलता है, जहाँ से निकली हुई स्नेह की पूत धारा उसकी तपस्या के समस्त श्रम को सार्थक कर देती है ! उसके पदक्षेप मे सहज गाभीर्य, निर्वितर्क शालीनता और निःस्वार्थ रागोद्‌बन्ध विद्यमान रहते हैं। वह सबेक्ष्य नहीं, सबेद्य होता है। रूप की स्फटिक शिला पर स्निग्ध-दृष्टि फिसलती हैं , अन्तर के मर्म पर बिछे हुए हिम के नर्म तल्प पर हृदय का राग अपने ही भार से गहनतम धँसता रहता है। यही कल्पना का अभाव है, और यही उसकी उपलब्धि है !

रूप के देवता ने नहीं, तो रौप्य के देवता ने अवश्य उसकी सहायता की। जौहरी के परिवार मे जन्म लेकर अपने माता-पिता के वात्सल्य का एक मात्र अधिकारिणी होना कम सौभाग्य नही होता ; मानों अपने अभाव मे ही कल्पना को भावमय हो उठना था। इस तरह सदैव ही देवता और मनुष्य की प्रीति संग्रह करती हुई कल्पना अपने दान मे प्रीति के अतिरिक्त और दे ही क्या सकती थी, फिर चाहे लेने वाला उसे स्वीकार करे, सहेज कर रक्खे और अपने को धन्य माने, या उसे इनकार कर दे !

अपने प्यार का सभार निर्वाक गुडियों पर लादना बड़ा सुविधाजनक है। अतः शैशव मे ये ही उसके प्रेमी बने। और जब कुछ बडी हुई, तो घर के दरबान का लडका रामू और पड़ोसी की स्पेनियल कुतिया टानी का बड़ा लड़का जिमी उसके प्रेमाचार के पात्र हुए ! जिमी को उसने अपने लिए पड़ोसी से खरीद लिया है। रामू तो अब तक विवाह करके दो बच्चों का बाप बन चुका है, किन्तु जिमी आज भी कॉलेज से उसके लौटने के समय दरवाजे पर स्वागत करता है, और फिर शयन कक्ष मे भी उसका साथ नहीं छोड़ता, उसके पैरों को चाटता हुआ वहीं उसके पलग के नीचे लेट जाता है ! यों रामू भी उसके लिए जान देने के लिए तैयार है। बचपन से ही उसने कल्पना की मिठाई ही नहीं, उसके नन्हे हाथों की मार भी खाई है ! आज वह दो बच्चों का बाप हो गया तो क्या हो गया !

रामू ने जब लाकर उसे अपने नाम का लिफाफा दिया, तो बड़ी उत्कण्ठा से उसने पत्र को खोला। यह देखने के लिए कि किसने उसे पत्र लिखा है, उसने सब से पहले पत्र के नीचे देखा, पढा : तुम्हारे प्रेम का अतृप्त-पिपासी निर्मल ! तो निर्मल कुमार की है यह पत्री ? और 'तुम्हारे प्रेम का अतृप्त पिपासी ?'— क्या कल्पना स्वप्न तो नहीं देख रही है ?

रामू से उसने कहा : "अच्छा जाओ !" और जब रामू चला गया तो पत्र को उसने अपनी छाती से लगा लिया। हाथ की किताबों को खिड़की पर पटक कर वह नाचने लगी, उसका समस्त शरीर इतना हलका हो गया कि पैर मानों आसमान को चूम लेंगे ! फिर जब आवेश का प्रथम उफान कुछ शान्त हुआ तो उसने शीघ्र ही कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया। फिर कोच पर आराम से पैर फैलाकर बैठते हुए उसने पुनः पत्र को खोला, पढा, सम्बोधन में ही लिखा था : 'मेरे स्वप्नों की देवी नमिते।' और उफनते हुए दूध मे किसी ने पानी के छींटे मार दिए ! कल्पना की भावना की सभी कड़ियाँ एकाएक बिखर गईं। तो नमिता का है यह पत्र ? उसने फिर लिफाफे को देखा : उसी का नाम था। तो क्या पत्र बदल गए हैं ? या उसे छलने के

लिए ही यह पत्र भेजा गया है ?

छलने के लिए ? उसने तो निर्मल को सहज भाव से ही समबेदना ही का पत्र भेजा था, किसी भी व्याज से हृदय के निगूढ-उच्छ्वास का तो लेश मात्र भी उसमे आभास न था ! फिर निर्मल ही छल का आश्रय क्यों लेने लगा ? यह ठीक है कि निर्मल के प्रति उसके हृदय मे केवल औपचारिक सख्य-सम्बन्ध ही नहीं था , किन्तु कौन लड़की निर्मल के प्रति इस तरह अहेतुक रूप से उत्सुक न थी ? आरम्भ मे वह उसकी ओर अनुरक्ति से झुकी थी , किन्तु उसके झुकने से ही क्या हो गया ? प्रेम तो केवल प्रदान ही नहीं, आदान भी चाहता है ! — एक ही क्षण मे उसके सुनहरे स्वप्न का अवसान हो गया । लाइन क्लीयर लेकर बडे बेग से दौड पडने के लिए रेलगाड़ी चल पड़ी थी , किन्तु तभी सामने से एक अवरोध ने खडे होकर उसके प्रचुर बेग को चुनौती दे दी । गति ही नहीं रुक गई, बल्कि गाडी ही लुढक-पुडक कर पटरी से दूर गिरकर चकनाचूर हो गई ! जो सुख का छल पत्र के अन्त से प्रारम्भ हुआ, वह उसके प्रारम्भ मे ही अन्त हो गया !

नमिता सचमुच निर्मल ही के लिए बनी थी । वह शरद की नवीन ऊषा के समान स्निग्ध-कोमल और अशेष सौदर्यशालिनी थी । विधाता के दिए हुए इस वरदान को उसकी रुचि और उसके हाथ भी सावधानी से सहेज कर सजाना जानते थे । और कल्पना ने यह भी लक्ष्य किया था कि केवल ऑखों की वाणी ही ने नही, प्रत्युत् हृदय की वाणी ने भी निर्मल का अशेष-यत्न से अभिषेक किया था । तब कल्पना के लिए आकाश-कुसुम की कामना करना अशोभनीय और असहनीय ही होता । अतः उस समय की हृदय की उस अनुवृत्ति को उसने बोध ही नहीं दिया, भाषा तो दूर की बात रही ! किन्तु आज जब पत्र के अन्तिम आवेदन के साथ लिफाफे के उसके सिरनामे मे किसी अलक्ष्य शक्ति ने एक प्रच्छन्न विश्रब्ध सम्बन्ध की कुहेलिका रच दी, तो उस वृत्ति को न केवल बोध ही मिला, उसे एक ही मुहूर्त्त मे सज्ञा मिली, भाषा मिली, भाव मिले और अनुभाव तक मिल गए । फिर भी जो होना था, वह रस दोष हो ही गया । सर्वाहारा-कवि की कल्पना जो वह है !

नमिता के पत्र को वह क्यों पढे ? मरुभूमि मे किसी उदग्र-प्यास को बुझाने वाली , किन्तु अलभ्य शीतल जल धारा को बेवस नयन भर से देखने का क्या पुरस्कार है ? — क्या उसे ही मरीचिका नहीं कहा जाता ? और फिर दूसरों का पत्र ?— वह कल ही पत्र का पुनर्निर्देश कर देगी ! उसने हाथ में लिए हुए पत्र को उजडी ऑखों से देखा, मानों उसने अबतक अनजाने ही एक वृश्चिक को मुट्ठी में बन्द कर रक्खा था, उसी क्षण उसने उसे सामने टेबल पर फेंक दिया ।

'तुम्हारे प्रेम का अतृप्त पिपासी निर्मल !' पत्र का अन्तिम भाग, तह किए हुए पत्र की ऊपरी सतह पर लिखा हुआ मानो एक अतृप्त प्यास से कल्पना की आँखों का जल माँग रहा था। कल्पना की आँखे उस पर गड गईं।

किन्तु पत्र को रिडाइरेक्ट कैसे किया जा सकता है ? उसने तो लिफाफा खोल लिया है, और यों भी लिफाफा है तो उसी के नाम ! तो निर्मल ने पत्र उसे भी लिखा तो अवश्य होगा ! क्या वह नमिता के लिफाफे में तो नहीं चला गया ? यदि कल्पना स्वयम् ही कल कॉलेज जाकर उसे यह पत्र दे दे और उससे अपना ले ले तो ? बल्कि, यह तो अभी भी किया जा सकता है। गाड़ी उसकी नीचे ही खड़ी होगी, यदि ड्राइवर चला गया हो तो वह खुद अकेली ही चली जाएगी। अभी कपड़े भी नहीं बदले हैं।

फिर भी यह अतृप्त प्यास !—उसने ललचाई दृष्टि से पुनः उस पत्र की ओर देखा। वह पत्र पढ़े या न पढ़े, नमिता तो समझेगी ही कि जब लिफाफा उसने खोल लिया है, तो पत्र भी जरूर पढ़ा ही होगा। जब सारी बात उसी के विवेक पर निर्भर करती है, तो पढ़ ही क्यों न ले ?—वह भी तो देखे कि यह अतृप्त प्यास कैसी है ? और कितनी गहरी है ? कल्पना अपने आपको और अधिक नहीं रोक सकी। उसने पत्र उठा लिया, और एक ही साँस में प्रारम्भ से अन्त तक पढ़ गई—एक बार नहीं, दो बार नहीं, पूरे तीन बार।

क्या मिला उसे उस पत्र में, सो तो वही जाने, किन्तु तब कल्पना के चेहरे पर न कौतुक था, न कुतूहल, वरन् निर्वाणप्राय दीपशिखा की शेष आभा के समान उसकी आँखे मानों तीव्र अतृप्त पिपासा से जलने लग गईं, और उसकी साँस ने जेठ की लू का रूप धारण कर लिया। प्रेम की प्यास की इस तीव्रता का उसे अनुमान ही न था। पानी की नलिका जमीन में जितनी गहरी गड़ती गई, पानी का उच्छ्वास उतना ही ऊँचा चढ़ता गया। क्या भाग्य है नमिता का, कि उसे न केवल ऐसा पत्र ही मिला है, वरन् लिखने वाला भी मिला है !—तभी रामू ने बाहर से दरवाजे को थपथपा दिया।

"कौन ?"

"मैं हूँ रामू, अभी डाकिया एक और चिट्ठी दे गया है दीदी !"

एक और चिट्ठी ?—कल्पना का हृदय एक बार और धड़क उठा, क्या नमिता ने उसके पत्र को रिडाइरेक्ट कर दिया ? इतना शीघ्र ?—वह उठी और उसने किवाड़ खोले। देखते ही रामू को आश्चर्य हुआ कि कल्पना ने अभी तक तो कपड़े ही नहीं बदले हैं, बल्कि उसका मुख-मण्डल और भी अजीब हो उठा है, किन्तु उसकी आँखों का इशारा पाकर वह उलटे पैरों लौटते हुए

बोला : "चाय यहीं ले आने के लिए कह दूँ बीबीजी ?—मालिक और माताजी नीचे बैठे राह देख रहे है।"

"यहीं भेज दे रामू--पर, नहीं नहीं—माताजी से कहना, मैं पॉच मिनिट में आई।"

यह उसके नाम का दूसरा पत्र था, जो निर्मल ने उसीके लिए लिखा था, सक्षिप्त, सामान्य, सहजभाव से लिखे हुए उसके समबेदना के पत्र का उत्तर ! तो क्या नमिता ने उसे रिडाइरेक्ट किया है ? नहीं, लिफाफे पर निर्मल के उन्ही हस्ताक्षर मे उसका नाम, धाम, ग्राम, और एक कोने पर देखा, पोस्ट की छाप भी उसी गॉव की है। यह पत्र रिडाइरेक्ट किया हुआ तो नहीं, पर दूसरी डाक से आया हुआ है। तो फिर नमिता के पत्र को उसके पते से भेजने मे प्रयोजन ? क्या निर्मल नमिता को परभारा पत्र नही लिख सकता ? ऐसी कोई बात तो दिखाई नहीं देती। तो क्या निर्मल कल्पना को यह बताना चाहता है कि वह नमिता से कितना प्रेम करता है ? कल्पना को बताने से मतलब ? कल्पना ने निमिष भर के लिए भी कभी अपने अन्तर के राग को, निर्मल पर क्या, अपने हृदय पर भी व्यक्त नही होने दिया था। मालूम पडता है, अनायास ही कोई दुर्घटना हो गई जिससे लिफाफा बदल गया !

पर अब वह स्वयम् तो नमिता को पत्र नही दे सकेगी। न होगा तो एक दूसरे ही लिफाफे मे बन्द करके पोस्ट कर देगी। यदि यहॉ की पोस्ट की छाप से वह जान जाए कि यह पत्र यहीं से पोस्ट किया गया है, तो उसका क्या बिगड़ता है, यह जानने का तो कोई उपाय नहीं कि पत्र उसने पोस्ट किया है !

नीचे से बुलावे पर बुलावे आरहे थे, कल्पना यथासाध्य अपने को प्रकृतिस्थ करती हुई नीचे उतर आई।

दूसरे दिन कॉलेज मे प्रथम विश्राति होते ही कल्पना ने नमिता से कहा : "बहन, लेटर बोर्ड पर देखा, तुम्हारा एक पत्र है।"

"मेरे नाम का ?"

"हॉ, एक टाइप किया हुआ लिफाफा है।" फिर जरा हँस कर कहा : "अपने को तो लिखने वाला अभी कोई पैदा ही नही हुआ।"

"पैदा हुए की चिट्ठी पढने के पहले उसके पिता ही की चिट्ठी पढ़नी पड़ती है ! कम से कम रिवाज तो यही है।"

"तुमने पढ़ देखी है क्या ?"

"आशा ही तो हम लोग कर सकती है। आखिर तुम ही किस लोभ से लेटर बोर्ड तक पहुँचती हो ?"

कल्पना ने सोचा था कि दूसरे दिन नमिता के कालेज मे शायद दर्शन ही न हो सके। इतने बडे निमंत्रण की उपेक्षा की ही कैसे जा सकती है? यदि वह पत्र नमिता के नाम का न होकर कल्पना के नाम का होता, तो क्या वह सिर पर पैर रख कर कभी की निर्मल के पास पहुँच नही गई होती?

किन्तु नमिता कल भी आई, परसों भी आई, और अगले दिनों भी बराबर उसी तरह आती रही। उसके मुँह का प्रच्छन्न से प्रच्छन्न भाव भी कल्पना की तीक्ष्ण दृष्टि को कही नही पकड़ाई दिया, जिससे वह अनुमान लगा सके कि नमिता के दिल पर क्या बीत रही है!

स्वयम् नमिता से इस विषय मे बात करना उसके लिए सम्भव नहीं है। यदि वह जान गई कि पत्र पहले कल्पना के पास पहुँचा था और कल्पना ने ही उसे दूसरे लिफाफे मे बन्द करके अपने हस्ताक्षरों को छिपाने के लिए नमिता का पता टाइप करवा कर भेजा था, तो नमिता के दिल पर चाहे जो बीते, कल्पना उस लज्जा को कैसे सहन कर सकेगी?

यदि नमिता किसी तरह जा न सकी तो उसने निर्मल को पत्र तो अवश्य दिया होगा। उस पत्र का क्या लाभ हुआ?—क्या निर्मल के क्षुब्ध-पिपासित मन को उससे शाति मिली? उसकी बडी आवश्यकता के अवसर पर नमिता की अनुपस्थिति से, शत्रु-शिविर मे एक निर्भर योग्य-आत्मीया के अभाव में निर्मल ने कहाँ से सम्बल पाया?—या अब भी वह उसी भ्रमर मे गोते लगा रहा है? जानने का कोई उपाय न था! कल्पना बिना कारण ही अनिमंत्रित दुःख को पुकार कर क्षण-क्षण घुलने लगी। कहाँ से तो एक दुःखित प्रेमी के प्रेमपत्र को रास्ता भूल कर उसे मिल जाना था, और कहाँ से उसके मन के चोर ने मौका पाकर उसके निविड़ अतर मे सेंध मार लेनी थी। कई बार वह कॉलेज के लेटर बोर्ड पर भी हो आती, पर तब के बाद कोई पत्र उसे नमिता के नाम का भी नही पकड़ाई दिया!

इधर जब से निर्मल कुमार अपने घर गया, तभी से च्यवन और नमिता मे भेंट नहीं हुई, यद्यपि च्यवन रहता नमिता ही के मकान मे था। कॉलेज सब अलग-अलग अपने समय से जाते थे, क्लास रूम मे अवश्य देखा-देखी हो जाती थी, कभी-कभी नमस्कार भी कर लेते थे, किन्तु आवास के नैकट्य के बावजूद दोनों की शारीरिक या मानसिक निकटता का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं था। दोनों में कुछ मिथ्या-प्रतिष्ठा का बोझ भी था! नमिता

च्यवन को अपने स्तर का व्यक्ति मानने से इनकार करती थी, और च्यवन उसको अहंकारिणी मानकर ही अपना अहकार ही उस पर प्रमाणित करना चाहता था !

नमिता जानती थी कि च्यवन कॉलेज से लौटने मे काफी देर कर देता है ; शायद रास्ते ही मे चाय-नाश्ता और आश्चर्य नही, खाना भी निपटा कर घर आता है। जब नमिता के अनुमान से उसके लौटने का समय होगया तो उसने निर्मल के पत्र को अपने जम्पर की जेब मे रखा और उसके कमरे की ओर चल पडी। सध्या का शृंगार घना हो चला था, विद्युद्दीप मार्ग को प्रभासित कर रहे थे।

कमरे तक पहुँच कर नमिता ने देखा कि यद्यपि ताला नहीं है, किन्तु सॉकल लगी हुई है। यानी कॉलिज से तो च्यवन लौट गया है, किन्तु अभी फिर कही बाहर गया है। केवल सॉकल लगी है, इसलिए अधिक देर के लिए नही गया है। लौट ही आने वाला होगा।

रेलिंग के सहारे खडी होकर उसने सोचा कि वह लौटे तब तक खड़ी रहकर राह देखना उचित होगा, या अपने कमरे मे लौट जाए, और आकर फिर कुछ देर बाद तलाश की जाए? उत्तम तो दूसरी ही बात होगी। यदि उसने देख लिया कि उसकी बाट देखी जारही है, तो च्यवन अपने मे फूला नहीं समाएगा। उसके स्वयम् के महत्व मे भी व्यतिक्रम होने की सभावना है। वह लौटना ही चाहती थी कि च्यवन बाबू लौटते हुए दिखाई दिए। नमिता को देखकर बोले: "नमिता देवी, कहिए कैसे भूल पडी आज?"

नमिता कट मरी, बोली ; "इन दासियों का दिमाग जा लगा है सीधे सातवे आसमान से। तब से चीख रही थी, कोई सुनता ही नहीं था। आकर देखा तो कोई हो तो बोले!" दासियों के कमरे च्यवन के कमरे से आगे पडते थे।

च्यवन ने मुस्करा कर कहा "सातवें आसमान पर गए बिना भी तो आपकी आवाज का न सुनाई देना सम्भव है!—खास कर यदि आप चीख रही हों, और मन ही मन मे, तो किसी के दिमाग का या कान का ही क्या अपराध है।"

"आपका मतलब?"

"यही कि आपकी दासी तो वह सामने खड़ी है!" — और उसने च्यवन के संकेत का अनुसरण किया तो देखा कि उसकी अवाज को सुनकर दासी आ खड़ी हुई है।

नमिता ने कहा: "हरी की माँ, कहाँ मर गई थी तुम? तब से अवाज दे रही हूँ!"

"कहाँ मालकिन, मैं तो अभी आपके पीछे-पीछे ही आपके कमरे से आरही हूँ। आपने मुझे आवाज—"

बीच ही में रोक कर च्यवन ने कहा : "हरी की माँ, तुम्हारा शायद ध्यान न होगा, आवाज तो मैंने भी सुनी थी !" फिर नमिता की ओर देखकर हँसते हुए बोला : "आइए, आई हैं, तो कुछ देर बैठिए ही !"— और उसने साँकल खोलकर दरवाजा खोल दिया। भीतर जाकर उसने रोशनी कर दी।

भीतर प्रवेश करते हुए नमिता ने कहा : "पर मुझे हरी की माँ से काम जो है। अच्छा, हरी की माँ, जितने में मेरे कमरे को जरा ठीक तरह से कर दे। मै अभी आती हूँ। सवेरे से बिखरा पड़ा है।"

हरी की माँ बेचारी और भी व्यस्त हो उठी। वह ठीक जानती है कि उसे कोई आवाज नही दी गई थी, नही तो उससे पाँच कदम दूर आराम कुर्सी पर बैठी हुई किसी कागज को पढ़ने मे मग्न नमिता की आवाज उस तक कैसे नहीं पहुँचती ! बल्कि नमिता स्वयम् ही अपने मे इतनी व्यति-व्यस्त थी कि हरी की माँ का उसके कमरे मे प्रवेश, और उसके कमरे की उसके द्वारा सफाई आदि कुछ भी उसने लक्ष्य नही किया ! नमिता अपने कमरे से कब निकली, यह भी वह देख रही थी, और अब कमरे की सफाई ?—पर नमिता तब तक भीतर जा चुकी थी। हरी की माँ जब कुछ न समझ सकी कि क्या किया जाना चाहिए, तो पुनः वह नमिता के कमरे की ओर लौट पड़ी।

भीतर प्रवेश करके नमिता ने देखा कि सारा ही कक्ष अस्त व्यस्त है। एक कोने मे पलग पडा हुआ है, जिसपर रात का ही बिछौना फैला पड़ा है। चादर के चारो कोने सिकुड-सिकुड़ा कर पलग के केन्द्र मे पहुँच गए हैं। ओढने की चादर यों फर्श पर पड़ी हुई है, किन्तु उसका एक छोर तब भी पलग पर अटका हुआ पड़ा है। सिरहाने तकिए के पास तीन-चार पुस्तकें रखी हुई हैं। पास ही पड़े हुए स्टूल पर एक पुस्तक उलटी बिछी पड़ी है, और राखदानी बिस्तर पर उलटी पड़ी है। चादर के कोने की रही-सही श्वेतता को बिखर कर राख ने रँग दिया है। एक कुर्सी कहीं रखी है, दूसरी कही पर, एक जूता यहाँ है, दूसरा शायद पलग के नीचे हो — नजर नहीं पडता। पुराने अखबार के पन्ने इधर-उधर बिखरे पड़े हैं। फर्श पर भी एकाध किताब यहाँ अपनी परमायु की खैर मना रही हैं, तो वहाँ अपनी घड़ियाँ गिन रही हैं।— यह है च्यवन के कमरे की हालत !

च्यवन ने क्षणभर के लिए कमरे की ओर दृष्टि डाल कर कहा : "बल्कि हरी की माँ को यदि उलझाए ही रखना था, तो यह कमरा उस जैसी दो के लिए काफी होता !"

"तुम्हारी शक्ति की जय हो च्यवन बाबू, पर क्या सचमुच ही यह कमरा सदा इसी हालत मे रहता है!"

"चूँकि दुनियाँ अधिकाश मे मुझ जैसे आलसी और मन्दभाग्य लोगों हीं से भरी हुई है, इसलिए आपको कुपित होने का कोई कारण नही है!"

"पर आप इसे सहन कैसे कर लेते है?"

"सहन न करने की भी केवल यही बात नही है, इसलिए इसके बारे मे दुःखित होना भी व्यर्थ है।"

"नही-नही, हरी की माँ से कहना होगा कि कल से वह इस कमरे को बराबर साफ करती रहे!"

"हरी की माँ ही क्यों, सफाई करने वाले हाथों का शहर मे अभाव नहीं है। सच तो यह है नमिता कुमारी, कि यदि जेब साफ है तो फिर किसी भी सफाई की दरकार नही है!— पर बैठिए न आप?"

नमिता एक कुर्सी खींच कर बैठ गई। च्यवन अपने पलग पर बैठ गया। सिगरेट जलाकर बोला:

"कहिए कैसे कष्ट किया आज?"

"निर्मल बाबू के कुछ सम्वाद मिले हैं क्या?"

"मुझे तो क्यो मिलने लगे? पर आपको तो मिले होगे न।"

"आपने भी उन्हे कोई पत्र तो लिखा होगा?"

"मैंने?" फिर हँसकर च्यवन बोला: "इस घर से आप लिखने वाली है ही, फिर मेरे लिखने की जरूरत ही क्या थी!"

"जरूरत की तो मैंने नहीं कहा।"

"सो तो आप क्यो कहेगी, हिस्सा जो दूसरों का बँट जाता है। पर इसीलिए तो मैंने पत्र नही लिखा!"

नमिता ने मुस्करा कर कहा: "धन्यवाद, दूसरों की जरूरत को आपने जाना तो।"

"ऐसे अभागों की कमी नही है दुनियाँ मे, जो दूसरों की आवश्यकता का तो खूब ठेका लेते है, पर अपनी आवश्यकता को जानना दूर रहा, ठीक से पहचान भी नहीं सकते। मैं उनमे से नहीं हूँ, पर कभी-कभी हो जाना पसन्द करता हूँ।"

"इससे आपका प्रयोजन?"

हँसकर च्यवन ने कहा: "यह गुण नारी को आकर्षित जो करता है!"

"आप समझते हैं नारी को विवेक नहीं होता?"

"उससे अधिक उसे सौंदर्य का अहंकार होता है नमिता कुमारी!"

हँसकर ही नमिता ने भी कहा: "और क्या आप सोचते हैं कि उस

अहंकार की खुराक जुटती है पुरुष के असौंदर्य से ?"

"इसी को तो अहंकार कहते है कि अपने से दूसरी हर वस्तु तुच्छ मानी जाए !"

"और उस विवेक को आप क्या कहेगे जो आँखें खोकर उस सौंदर्य के अहंकार का शिकार होजाता है ? -- पर जाने दीजिए इस बहस को इस समय ! आपसे बहस करने के लिए उत्साह का अभाव नहीं हैं, यदि समय का अभाव न हो ! बात यह है कि निर्मल का पत्र आया है ।"

"आपके लिए तो यह नई बात नहीं होगी ।"

"और वे बड़े दुःख मे है !"

"पिता के आकस्मिक देहान्त पर दुःख होना स्वभाविक ही है नमिता कुमारी, किन्तु निर्मल कुमार बुद्धिमान् है वह शीघ्र अपने दुःख पर विजय पा लेगा ।"

च्यवन के गूढ व्यंग्य को नमिता ने लक्ष्य कर लिया, वह बोली : "सो तो ठीक है, पर उन्होंने मुझे बुलाया है ।"

"आपको कौन नही बुला भेजेगा नमिता कुमारी ? अपरिचित-स्थान मे एक साथी की बडी आवश्यकता होती है । कब जारही हैं आप ?"

"पर मेरा जाना कैसे सम्भव हो सकता है ?"

"यह तो निर्मल के प्रति आपके प्रेम की मात्रा के निर्द्धारित करने की बात है !"

"आपही ने तो अभी कहा था कि नारी को विवेक नहीं होता—"

"पर मेरी बात आपही पर लागू होने के लिए तो नहीं है ।"

"मैं भी नारी जो हूॅ ।"

"तो फिर क्या कीजिएगा ? एक ओर विवेक-पीड़ा है, दूसरी ओर प्रेम-पीड़ा ।"

"इसीलिए तो आपकी राय चाहती हूॅ ।"

"मेरी राय ?" कह कर च्यवन प्रकाश कुछ हॅस दिया : "बड़ी कठिनाई में डाल रही हैं नमिता कुमारी ! बल्कि अपने पिता से क्यों नहीं पूछ लेतीं ? इससे धर्म संकट भी दूर हो जाएगा, परवानगी भी मिल जाएगी, और राय मुफ्त मे ।"

"मजाक रहने दीजिए । मैं गम्भीर होकर कह रही हूॅ । पर यह बताइए आपको क्या कठिनाई मे डाल रही हूॅ ?"

"राय देना क्या बड़ी सरल बात है ?"

"दूसरों को राय देने मे अपना क्या बनता-बिगड़ता है ?"

"तो आप अपने बारे मे या तो बहुत नहीं जानतीं, या जानकर भी अन-जान बनना चाहती हैं।"

"मैं आपका तात्पर्य नहीं समझी च्यवन बाबू।"

"समझ मे नहीं आता, अपने लोग ही क्यों पराए बने रहना पसन्द करते हैं। क्या ये घर के छोटे-छोटे नाम बेकार ही रखे जाते हैं?—मुझे कम से कम आप लोग तो छम्मी कह कर पुकार सकती हैं न।"

"आप मेरी बात को टालना चाह रहे हैं च्यवन बाबू!"

हँस कर च्यवन ने कहा : "टालने ही मे कुशल जो है। यदि कह दूँ कि आप जाइए, तो कक्षा न सूनी हो जायगी हमारी?—और एक न एक दिन जब कक्षा सूनी होनी ही है, तो सोचता हूँ, आपका दिल क्यों सूना रखा जाए?"

नमिता कुछ नाराज-सी होकर बोली : "यदि आपको कठिनाई है, तो राय जाने दीजिए! मुझ मे राय कायम करने के लिए पर्याप्त विवेक है, और स्नेह भी! मैं आपसे केवल एक सहायता चाहती हूँ!"

च्यवन अप्रतिम हो गया, पर बोला : "अवश्य. कहिए, मेरे लिए शक्य होगी तो मैं वास्तव मे आनन्दित होऊँगा।"

"क्या आप निर्मल के यहाँ जा सकते हैं?"

"क्यों नहीं जा सकता? पर उससे लाभ? करना क्या होगा मुझे वहाँ?"

"विशेष कुछ नहीं! उनके ऊपर उनके रिश्तेदारों ने मृत पिता की जायदाद के सम्बन्ध मे मुकदमेबाजी शुरू कर दी है! कोई भी उनकी जान-पहचान का वहाँ नहीं है। शत्रुओं के बीच वे एक तरह से अकेले हैं।"

"पर मैं क्या उपयुक्त व्यक्ति हो सकूँगा? मुकदमे मे मैं उनकी कोई सहा-यता नहीं कर सकता; और जान-पहचान के मामले मे मैं उनसे भी गया बीता साबित होऊँगा। मैंने तो गाँव भी नहीं देखा है! इधर कब तक वे वहाँ रहेंगे, यह भी नहीं कहा जा सकता। यहाँ मेरी 'परसेण्टेज (उपस्थिति) फॉल हो (गिर) रही है!"

नमिता ने आँख उठाकर च्यवन की ओर देखा। उसकी दृष्टि मे हीनता की भावना भर गई—किस अपदार्थ के पास आकर उसने याचना की! उठ खड़ी होकर उसने कहा :

"सचमुच यह तो मैं भूल ही गई थी कि आप कितने नए व्यक्ति हैं।"

और धीरे-धीरे स्थिर पदों से वह च्यवन के कमरे से बाहर हो गई। उसके कथन मे एकाएक ही ऐसी निस्संगता थी कि च्यवन की उड़ती हुई भावना को भी साहस न हुआ कि उसे कुछ क्षण और बैठने के लिए कह सके, और जो कुछ वह कह चुका है उसके परिमार्जन की आवश्यकता अनुभव कर सके।

जब नमिता चली गई, तब भी वह अपने आसन पर खोया--सा बैठा रहा। निमिष भर मे क्या हो गया, यह भी वह नहीं समझ सका; केवल नमिता के अन्तिम शब्द कि 'आप कितने नए व्यक्ति हैं' और 'यह तो मैं भूल ही गई थी' उसके कानों मे गूंजते रहे। क्या आशा लेकर नमिता उसके पास आई थी ?—क्या सचमुच ही वह भूल गई थी कि मैं नया व्यक्ति हूँ ?—और अब तक का नमिता का व्यवहार ? किन्तु जिस कार्य में उसे प्रवृत्त होने का आदेश था, वह क्या प्रमाणित करता है ?—अवश्य ही वह नमिता का दर्प चूर्ण करना चाहता था; किन्तु अपने मूल्य पर नहीं—उसका शकुन बिगाड़ने के लिए उसे अपनी ही नाक का मोह छोड़ना पड़ेगा, यह न वह जानता था, न चाहता ही था। पर अब किस तरह उसका परिशोध किया जा सकता है—सोचते-सोचते न तो वह उस रात ट्यूशन के लिए गया, न खाना खाने के लिए ही।

: ६ :

कल्पना अब अधिक सह न सकी। एक दिन मध्यान्तर मे नमिता का हाथ पकड़ कर बड़े स्नेह से उसने पूछा :

"दीदी, आजकल उदास क्यों हो?"

"उदास?—और मैं?—मालूम देता है, आँखों पर यही चश्मा लगा हुआ है।"

"बात उड़ाना कोई तुम से सीखे, किन्तु चन्द्र पर छाई हुई मेघमाला के प्रमाण के लिए क्या चन्द्रिका के अभाव को आँखें फाड़कर ढूँढ़ना पड़ता है! अच्छा तुम कहीं बाहर भी तो जाने वाली थी न?"

"बाहर, मैं?" चौंक कर नमिता ने पूछा।

प्रश्न असगत हो गया, तत्काल ही कल्पना समझ गई, किन्तु हँस कर बोली : "नहीं तो क्या मैं?"

"पर कहाँ?"

"चन्द्र के ऊपर मेघमाला छाजाने पर उसकी किरणें कहाँ चली जाती हैं? पृथिवी पर तो नहीं रहतीं?"

"तो कल्पना कुमारी कविता कर रही हैं।"

"कविता ही कहो, किन्तु इस परिकराकुर अलंकार को तुम्हीं समझ सकती हो!"

"यानी?"

हँसकर कल्पना ने कहा : "क्या सखि साजन?—ना सखि......बस,"

नमिता ने कहा : "मैं जानती हूँ कि कल्पना का उपजीव्य ही काव्य है—"

"उल्टी बात कहो दीदी, उल्टी—यानी काव्य का उपजीव्य ही कल्पना है ! मुझे तो कविता ही है संतोष के लिए, किन्तु तुम्हारा संतोष ?"

"थोड़ा तुमसे स्थूल, यानी पाँचवें वर्ष का साहित्य। चाहो तो उसे सत्साहित्य कह सकती हो !"

"सत्साहित्य ही क्यों, यदि कहोगी तो सत-साहित्य भी समझ लूँगी ! अच्छा इन मुद्रा और श्लेष को तो जाने दो, जरा अभय दो तो सहजोक्ति हो जाए।"

नमिता ने कहा : "सीधी तरह क्यों नहीं कहती कि निर्मल के बारे मे कुछ कहना चाहती है ! ठीक है न ?"

"इसके सिवा और तो किसी बात में तुम्हें रस मिलेगा नहीं दीदी ?"

"जिसमे तुझे रस मिलता हो, वही बात कह।"

"मेरे रस की क्या पूछती हो ! छह रस और नौ रस कितने होते हैं ?—वे सब तो हैं, पर नहीं हैं तो वह, जो रस के आगे 'ना' बन कर खड़ी हो जाती है ! यानी रसना, 'सुरस-राशि-रसना अनत'।"

"देखो कल्पना, कविता करना बड़े कौशल का काम है, उसे समझना और भी बड़े कौशल का ! साहित्य की विद्यार्थिनी तो हूँ, पर तुम्हारा वह रचना-कौशल मेरे भाग्य मे नहीं।"

हँसकर कल्पना ने कहा : "रचना-कौशल की तो बात ही नहीं है बहन, मैं तो मरती हूँ तुम्हारे इस रसना-कौशल पर !"

"सो भी ठीक; पर यह मध्यान्तर तो मरने की बेला बनने योग्य नहीं है।"

"तुम्ही तो इतने मध्यान्तर ले आती हो कि मुख्य बात ही रह जाती है।"

"अच्छा कहो !"

"लो अब क्या कहूँ यही नहीं समझ पड़ता ! अच्छा यही कहो कि निर्मल बाबू अब तक क्यों नहीं आए ? उन्हें गए तो काफी अरसा हो गया।"

"काम हो गया होगा।"

"हो गया होगा, सो क्या तुम नहीं जानती ?"

"मेरा जानना क्या जरूरी है ?"

"जरूरी भी है, और स्वाभाविक भी !"

"लो चलो, क्लास मे बैठें; समय हो रहा है ?"

"उठकर कल्पना ने कहा : "उत्तर नहीं देना चाहती हो।"

"सभी बातों का उत्तर दिया ही जाना चाहिए क्या ?"

"मालूम देता है रूठ गई हो दीदी !"

"रूठ गई ?—नहीं-नहीं, कल्पना, यह क्या कहती हो, तुम से मैं कभी रूठ सकती हूँ ?"

हँसकर कल्पना बोली : "कहती हो तो अवश्य मान लूँगी। पर मुझ से नहीं तुम शायद निर्मल बाबू से रूठ गई हो।"

"क्यों ?"

"सो ही तो पूछ रही हूँ !"

नमिता ने क्षण भर के लिये कल्पना की ओर देखा, फिर कहा : "किन्तु तुम्हारे ऐसा समझने का कारण ?"

क्लास रूम आ गया था, इसलिए कल्पना ने अधिक खींचना पसन्द नहीं किया, बोली : "उन्होंने तुम्हें बुलाया जो था।"

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

नमिता के इस घबराहट-आकुलता और वितृष्णा से भरे हुए प्रश्न से कल्पना के अव्यक्त निगूढ मन को कुछ आनन्दमय सतोष प्राप्त हुआ। नारी का सजल-स्वभाव ईर्ष्या की अग्नि के लिए शुष्क-दारुवन है। एक पलार्ध ही मे कल्पना ने इसे मन के मुकुर मे स्पष्ट कर लिया, और अपनी सीट की ओर मुड़ते हुए धीरे से कहा, ताकि नमिता के सिवा और कोई नहीं सुन सके, कि : "केवल तुम्हीं को तो उन्होंने पत्र नहीं लिखा !"

कक्षा मे फिर नमिता की और पढ़ाई इस अपराह्न में नहीं हो सकी। उसके मन में केवल एकही विचार बना रहा, कि निर्मल ने अवश्य ही कल्पना को भी पत्र लिखा है, और उसमे यह भी लिखा है कि उसने नमिता को बुलाया है। अवश्य ही दोनों के बीच ऐसी कोई बात नहीं थी जिसे दूसरे न जानते हों उनका प्रेम भी किसी से छिपने की आवश्कता वाला न था। बल्कि यदि वही पत्र किसी पुरुष को भी लिखा होता तो नमिता बड़े सामान्य भावसे उसे ग्रहण कर लेती, किन्तु उन दोनों के बीच की बातों को, एक तीसरे, उसी कक्षा की छात्रा को लिखने की निर्मल को क्या आवश्यकता हुई ? क्या इसका यह तात्पर्य नहीं कि निर्मल ने कल्पना कुमारी को भी महत्व दिया है ! उस महत्व की मात्रा क्या है ? क्या यह सम्भव नहीं कि नमिता के महत्व की तुच्छता ही उससे प्रमाणित हो ? यदि ईर्ष्या ने कल्पना के हृदय को अभिभूत करके एक आग की चिनगारी नमिता के ऊपर प्रक्षिप्त करने को विवश किया, तो नमिता के स्नेह-तृप्त हृदय ने उस आग को पकड़ने मे देर नहीं की।

कल्पना को घर ले जाने के लिए प्रति सध्या को ठीक समय पर कॉलेज में कार आजाती थी। नमिता चाहती तो उसके लिए भी उसके पिता ऐसा ही कोई प्रबन्ध कर दे सकते थे ; किन्तु इससे नमिता सन्तुष्ट न होती। वह आजाद पंछी है : कार के भीतर का दृश्य आँखों को कोई राहत नहीं पहुँचाता, और उसकी खिड़कियों से पीछे की ओर भागते हुए प्राणी, उसकी स्वयं की गति

की तुलना में ऐसे दिखाई देते हैं मानों उनमें प्राण ही न हो। खास कर दिन भर कॉलिज की नोट बुक में आँखों को बन्दी रखने के बाद उन्हें स्वतन्त्रता से मुक्त आकाश के नीचे उड़ान भरने के लिए छोड़ देना नमिता के लिए परम आवश्यक है; और कॉफी हाउस की धूम्रावृत जलवायु मे भी उसे पर्याप्त नवीनता अनुभव होती है!

किन्तु आज उसका मानस किसी क्षुब्ध-वुभुक्षित मकर के विक्षत लांगूल के कषाघात से आन्दोलित हो उठा था। जैसे ही कल्पना कुमारी घर जाने के लिए उठ खड़ी हुई, नमिता ने भी अपनी पुस्तकें सम्हाली और बाहर आकर कल्पना से कहा:

"कल्पना, मुझे भी 'लिफ्ट' मिल सकती है?"

"विथ इम्मेन्स प्लेजर दीदी! (बड़ी प्रसन्नता के साथ!

"पर, हाया कॉफी हाउस!"

हँसकर कल्पना ने कहा: "तुम्हारा हुकुम सर आँखों पर!"

कार मे कल्पना ने फिर कोई बात निर्मल या उसके पत्र के सम्बन्ध में नहीं छेड़ी, न ही नमिता ने कुछ कहा; किन्तु कॉफी हाउस मे पहुँच कर बैरा को आर्डर देते ही नमिता ने कहा: "तुम्हें निर्मल ने और क्या लिखा है?"

"मुझे? मुझे तो उन्होंने कुछ खास लिखा नहीं; लिखने की आवश्यकता भी क्या थी? सामान्य-समवेदना के पत्र का जैसा उत्तर होना चाहिए?"

"बनती हो मुझसे कल्पना? उस समय तो तुमने कुछ दूसरी ही बात कही थी!"

"बनने का तो प्रश्न ही क्या है?—क्या करूँ, पत्र का उत्तर इतना सामान्य और औपचारिक था, कि उसे सहेज रखने की तो प्रवृत्ति ही नहीं हो सकती थी, प्रत्युत् निर्मल जैसे व्यक्ति से ऐसे पत्र पाने की स्मृति ही वितृष्णा पैदा कर सकती है, इसलिए उसे मैंने तभी फाड़ दिया, वरना तुम्हें पत्र ही दिखा देती, तब तो विश्वास होता न?"—यद्यपि पत्र कल्पना ने सुरक्षित रख छोड़ा था, बल्कि उसके पास उस समय भी था!

"पर तुमने तो कहा था कि उन्होंने मुझे बुलाया है!"

"ठीक यही बात कही थो क्या?—शायद जल्दी में कुछ का कुछ कह दिया हो। पर दीदी, यह तो तुम्हारी ईर्ष्या की बात है। यदि मुझे कुछ निर्मल बाबू के बारे मे अनुमान भर करने की इजाजत दे सको, तो तुम्हीं कहो मैं और सोच ही क्या सकती थी?"

"क्यों नहीं सोच सकती थी?—यदि निर्मल बाबू तुम्हें ही ऐसा पत्र लिख दें तो इसमें आश्चर्य की तो कोई बात नहीं?"

"आश्चय की कोई बात नहीं ?—और तुम कह रही हो यह वात ?"

"इसमें आश्चर्य की क्या बात है कल्पना ! पहली बात तो, हम दोनों के बीच ऐसा कोई समझौता नहीं हुआ कि किसी दूसरे को ऐसा पत्र लिखने की छूट नहीं है। दूसरे, मैं ऐसे समझौते ही को गलत समझती हूँ।"

"समझौता किया जाता हो, यह तो मैंने भी नहीं कहा, पर हो जो जाता है। आँखें जब बेतार का सन्देश प्रसारित करती हैं, तो मार्ग के समस्त विद्युल्लेखों को भी ग्रहण करना ही पड़ता है ! पर इससे एक चोर तो पकड़ा गया दीदी !"

"क्या ?"

"कि तुम्हें अनुपेक्षणीय पुकार तो सुनाई दी है !"

"पर यदि कोई उसे निमंत्रण न कह कर पुकार कहे, तो स्पष्ट है कि वह उस भावना को छू सका है ! बिना शब्दों के आधार के किसी के हृदय को इस तरह समझ सकना—"

बीच ही मे कल्पना ने कहा : "मैं कवियत्री जो हूँ !—और प्यार पर तो कवि का एकाकी शब्दाधिकार है ! तुम कहो तो मैं कल्पना कर सकती हूँ कि निर्मल ने तुम्हें पत्र मे क्या लिखा होगा "

नमिता डर गई। कहीं उसकी आशंका साकार न होजाए, किन्तु कल्पना ने मानों यह कुछ न देख कर कहना जारी रक्खा :

"मेरे स्वप्न लोक की छाया नमिता कुमारी,—ना-ना नमिता कुमारी जितने बड़े शब्द का भार प्यार नहीं सहन कर सकता ; वह कहेगा 'नमिता' कदाचित् 'नमिते' क्योंकि इसमे सौन्दर्य है, कोमलता है, शिशु-सुलभ सारल्य है, और कभी न मुरझाने वाला मधुर-चंचल यौवन है ! ठीक है न नमिते ?" और वह स्वयम् ही अपनी बात पर मुस्करा दी।

"और अन्त ?" अमर्ष से भर कर नमिता ने पूछा।

"इतना शीघ्र ? शब्दों का भार प्रेम न सह सके, किन्तु पत्र की लम्बाई-चौड़ाई तो उसकी क्रीड़ा के लिए बड़े लोभ की वस्तु है। बल्कि देखा तो यही गया है, कि पत्र के धरातल पर प्रेम के पसर जाने की ही ज्यादा सम्भावना है।"

"किन्तु प्रारम्भ और अन्त यही तो दो ध्रुव बिन्दु हैं।"

"और इनको मिलाने पर क्या बिन्दु रह जाते हैं ? फिर भी जब तुम अभी से अन्त की बात पूछती हो, तो अतृप्त-पिपासी के सिवा लिखने को रह ही क्या जाता है ?"

"यानी ?"

"मैं लिखना पसन्द करूँगा, 'तुम्हारे प्रेम का अतृप्त पिपासी एक्स-वाई जेड !'—क्यों कविता पसन्द आई ?"

बात के बहाने नमिता ने कहा : "मालूम पड़ता है, मेरे दिल से अधिक तुम्हारा ही खोया हुआ है !"

"खो जाने की अवस्था मे भी मात्रा-ज्ञान होता है क्या बहन ?'

"न भी हो, पर सच कहो तुम्हारा दिल कहाँ खोया है ?"

"यदि यही मालूम होता, तो खोया हुआ कहती क्या उसे ?" और फिर कल्पना हँस दी। आज वह बड़ी हल्की मालूम दे रही थी। नमिता को खिझाने मे उसे एक अव्यक्त तृप्ति मिल रही थी।—किन्तु नमिता और अधिक शब्दों के साथ खिलवाड़ नहीं कर सकी। अपने हृदय से चिपकाए हुए निर्मल के पत्र को निकाल कर कल्पना के सामने पटकते हुए उसने कहा : "दीखता है प्रेम के मामलों मे तुम मुझसे अधिक पटु हो! अब मैं क्या करूँ ?"

कल्पना ने पत्र को छुआ भी नहीं, किन्तु कहा : "उत्तर तो इसका जा ही चुका होगा !"

"नहीं, समझ ही नहीं सकी कि क्या उत्तर दूँ ?"

"तो उत्तर के स्थान मे स्वयम् ही उनके हाथ लग जाना चाहती हो ? बंसी की उस पुकार की कौन उपेक्षा कर सकता है सखी !"

"मजाक रहने दो कल्पना, तुम पत्र तो पढ़ो।"

"अग्नि से खेलने के लिए कहती हो ?—अभी तो दिल खोया हुआ ही है, यदि वह जल गया तो क्या करूँगी ? शरीर विज्ञान ने भी इतनी उन्नति नहीं की कि फेफड़े की तरह, न हुआ तो, कोई लोहे का दिल ही बैठ जाता !"

"तेरा तो दिल पत्थर का दीखता है।"

"अच्छा ही हुआ कि तुम तो इस बात को समझ गई।—कम-से-कम टूटने का भय तो नहीं रहा। किन्तु तुम्हारा मोम जैसा कोमल हृदय क्या कहता है ?"

"वही तो तुमसे पूछ रही हूँ कि क्या करूँ ?—ऐसी उत्ताप-भरी चिट्ठी है कि—पढ़ो न !"

"कि तुम्हारा मोम गला जा रहा है। रहने दो, बिना पढ़े ही मैं तुम्हारे इस पत्र को पढ़ चुकी हूँ !—क्या करना है तुम्हें यह तो तुम्हारा ही दिल कह सकता है !"

"तुम्हारा दिल नहीं ?"

"उसकी पुकार होने ही पर तो वह कुछ कह सकता है।"

"यदि यह पुकार उसी के लिए होती?"

कल्पना क्षणभर के लिए अन्तरस्थ हुई यदि पुकार उसके लिए हुई होती, तो क्या अब तक वह स्थिर रह सकती थी? किन्तु उसने कहा: "अब तुम से ही क्या कहूँ। जानती ही तो हो कि पुरुष पुकारता है, तो नारी की सामर्थ्य नहीं कि उसकी अवहेलना कर दे! इसलिए न कहीं प्रारम्भ ही से उसे अबला कहा जाता रहा हो, तुम जैसी सबल लड़की भी क्या आज इसीलिए परेशान नहीं है?"

"सामर्थ्य तो अब भी है कल्पना, तभी न अभी तक इस पुकार को भी अनसुनी कर रखा है।" यह कह कर उसने पत्र पुनः उठा लिया और बोली: "ऐसा क्यों होता है कल्पना, कि शक्ति रहते हुए भी सुविधा नहीं रहती कि हृदय को दृढ बनाया जा सके?"

"मोम को कहीं दृढ बनाया जा सकता है दीदी। साहित्य पढती हो क्या यह भी कहना पड़ेगा कि नारी का हृदय एक विचित्र वस्तु है? श्रद्धा वह किसी को करे या न करे, नारी सहानुभूति का तो नामान्तर ही है। और सहानुभूति के बाद?—यह 'सह' शब्द ही बुरा है बहन।"

"तुम्हारा भी किसी से प्रेम हुआ है कल्पना?"

"कर्त्ता की बात कहूँ या कर्म की?"

"दोनों ही की कहो न! प्रेम भी कहीं इकतर्फा होता है?"

"मेरा तो है।"

"किससे?"

"नहीं जानती मेरे जिमी को? बस, दरवाजें पर बैठा बड़ी बेचैनी से मेरी राह देख रहा होगा। और मैं अपनी सखी के साथ कॉफी उड़ा रही हूँ। वह चाहे तो मुझे कोस सकता है! पर आँखों की नीरव भाषा के सिवा बेचारा कुछ जानता ही नहीं।"

"जिमी, वही तुम्हारा स्पेनियल न। मजाक रहने दो।"

"यह मजाक हो गई? मजाक तो तुम उड़ा रही हो बेचारे जिमी की! स्पेनियल होना क्या जुर्म होगया? क्या तुम भी 'रेशल सेग्रेगेशन (जाति भेद) को मानती हो?" दोनों ही सखियाँ मुस्करा उठीं।

"काश, मनुष्य के प्रेम की पीड़ा तुम्हें भी अनुभव हुई होती।"

"पीड़ा की आवश्यकता ही क्या है? उत्तमतर नहीं है क्या, कि उसकी प्यास तो हो!"

"अच्छा, प्यास ही तुम्हें है क्या?—किस की?"

"समझलो, निर्मल ही की हो। आखिर प्यास का क्या है ? वह चातक की तो है नहीं, कि स्वाति नक्षत्र के सिवा अन्य किसी का परिचय न जाने।"

नमिता के हृदय को पुनः एक आघात लगा, यद्यपि कल्पना के बाद के कथन से उसे सतोष होजाना चाहिए था। किन्तु आघात की तीव्रता से शायद बाद की बात वह सुन ही नहीं सकी। कुछ कहने के लिए उसके अधर काँपे, किन्तु तभी च्यवन प्रकाश ने उपस्थित होकर कहा :

"ओ हो! आप—और आप भी ?—आज ये दो-दो चाँद किधर उदित होगए ? लेकिन क्षमा कीजिएगा, आपको डिस्टर्ब करने का मेरा इरादा नहीं था!"—और वह आगे बढ़जाने को उत्सुक हुआ!

नमिता को इस तरह च्यवन के एकाएक आजानेसे कुछ असंतोष ही हुआ था, हृदय पर उसके भार था ही; किन्तु कल्पना ने च्यवन के आगमन को अपने लिए थोड़ी-सी मुक्ति ही अनुभव की। अतः इसके पहले कि नमिता कुछ कहे, कल्पना ने कहा : "इट्स ए रिलीफ टु हैव्य यू विथ अस मिस्टर च्यवन, नहीं क्या नमिता बहन ?—बैठिए, यहाँ बैठिए! कहिए क्या लीजिएगा, कॉफी या कोको!"

"थैंक यू" कहकर बैठते हुए च्यवन ने कहा : "रीअली वेरी नाइस ऑफ यू! लेकिन आज तो लेट मी प्ले द हॉस्ट!—बॉय!"

"हम तो कॉफी पी चुके हैं च्यवन साहब!"

हँसकर च्यवन बोला : "कॉफी पी चुकी हैं!—अजी साहब, पीने के साथ तो कभी 'कॉफी' होता ही नहीं! पीना अगर कॉफी होगया तो वह पीना ही क्या हुआ?"

कॉफी का दौर जब चल रहा था तो च्यवन ने पूछा : "किन्तु नमिता देवी आज आप उदास-सी क्यों दिखाई दे रही हैं?"

मुस्कराने का प्रयत्न करती हुई नमिता ने कहा : "मैं? आपको भ्रम हुआ है च्यवन।"

"भ्रम ही सही ; पर आज आप अनावश्यक रूप से चुप हैं?"

"नारी बहुत बोलने के लिए यों ही विख्यात है!"

"उसकी ख्याति तो और भी कई दिशाओं में है! ख्याति ही के कारण तो वह प्रिय लगती है!"

कल्पना ने कहा : "आपको एक सूचना देती हूँ च्यवन बाबू!"

"कहिए!"

"निर्मल बाबू तो कक्षा को सूनी कर ही गए हैं, अब बारी है श्रीमती नमिता कुमारी की!"

"मतलब ?—क्या नमिता कुमारी कहीं जा रही हैं ?"

"इरादा तो कर ही रही है !"

"कहाँ का ?"

"सो तो आपको विदित होना चाहिए च्यवन बाबू ! आप निकट के पड़ोसी जो ठहरे !"

नमिता की आँखों से अंगारे बरसने लग गए। उसने दया करके कल्पना के ऊपर विश्वास करना चाहा था, किन्तु यह लड़की उतनी भोली नहीं है जितना कि वह समझ बैठी थी। वह निर्मल के प्रति नमिता के प्रेम से खिलवाड़ कर रही है, स्पष्ट है कि निर्मल ने उसे प्रेम पत्र दिया है, और नमिता के बुलाए जाने की बात भी कल्पना पर प्रकट करके निर्मल ने नमिता के लिए काफी मजाक का मसाला इकट्ठा कर दिया है।—नहीं तो कल तक जिस लड़की के मुँह में दाँत न थे, वह आज इस तरह मुखर हो उठती ?—और निर्मल कुमार ? मालूम देता है कल्पना की सम्पत्ति पर उनकी आँख जम गई है। अपनी सम्पत्ति से यदि बेदखल होना पड़ा, तो किसी दूसरी सम्पत्ति को दखल करना ही चाहिए न। इसी विचार मे उसको लेकर कल्पना और च्यवन मे जो बातें हो रही थीं, इसका ऊपरी शाब्दिक खोल ही उसका मन ग्रहण कर सका !

च्यवन कह रहा था : "आप चुप क्यों हैं नमिताजी।—दोष मुझ पर लादा जा रहा है कि पड़ोसी मैं हूँ, और मुझे ही सब कुछ जानना चाहिए।"

कल्पना ने मुस्करा कर कहा : "नमिता बहन कह नहीं सकेंगी ! पर क्या आप इसका अनुमान भी नहीं लगा सकते !—निमल बाबू यदि यहाँ नहीं हैं, तो संसार का यह कौन-सा नियम है कि उनकी छाया यहाँ बनी रहे ! छाया को थामे रखना सम्भव नहीं है च्यवन बाबू !"

नमिता क्रोध के मारे रक्त मुँह हो उठी, वह एक दम झटके के साथ उठ खड़ी हुई और बोली : "बन्द करो अपनी चपरबट कल्पना ! निर्मल का एक खत पाकर तुम समझती हो मेरी जान चली जायगी ? निर्मल तुम्हें मुबारक रहे, और तुम्हारी दौलत उसको !—लिख भेजना अपने उस चहेते को, कि नमिता उसको उतनी ही घृणा करती है, जितनी तुमको !"—और न जाने क्यों उसने च्यवन का हाथ पकड़ कर खींचते हुए कहा :

"चलो च्यवन बाबू, मैं एक क्षण नहीं ठहरना चाहती !"—जैसे च्यवन ही उसे यहाँ पर लेकर आया था !

च्यवन ने उठकर कहा : "पर नमिता देवी—" नमिता ने कुछ न सुना, वह उसका हाथ पकड़े हुए ही केबिन के बाहर हो गई। च्यवन भी मूर्तिवत खिंचा हुआ उसके पीछे चला गया !

कल्पना नहीं समझ सकी कि अकस्मात् यह क्या हो गया च्यवन को, जिसे कल्पना जानती थी कि नमिता घृणा करती है, आज वह इस तरह उसके सामने हाथ पकड़ कर क्यों खींच ले गई, उसने ऐसी क्या बात कह दी जो उसके मर्म को लग गई, और वह एकाएक ही इस तरह ज्वालामुखी की तरह फट पड़ी ? चिकोटी वह अवश्य नमिता को काटना चाहती थी ! निर्मल का वह पत्र उसके लिए न होकर नमिता के लिए था ! नमिता ने यह क्यों मान लिया कि निर्मल ने कल्पना को भी एक प्रेम पत्र लिखा है !—क्या कभी कल्पना को निर्मल प्रेम पत्र लिख सकेगा ? क्यों नहीं लिख सकेगा !—नमिता का रूप उसके पास अवश्य नहीं है , किन्तु हृदय तो उसके पास है ! पा लेने के बाद क्या नमिता की भाँति उसका हृदय भी निर्मल के प्रति इतना निष्ठुर रह सकता है ? और क्या कहा, मेरी सम्पत्ति भी उसे मुबारक हो ? मेरी सम्पत्ति ?—कल्पना अलक्ष्य ही मे मुस्करा उठी, जो अपने हृदय का समस्त राग किसी के चरणों पर उडेल देने के लिए व्याकुल हो रहा हो, सम्पत्ति का क्या महत्व है उसके लिए ? और आँखों को भरमाने के लिए यदि नमिता सम्पत्ति का महत्व समझती है; तो वह सुविधा कल्पना को है ही ।—तो निर्मल कल्पना को मुबारक हो ! नमिता दीदी, नमस्ते तुम्हें !

कलाई पर दृष्टि डालकर देखा कि काफी समय हो चुका है, तो उसने 'बॉय' को 'बिल' के लिए बुलवा भेजा ।

बॉय एक तश्तरी मे कुछ चैञ्ज लेकर आया, और बोला : "बिल तो वे मेमसाब चुका गई, यह चैञ्ज वे नहीं ले जा सकीं, क्या वे चली गई ?"

मुस्करा कर कल्पना ने हाथ का इशारा किया। टिप मे इतनी प्रचुर चैञ्ज पाकर बैरे ने एक फर्शी सलाम कल्पना कुमारी को प्रदान किया। कल्पना ने अपना वॉलेट उठाया और उसे घुमाती हुई बाहर निकल गई !

•

जिमी तब भी दरवाजे पर आँखें बिछाए बैठा था। और दिन वह कल्पना की साड़ी के छोर को छूता हुआ, पीछे-पीछे उनके कक्ष मे जाता था। आज उसे गोद में उठा लिया गया, और कल्पना के मुलायम हाथों ही हाथों में वह उनके कमरे मे पहुँचा ! प्रेम की महिमा जो ठहरी ।

चाय के ऊपर पहुँचने पर माँ ने पूछा : "आज देर हो गई बिटिया !"

"हाँ माँ; नमिता कुमारी को जानती हो न मा ! वह आज मानी नहीं; कॉफी पिलाकर ही घर आने दिया !"

"सयानी लड़की को बाहर अधिक नहीं रहना चाहिये बेटी !"

इस प्रस्ताव के बाद कल्पना को अधिक कुछ कहने का साहस नहीं हुआ।

कल्पना के माता-पिता यद्यपि धनवान हैं, किन्तु शिक्षा-संस्कार उसी अनुपात मे नहीं है। अतः उसी अनुपात मे नए और पुराने विचारों मे उनकी गृहस्थी बॅटी हुई है। कल्पना इकलौती सतान है, उनके अशेष दुलार की पात्री! पिता रत्नों का व्यापार करते हैं, व्यापार मे लक्ष्मी निवास करती है, और जहाँ लक्ष्मी निवास करती है, वहाँ नारायण भी निवास करते ही हैं। अतः कल्पना के बड़े घर के एक भाग मे लक्ष्मीनारायण का एक मन्दिर है। प्रति-दिन संध्या को दूकान से लौट कर पिताजी मन्दिर चले जाते हैं, और जब तक देव-विग्रह के शयन की आरती नहीं हो जाती, तब तक वहीं मूर्त्ति के सम्मुख हाथ जोड़े बैठे रहते हैं, कथा-श्रवण करते हैं, चरणामृत पान करते हैं, वहीं भगवान के निमित्त तैयार किए हुए नैवेद्य में से प्रसाद प्राप्त करते हैं, और फिर भगवान के सो जाने पर स्वयम् भी उठकर सोने चले जाते हैं। इस कार्य-क्रम मे व्यतिक्रम बहुधा नहीं होता।

प्रारम्भ ही से इस कार्य-क्रम मे पुत्री पिता का साथ देती आई है। शैशव में तो वह भगवान् के शयन के पूर्व ही पिता ही की गोद मे सो जाया करती थी कुछ बड़ी होने पर कथा-श्रवण के साथ ही भक्ति के तत्वों मे रस मिलने लगा पिता की श्रद्धार्चना मे वह भी योग देने लगी। और भी आगे चलकर शिक्षा की यमुना कहीं से बहती हुई आकर गगा में मिल गई। पाश्चात्य शिक्षा से कल्पना के मुकुरोपम-मन पर कहीं से वाष्प की छाया प्रक्षिप्त होने लगी,—वाष्प जो तत्काल तो उसे अपनी निविड़ता से छाकर धुँधला कर देती है, पर उसके बाद ही उसे और भी स्वच्छ करके चमकाने की क्षमता रखती है। तब से कल्पना कभी पिता के पास मन्दिर में बैठती है, कभी नागा कर देती है। पिता की प्रार्थना का एक अंश कल्पना के भाग का होता है, और निखिला-नन्द-सन्दोह देव-मूर्ति भक्त की प्रार्थना को स्वीकार कर लेती हैं।

पर माता का स्नेह इतनी सरलता सहन नहीं कर सकता। मन्दिर में बैठे रहने का उन्हें अवकाश नहीं मिलता। घर मे परिचर्या के लिए दास-दासी हैं, पर यदि मालिक का अभाव हो तो दास-दासी, दास-दासी नहीं रहते, प्रत्युत् मालिक बनने ही की इनकी इच्छा बलवती हो उठती है, यह माँ से छिपा हुआ नहीं है। वे स्वयम् अपने पिता के आश्रय को छोड़कर इस घर में आने के लिए विवश हुई थी। अतः यह एक क्षण के लिए भी उन्हें नहीं भूलता कि कल्पना को भी एक दिन यह आश्रय छोड़ देना पड़ेगा। बल्कि जब कभी इस विषय की चर्चा चलती है, तो कल्पना हँसकर कह देती है : "मालूम पड़ता है माँ तुम अपना बदला बेटी से चुकाओगी! पर सच कहती हूँ, मेरे पिताजी

नानाजी जैसे कमजोर नहीं हैं।"—और फिर पिता के गले मे हाथ डालकर वह पिताजी को दूसरी बातों मे उलझा देती है।

भगवान के शैयागत होने पर जब सेठ रमणलाल अपने शयन कक्ष मे पहुँचे तो उन्होंने कल्पना के बारे मे पूछा—

"आज बिटिया दिखाई नहीं दी।"

"सो गई होगी।" माँ ने अमर्ष भरे स्वर मे कहा!

"इतनी जल्दी? तुम्हें तो मालूम होगा, कॉलेज से कब लौटी?"

पिता को चैन न पड़ा, स्वयम् जाकर देख आए कि वह सोई हुई है, माथे पर हाथ रख कर देखा कि अस्वस्थ तो नहीं है। यह भी देख लिया कि दूध पिला दिया गया है, खाली गिलास पास रक्खा हुआ है। एक क्षण उसकी ओर देख कर वे अपने कमरे मे लौट आए!

माता-पिता में इसके बाद क्या बातचीत हुई, यह उपन्यास की बहुत पुरानी बात है। जिस गृहस्थी के ऊपर कल्पना-जितनी बड़ी अविवाहिता कन्या हो, उसके माता-पिता रात्रि के शिथिल प्रथम चरण मे अपनी थकावट और चिन्ता के सिवा कन्या के माथे और रख ही कहाँ सकते हैं? खास कर माँ, अपने ही अनुभव के पद चिन्हों को ध्रुव-तारा समझ कर कन्या के अभाव की शिला को अपनी छाती पर सरलता से सह लेती है, पर अविवाहिता कन्या के भार को नहीं! सदैव की भाँति रमणलाल ने आज भी उसे टाल दिया, और करवट बदल कर सो गए, गम्भीर निद्रा में।

प्रातःकाल मंगला के दर्शन के बाद रमणलाल फिर एक नींद निकालते हैं, अंग्रेजी पढ़ने वाली कल्पना अब मगला के ब्राह्ममुहूर्त्त को जागरण की क्षुब्धता से म्लान नहीं करती, किन्तु आज उसने स्वयम् मगला के दर्शन किए, और फिर पिता को सोने नहीं दिया।

रमणलाल जब सोने की तैयारी कर रहे थे, तो भीतर प्रवेश करके कल्पना ने कहा: "पिताजी, सो गए क्या?"

पलग पर उठकर बैठते हुए रमणलाल ने कहा: "आ बिटिया, आ; आज तू जल्दी कैसे उठ आई?"

"यह भी कोई सोने का समय है पिताजी? कैसी सुहावनी हवा चल रही है, नहीं क्या?"

हँसकर रमणलाल ने कहा: "चलती तो है पर जब तक दो जने न हों, यह सुहावनी नहीं लगती। मेरी बिटिया कल्पना तो सदैव ही इस समय तक सोती रहती है, और उसकी माँ को घर के काम-काज के लिये देर हो जाया करती है। मेरे लक्ष्मीनारायण भी उठकर फिर अपने नित्य के कार्य-क्रम में लग

जाते हैं, तब फिर तुम्हीं कहो, यदि एक घंटा और सो लूँ तो क्या बुरा करता हूँ। यह खिड़की खोल देने से हवा तो चलती ही रहती है, और मन करे या न करे, शरीर तो उसे ग्रहण कर ही लेता है। मधुर-निद्रा क्या उसका प्रमाण नहीं है ?"

"पर आज—"

"आज क्यों सोने लगा, तुम जो आ गई हो! पर आज सबेरे-सबेरे ही तुम कैसे नींद को भुला सकी बिटिया, क्या माँ से झगड़ा हो गया ?"

हँसकर कल्पना ने कहा : "हुआ तो नहीं, पर हो सकता है!"

"रात को तुम्हारी शिकायत भी कर रही थी। देर कहाँ हो गई थी ?"

"देर ?—अरे पिताजी, नमिता को तो जानते हैं न आप ?—वही सुमन बाबू की लड़की, जो मेरी कक्षा मे पढ़ती है। वही हमे कॉफी पर ले गई थी। न्यौता तो दिया था उसने घर का, फिर बोली 'घर पर कुछ अच्छा प्रबन्ध नहीं हो सका, इसलिए कॉफी हाउस चलना पड़ेगा!' पर वैसी तो कोई खास देर हुई नहीं थी। सात-सवा सात बजे तो मैं घर लौट आई थी!"

रमण लाल ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते-फेरते कहा : "ठीक है बेटो, सात-सवा सात कोई अधिक नहीं होते, परन्तु तेरी माँ जो पुराने जमाने की ठहरी। कहती है, सयानी लड़की को बाहर नहीं रहना चाहिये। मैं कहता हूँ, क्यों नहीं ? छोटी लड़की और बड़ी लड़की मे फर्क क्या है ? हमेशा उसे इसी बात की आशंका है कि सुसराल वाले अगर दोष देंगे तो माँ को ही देंगे कि उसने बेटो को कुछ नहीं सिखाया। पर मेरी बिटिया को सीखने के लिए है ही क्या ? वह क्या कहीं घर की दासी बनने के लिए सुसराल जाएगी ? वह होगी राजरानी, और उसके गुणों से मोहित होकर उसके सास-ससुर कन्या के बाप को याद करेंगे, याद—है न कल्पना ?"

कल्पना ने कहा : "पर पिताजी, क्या आपके घर मे एक मेरे लिए अन्न-वस्त्र नहीं है ?"

"क्या कहती हो तुम ?—क्या तुम्हें विदा करते हुए मेरा हृदय नहीं फट पड़ेगा ? अन्न और वस्त्र तुम्हारे लिए ?" फिर लम्बी साँस लेकर कहा : "यह तुम्हारा बाप और तुम्हारी मा से लगा कर जो कुछ तुम देख रही हो, यह सब तुम्हारे लिए नहीं, तो किसके लिए है ? तुम्हारे बिना मैं जीवित भी रह सकूँगा या नहीं, कौन कह सकता है ? फिर भी सभी पिता तड़पते रह जाते हैं, और एक दिन सभी कन्याएँ बाप का घर और उसका हृदय सूना कर के चली जाती हैं!" और मुग्ध-ऊषा के अतिपूर्वाह्न मे पिता की आँखों में अश्र छल-छला आए!

कल्पना ने उठ कर पिता के चरण पकड़ लिए, और उन पर लोटती हुई

बोली : "मुझे कुछ नहीं चाहिए पिताजी, केवल इन चरणों की छाया से आप मुझे अलग मत हटाइएगा, यही मेरी सब से बड़ी कामना है, और यही मेरे सृष्टा के निकट मेरी शेष भीख है कि पिता के चरणों की सेवा से मुझे विरत नहीं किया जाए !"

पिता कण्ठावरोध के कारण कुछ कह नहीं सके, उन्होंने दोनों हाथ पकड़ कर उसे पुनः अपने पास बैठा लिया, और पूर्ववत उसकी पीठ पर हाथ फेरते रहे। फिर कुछ क्षणों तक प्रकृतिस्थ होने पर बोले : "पढ-लिख कर तुम सयानी होगई हो कल्पना। समाज के नियम, उसकी गति-विधि कोई तुमसे छिपे हुए नहीं है। हर पिता का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी संतान को सुखी बनाने के लिए कुछ उठा न रक्खे।—और यही माता-पिता का सबसे बड़ा सुख है कि उनकी सन्तान उनके सामने और उनके अभाव मे सदैव सुखी रहे। विवाह तो सबको करना ही पड़ता है, एक दिन उसकी आवश्यकता, स्त्री और पुरुष दोनों, सचमुच ही अनुभव करते हैं। तुम तो पढ़ी-लिखी हो, कहीं मैंने भी पढ़ा था कि स्वस्थ और प्राकृतिक जीवन का लक्षण ही यह है कि एक अवस्था के बाद बच्चे माँ-बाप पर निभर न रहें। मुझसे कल्पना, तुम संकोच मत करना। मैं तुम्हारा पिता हूँ सही, परन्तु पढ-लिख कर समझदार होगई हो, मैं तुम्हारा सखा भी हूँ। तुम्हें सुखी करने की और सुखी देखने की मेरी एकान्त-निष्ठा है। मैं स्वयम् तुम्हारे लिए पात्र खोजने की चेष्टा करूगा, पर यदि तुम्हारी दृष्टि—"

कल्पना ने पिताजी को आगे कुछ कहने नहीं दिया, उनके कन्धे पर हाथ रख कर उसने अपना मुख उनके वक्षस्थल मे छिपा लिया, और फिर वह पिता की गोद में निश्चेष्ट हो कर पड़ गई।

जब इसी तरह दो-चार मिनट बीत गए, और पिता-पुत्री का अश्रु विमोचन व्यापार शेष हो गया, तो मुख उठा कर कन्या ने कहा :

"पिताजी, आपसे कुछ कहने की आज्ञा चाहती हूँ ?"

"आज्ञा ?—लो नहीं, मुझे दो बिटिया—कहो क्या चाहती हो, निस्सकोच कहो !" किन्तु रमण लाल का हृदय धड़कने लगा—क्या कन्या ने इतना शीघ्र कोई युवक निश्चित कर लिया ?

"मेरी सखियाँ पिकनिक के लिए बाहर जा रही हैं, केवल दो-चार दिन के लिए !"

पिता का भारावत हृदय हलका हो गया।

"अधिक दूर नहीं ;"

"तुम भी जाना चाहती हो ?"

"यदि आपकी आज्ञा हो !"

"क्या सारी कक्षा जा रही है ?"

"नहीं पिताजी, नमिता है और हम दो-चार, कक्षा की लड़कियाँ हैं ?"

"और कोई बड़ा बूढा ?"

"कह नही सकती, शायद गर्ल्स होस्टल की वार्डन साथ जाए ! स्थान ऐतिहासिक है। पृथक्-पृथक् दृष्टिकोण से उस पर प्रबन्ध भी लिखने का इरादा है।"

"विचार तो कोई बुरा नहीं है। अच्छा अपनी नौकरानी को तो साथ ले जाओगी ?"

"फिर पिकनिक का आनन्द ही क्या रहेगा पिताजी ?—नमिता ने कहा कि सब काम हाथों से होगा ; एक तरह से घर के काम-काज की परीक्षा ही समझिए !" और वह मुस्करा दी।

"पर तुम्हारी मा ? उसे कैसे मनाओगी ? जा कब रही हो ?"

"दो-एक दिन मे ! तिथि अभी तै करना है।"

"तो फिर मा की राय कैसे लोगी ?"

पिता की कमीज के बटनों से खेलते हुए उसने कहा : "यह आज्ञा भी आप ही को दिलवानी पड़ेगी !"

"यह कठिन आज्ञा है बिटिया ! बल्कि अगर न ही जाओ—"

"नहीं पिताजी। यदि मैं नहीं गई, तो वे कोई नहीं जाएँगी। उन्होंने कहा है कि सारा प्रोग्राम डिस्मिस् होजाएगा।"

"सो होजाने दो , उन सब के पिता तुम्हें आशीर्वाद देंगे।"

"मैंने उनसे वादा कर लिया है पिताजी, और वे सब ताना मारती हैं कि मैं बड़ी कंजूस हूँ, कि मेरे पिता मुझे कोई खर्चा नहीं करने देते, कि मुझे खर्चे के लिए बराबर पैसा नहीं मिलता है। वगैरा वगैरा !"

हँस कर रमणलाल ने कहा : "सो अपने बाप पर लगाई हुई इतनी बडी तोहमत तुम सहन नहीं कर सकती। परन्तु तब तो अपनी गाड़ी क्यों नहीं लिए जाती ? सामान सब यहाँ से लेजाओ, और सबकी दावत अपनी ओर से करदो। लड़कियों की प्रशसा का थोड़ा-सा पात्र मैं भी हो जाऊँ ! नहीं क्या ?"

"प्रस्ताव मैंने किया था। पर वे मानती नहीं ; नमिता ने कहा, कि यह तो कोई पिकनिक ही नहीं। जाएँगी तो रेलगाड़ी से ही। और सब काम हाथ से होगा। अभी पूरा प्रोग्राम तो बना नहीं है। दो-तीन दिन से अधिक का कायक्रम ही नहीं रक्खेंगी। हाँ कर दीजिए न पिताजी !—और मा को भी आप ही कहिएगा।"

"हाँ' कहना शेष रह गया क्या ? तुम कहोगी, और मैं 'ना' कर सकता हूँ ?"

"मेरे अच्छे पिताजी।" और वह दोनों हाथ उनके गले मे डाल कर उसी तरह उनके वक्ष से लिपट गई जैसा कि वह पाँच-छः वर्ष की अवस्था में किया करती थी।

कन्या का हृदय रोने लगा, कि ऐसे स्नेह-वत्सल पिता से भी उसे छल करना पड़ा, किन्तु यौवन की बढती हुई दुर्दान्त-बुभुक्षा मे कोई नहीं बच सकता और यदि कहीं उसका लक्ष्य रूमानी-प्रेम हो तो फिर सभी अन्य शक्तियों को मुँह की खानी पड़ती है।

मा से अनुज्ञा लेने के लिए पिता को भी छल का आश्रय लेना पड़ा। दूसरे दिन साहस करके उन्होंने कहा :—

"सुनती हो, कल्पना आजकल अस्वस्थ क्यों रहती है ?"

"अस्वस्थ ?—क्या बात कर रहे हो ? भली चगी तो है !"

"तुम उसे घर से निकालना जो चाहती हो ! तुम्हारी आँखों में तो वह हर दिन, एक बरस बढ़ जाती है ! क्या ज्यादतो है तुम्हारी, कहीं बाहर नहीं निकलने देती ! चेहरा सूख कर सफेद होगया है, आँखें पथराई-पथराई-सी लगती हैं। बराबर खाना नहीं खाती, और तुम कहती हो कुछ हुआ ही नहीं !"

"तुम तो उसे सर पर चढा कर रहोगे। पर लड़की की जात ठहरी, इतना मोह बढ़ाना अच्छा नहीं है।"

"तो क्या उसे मरने दूँ ? कल्पना की मा, तुम यह चाहे कर सको, पर मुझसे नहीं होगा। इस बात में मैं किसी की सुनना नही चाहता। न जाने किस के भाग की एक यह लड़की बच पाई है, और तुम हो कि उसकी परवाह ही नहीं करती !"

"तो क्या करूँ ? सिर पर बैठा कर घुमाती फिरूँ बाजार में ?"

"अपने सिर पर नहीं तो कम-से-कम उसके पैरों पर तो उसे घूमने दो। मैंने उससे कहा है कि वह अपनी सखियों को तैयार करे, और न हो तो कहीं दो-चार दिन के लिए बाहर घूम आए।"

"धन्य हो तुम, लड़की इससे अच्छी हो जाएगी ?"

"वहाँ मेरा डाक्टर मित्र भी है, उसे खत लिख दूँगा, अपने को दिखा भी आएगी, और मन भी बहल जाएगा उसका।"

"कभी पछताओ तो मुझसे मत कहना। लड़कियाँ सभी के होती हैं, और मा-बाप भी सभी के होते हैं ! तुम चाहे दीन-दुनिया का खयाल न

रक्खो, पर मुझसे यह सहन नहीं होगा। अब लड़की को बाहर जाने देने मे मेरी बिल्कुल राय नहीं है, चाहे तुम मानो या न मानो।"

"पर मैं उससे कह जो चुका हूँ। वह तो अपनी सहेलियों से बात भी कर आई है।"

"तो कौन-सा पहाड़ टूट गया!"

चाहे जो हो, तुम तो घर में रहती हो। मेरी प्रतिष्ठा का भी सवाल है। लड़की जरूर जायगी।

इस तरह जोर-जबदस्ती अनुज्ञा मिल गई।

●

: ७ :

स्वयम् च्यवन प्रकाश नहीं समझ सका कि नमिता के एकाएक इस तरह उत्तेजित हो उठने का क्या कारण है? बात निर्मल कुमारको लेकर उठी है, और मूल मे कोई उसका पत्र है जो उसने कल्पना को लिखा मालूम देता है। पत्र मे अवश्य कोई ऐसी बात होनी चाहिए, जिसने नमिता के हृदय को ठेस पहुँचाई हो, और कल्पना ने शायद उसी बात को लेकर नमिता का मजाक उड़ाया हो। नमिता का वहाँ जाना, नमिता ने उस दिन इस विषय मे उससे भी तो चर्चा की थी। कहीं वही बात तो नहीं है? मेरे उस दिन इनकार करने पर नमिता कुपित हो गई थी, पर आज !—च्यवन का हाथ तब भी नमिता के हाथ मे था ! उस स्निग्ध कोमल गुदगुदे हाथ के स्पर्श के समान विश्व में और क्या प्रिय हो सकता है ? क्या च्यवन उस कर-स्पर्श को सदैव के लिए अपना बना सकता है।

उसने कहा : "नमिता कुमारी, आपकी उत्तेजना का कारण तो मुझे नहीं मालूम, किन्तु आप काफी संतप्त मालूम देती हैं ! कुछ शहर के बाहर घूम लिया जाए ?—ताजा और ठण्डी हवा से थकावट भी दूर हो जाएगी और शायद मन में ताजगी भी पैदा होजाए ! बुलाऊँ टैक्सी ?"

"पर तुम्हें ट्यूशन पर भी तो जाना है।"

"न होगा आज की नागा ही सही; नई बात तो कोई है नहीं ! ऐऽऽ—टैक्सी?

शहर के बाहर निकल कर जब दोनों बहुत देर तक घूम चुके, सड़क पर बिजलियों की पृष्ठभूमि मे सघन अँधेरा छा गया, तो नमिता ने कहा : "चलो च्यवन, उस पार्क में बैठेंगे, टैक्सी को विदा कर दो !"

नमिता के मना करने पर भी च्यवन ने स्वयम् टैक्सी का किराया दिया, और दोनों व्यक्ति पार्क मे एक बेंच पर बैठ गए !

च्यवन ने कहा : "नमिता देवी, आपकी चिन्ता का कारण जो कुछ हो, किन्तु मन को दृढ़ कीजिए ! मन को दृढ़ नहीं रखने से और कई दस्यु शान्ति को चुराने के लिए सजग हो उठते हैं।"

"पर क्या च्यवन, अपनी चाहत के पात्र को भुलाना सम्भव है ?"

हँसकर च्यवन ने कहा : "मैं तो सम्भव ही नहीं सरल भी समझता हूँ !" च्यवन ने बड़ी सरलता से समझ लिया कि निर्मल का प्रत्याख्यान ही उसका अवसर है ।

नमिता ने पूछा : "कैसे ?"

"यदि भूल जाना आवश्यक ही हो, तो चाहत के पात्र को बदल देने ही से काम हो जाएगा।"

"पर क्या चाहत का पात्र बदला जा सकता है ?"

"क्यों नहीं ? प्रेम करनेवाला इसलिए नहीं प्रेम करता कि प्रेम की कहीं से उसे पुकार मिलती है ! वह तो उत्स का जलस्रोत है, जो स्वयम् की प्रेरणा से विस्फूर्जित होता है, वह पात्र की अपेक्षा नहीं करता, वह तो केवल उद्व्यंजना चाहता है । हृदय की गभीर गुहा का अन्तर खोल कर जब वह निकलता है, तो चाहता है एक आधार ताकि वह उसमे समाकर संयम के साथ प्रवाहित हो सके । वह आधार जो भी हो !"

"यदि वह आधार गलत हुआ ?"

"प्रवाह की दिशा बदल जाएगी, बेग मे अन्तर आ सकता है, किन्तु उसकी उत्सरण-शक्ति मे कुछ अन्तर न होगा, नमिता कुमारी !"

"नहीं नहीं, च्यवन, तुम मजाक कर रहे हो ।"

"चाहता तो मैं यही हूँ नमिता देवी, कि जल्दी ही टूट जानेवाले प्रेम के इन पट्टम के खिलौनों को मजाक ही मे टाल दूँ ! चाहनेवालों की इस विश्व में क्या कमी है कि एक मेरी खुशामद के अभाव में प्रेम के देवता को सिर पर पैर रख कर भागना ही शेष रह जाए ! फिर भी हम देखकर भी अनदेखा ही समझ बैठने के आदी हैं ! जब आप जैसी मेधावी लड़की प्रेम के प्रेत से इस तरह वित्रस्त हो सकती हैं, तो फिर इसे मजाक से उड़ाने के सिवा चारा ही क्या है ? उस निर्मल ने क्या आपसे प्रेम का सफल नाटक नहीं किया ? कौशल है केवल नाटक मे, उसमे ख्याति तो है ही, आनन्द भी है, पर सबसे बड़ा लाभ है अनासक्ति का !"

"निर्मल के हृदय की बात तो मैं कैसे कह सकती हूं, किन्तु मेरा हृदय ? वह तो टूट जाएगा !"

"ऐसे कमजोर दिल की बेगार ढोते रहने की अपेक्षा उसे तोड़ फेंककर हलका हो जाने मे ही सुविधा है, नमिता कुमारी। मन का क्या है ? वह आकाश से नहीं टपकता। दूसरे लोगों की कही हुई बातों को रट-सुन कर हमारा मन उसी स्वर में झंकृत हो उठता है : प्रेम करना स्त्री का स्वभाव है, प्रेम वह सर्वश्रेष्ठ है जिसमे एक के सिवा दूसरे को स्थान न रहे, प्रेम में प्राणों की आहुति दे देना बड़ा भारी गौरव है, जिससे एक बार प्रेम हो गया, उससे सदा के लिए हो गया चाहे वह फिर तुम्हें प्रेम करे या ठुकराए, प्रेमी पास हो तो किसी दूसरी स्त्री में उसकी आसक्ति की आशंका से जलते रहना, और दूर हो तो विरह मे घुलते रहना प्राणी के दैनिक कार्यक्रम हैं। और फिर रोमियो-जूलियट, लैला-मजनूं, शीरीं-फरहाद आदि-आदि तमाम आदर्श सामने हैं। झुकाओ इनके सामने मस्तक, और बिछा दो पलकें उनके पदचिह्नों पर। प्रेम परमेश्वर है ही, वह बड़ी सरलता से तुम्हारी राह देखता हुआ तुम्हें प्राप्त हो जाएगा। इन आदर्शों की तुलना मे, पुरुष की खुशामद की भिखारिणी नारी सिवा ऐसे आत्महंता प्रेम के और करना ही क्या चाहेगी ?"

"तुम बड़े कठोर हो, च्यवन !"

"कोमलता की मैं कदर करता हूँ, नमिता कुमारी, किन्तु कमजोरी की नहीं।"

"पर नारी तो इसीलिए बड़ी कमजोर है।"

"तो किसी ऐसे ही सबल पुरुष को उसका पूरक होना चाहिए !—निर्मल जैसे वंचक को नहीं।"

नमिता को एकाएक ही आघात लगा। च्यवन और निर्मल दोनों को एक आसन पर एकत्र देखना, और समझना कि च्यवन निर्मल की अपेक्षा श्रेष्ठतर है ?—नहीं नहीं, नमिता बच पर से उठ खड़ी हुई और बोली :

"च्यवन, बहुत देर हो गई, चलो !"

च्यवन भी उठ खड़ा हुआ और बोला : "मेरे भाग्य में किसी का प्रेम पाने का सुयश नहीं है। दोष दूँ भी किसे ? योग्यता तो हो ! न कोई खास गोरा चिट्टा हूँ, न नाक-नक्शे से सौ टंच, लक्ष्मी की भी कृपा नहीं है कि तड़क-भड़क से किसी तरह से प्रेम की सतह तक आ पाता ! पर इसी गम में दुबला होते जाने की शिक्षा मेरी नहीं है।"

"तुम समझते हो प्रेम इन्हीं से किया जाता है ?"

"नहीं तो और किससे किया जाता है ? आपने निर्मल को क्यों चुना, आप ही कहिए ? सुन्दर है, शिक्षित है और सम्पन्न बाप की इकलौती सन्तान ! और

क्या चाहिए ? निर्मल ने आपको अपने प्रेम के लिए क्यों चुना था, वह भी आप गिन देखिए !"

"किन्तु अब ?"

"निर्मल को कोई अन्य पात्र मिल गया हो सकता है !"

पार्क के फाटक से बाहर निकलते-निकलते नमिता ने कहा : "किन्तु च्यवन, तुम भूलते हो मेरा प्रेम शिक्षा, सौंदर्य और सम्पत्ति की अपेक्षा नहीं रखता ।"

"परीक्षा तो दे ही रही हैं आप," हँसकर च्यवन ने कहा : "ध्यान रखिएगा, उत्तर गलत न हो जाए ।"

दूसरे दिन कॉलेज जाने के लिए तैयार होकर नमिता सीधे च्यवन के कमरे मे आ उपस्थित हुई । कमरे की वही अवस्था थी, जिसमे कि उस दिन पाठक नमिता के साथ ही पहुँचे थे ! बिस्तर पर लेटा हुआ च्यवन तब भी कोई पुस्तक पढ़ रहा था !

नमिता ने कहा : "कॉलिज नहीं चलोगे ?"

हड़बड़ा कर उठ बैठते हुए च्यवन ने कहा : "चलूँगा क्यों नहीं ! परन्तु--"

च्यवन को थोड़ा आश्चर्य हुआ । नमिता अकेली ही कॉलिज जाया करती है, यहाँ तक कि निर्मल था तब भी वह अकेली ही जाती थी, लौटते समय अवश्य निर्मल साथ रहता था, किन्तु आज—

नमिता ने कहा : "और च्यवन, तुम्हारे कमरे की यह हालत मुझसे देखी नहीं जाती । कम-से-कम दो भले आदमी कभी आएँ तो उनका तो खयाल रखा करो ।"

हँसकर च्यवन ने कहा : "भले आदमी पहले यहाँ आना तो स्वीकार करें ।"

"नहीं-नहीं , हरी की मा, हरी की मा !"

"क्यों परेशान होती हैं आप ?—बेचारी हरी की मा को अभी अवकाश ही कहाँ होगा जो वह अपने कमरे में होगी । बैठिए आप, मैं दो मिनट में तैयार हुए लेता हूँ ।"

"तुम तैयार होओ । मैं हरी की मा को कह कर आती हूँ ।"—और नमिता उल्टे पैरों लौट गई ।

जैसे ही दोनों नीचे उतरे, च्यवन ने देखा, बरसाती मे कार खड़ी है ।

च्यवन ने पूछा : "पापा कहीं जारहे हैं क्या ?—आज इतनी जल्दी ?"

"वे नहीं, कार हमारे लिए है ।"

"हमारे लिए ?"

"हाँ; रात को मैंने पापा से कहा था कि जरा धूप पड़ती है, कॉलिज जाने-आने के लिए कार ही उपयुक्त रहेगी । पापा तो पहले से ही कह रहे थे, केवल मैंने ही मना कर रक्खा था !"

"हूँ। तो क्या अब कॉफी हाउस को तलाक—?"

हँसकर नमिता ने कार का दरवाजा दिखाते हुए कहा : "बैठो—कारवालों के लिए कॉफी हाउस बन्द हो, ऐसा तो कोई नियम नहीं है।"

रास्ते मे च्यवन मन ही मन मुस्कराया, कल्पना भी तो कार मे ही कॉलिज जाती है !

कक्षा मे च्यवन जैसे ही अपनी सीट पर बैठा, नमिता भी आकर उसीके पास बैठ गई। पूर्वाधिकारी को उसने संकेत किया, वह बेचारा नमिता की सीट पर जा बैठा, नमिता के बगल की सीट निर्मल के लिए खाली थी ही। सभी छात्रों को किंचित विस्मय हुआ, किन्तु च्यवन ने वैसा कोई भाव प्रदर्शित नहीं किया, और नमिता ?—वह न केवल अपने को, मानों सभी व्यक्तियों को यह विश्वास दिला देना चाहती है कि उसे निर्मल से कोई सरोकार नहीं है, और उसकी तुलना मे च्यवन जैसे अपदार्थ को वह श्रेष्ठ समझती है। अध्ययन-काल मे भी यदि कभी च्यवन तद्गम्मन होना चाहता तो नमिता अहेतुक ही उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती और दूसरे छात्रों को बता-बता कर !

एकाध दिन बाद पूर्व निश्चित योजना के अनुसार दोनों कुछ समय पूर्व ही कॉलेज मे आ उपस्थित हुए, और जहाँ कल्पना बैठा करती थी, उसके आगे वाली सीट पर दोनों बैठ गए, ताकि कल्पना अपनी आँखों पर विश्वास कर सके कि च्यवन और नमिता दोनों एक साथ रहते हैं, और जैसाकि नमिता की धारणा के अनुसार वह सोचती है कि निर्मल के बिना नमिता का काम नहीं चल सकता, एकदम कितना गलत है !

रहा सवाल ऐश्वर्य और प्रदर्शन का, सो अपने सीमित-दायरे मे भी उसने अपनी तड़क-भड़क को सीमाहीन कर दिया। कक्षा के सभी छात्र आश्चय-विस्मित रह गए। केवल कल्पना को इससे अधिक आश्चर्य नहीं हुआ ! किन्तु नमिता स्वयम् ?—जब उसका दिनभर का यह नाटक समाप्त हो जाता और रात्रि के दूसरे प्रहर मे वह थके मन को बिस्तर पर सुलाने का प्रयत्न करती तो वह मचल उठता। दर्द से चीखते हुए बालक को सुलाना जिस तरह मा के लिए कठिन हो जाता है, और बालक की पीड़ा को न समझ सकने के कारण जिस तरह उसकी थपकियाँ व्यर्थ और स्वयम् उसीके लिए निरर्थक हो उठती हैं, मन की वैसी ही अवस्था नमिता को प्राप्त होती, और वह दूसरा प्रहर भी प्रायः परेशानी में ही बिता देती। बाहरी प्रसाधनों और तड़क-भड़क के बावजूद उसका मन बैठने लगा, अड़ियल घोड़े के चाबुक मानों उसी की पीठ पर चोट करने लगे !

परन्तु च्यवन के लिए चाँद धरती पर उतर आया। उसने निर्मल के प्रत्यक्ष

आसन को ग्रहण कर लिया, उसके कमरे की काया पलट गई, हरी की मा को वहाँ तैनात कर दिया गया। होटल को छुट्टी मिल गई, नागा से शुरू होकर ट्यूशन का कारोबार एक दम डूब गया, वस्त्रों के ढंग बदलने लगे, आँखों का रंग चमकने लगा। च्यवनप्रकाश ने कविता करना शुरू कर दिया, गति-ताल-लय से युक्त किन्तु शब्दों के छन्द से नहीं, प्रत्युत् अर्थ के छन्द से !—जहाँ भाव अनुभाव हो जाते हैं, रस आँखों का आहार बन जाता है, और अलंकार दृष्टि के कोण पर झलकते हैं !

उस दिन रविवार था। चार बजे अपराह्न मे नमिता अपने पलग पर अलस भाव मे लेटी हुई अन्यमनस्क चित्त से किसी पुस्तक के पन्ने पलट रही थी, किन्तु जीवन के जिन पन्नों को उसके मन की आँखें पलट रही थी, वे इस पुस्तक के पन्नों से बहुत दूर किसी अलक्ष्य में खुल-खुल कर नमिता को बेचैन कर रहे थे ! वह कभी अपने ऊपर दृष्टि निविष्ट करती, कभी च्यवन के ऊपर, कभी कल्पना के ऊपर और फिर जाकर वह अटक जाती निर्मल के ऊपर। लगभग महीना भर होने आया कि निर्मल उसे छोड़ कर घर गया था। आशा थी आठ-दस दिन ही मे मृत पिता के क्रिया-कम सम्पन्न करके लौट आएगा, और पुनः उन दोनों का वही पूर्व जीवन निर्बाध बीतने लगेगा।

परीक्षा मे निर्मल के प्रथम आने मे किसी को सशय न था, यद्यपि निर्मल ने स्वयम् न कभी इस बात की कामना की, न प्रयत्न ही किया। नमिता को भी पास हो ही जाना है। फिर विवाह, और रगीन-जीवन के अनन्त उद्यान मे दो निश्चिन्त मुक्त पंछियों का निर्बाध-विहार। किन्तु आज वह स्वप्न शेष नहीं है, केवल उसकी एक दुःखद स्मृति-मात्र शेष है, जिसका प्रत्यक्ष से कोई सम्बन्ध ही नहीं मालूम देता। कवि को मानों कविता के लिए आवेश तो मिल गया था, पर भाव उसे पकड़ाई नहीं दे रहे थे। शब्दों के चमकीले टुकड़ों से अलकार नहीं बन सकता, उससे तो हाथ के आहत हो जाने की आशंका है।

कल शाम को एक और पत्र उसे निमल कुमार का मिला था। अपने पूर्व पत्र का उत्तर न पाने के कारण निराशा व्यक्त की है, अपने मुकदमे के अग्रसर होने का कुछ वर्णन है, और उसके पश्चात् लिखा था कि उसे अभी भी निश्चय नहीं है कि वह कब तक लौट सकेगा। मुकदमे मे अब उसे विशेष दिलचस्पी नहीं रही, आवेश का पहला उफान बैठ चुका है. उसकी शिथिलता और अधिक बेग से उस पर छा गई है। शहर दौड़ पड़ने के लिए उसका

मन उतावला हो रहा है, किन्तु वकील की राय अभी उसे वहाँ से आने देने की नहीं है। कहता है, जब एकबार अनुष्ठान प्रारम्भ हो, गया है, तो पूर्णाहुति तक जमें रहने के सिवा कोई चारा नहीं है। वहाँ से अनुपस्थित रहने में भी वकील को कई आशंकाएँ हैं। सामान के इधर-उधर होने के अतिरिक्त उसके नष्ट-भ्रष्ट हो जाने का भी अन्देशा है। मुकदमा ठीक चल रहा है, जैसा कि चलना चाहिए। परन्तु मालूम देता है, निर्मल को यह वर्ष बलिदान कर देना पड़ेगा। यदि ऐसा हुआ तो अगले वर्ष वह 'लॉ' पास कर लेगा, फिर उसके बाद फायनल दे देगा।

—लिखा है कि उसे उसके पहले पत्र के उत्तर की कोई कामना न थी, किन्तु आशा ने कहीं ज्योति का एक कण छिपा रखा था कि नमिता ही कहीं साकार उत्तर बनकर वहाँ न पहुँच जाए। नमिता के मार्ग की बाधाएँ वह जानता है, किन्तु पानी की बाढ के सामने किस बाधा का मस्तक ऊँचा रहा है? फिर भी जब नमिता वहाँ नहीं पहुँची तो यह उत्तम ही हुआ! कैसे प्रपंच-पूर्ण वातावरण मे उसके ये दिन बीत रहे थे, उस उत्ताप मे क्या किसी कुसुम-कलिका के विहँसते रह सकने की सम्भावना की जा सकती है?—आदि-आदि पत्र और भी लम्बा था। कक्षा के सभी मित्रों के बारे मे भी पूछा गया था।

अब भी छल को बनाए रखने का प्रयत्न जारी है। कैसी खूबी के साथ पत्र में और सब मित्रों के नाम हैं, किन्तु कल्पना का नाम बचा लिया गया है! उसे तो अलग से पत्र जाते ही होंगे, और साथ मे नमिता का मजाक भी उड़ाया जाता होगा। बल्कि इस पत्र का उल्लेख भी कल्पना के पत्र मे अवश्य किया गया होगा। क्या ठीक कि इसीकी प्रतिलिपि उसे भी न भेजी गई हो!

यदि परदे के भीतर की बात नमिता न जानती होती, तो कितना स्पृहणीय होता यह पत्र ही। निर्मल, निमल क्या उसके समस्त-हृदय का आराध्य नहीं था? क्या उसके हृदय का समस्त ऐश्वर्य उसीके चरणों पर बिखर पड़ने के लिए व्याकुल नहीं हो रहा था? फिर भी आज वे दोनों कितने दूर पड़ गए हैं। और उस सिंह के स्थान पर—कौन बैठा है वह?

धीरे धीरे उसके पिता सुमन प्रसाद ने भीतर प्रवेश किया, देखा कि कन्या बिस्तर पर पड़ी है, पुस्तक उसके वक्ष पर उल्टी पड़ी हुई है और वह स्वयम् शून्य दृष्टि को छत पर गड़ाए किसी अगोचर लोक को स्पष्ट करने का प्रयत्न कर रही है। उसके अनुभवी पिता जानते थे कि छत पर देखते रहना किसी को न विशेष उत्साह जनक होता है, न सुविधा जनक ही, चाहे वहाँ पर सुन्दर चित्र चित्रित किए गए हों, या सोने की पच्चीकारी मे प्राचीन-कला के पुनरुद्धार का स्तुत्य प्रयत्न ही हो! कम-से-कम युवा-युवतियों की चचल दृष्टि तो कभी

इस प्रकार की क्रिया का समर्थन नहीं कर सकती। फिर भी उनकी कन्या न तो बिलकुल ही बच्ची है, न वृद्ध ही। पिता के स्नेह-कोमल हृदय को आघात लगा।

"नमिता!" पिता ने आर्द्र स्वर से पुकारा।

नमिता एकाएक चौंक उठी, किताब नीचे गिर पड़ी, उठ बैठते हुए कहा: "पापा, आप यहाँ?"

"कुछ गुनाह हुआ?" तनिक मुस्कराते हुए पिता ने कहा: "दिवा-स्वप्न मे विघ्न पड़ा?"

नमिता ने कहा: "नहीं, पुस्तक पढ़ रही थी, ऐसा अंश आ गया कि उसके ऊपर मनन करना आवश्यक हो गया।—आप खड़े क्यों हैं? बैठिए न—" और यह कह कर स्वयम् उसने उठने का प्रयत्न किया, किन्तु सुमन बाबूने उसका कन्धा पकड़ कर कहा: "बैठी रहो, मैं भी बैठता हूँ।" और वे भी पास ही पलंग पर बैठ गए! फिर मुस्करा कर कहा: "ऐसा कौन मनन के योग्य था प्रसंग नमिते?—बताओ तो, ऐसे प्रसग तो हम जैसे अवकाश प्राप्त बूढ़ों को पढ़ना चाहिए। क्या पुस्तक है?"

सचमुच नमिता को तो यह भी याद नहीं कि जिसे वह लिए बैठी थी, वह कौन-सी पुस्तक थी? जिस मन ने पुस्तक पढ़ने का नाटक किया था, वही उसे अलमारी से उठा भी लाया था! यदि वह कुछ कह बैठी, और पिता ने उसे उठाकर देख लिया तो—

उसने उठकर पिता के गले मे हाथ डालते हुए कहा: "अब छोड़िए भी पुस्तक की बात! अकेले रहने से सौ तरह के ख्याल हो ही आते हैं—"

"अकेले रहने ही से तो। इसलिए जब कोई स्वेच्छा से अकेला रहना स्वीकार कर लेता है तो स्पष्ट है कि वह सौ तरह के खयालों को निमन्त्रण दे रहा है।"

"अच्छा पापा, आज पिक्चर देखने नहीं ले चलिएगा मुझे?"

"हुक्म होने पर क्यों नहीं ले चलूँगा, पर इस समय इसका क्या प्रसंग है?"

हँसकर नमिता ने कहा: "पिक्चर का भी कोई प्रसग होता है पापा? इस युग में छाया के इन चित्रों के अतिरिक्त और भी अन्य कुछ वास्तविक है क्या?"

"न भी हो; किन्तु नमिता, तेरे चेहरे पर जो यह छाया छाई हुई है, तू जो इस तरह अन्यमनस्क हो उठी है, क्या यह सब भी वैसी ही वास्तविक है?"

"आपको तो अपनी यह लड़की सदा ही उदास नजर आती है! भली-चंगी हूँ भला दोनों जून भर पेट खाती हूँ, कॉलेज जाती हूँ, खेलती-कूदती हूँ, और परीक्षा मे पास होने के लिए मेहनत करती हूँ।—आज इतवार था,

दुपहर मे आलस आ रहा था, सोचती थी कुछ सो लूँ , पर सो नहीं सकी; पुस्तक ली, तब भी नहीं , बल्कि उससे नींद भाग ही गई। अब अगर स्नेह से भींगी हुई पापा की आँखों को बेटी के चेहरे पर कभी प्रकाश, कभी छाया और कभी इन सबका इन्द्रधनुष भी दिखाई दे जाए तो बेटी क्या कैफियत दे ?"

"बहलाना चाहती है बाप को ? तेरी मा होती तो तेरी कदर करती। पर मैं तो बाप हूँ, पुरुष हूँ—अपना ही पक्ष जानता हूँ, केवल यही हूँ कि मेरी मातृहीना बेटी कुछ भाराक्रान्त सी हो रही है, और मुझ से छिपा रही है !"

"पर छिपाने को है क्या पापा ?—देख जो रहे हैं आप मुझे ? 'रोमन हॉली डे' बड़ा अच्छा पिक्चर बताते हैं पापा ! उसकी हीरोइन को वर्ष के अभिनय का सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार मिला है। मैं तैयार हो लूँ ?"

"अभी पिक्चर मे काफी देर है नमिता ! अच्छा यह बता, निर्मल अभी तक क्यों नहीं आया ? उसके क्या हाल है ?"

"हाल क्या हैं ! अपनी बुआ से मुकदमा लड़ रहा है !"

"तो क्या उसका यह साल व्यर्थ जाएगा ?"

"सो ही दीखता है ! मैं कहती हूँ ऐसे लड़के बस यों ही होते हैं !"

"यानी ?—"

"अब देखिए न ! जरा-सी कुछ मुसीबत आई, कि घबरा गए; कोई मुकदमे-मामले के लिए इस तरह अपना पूरा साल बरबाद कर देगा ? वकील कर लिया बस खतम !"

"किसी की विवशता का दूसरा कैसे अनुमान कर सकता है नमिता ?"

"विवशता के सामने झुक जाना ही तो कायरता है पापा। च्यवन को देखिए, गरीब घर मे पैदा हुआ, किन्तु किस तरह से 'पुश ऑन' करता चला आ रहा है, परिस्थितियों की उसे परवाह नहीं है, बाधाओं से वह नहीं डरता, और हर अवसर से वसूल करता है—नहीं है क्या यही पुरुषार्थ !"

"पुरुषार्थ और मनुष्यता तो एक ही वस्तु है नहीं बेटी।"

"मिट्टी के मनुष्य का क्या उपयोग है पापा ?—यदि उसे पत्थर में गढ दो, तो मनुष्य ही नहीं, वह देवता भी हो सकता है, उसकी पूजा भी की जा सकती है, किन्तु मनुष्य—"

"जिसे तुम पुरुषाथ कहती हो, वह सचमुच क्या वैसा ही है ?—सड़क पर खड़े सभी तो 'बस' की राह देखते हैं। कुछ को 'बस' में चढ़ने को मिल जाता है किन्तु कुछ दूसरे, दूसरों को ढकेल कर आगे नहीं बढना चाहते, वे राह देखना पसन्द करते हैं; 'क्यू' तो बना ही लेते हैं, किन्तु यदि किसी जरूरतमन्द को देखा तो स्वेच्छा से पीछे भी हट जाते हैं। तर्क हमारा उस योजना को पसन्द

नहीं करता, बुद्धि उसे कायरता का नाम दे सकती है, किन्तु मनुष्यता का निरुद्ध प्रवाह तो ऐसी ही समतल भूमि पर विस्तार पाता है।"

कहीं मन का चोर पकड़ाई न दे जाए इसलिए नमिता ने कहा : "देर होजाने से शायद टिकिट नहीं मिल सकेंगे। कहते हैं भीड़ बहुत है। मुझे तैयार होने मे भी कुछ समय लगेगा।"

सुमनबाबू ने मानों कुछ सुना ही नहीं, बोले : "अच्छा नमिता, निर्मल तो बड़ा सीधा लड़का है, मुकदमे वगैरा मे वह क्या समझे ! जाने क्या दाँव-पेंच हों ! क्यों न हम दोनों एक बार दो-एक दिन के लिए वहाँ हो आएँ ?"

नमिता ने पिता की ओर देखा, उनकी ऐनक में छिपी आँखों का भाव पढ़ने के लिए; किन्तु झील के समान उस गम्भीर दृष्टि में किसी को थाह पाना संभव न था, नीचे नयन करके नमिता ने कहा : "जो अपनी राह आप नहीं बना सकता पापा, उसके लिए दूसरों के सिरदर्द मोल लेने मे कोई लाभ नहीं है।—मैं वहाँ नहीं जाऊंगी ! आप चाहें तो जा सकते हैं।"

"किन्तु क्या निर्मल के लिए हम भी दूसरे हैं ? उसका भला-बुरा क्या हमारा नहीं है ?—माफ करना बेटी, मैं बाप हूँ किन्तु तुम पढ़ी-लिखी हो, बड़ी होगई हो, और तुम्हारे-मेरे बीच सखा जैसा सम्बन्ध रहा है। इसलिए ही कहूँ तो कन्या देकर क्या मैं उसे अपना ही पुत्र नहीं बना देना चाहता हूँ ?"

कन्या ने मुँह फेर कर कहा : "मुझे भी माफ करना होगा पापा, एक दिन चाहे मैंने ऐसा सोचा हो, और आपको भी उसी मार्ग मे प्रेरित किया हो, पर आज मैं अपने सम्प्रदान की बात ही नहीं सोचना चाहती !" वह उठ खड़ी हुई, और बोली : "मैं कपड़े पहन कर तैयार होती हूँ। और मेरे अच्छे पापा, आप मेरे बारे मे कोई चिन्ता न करें। मुझे यदि किसी तरह का भी दुःख होगा तो उसका पता सबसे पहले आपको होगा। पापा के राज्य मे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, बहुत, किसको ऐसा पापा मिलता है ?" और उनके पैरों को छूकर नमिता उनके वक्ष से लिपट गई। पिता की शिथिल साश्रु दृष्टि शीशे की दीवार को भेट कर अदृष्ट की अनन्त गुहा मे जा लगी, और उनकी कंपित अगुलियाँ उसकी स्निग्ध आलुलायित केश-राशि के गुच्छकों से खेल करने लगीं।

दो-तीन दिन से कल्पना कॉलेज नहीं आरही है। क्या बात है ? कोई छात्र कारण नहीं जानता ! किसीने कहा बीमार हो सकती है; किसी ने कहा कमरे के दरवाजे बन्द करके पढ़ रही होगी; तीसरे ने कहा, इस वयस मे पढने के लिए कमरे के दरवाजे कोई बन्द नहीं करता, चाहे यह सच हो कि कल्पना

कुमारी कमरे के दरवाजे ही बन्द करके भीतर बैठी हों। अन्य ने कहा, कहीं पार्वती की भाँति हिमालय पर तपस्या करने तो नहीं गई हैं ?

नमिता को कल्पना की उपस्थिति भी सह्य न थी, अब अनुपस्थिति भी उसे सह्य नहीं हुई। कल्पना की उपस्थिति मे उसके प्रभूत ऐश्वर्य को चुनौती देने के लिए उसने स्वयम् प्रभूत ऐश्वर्य मे रहना स्वीकार किया था, यद्यपि उसके लिए उसके मन मे स्वभाविक-रति न थी! कपड़े वह अवश्य साफ पहनती थी, पर कीमती साड़ी पहनने मे उसे कोई तुक नहीं दिखाई देती, प्रत्युत् सम्पन्न व्यक्ति की अपनी सम्पत्ति-विषयक उदासीनता मे जो एक प्रच्छन्न ऐश्वर्य है, वह नमिता खूब समझती थी, और उसका उपभोग भी करती थी, किन्तु कल्पना के साथ जब से उसका दूसरा परिचय प्रारभ हुआ है, कल्पना को वह बता देना चाहती है कि सामर्थ्य मे नमिता उससे कम नहीं है। कल्पना स्वभावतः ही बहुमूल्य परिधान पहनती थी, नमिता सोचकर आती कि जो साड़ी आज वह पहन कर आई है, वह कल्पना की कल की साड़ी से बहुत बढ़िया है, कभी वह बढिया होती, कभी रग मे, कभी चमक मे, और कभी रुचि मे ही; किन्तु कॉलेज मे वह देखती कि कल की साड़ी का आज कोई महत्व नहीं है। आज तो जो साड़ी वह पहने हुए है, वह उसकी साड़ी से बहुत ऊँची है। यह आवश्यक नहीं है कि कल्पना की साड़ी नमिता की साड़ी से सचमुच ऊची हो ही, पर नमिता को सदैव ही यही प्रतीत होता। और दिन का अत नमिता की इसी भावना में होता कि कल्पना उसके लिए असह-नीय है, वह कॉलेज में आती ही क्यों है ?

और अब जब दो-तीन दिन से वह नहीं आरही है तो उसके शरीर का वह अलकरण क्या उसके लिए भार नहीं हो उठा ? वह जो बगल मे च्यवन को बिठा कर अपने चित्त के हलकेपन का प्रदर्शन करती है, क्या कल्पना को दिखाने के लिए ही नहीं ? सँपेरा जब साँप के साथ खेलता है, तो क्रीड़ा की सहज भावना से प्रेरित होकर नहीं, प्रत्युत् दर्शकों को दिखाने के लिए ही तो उसकी दशन-शक्ति को सोचता नहीं। पर जब दर्शक ही न हो तो क्या विषधर-सर्प के क्रोध को वह सरलता से अपनी क्रीड़ा का अंश बना सकता है ? जब कॉलेज की सूचना से उसे सतोष न हुआ तो संध्या को कमरे का दरवाजा बन्द करके उसने टेलीफोन की शरण ली। डायरेक्टरी उठा कल्पना के नम्बर की सूचना ली, और डायल घुमा कर बोली—

"जी मैं हूँ नमिता। कहाँ से बोल रही हैं आप ? कल्पना की माताजी ! नमस्ते नमस्ते माताजी !--जी हाँ मैं नमिता ही हूँ, रायबहादुर सुमनप्रसादजी की लड़की, अपने ही घर से बोल रही हूँ। आपको क्या विश्वास नहीं

होता !—खैर कोई बात नहीं, जी, मैं कल्पनाकुमारी की सहेली हूँ, हाँ, हम एक ही कक्षा मे पढ़ती हैं। वे है कहाँ—दो-तीन दिन से कक्षा मे नहीं आती। क्या कहा, कहीं बाहर गई हैं? पिकनिक मे? मेरे साथ?—यानी नमिता के साथ?—नमिता तो यही शहर मे है—देखिए बोल जो रही हूँ। नहीं ऐसा कोई इरादा ही नही था, कभी नहीं था,—न कक्षा का कोई अन्य छात्र या छात्रा ही यहाँ से अनुपस्थित है। मुझे कुछ सोचने दीजिए। मैं अभी एक घण्टे के भीतर आपके यहाँ आरही हूँ। यह तो आपने बड़ी भयानक खबर सुनाई। पर माताजी, दुःखित न हों आप, मैं पता लगा कर रहूँगी। मैं समझती हूँ सफल हो जाऊँगी। उनकी कोई बात मुझसे छिपी नही है। हम दोनों गहरी सखियाँ हैं। इसीलिए मैं तो सोच रही थी तबीयत को कुछ हो न गया हो! मैं भी आपही की कन्या हूँ, आप कुछ चिन्ता न कीजिए। नहीं, नही, यह बात किसी से कही जा सकती है?—आप निश्चिन्त रहिए। मैं अभी आई।"

—तो कल्पना दीदी मा-बाप से छिपकर अभिसार करने गई हैं!—और उधर निर्मल मुझे खत लिखता है कि तुम्हारे बिना मुझे कुछ सुझाई ही नहीं देता! कल्पनाकुमारी खूब सुझाई देजाती हैं। उसे पत्र लिखे जाते हैं, उसे बुलाया जाता है, रँगरेलियाँ मनाई जाती हैं, और लिखा जाता है कि इस उत्ताप मे क्या किसी कुसुम-कलिका के बिहँसते रह सकने की सभावना की जा सकती है? एक पत्थर से दो चिड़िया शिकार करना चाहते थे निमल! यदि कल्पना मूर्ख न होती तो कदाचित तुम सफल भी हो जाते, किन्तु प्रेम के हथियार से किसी को मारना सरल नहीं है। वह 'बूमरैंग' जो है। सोचते हो तुम्हें कल्पना और उसकी सम्पत्ति मिल जाएगी? देखोगे कि तुम्हें क्या मिलता है?

और कल्पना, कल-परसों तक जो कछुए की तरह जरा-सा स्पर्श पाते ही अपने ही आप मे सिकुड़ जाती थी, वह आज हिरन की तरह चौकड़ी भर रही है? कहती है, कि नमिता के साथ पिकनिक को जा रही हूँ और पिकनिक चल रही होगी किसी लताकुज के नीचे निर्मल के साथ! उसकी गोद मे सिर रखकर वह शिथिल हो गई होगी, और निर्मल उसके केशों मे अँगुलियाँ उलझा कर उसके फूल निकाल ले रहा होगा। कल्पना की आँखों के विस्तृत आकाश मे निर्मल के सिक्त-स्पदन की सुरभित वाष्प मेघ बनकर उमड़ रही होगी—ऊफ़—नमिता अधिक इस चित्र को देख नहीं सकती! मानों वह चित्र उसकी आँखों के ठीक सामने घट रहा हो, इसलिए उसने दोनों हथेलियों से अपनी आँखें बन्द कर लीं। नमिता के गुड्डे से खेलनेवाली अबोध छोकरी!—तो तू भी जल नमिता की इस अग्नि मे!

कल्पना के घर से लौट कर नमिता सीधी च्यवन के कमरे में गई। च्यवन दरवाजे की ओर पीठ किए कुर्सी पर बैठा हुआ बिजली के प्रकाश मे कोई पुस्तक पढ रहा था। नमिता ने समझा कि उसे नमिता के प्रवेश का कोई आभास नहीं मिला है, न जाने क्या अकस्मात् ही उसके मन मे कुछ प्रेरणा हुई कि पीछे से जाकर च्यवन की आँखों को अपनी कोमल हथेलियों से ढँक दिया। किताब को बन्द कर च्यवनने नमिता के हाथपर हाथ रखा। आँखें बन्द करने-वाला कौन है, यह वह जान चुका था, किन्तु यह तो बड़ा अलभ्य अवसर है, इसे कैसे खोया जा सकता है? होंठों मे ही मुस्कान को दबाकर उसने नमिता के सारे हाथ पर अपने हाथ फिरादिए और धीरे से बोला—

"कौन हो तुम?"

नमिता कुछ न बोली, च्यवन के हाथों की शोध चलती रही, वह बोला—

"कविता के समान यह कोमल बन्धन, मन्द-ताल पर नृत्य करती हुई सुरभित श्वसन की ये लघु लहरियाँ,—" और इसी बीच च्यवन ने नमिता के दोनों कपोलों को अपनी अँगुलियों से स्पर्श कर लिया। मानों एकदम चौंककर नमिता ने अपने हाथ खींच लिए, और वह झटके के साथ दूर खड़ी हो गई।

च्यवन भी एकाएक चौंक उठा और बोला: "ओह, नमिता कुमारी, आप हैं।"

"तुम बड़े छली हो, च्यवन।"

"नारी उसे क्या-क्या नहीं बना देती, नमिता कुमारी।"

"अपनी फिलॉसफी रहने दो। मैं एक प्रयोजन से आई हूँ।"

"नारी का प्रयोजन कभी शेष नहीं होता, यह मैंने पढा है।"

"खाक पढ़ा है तुमने। मैं कहती हूँ च्यवन बाबू, तुम्हे हमारे साथ निर्मल के गाँव चलना है!"

"हमारे साथ, यानी?"

"मैं और पापा!"

"तो बीच में मैं मूसरचन्द क्यों?"

"प्रयोजन है। भूल गए इतने शीघ्र?"

"क्षमा चाहता हूँ। पर मेरा जाना क्या अनिवार्य है?"

नमिता च्यवन का हाथ पकड़ कर बोली: "क्या मेरे साथ से कतराते हो?"

"सोचता हूँ...तुम्हीं मेरे साथ से कतराना चाहो।"

नमिता ने हाथ छोड़कर एक लम्बी साँस ली। एक क्षण चुप रहकर कहा, "चलोगे न?—मैं अनुरोध करती हूँ!"

च्यवन ने अबकी बार स्वयम् नमिता का हाथ पकड़ कर कहा : "तुम—माफ करना, आप आदेश दीजिए।"

नमिता ने हँसकर कहा : "माफ भी किया और आदेश भी दिया, पर उसके पहले एक और अभ्यादेश है।"

"मैं प्रतिश्रुत हूँ।"

"आज से यह 'आप' का सम्बोधन बन्द!"

उसके बाद ही वह पिता के कमरे में जा उपस्थित हुई, और पिता के गले में हाथ डालकर बोली :

"पापा, उस दिन आप कह रहे थे न, निर्मल के गाँव चलने की?"

"किस दिन?—अरे हाँ, पर तुम तो इनकार कर गई थी।"

"तब तो, इन्कार कर गई थी। पर आज निर्मल का पत्र आया है, वह वहाँ बड़े संकट में हैं।"

"क्या कहा? किस संकट में?" बूढा सचमुच निर्मल को चाहता था।

"सो तो नहीं लिखा। सोचती हूँ यदि आप जाएँ तो मैं भी आपके साथ चल दूँ।"

"पर बेटी, अभी इस हफ्ते तो चलना नहीं हो सकेगा।"

"यह क्या कह रहे हैं पापा, निर्मल यों क्या कभी अपने संकट की चर्चा करते हैं? बल्कि मैं तो च्यवन से तैयार होने के लिए भी कह आई हूँ।"

"पर च्यवन···।"

"वह भी तो निर्मल के अभिन्न मित्र हैं।"

"तो फिर यह तो बड़ा अच्छा है, तुम दोनों चले जाओ।"

"नहीं पापा, आपको चलना ही पड़ेगा। पापा मेरी प्रार्थना है आपके निकट!"

"आदेश दो बिटिया, तुम्हारी कौन-सी बात मैंने नहीं मानी! तो कल शाम की गाड़ी से रिजर्वेशन करवा लो।"

: ८ :

आज फैसले का दिन था, अतः घर के दोनों दल समय के पूर्व ही अदालतके लिए रवाना हो चुके थे , घर पर रह गए थे शिशिर और हेमन्त बुआ के दल मे से, और निर्मल के दल मे से एक दासी, जो उसका कमरा साफ कर दिया करती थी। हेमन्त मुक्त-जीव था अतः शिशिर के ऊपर घर का भार छोड़ कर वह बाहर निकल गया था। इधर दासी ने जो देखा कि बाबू ही घर पर नहीं हैं तो आज का काम कल पर छोड कर वह भी अपने घर लौट गई। दस बजे जब कल्पना कुली के सिर पर अपना हैण्ड बैग, अटेची और बिस्तरा लिए आ उपस्थित हुई, तो घर पर शिशिर के अतिरिक्त कोई न था। कल्पना इस गाँव में नई-नई आई थी, कुली पूछ-पूछ कर घर तलाश कर रहा था।

कुली ने पूछा : "ऐ छोकरे—"

शिशिर दो दूसरे बच्चों के साथ घर की देहलीज पर खेल रहा था। 'छोकरे' सम्बोधन से बिगड़ उठना उसके लिए स्वाभाविक था। उसने उसकी ओर देखा, व्यंग से होंठों को सिकोड़ लिया, और फिर चुप हो गया।

कुली ने कहा : "मैं तुमसे पूछ रहा हूँ !"

मुँह बना कर शिशिर ने कहा : "पर मैं जवाब दूँ तब न !—देखते नहीं ? स्कूल जाता हूँ मैं ; मैं छोकरा हूँ ?—मेरा नाम है शिशिर कुमार !"

कल्पना ने आगे बढ कर कहा : "ओह शिशिर बाबू ! तुम्हीं से तो मतलब है भैया ! लेमनचूस पसन्द हैं न तुम्हें ? मैं तुम्हारे लिए शहर से लाई हूँ। निर्मल बाबू यहीं रहते हैं न ?"

लेमनचूस का नाम सुनते ही शिशिर उठ खड़ा हुआ : "पर वे तो अभी यहाँ नहीं है। शायद शाम तक आएँ!" और उसके मुँह पर दैन्य छा गया। क्या लेमनचूस भैया के लौटने पर ही मिलेंगे?"

"मकान तो यही है न?—मैं शहर से आरही हूँ उनसे मिलने के लिए ही।"

"वे लौटेंगे तब तक ठहरगी न?—चलिए, उनका कमरा बतला दूँ।"

बड़े उत्साह के साथ शिशिर कल्पना को मकान के भीतर ले गया। कुली ने सामान जब नीचे रख दिया तो शिशिर को मानो अवसर मिल गया, घुड़क कर बोला : "ऐ ऽ यहाँ सामान कहाँ रखता है? ऊपर कमरे मे ले चलो निर्मल भैया के कमरे मे! मेरे पीछे-पीछे चले आओ, यहाँ सामान रक्खा तो माताजी बाहर फिकवा देंगी।"

कल्पना ने मुस्करा कर इशारा किया और सब ऊपर निर्मल के कमरे में पहुँच गए। कुली जब रवाना हो गया तो कल्पना ने शान्ति की साँस ली। यह भी अच्छा हुआ कि निर्मल कुमार घर पर नहीं हैं, तथा और भी अच्छा है कि घर पर शिशिर के सिवा और कोई नहीं है। यदि कोई मिल गया होता तो सब कुछ समझाने के लिए कठिनाई तो पड़ती ही।

किन्तु शिशिर के मन को चैन न था, उसने, पूछा : "शहर में भी लेमन-चूस वैसे ही होते हैं जैसे यहाँ?"

कल्पना ने कहा : "यहाँ के तो मैंने कभी देखे नहीं।"

जेब से एक टिकिया निकाल कर उसने बताई : "यह देखिए; निर्मल भैया खरीद कर लाए थे।"

कल्पना ने देखा कि बच्चे का मन जीतने का यह बहुत ही उपयुक्त अवसर है। लेमनचूस उसने अपने थैले में ही रख छोड़े थे, मुट्ठी भर कर उसने मुस्कराते हुए शिशिर की ओर बढ़ा दिए। शिशिर बोला : "इतने सारे? माताजी देखेंगी तो पीटेंगी।"

"माताजी लौटेंगी तब तक तो खतम हो जाएँगे।"

"फिर कल"

"फिकर न करो। मेरे पास और भी बहुत हैं।"

"कहाँ पर रक्खे हैं?"

अपने अटेची केस की ओर संकेत कर कहा : "वहाँ!"

"सारा भरा हुआ है?" कल्पना ने मस्तक हिला दिया। दोनों में विश्वास और मैत्री की भावना जम गई।

शिशिर से कल्पना ने मकान की सारी व्यवस्था को मालूम कर लिया। बुआ

शिशिर वगैरा कहाँ रहते हैं, घर में और कौन-कौन प्राणी हैं, मामाजी की मृत्यु के पूर्व शिशिर वगैरा कहाँ रहते थे, मकान मे स्नान घर, शौच घर, रसोई वगैरा कहाँ पर हैं, निर्मल के भोजन की क्या व्यवस्था है— एक-एक करके उसने, जहाँ तक हो सकता था, शिशिर से बहुतेरी बातें मालूम कर लीं !

खाना निर्मल बाहर होटल मे खाता है। चाय अवश्य वह घर पर ही पीता है पर बनाता अपने ही हाथ से है बिजली के स्टोव पर। दासी आकर बरतन साफ कर जाती है। कमरे की एक अलमारी मे एक कोने मे दूध का चूर्ण, चाय, कॉफी, शक्कर आदि पड़े हैं। स्टोव टेबल पर रखा है चूँकि दासी आकर बिना कुछ किए ही लौट गई थी, अतः केटली कप-प्लेट वैसी ही बिना धोई पड़ी हुई हैं। कमरे मे सब वस्तुएं बिखरी पड़ी हुई हैं। पलंग पर रात का बिस्तर वैसा ही बिखरा पड़ा है, न जाने कितने दिनों से ऐसा ही पड़ा हुआ है—रात को सोने का काम तो दे ही देता है ! पुस्तकें कमरे मे चारों ओर बिखरी हैं। निर्मल ने जहाँ बैठकर जो पुस्तकें पढ़ी, वहीं छोड़ दी उठकर पूर्व स्थान पर रखने का अवकाश न उसे मिला और न वे रखी गयीं। मैले कपड़े कुछ तो उधर अलमारी मे रक्खे हैं, कुछ खूँटी पर और कुछ उधर कोने मे बिखरे पड़े हैं। धोबी तक पहुँचने के पहले उनकी उपस्थिति कॉल (पुकारी) की जाती हो, ऐसा दिखाई नहीं देता। तब कितने धोबी के घर पहुँचते हैं, और कितने दूसरी गाड़ी की राह देखते रहते हैं, कौन कह सकता है ! और जब लिखा न जाता हो तो यही क्या जरूरी है कि धोबी के यहाँ से कपड़े लौटे हीं।

सौंदर्य, सुरुचि और व्यवस्था की प्यास तो पुरुष मे है, पर उनकी सामर्थ्य भी उसमे है क्या ? अपने चारों ओर इस प्रकार के बिखरे वातावरण की स्वेच्छया सृष्टि करके भी यदि वह किसी सुन्दर नारी के अभाव में जीवित रहना असम्भव समझता हो, तो उसकी स्पर्द्धा को क्या कहा जा सकता है ?— किन्तु इस प्रकार की आत्म-विस्मृति में स्वयम् क्या कोई सौंदर्य नहीं ? आज क्यों कल्पना ही को निर्मल के कमरे की इस अव्यवस्था से इतना राग पैदा हो गया ? पुरुष सौंदय की पिपासा का ज्वलंत- प्रतीक हो, किन्तु क्या नारी भी सोदर्य की पिपासा ही में दग्ध होती है ?—नहीं, उसे सोंदर्य नहीं चाहिए ! वह सौंदर्य नहीं खोजती, वह प्यास खोजती है, सहानुभूति से जगी हुई प्यास, जिसको तृप्त करने में उसे अपने जीवन की सार्थकता अनुभव हो ! कल्पना को मालूम दिया, मानों आज, जीवन में पहली बार कहीं पर उसका प्रयोजन हुआ है, यहीं पर उसकी सार्थकता है। अब तक जो कुछ वह करती आई है, वह तो केवल उपलक्ष्य मात्र था !

यात्रा की थकावट थी , सबसे पहले उसने केटली और चाय के बर्त्तन धोकर अपने लिए चाय बनाई। शिशिर उसके सब काम मे मदद करता रहा। दोनों ने मिल कर एक-एक प्याली चाय पी। फिर सब बर्त्तनों को ठीक तरह सहेज कर उसने कमरे की ओर ध्यान दिया। मैले कपड़ों को इकट्ठा करने मे, पुस्तकों को तरतीब से रखने मे, कमरे को साफ करने में उसे काफी समय लग गया। बिस्तर को ठीक किया, चादर बदल दी। कमरे के फर्निचर को दूसरे ही सुरुचिपूर्ण ढंग से सजा दिया। नीचे सहन में से शिशिर से फूल मँगा कर फूलदान सजाया, खिड़कियों पर ठीक ढंग से परदे लगा दिए। कमरे की काया पलट हो गई। नए आदमी को कमरा पहचान ने में भी कठिनाई होती!

सफाई के सब काम से निवृत्त होकर स्नान घर से जब वह बाहर निकली तो सूर्य पश्चिम में जा चुका था। निर्मल के घर लौटने का समय हो चुका था। उत्साह और जड़ता के बीच कल्पना की भावना मन्द होती जा रही थी। विवेक की वल्गा का अतिक्रमण कर उसके मन का दुर्निवार तुरंग उसे यहाँ पर भगा तो लाया, किन्तु अब क्या होगा? निर्मल उसके आगमन को किस भाव से ग्रहण करेगा? इस तरह घर से चले आने को यदि उसने कल्पना की लज्जाहीनता का प्रमाण मान लिया, तो वह क्या करेगी? यह बात तो उसे घर से पैर निकालने के पूर्व ही सोचना चाहिए थी। निर्मल ऐसा सोचे तो उसे दोष कैसे दिया जा सकता है? कल्पना के लिए उसके हृदय मे कोई अनुरक्ति नहीं है, यदि वह किसी को चाहता है तो केवल नमिता को, फिर भी कल्पना के लिए, एक ग़लत पत्र के पाने के संयोग की क्षीण पतवार के सहारे इस अतरणीय-समुद्र मे अपनी नाव को बढ़ा ले आना कैसे सम्भव हुआ?—कि तभी दरवाजे पर एक कार के रुकने की आवाज ने एक बार ही उसके हृदय को जड़कर दिया। फिर एक बार और स्नान घर में घुसकर उसने दरवाजा बन्द कर लिया और बाहर की आहट लेने लगी!

घरमे कोहराम मच गया। निर्मलकुमार न था, बल्कि थी एक प्रौढ़ महिला, एक जवान युवक शायद उस महिला का लड़का हो, और एक और प्रौढ़ सज्जन। पति-पत्नी?—आते ही महिला ने आवाज दी: "शिशिर, शिशिर!—कहाँ चला गया है?—देख तो हेमन्त! इसके मारे तो नाक में दम आ गया। घर पर छोड़कर जाओ, तो मिलेगा सड़क पर। और देख तो, आज तो इस नौकरानी का दिमाग तो नहीं बदल गया कहीं? कभी तो ऐसा काम नहीं कर जाती! पर अब कहाँ होगी?—अगर घर पर मिल जाती तो थोड़ी मदद ही मिलती। और अपने चाचा से कह, खड़े मुँह क्या तक

रहे हैं ? टैक्सी बाहर खड़ी है। जल्दी ही सहेज कर सामान जो रखना है !"

शायद प्रौढ़ व्यक्ति ने कहा : "भाभी, तुम्हारा क्रोध अभी तक गया नहीं मालूम देता। मुकदमा हार तो गई हो, पर गाँठ से क्या गँवाया है तुमने ?"

"चलो रहने दो। यह मकान ही दस हजार से क्या कम था ? यदि यही मालूम होता तो बीमारी और क्रिया-कर्म में जो खर्च हुआ है, उसको सहेज रखती।"

प्रौढ़ व्यक्ति ने क्या उत्तर दिया, यह नहीं सुना जा सका, क्योंकि तब तक दोनों या शायद सब भीतर आगे बढ़ गए थे। तो निर्मलकुमार मुकदमे में जीत गए हैं, कल्पना को एक आन्तरिक प्रफुल्लता अनुभव हुई। निर्मलकुमार की एक चिन्ता क्या कम हुई, मानों कल्पना के हृदय पर से शिला का बोझ हट गया। और उसे समझते देर न लगी कि महिला हैं निर्मलकुमार की बुआ, हेमन्तकुमार है उनका बड़ा लड़का, शिशिरका बड़ा भाई !—अपना सामान इकट्ठा करके घर लौट रहे हैं। निर्मलकुमार लौटे उसके पहले ही शायद लौट जाना चाहते हैं ! यदि कोई निर्मल का अटेची केस ही उठा ले गया ?—बाहर निकल कर उसका उपस्थित रहना आवश्यक है। कल्पना ने बाथ रूम से बाहर आयी।

तब तक शिशिर भी बाहर से खेलता हुआ भीतर आ चुका था। बुआ कह रही थी : "तुझे मैं घर की रखवाली के लिए छोड़गई थी न ! किसके भरोसे घर छोड़ कर तू बाहर चला गया ? अगर कोई यहाँ से कुछ उठा ले जाता ?"

"दीदी जो यहाँ पर थीं।"

"दीदी ? कौन दीदी ?

"तुम नहीं जानती ? वही निर्मल भैया की —"

तभी कल्पना ने आकर बुआ को प्रणाम किया, और बोली : "मुझे कल्पना कहते हैं। मैं शहर मे निर्मलकुमार के साथ पढ़ती हूँ। घर जा रही थी, गाँव रास्ते मे पड़ गया तो सोचा, एक ट्रेन ठहरकर निर्मलबाबू की खबर ही लेती चलूँ। आप जब अदालत चली गई थीं, तभी तो आपके दर्शन ही नहीं हो सके। क्षमा चाहता हूँ !"

इस समस्त कैफियत की आवश्यकता नहीं थी। बुआ का पारा गरम था ही, बोलीं : "क्षमा माँगने की आवश्यकता ही क्या है ?—निर्मल की सहपाठिन हो और निर्मल के ही घर आई हो, मैं बीच में क्षमा करनेवाली होती ही कौन हूँ। बल्कि दस-पन्द्रह मिनिट में ही तो हम इसे खाली कर रहे हैं। गलती थी कि भाई को भाई करके माना, नहीं तो रंडी के छोकरे की यह मजाल कि वह उसी भाई का बेटा बन जाए, और हमें घर से बाहर निकलवा दे ?

किसे मालूम था कि बाँह में साँप का बच्चा बड़ा हो रहा है ! पर जो हो, गरीब का भी राम है। रहे वह पसरकर यहाँ! गुलछर्रे उड़ाए, और मा जैसी ही किसी लड़की को लेकर बाप का नाम रोशन करे।—अरे शिशिर, तू यहाँ खड़ा-खड़ा क्या देख रहा है ?—जा—ये कोई अजायबघर से थोड़ी टपक पड़ी हैं। जा उधर से सामान गाड़ी मे रख !" और बिना कल्पना की ओर दृष्टिपात किए वे भी एक ओर चल दीं।

विशेष कुछ कल्पना समझ न सकी, पर बुआ से और कुछ पूछना भी न सुविधा जनक था, न प्रीतिकर ही ! वह धीरे-धीरे ऊपर निर्मल के कमरे मे चली गई। एक अव्यक्त आशंका अवश्य उसके मनमे व्याप गई।

सामान सहेजते-सहेजते आखिर आधा घटा लग ही गया। लेकिन कल्पना का खयाल उनके मन से निकल गया हो सो बात नहीं—अपने आपको निर्मल की सहपाठिन बताती है। कालेज मे साथ पढ़ती भी हो, परन्तु यहाँ आने का कारण ? क्या निमल ने ही इसे नहीं बुलाया होगा ? तभी न आते ही उसके कमरे मे दखल जमा लिया मानो कमरे ही पर नहीं, घर और घरके मालिक पर भी उसका पूरा अधिकार है। बेटे पर बाप और मा के सोलहों गुण और बत्तीसों लक्षण चरितार्थ हुए हैं ! पर गाँव हुआ तो क्या हुआ ? इस तरह दिन-दहाड़े किसी जवान छोकरी को घरमे रखना सरल नहीं हैं। बाप किसी काम को सरलता से कर गया, इसीलिए क्या बेटे के लिए भी वह वैसे ही सरल हो जाएगा ? कानून ने मदद नहीं की तो पंचों की कचहरी तो है !—कल ही इस छोकरी और निर्मल को बता दूँगी कि बुआ भी कोई होती है। उससे खेलना सरल नहीं है। भगवान ने भी क्या सुन्दर मौके पर इस छोकरी को भेज दिया है।—इस तरह सोचते-सोचते ही बुआ का सारा सामान लद गया, और कल्पना को घरके अंधेरे में व्याकुल, आशकित छोड़ कर सभी प्राणी वहाँ से चले गए। जाते समय किसी ने, शिशिर तक ने, उसे आकर सूचना तक न दी !

संध्या का अन्धकार गाढ़ा होने लगा। ऊपर आकाश में नक्षत्र रात्रि के नीरव व्यापार की साक्षी के लिए आ बैठे। अपने कमरे के अन्धकार में कल्पना अपने आप मे ही खोई हुई जाने क्या सोचती रही।—उसका शरीर और मन दोनों अवसन्न होते जा रहे थे। रात भर का सफर था, सबेरे से खाया न था, केवल दो बार चाय उसने अवश्य उपस्थित उपस्कर से तैयार करके पेट में डालली थी। दिन भर घर की सफाई मे लग गया था। आखिर शरीर मनुष्य ही का था, पत्थर का नहीं ! सोचते-सोचते ही वह लेट गई, और लेटे-लेटे ही कब उसे नींद आ गई, उसे मालूम ही नहीं !

मुकदमा तो निर्मल कुमार जीत गया, किन्तु एक करारी मानसिक चोट खाकर। उसके जन्म का जो वृत्तान्त बुआ और उसकी गवाहियों द्वारा प्रकाश में आया, उससे मानों उसकी दुनिया ही बदल गई। उसके प्रति पिता के प्रगट व्यवहार तथा बुआ के द्वारा उपस्थित प्रमाणों मे पर्याप्त के अभाव के कारण ही न्याय का निर्णय उसके पक्ष मे हुआ, इसमें कितना हाथ उसके कुशल वकील का था, और कितना निर्णायक की दयालुता का, यह कहना कठिन है, किन्तु जन्म के वृत्तान्त को प्रामाणिक न मानना स्वयम् निर्मल के लिए तो उतना सरल नहीं है।

जनता कानून की अव्यर्थता पर तो विश्वास करने के लिए विवश होती है, पर उसकी प्रामाणिकता पर भी विश्वास करने की कोई विवशता का विधान नहीं है, बल्कि कुछ मामलों में तो बेपर की उड़ी हुई गप्पें ही उनके लिए अधिक सार की वस्तु, प्रामाणिक होती हैं; उनमे रस तो निश्चय ही अधिक होता है, और सामान्य से कहीं अधिक आकर्षण भी। अतः निर्मलकुमार के बारे मे विचारक ने चाहे जो न्याय दिया हो, जनता की राय का उससे मेल खाना कोई आवश्यक नही है। इस स्थिति में निर्मलकुमार के लिए अपनी विजय का क्या मूल्य था, यह पाठक सरलता से समझ सकते हैं।

सच तो यह है कि जज का पूरा निर्णय भी उसने नहीं सुना, और वह चुपके से खिसक गया। लोगों को मालूम ही तब पड़ा जब कि जज का निर्णय पूरा सुन लेने के बाद उनकी उत्सुक आँखें अपना शिकार खोजने के लिए निराश भटकने लगीं। कोर्ट से निकल कर मुख्य मार्ग से अपने आप को बचाता हुआ वह बस्ती से बाहर एक तालाब की ओर निकल पड़ा। घर लौट कर अपने परिचितों से सम्पर्क प्राप्त करने की उसकी इच्छा ही नहीं रह सकी। नए रूप में अपने आपको पाकर मानो वह स्वयम् से भय करने लगा। यदि वह ऐसा निर्मल है, यदि उसके जन्म की कथा इतनी अनिर्मल है, तो उसका क्या सम्मान रह गया? और जिस सम्मान का अब तक वह अपने आप को अधिकारी मानता आया है, और जिस सम्मान को वह चारों ओर से पाता रहा है, क्या वह उसके लिए एक निरी विडम्बना न थी? और अब जब कि उसे वह सब कुछ खोना पड़ेगा तो क्या उस प्राप्ति से बढ़ कर दुर्भाग्य यह खोना नहीं होगा?

अब तक उसे न केवल अपनी उत्तम परिस्थिति का वरच अपने कौलीन्य का भी गर्व था। जैसे अपने पिता की प्रतिष्ठा उसके लिए गौरव जनक थी, वैसे ही माता की प्रतिष्ठा को भी वह अपने लिए गौरवास्पद समझता था। यद्यपि कोई उसकी माता को जानता न था, किन्तु इस देश में नारी की अप्र-

तिष्ठा का अभाव ही उसकी सबसे बड़ी प्रतिष्ठा है ! आज सब कोई न केवल उसकी माता को जानने ही लग गए, बल्कि एक निश्चित-अप्रतिष्ठा में उन्होंने उसे सुविनिष्ठ भी कर दिया था। जन्म की इस दुर्घटना से पिता की प्रतिष्ठा मे अब क्या उसका शेष प्राप्य रह जाता है, यह वह खूब जान चुका था।

कस्बे के बाहर जो दवाखाने का एकाकी पार्क था, उसमे बीमार तो आश्रय नहीं लेते थे , किन्तु कुछ शहर से लौटे हुए मुक्त-वायु-कामी युवक संध्या को वहाँ पहुँच जाया करते थे। सोचता-सोचता निर्मल उसी पार्क मे पहुँच गया, और एक दूर के कोने मे एक घने कुज के नीचे लेट गया। कुछ देर तक तो उसका मन वास्तविक-अवास्तविक कल्पनाओं के साथ खेलता रहा, पर शीघ्र ही तन की थकावट में उसकी आँखें झँप गईं। पर क्या नींद भी उसकी शान्तिमई थी ?

उसे जगाया रात को दस बजे पार्क के माली ने, जब कि वह दरवाजा बन्द करना चाह रहा था। आवाज देने पर भी जब निर्मल न उठा तो उसे उसके बदन को झकझोरना पड़ा। हाथ लगाते ही वह चौंक पड़ा, ज्वर से निर्मल का बदन जल रहा था। और ज्वर भी साधारण नहीं।—मालूम देता है वह नींद न थी, बल्कि बेहोशी थी !

दवाखाना ठहरा। डॉक्टर सोगया था, पर कम्पाउण्डर तब भी नर्स के साथ बैठा गप्पें हाँक रहा था। सुनकर उसने कहा, कोई शराबी पड़ा होगा, उसे धक्के देकर निकाल दिया जाए। किन्तु माली ने उसके ऊँचे परिवेश का प्रमाण दिया।

कस्बे में निर्मल जैसे सभ्य-सस्कृत व्यक्ति अँगुलियों पर गिने जा सकते हैं। मुकदमे से उसे इस कस्बे मे पर्याप्त ख्याति भी प्राप्त हो गई थी जैसे ही कम्पाउण्डर ने देखा तो उसे पहचान गया।

जागने पर निर्मल भी उसी तरह बदहवास था। उसने पूछा : "मैं कहाँ हूँ।"

"दवाखाने मे। आपको तो बहुत तेज ज्वर है। आप कब से इस हालत में हैं ?'

लेकिन तब तक निर्मल ने अपनी परिस्थिति को सम्हाल लिया। उसने कहा: "मालूम देता है, मुझे नींद आ गई थी।"

और रोशनी के सामने हाथ पर बँधी घड़ी देखकर बोला : "साढ़े दस बज गए ? मुझे घर जाना चाहिए।"

वह उठा, किन्तु भयानक मस्तक-शूल से उसे चक्कर आने लगे, वह फिर बैठ गया, और बोला : "क्या कोई सवारी मिल सकती है इस समय ?"

कम्पाउण्डर ने माली को इशारा किया। सौभाग्य की बात थी कि इस समय भी एक गाड़ी स्टेशन पर आती थी, और ताँगा मिल जाना सम्भव था।

जब दरवाजे पर ताँगा रुका तो रात के ग्यारह बज गए थे। दुश्चिन्ता और आशंका से भरी हुई कल्पना संध्या से ही राह देखते-देखते सो चुकी थी। दरवाजा खटखटाने पर, जानी-पहचानी प्रौढ़ा बुआ के स्थान पर जब एक अपरिचिता नव युवती ने किवाड़ खोले, तो माली को भी आश्चर्य हुआ। निर्मल तब भी ताँगे ही मे लेटने की मुद्रा मे बैठा हुआ, दरवाजा खुलने की राह देख रहा था।

कल्पना ने अजनबी को दरवाजे पर देख कर पूछा : "कहिए ?—"

तबतक निर्मल नीचे उतर चुका था। माली ने कहा : "बाबू को बहुत ज्वर हो गया है बहन !"

"ज्वर ?"

देखकर निर्मल ने कहा : "आप—कल्पना कुमारी ?"

"जी हाँ, मैं !" कल्पना ने हाथ जोड़े, फिर कहा : "पर आपको ज्वर—

"कह नहीं सकता एकाएक क्यों हो गया ?—पर शायद रात बीतने तक यह भी बीत जाए !—

ताँगेवाले को किराया चुका दिया गया, और एक रुपया माली को। वे लौट गए। भीतर प्रवेश कर निर्मल ने जहाँ तक हो सका स्वाभाविक स्वरमे पूछा : "कब आई आप ?"

"आज सवेरे !"

"सवेरे ?" मुड़ कर निर्मलने देखा कि कल्पना ने दरवाजा बन्द कर दिया।

"बुखार का मुझे भी कुछ आभास न था। मालूम देता है बहुत पहले से हजरत मेरे शरीर का आसन दखल किए हुए है, तभी तो इतनी दुर्बलता अनुवभ कर रहा हूँ। शायद बुआ ने नीचे ही कोई कमरा आपको दे दिया है पर आपको क्षमा कर देना होगा।—पर देखिए, मुझे चक्कर-सा आ रहा है। सामने की-सब जमीन भागती-सी दिखाई दे रही है। क्या मुझे ऊपर मेरे कमरे तक सहारा दे सकती हैं।

कल्पना एकाएक व्याकुल हो गई।

एक क्षण तक ठहर कर निर्मल ने कहा : "संकोच में मत पड़िए। रहने दीजिए। शिशिर को आवाज दे लेता, पर सभी जाग जाएँगे, और फिर आज के निर्मम काण्ड के उपरान्त। नहीं नहीं; मैं खुद ही चढ़ जाऊँगा।"

कल्पना ने निर्मल का हाथ पकड़ लिया। भयानक ताप से हाथ जल रहा

था; कल्पना काँप उठी, बोली : "आपको तो बहुत तेज बुखार है। डॉक्टरको यदि एक बार—"

म्लान हँसी हँसकर निर्मल बोला : "ऐसे ज्वर के निदान डॉक्टर के बूते के नहीं होते। कारण ही की तलाश नहीं हो सकती उन्हें!—फिर सारे कस्बे में एक ही डॉक्टर है, उसकी नींद में खलल डालने के बराबर है।—"

तभी कल्पना ने अनुभव किया कि निर्मल के पैर काँप रहे हैं, और उससे आगे बढ़ना भी कठिन हो रहा है।

"पर आप तो—"

"इन लोगों ने मन को बहुत तेज ज्वर की सूचना जो दे दी, वरना कोई खास अनुभूति थी ही नहीं। पार्क में आखिर सो ही रहा था, कहने लगे बेहोशी थी! पर देखिए—मुझे कुछ दिखाई नहीं देता, दिमाग ही घूम गया मालूम देता है। पर यह जो नीचे ही तीसरा कमरा है, इसी मे शिशिर और हेमन्त सोते हैं। धीरे से पुकारने से दोनों ही जाग जाएँगे। उनकी सहायता से मैं बाखूबी ऊपर जा सकूँगा। बुआ को नहीं बुलाना चाहता। लज्जा से मर जाऊँगा कल्पना देवी, मेरे विरुद्ध मुकदमे में वे हार गई हैं।"

निर्मल की इस मनोस्थिति मे क्या यह कहना उपयुक्त होगा कि बुआ और उसके कुटुम्बी घर परित्याग करके चले गये हैं? डॉक्टर चाहे निर्मल के इस अस्वस्थ्य का कारण न समझे, पर कल्पना तो कुछ-कुछ समझ ही गई है। उसने कहा :

"मेरे कन्धे का यदि आप सहारा ले सकें तो ऊपर तक मैं आपको पहुँचा दूँगी।"

"हाँ, यदि उपयुक्त होगा। पर आपको कितना कष्ट दे रहा हूँ मैं! न जाने किस सयोग से आप यहाँ पर अतिथि हो गईं, और मैं हूँ कि—पर ऊपर ही लिवा चलिए मुझे, वहीं हो सका तो बातें होंगी!—ऊपर भी दो-तीन कमरे हैं; किसी एक मे दासी को कहकर सबेरे ही सामान मँगवा लूँगा।"

कल्पना के कंधे का आधार लेकर निर्मल किसी तरह ऊपर पहुँचा। ऊपर निर्मल की शैया सजी हुई थी ही, पर ऊपर चढ़ने की क्लान्ति ने निर्मल की अवस्था को ऐसा झकझोर डाला कि वह भी लक्ष्य न कर सका। आते ही पलंग पर गिर पड़ा। और थकावट की गम्भीर नींद मे बेहोश हो गया!

कल्पना ने एक बार कमरे की ओर देखा दूसरी बार अपनी ओर फिर बीमार की ओर। संकोच किससे करे?—जिसके लिए संकोच किया जाता है, वही संज्ञाहीन पड़ा हुआ है, निस्तब्ध, निर्जन, निशीथ में सिवा उसकी स्वयम् की लज्जा के और तो कोई उसे बाधा न देगा। उसने निर्मल के

जूते उतारे, कोट उतारा; फिर कसकी पीठ में सहारा देकर उसने पलंग के बीचों बीच सुला दिया। सिरहाने आवश्यक तकिए रख दिए। फिर सारा बदन उसने लिहाफ से ढँक दिया। बदन की छान-बीन करने में उसे मालूम हुआ कि सचमुच ज्वर बहुत तेज है। पलंग के पास ही कुर्सी लगा कर वह बैठ गई। और गीली पट्टी करके उसने निर्मल के मस्तक पर रख दिया।—आधी रात तो बीत चुकी थी, शेष रात भी कल्पना की निर्वाक सेवा में मार्ग पा गई।

अत्यन्त तीव्र ज्वर की अचेतनता मे रात भर निर्मलकुमार प्रलाप करता रहा, केवल अन्तिम-प्रहर की शीतलता मे उसे कुछ शान्ति मिली, और कल्पना के हाथों के सुखद स्पर्श मे वह कुछ सो सका। किन्तु प्रातः काल ही कल्पना के धैर्य और अध्यवसाय की परीक्षा हो गई।

सबेरे आठ बजे के लगभग दासी आयी, तब तक निर्मल को शान्ति से सोया देखकर कल्पना स्नानादि से निवृत्त हो चुकी थी। दासीने आते ही देखा कि घर सूना पड़ा है, और एक नई जवान लड़की बाबू के कमरे को दखल किए हुए है। वह रहस्यपूर्ण मुस्कान के साथ हँस पड़ी।

कल्पनाने पूछा : "तुम यहाँ काम करती हो?"

किंचित् अवज्ञा से दासीने कहा : "देखती ही तो हो!"

कल्पना को दासी के स्वर की तिक्तताने दग्ध कर दिया। वह अमीर मा-बाप की सन्तान, दासियों से ऐसी बातचीत की आदि नहीं है। उसने कहा : "कल कहाँ थी सारे दिन?"

"दिन रात मेरा काम नहीं है बीबीजी! रात तो रात, दिन को भी दो घण्टा सबेरे, और दो घण्टे शाम को। दिन और रात को काम करनेवाली गाँव में नहीं, शहर मे ही होती हैं।"

"मालूम देता है, बहुत मुँह लगी हुई हो। तुम नहीं जानती कि मैं कौन हूँ।—अच्छा जाओ, तुम्हें आज से छुट्टी!"

"छुट्टी?—"दासीको इसकी आशा नहीं थी, पर जरा सम्हलकर बोली: "पर मैं जिसकी नौकर हूँ, वही तो छुट्टी दे सकता है।"

"चाहती है कि चुटिया पकड़कर निकाली जाए?" और एक कदम आगे बढकर कल्पना ने दरवाजे की ओर संकेत किया। दासी डर गई, उसका सब दर्प चूर हो गया। एक कदम पीछे हटकर बोली : "पर मेरी अब तक की तनखा?"

"कितनी होती है?"

"बीस के हिसाब से पहली तारीख से अब तक! आज क्या तारीख है?"

"दस! और, आज और कल क्यों गिन रही है?—अच्छा ले, यह ले।" और कल्पनाने दस का एक नोट बढ़ा दिया।

कस्बा ठहरा ; दासियों को प्रायः नौकरियाँ नहीं मिलतीं ; और जिसके हाथ से सरलता से रुपया निकल सकता है, वह मालकिन ही नहीं मालकिन से भी अधिक रुतबा रख सकती है। दासी यह सब कुछ क्षण मात्र में समझ गई।

वह कल्पना के पैरों में गिर पड़ी, और रुआसी होकर बोली: "गरीब विधवा हूं बीबीजी, छोटी औकात की हूँ। कसूर हो गया तो क्या आप माफ नही कर देगीं ?—कसम खाकर कहती हूँ अब बद मिजाजी नहीं होगी। जो काम आप कहेगीं—"

"तुझ जैसी बे-अदब चुड़ैल से किसी गृहस्थी का काम नहीं चल सकता। निकल जा यहाँ से।"

"अब की बार माफ कर दो बीबीजी, अब कभी कसूर नहीं होगा।"

"पर मुझे तो दिन-रात काम करनेवाली दासी चाहिए।—तेरी जरूरत नहीं है।"

"अगर तनखा बढ़ जाए बीबीजी, तो क्यों नहीं करूँगी ?—एक दो साल का छोटा बच्चा है, और एक सात साल की लड़की। तीन पेट पालने पड़ते हैं !—"

"बक-बक बन्द कर। सबसे पहले दौड़कर दवाखाने चली जा, और डाक्टरको बुलाला। पाँच रुपये उनकी फीस के पेशगी दे देना। जितनी जल्दी हो सके। बाबू की तबीयत खराब है !"

"बाबू की तबीयत ?—क्या हुआ उन्हे ?"

"दासी का काम सिर्फ हुक्म मानना है !—आयन्दा से यह ध्यान रहे।"

दासी चली गई।

तीन दिन बीत जाने के बाद निर्मलकुमार की अवस्था कुछ-कुछ प्रकृतिस्थ हुई। इन तीन दिनों का उसे कुछ भी चेत न था। यदि कल्पना न होती, और कहना कठिन है, कल्पना की अनुपस्थिति मे दासी का क्या मन्तव्य होता, तो निर्मल का क्या होता, यह कुछ कहा नहीं जा सकता। औषधि और परिचार का महत्व तो है, पर औषधि जुट जाने पर भी परिचार का जुट जाना सदैव सम्भव नहीं होता। निर्मल की अवस्था में तो औषधि तक के जुटने के आसार न थे !

जब निर्मल ने आँखें खोलीं तो देखा कि सद्यस्नाता कल्पना उसकी ओर पीठ किए खिड़की पर खड़ी सूर्योदय को देख रही है। खुला हुआ लम्बा सघन केश-पाश शुभ्र-श्वेत साड़ी पर बिखरा पड़ा है, प्रभात की मन्द वायु में एकाध अलक कभी-कभी काँप भी उठती है। उसने उस मूर्त्ति को पलकों पर स्थिर कर के आँखों को पुनः बन्द कर दिया।

निस्तब्ध कूलहीन बीमारी के बिस्तार मे क्षुद्र द्वीपों के समान जब कभी उसकी चेतना निबिड़-कष्ट की अनुभूति के साथ लौटी है, उसे अनुभव हुआ है कि यह नारी अपने हिम-शात स्निग्ध कर स्पर्श से सिरहाने बैठी हुई उसके रक्त हीन चेहरे पर अश्रान्त-दृष्टि गड़ाए उसके कल्याण की राह देख रही है। वह कल्पना ही है, यह उसका अन्तर्मन दृष्टि बन्द रहने पर भी समझता था। उस छलनामई रात्रि के शेष-क्रोड़ मे जब वह घर विश्राम के लिए लौटा था, तो उसे कल्पना आई हुई मिली थी ; भाग्य और स्वास्थ्य के जिस परिहास मे वह उस समय डूबा हुआ था, उसमे उसके लिए अन्य बातें जानना सम्भव ही न था। वह आई है, इस स्मृति के साथ ही उसकी चेतना बीमारी के गहन इन्द्रजाल मे खो गई! पर आँखें बन्द रखकर भी वह आज इस बात को सोच सकता है!

वह कल्पना ही है, इसमें तो कोई सन्देह नहीं, यद्यपि आश्चर्य इसमे हो सकता है! कल्पना उसकी सहपाठिनी है, अच्छी लड़की है, जहीन है, धनवान तो है, पर उसका कोई विशेष दम्भ नहीं; यद्यपि उसकी सज्जा है, पर सुरुचि के साथ, और सौंदर्य?—बन्द आँखों के नीचे ही उसके अधर मन्द स्थिति में कुछ फैल गये! लड़की के सौंदर्य का क्या कहना, खास कर जब वह यौवन के द्वार पर हो।

पर वह यहाँ आई?—आई, यह अच्छा तो हुआ ही; यदि वह न होती तो उसका क्या होता? कल्पना के साथ उसकी मित्रता तो है, उतनी ही जितनी कि दो सहपाठियों मे हो सकती है। उसके पिताके देहान्त पर उसने समवेदना प्रकाशित की थी—पर यह सब तो औसत बातें हैं।

यह सच है कि वह अकेला रह गया था, बहुत अकेला, और उसकी अन्तरात्मा किसी के साथ के लिए तड़पड़ा भी रही थी, उसने पुकारा भी था किसी को! कल्पना मानों उसी प्रकार का अनुसरण करके वहाँ उस सन्ध्या को उसकी चरम आवश्यकता के क्षण में अवतीर्ण हुई थी। जिसके लिए उसकी अन्तरात्मा तड़प रही थी, वह उसे प्राप्त हुआ या नहीं, यह अभी देखना शेष है, किन्तु उसकी भौतिक देह का उसके अभाव में क्या होता, इसकी कल्पना की जा सकती है।

हाँ, उसकी अन्तरात्मा ने पुकारा था नमिता को! नमिता नहीं आई, कदाचित् नहीं आ सकी, इसमे क्षोभ काहे का? शरीर ही से तो नहीं आ सकी, मन तो उसका यहाँ उड़ आने के लिए वैसे ही छटपटा रहा होगा! और क्या निर्मल इतना हीन है कि उसके भौतिक सम्पर्क ही में तुष्टि प्राप्त करे? मध्याह्न के ऊर्जस्वित सूर्य के समान उसकी उपस्थिति निर्मल के मन के समस्त

अधिकार को छिन्न-भिन्न कर देती, किन्तु मन मे अधकार है क्या उसके ?—पूर्णिमा के चन्द्र की शीतल सुधामई चन्द्रिका से भरकर उसका समस्त मन-प्राण जो आज नीरव गम्भीर शाति का अनुभव कर रहा है, वह क्या है ?—क्या कल्पना ही इसके लिए उत्तरदाई नहीं ?

उस रात को गए कितने दिन बीत गए, निर्मल का पता नहीं, किन्तु दो-दिन तो अवश्य बीते हैं। चेहरे पर बढ़े हुए बाल भी बता रहे हैं, और इस सारे समय मे इस नई अपरिचित जगह मे कल्पना उसकी सेवा करती रही है। किस नाते से, किस लगाव से ?—क्यों वह यहाँ आई, किस लिए वह यहाँ इतने दिन अटक गई, उसे कितनी असुविधा, लज्जा और संकोच यहाँ सहने पडे—निमल ने फिर आँखें खोलीं !—कल्पना खिड़की पर से उठ आई थी, और निर्मल के पैताने एक कुर्सी पर बैठी हुई उसी की ओर दृष्टि गड़ाए बैठी थी, कदाचित् उस के जागने की राह देख रही थी।—जैसे ही निर्मल ने आँखें खोलीं, दोनों की दृष्टियाँ चार हो गईं।

कल्पना उठ खड़ी हुई : "कैसी तबीयत है ?"

मुस्करा कर निमल ने कहा : "तबीयत को कुछ हुआ था, इसका तो पता नहीं, किन्तु सिवा इसके क्या कहूँ कि तबीयत अच्छी ही है।"

"डॉक्टर ने कहा था कि रात की गम्भीर नींद के बाद आप बिलकुल आरोग्य हो उठेंगे। कमजोरी दूर होने मे कुछ समय लग सकता है!"

"सो भी नहीं लगेगा, यह विश्वास किया जा सकता है। क्योंकि डॉक्टर ने यह भी कहा होगा कि जागते ही मुझे कुछ खाने-पीनेके लिए दिया जाए!"

कल्पना ने मुस्करा कर कहा : "ओवल्टीन तैयार है।—कुल्ला कर लीजिए।" और वह गुसलखाने से चिलमची आदि उपस्कर लाने के लिए चल दी।

ओवल्टीन का कप हाथ मे लेकर निर्मलने कहा : "और क्या कह गया डाक्टर ?"

"कि बस, अब चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

निमलकुमार ने कप ओंठों से लगा लिया, फिर बोला : "आप कुछ नहीं पिएँगी ?—मेरा पूछना ही बड़ा हास्यास्पद है। लगाम आपके हाथ में है, लिए आप झुके जा रही हैं, और मैं रास्ता बताना चाह रहा हूँ।"

"ऐसा ही हो!" और कल्पना ओंठों ही ओंठों में मुस्करा दी।

निर्मल ने आँखें उठा कर देखा। दोनों की आँखें फिर चार हुईं।

कुछ देर बाद निर्मल ने कहा : "तो फिर आप भी पीजिए।"

"मैं चाय पीऊँगी। आपका आदेश है, तो पूरा करना ही पड़ेगा!"

"यह तो मैं पूछ ही नहीं सका कि यहाँ आपके अकस्मात् ही दर्शन हो जाने का सुयोग कैसे प्राप्त हो गया ?"

"सुयोग कह रहे हैं ? तो निश्चय ही मेरी यहाँ उपस्थिति से आप असंतुष्ट नहीं हैं।"

"असंतुष्ट ?—कल्पना देवी, यदि आप न होतीं तो मेरी क्या दशा होती, कह नहीं सकता। परमात्मा के वरदान के समान प्राप्त आप, आपने तो मुझे कृतज्ञता के पाश मे बद्ध कर लिया है कल्पना देवी।"

"कहने मात्र से क्या आप बँध गए ?" मुस्करा कर कल्पना ने कहा।

"सचमुच की कोई रस्सी बाँधना चाहती हैं क्या ?" साहस करके निर्मल ने पूछा, आँख उसकी कप मे डूबी हुई थीं।

"आप क्या स्वतत्र हैं कि किसी रस्सी के होने ही से बँध जाएँगे।"

"इसलिए मैंने कृतज्ञता के पाश की बात कही थी कल्पना देवी, अपना मालिक तो मैं हूँ ही कहाँ ?"

कल्पना के अन्तरतम मे आघात लगा, पर मुस्करा कर उसने कहा : "तो जिसकी आप अमानत हैं, उसी को न कृतज्ञता का यह पाश स्वीकार करने दीजिए !"—फिर जरा निर्मम दृष्टि से निर्मल को आँखों में भर कर कहा, "अपने ऊपर वह इसे उपकार मानेगी या डाकेजनी, यही कैसे कहा जा सकता है।"

"आप नमिता के साथ ज्यादती कर रही हैं कल्पना देवी। नमिता का हृदय बड़ा उदार है।"

हँस कर कल्पना ने कहा : "नारी के लिए तो हृदय की उदारता भी उतनी ही संकटजनक है, जितनी उसकी कृपणता ! उससे रक्त का उच्छ्वास जो घट-बढ़ जाता है।" फिर उठ कर उसने निर्मल का कप उठा लिया, और केटली से ओव्हल्टीन उड़ेलने लगी।

"बीमार आदमी हूँ, एक कप से अधिक नहीं चलेगा।"

"जहाँ तक चल सकता है, मैं जानती हूँ। आप भय न कीजिए, उसके आगे मैं आग्रह नहीं करूँगी।"

निर्मल ने कप ले लिया, और कल्पना की ओर देखकर बोला : "आप अद्भुत व्यक्ति हैं।"

"किस तरह ?"

"यदि यही कह सकता तो आप मे अद्भुत क्या रह जाता ? पर अभी तक मैं यह तो जान ही नहीं पाया कि आप इस गाँव में टपक कैसे पड़ीं ?"

"यदि कहूँ कि चाह करके आई हूँ ?"

"विश्वास नहीं होता।"

निकलती हुई एक लम्बी साँस को दबाकर कल्पना उठ खड़ी हुई। उसने

अपना कप और निर्मल का कप उठा कर कहा : "दासी आ गई है। उसे काम बतला दूँ। फिर आठ बजे डॉक्टर भी आने वाला है।"

"डॉक्टर? डॉक्टर की तो अब कोई जरूरत मालूम नहीं देती।"

"यह निश्चय करने का अधिकार बीमार को तो नहीं होता।"

और कल्पना दरवाजे की ओर चल दी।

निर्मल ने कहा : "आपके ऋण से कैसे मुक्त हो सकूँगा?"

"क्या जरूरी है कि आप मुक्त होवें हीं।" और वह बाहर चल दी!

निर्मल खोया-सा बैठा रहा। नमिता उसकी आँखों के सामने फिर गई, किन्तु मानो उसके बाद ही मुस्कराती हुई कल्पना का समारोह भी उपस्थित हो गया। मानो नमिता ने आँखों को क्रोध से सिकोड़ कर पहले कल्पना की ओर देखा, फिर निर्मल की ओर; और उपेक्षा के साथ मुँह बिचकाकर वह आगे बढ़ गई। हँसी की चाँदनी बिखेरती हुई कल्पना तब भी खड़ी रही।

कल्पना को उसने विशेष जाना न था। जानने की उसे जरूरत भी न थी। नमिता के सूर्यातप मे चन्द्र का चमकना भी केवल स्पर्द्धा मात्र प्रतीत होता है, उसके प्रकाश का तो प्रश्न ही नहीं उठता फिर भी जब शरद् की पूर्णिमा हृदय—आकाश पर छा जाती है, तो सूर्य के प्रकाश का कोई मूल्य नहीं प्रतीत होता।

डॉक्टर जब लौट गया, और दासी घर के दूसरे काम मे व्यस्त हो गई, तो कल्पना फिर निर्मल के कमरे मे आकर बैठ गई।

कल्पना ने कहा : "डॉक्टर कह गया है कि अब आप बिलकुल स्वस्थ हैं। कुछ कमजोरी है, वह भी शीघ्र ही दूर हो जाएगी।

"इसे मैं आप ही का अनुग्रह मानता हूँ।"

"मेरे अनुग्रह ही से सम्भव हो तो मैं कामना करती हूँ कि आप और भी शीघ्र आरोग्य हो उठें!—किन्तु आज मुझे आज्ञा मिल जाएगी?"

"आज्ञा किस बात की?"

"घर लौट जाने की!" नीची दृष्टि किए कल्पना ने कहा : "घर से बाहर हुए आज चौथा दिन है। एक पिकनिक का बहाना लेकर घर से निकली थी। माता-पिता क्या सोचते होंगे?"

निर्मल ने आँख उठाकर कल्पना की ओर देखा : "क्या आप यहीं के उद्देश्य से घर से निकली थीं?"

"जी हाँ।"

किस तरह कारण पूछे इसके लिए कुछ देर तक शब्द ढूँढ़ कर निर्मल ने कहा : "अपराध क्षमा कीजिएगा कल्पना देवी, भाग्य ने जो परिहास किया

उसके ऊपर तो मेरा वश ही कितना रहा, इसे आप से अधिक कौन जान सकता है। आप जाने के लिए तैयार हो गईं, पर मैं आप के आने का प्रयोजन ही नहीं जान सका ?"

कुछ मुस्करा कर कल्पना ने कहा : "आपको मेरी आवश्यकता थी और मैं उपस्थित हो गई। नहीं क्या ?"

"यदि इतना ही आपका उत्तर हो तो मैं पूछूँगा कि क्या आप भविष्य भी जानती हैं ?"

कल्पना हँस पड़ी : "आगे पूछिएगा कि मैं जादू भी जानती हूँ या नहीं।"

"सो तो आप जानती ही हैं।" हँस कर निर्मल ने कहा : "किन्तु यह तो प्रश्न का उत्तर नहीं हुआ।"

"प्रश्न के उत्तर से भी तो आपका समाधान नहीं होगा ?—मैं भविष्य नहीं जानती, तो आप पूछेंगे, आपके प्रयोजन के उपस्थित होने के पहले ही मैं उसकी बात कैसे जान गई ?"

"आप बहुत बुद्धिमान हैं कल्पना देवी, यह मैं स्वीकार करता हूँ—"

बात काटकर कल्पनाने कहा : "तो मेरी एक बात मान लीजिए।"

"कहिए।"

"कि आपका प्रयोजन समाप्त हो गया, मैं आज संध्या को अपने घर लौट जाऊँ।"

कुछ देर रुककर निर्मलने कहा : "जब मुझे प्रयोजन ही नहीं मालूम, तो उसकी समाप्ति की कथा कहाँ से जानूँगा। रहा सवाल आपके घर लौट जाने का। आने के लिए यदि आपको आदेश की आवश्यकता न हुई, तो जाने के लिए ही हो जाएगी, यह भी कैसे विश्वास करूँ ?"

"पर आपका प्रयोजन तो समाप्त हो गया है।"

"आपसे झूठ नहीं बोलूँगा, पर तब मुझे आपने स्वस्थ्य किया ही क्यों ?

"अपने लिए, आपके लिए नहीं।"

"अपने लिए ?"

"जी हाँ;—फिर कुछ देर तक हँसकर बोली : "युवकों के मन में इस बात से गुदगुदी होती है; पर आप अपवाद हैं, यह मैं जानती हूँ।"

"मैं ही अपवाद क्यों हूँ कल्पना !"

कल्पना के कानमें सम्बोधन ने एक अश्रुत-पूर्व झङ्कार भर दी। भावावेश में उसने आँखें उठाकर निर्मल की ओर देखा। वह अपनी भूल समझ गया, बोला : "क्षमा कीजिएगा, शायद इस सम्बोधन पर मेरा अधिकार नहीं है।"

"पुरुष को अपने अधिकार का बोध रहा है क्या ?" फिर किंचित हँसकर बोली : "पता नहीं था कि आपके मुँह से यह सम्बोधन इतना प्रिय लग सकता है।—अच्छा, अगर इसी सम्बोधन का वरदान मागूँ तो ?"

"किन्तु—"

खड़ी होकर कल्पनाने कहा : "नमिता के स्थान को नहीं छीनूँगी निर्मल बाबू ! अपनी पात्रता का मुझे ध्यान है।—मैं चाँद छूने की स्पर्द्धा नहीं करती। पर अनायास जो आपका अचेतन मन कह बैठा—"

"सो ही सही कल्पना, तुम बैठो, मेरी कसम है तुम्हें, अगर बाहर निकली।"

मुड़कर कल्पना ने निर्मल की ओर देखा, उसके चेहरे के अवश-भावको देखकर वह मुस्करा दी। अपने आसन की ओर लौटते हुए उसने कहा : "कमरे से बाहर भी नहीं निकलने दोगे तो लोग क्या कहेंगे ?"

"अगर लोग कुछ कहेंगे तो बिना समझे ही कहेंगे। और बिना समझी हुई बात की न मैं चिन्ता करूँगा, न ही तुम।"

"मैं भी न करूँगी यह किसने कहा महाशय ?—मैं पुरुष नहीं, स्त्री हूँ, और समाज में हूँ, जहाँ पुरुष की समझ ही का सिक्का चलता है। अन्य लोगों की बात ही क्यों ?—मेरे माता-पिता ही का मुझे काफी भय है।'

"भय ?"

"जी हाँ। आप उन्हें नहीं जानते। वे धार्मिक प्रकृति के पुराने विचारों मे पले हुए व्यक्ति हैं।"

"किन्तु तुम्हे इतनी उच्च शिक्षा जो दे रहे हैं, और फिर इस ऊमर तक कन्या को अविवाहित रखना तो पुराने विचार वाले कभी सह नहीं सकते।"

"वे पले हुए पुराने विचारों मे हैं, पर रहते तो इसी युग में हैं।—और सामाजिक वृत्ति उनकी उतनी अधिक बलवती नहीं, जितनी धार्मिकवृत्ति है। यदि कहूँ कि समाजवृत्ति का ध्यान केवल माताजी ही रखती हैं, तो पिताजी के जिम्मे केवल धार्मिकवृत्ति ही रह जाती है। व्यवसाय के बाद जितना समय मिल जाता है, वे इसीमें बिताते हैं।"

निर्मलने मुस्कराकर कहा : "धन और धर्म का घनिष्ट सम्बन्ध जो है। धनी लोग ही तो धर्म का पालन कर सकते हैं, इसीलिए शायद धर्म भी उन्हीं की रक्षा करता है।"

"धर्म से आपको चिढ़ है क्या ?"

निर्मलकुमार हँस दिया : "चिढ़ क्यों होने लगी ? पर एक बात है कल्पना, धर्म का जो रूप हमने ग्रहण कर रक्खा है, उससे किस भले आदमी

को चिढ न होगी ? तुम्हारा ही मामला ले लें। इस युग मे रहते हुए भी यदि तुम्हारे माता-पिता तुम्हारी स्वतन्त्रता पर रोक लगायें, तो उस प्रवृत्तिको धार्मिक कहा जा सकता है ?"

कल्पनाने भी हँस दिया : "बच्चों की स्वतन्त्रता स्वतंत्रता नहीं कहलाती महाशय, उसे उच्छृंखलता कहा जाता है। और अच्छा न लगने पर भी यह उन्हीं के लाभ के लिए है कि उनकी मनमानी पर पहरा बैठा रहे।—मेरा ही मामला लीजिए, क्या किसी वयस्क लड़की को इस तरह उसकी इच्छा के उद्दाम-वेग मे बहने दिया जाना अच्छा है ?"

"घर जाकर फिर क्या कहोगी ?"

"यही तो नहीं सोच पा रही हूँ। पर सोचती हूँ, पिताजी को सब बातें सच-सच ही क्यों न कह दूँ ?"

"तुम्हारे पिता कुपित नहीं होंगे ?"

"आप उन्हें नहीं जानते।"

"सचमुच नहीं जानता, पर तुम्हे जानकर अब उन्हे जानने की इच्छा भी बड़ी प्रबल हो गई है। डर यही है कि कहीं वे मेरी भर्त्सना न करें।"

"तो फिर एक काम कीजिये न! आपका ही अब यहाँ कौन-सा प्रयोजन रह गया है ? आज सध्याको हमलोग लौट चलें। प्रबन्ध तो इस मकान ही का करना है न ? मैं भी एक झूठी लज्जा से बच जाऊँगी।"

निर्मल की भावना को, मालूम दिया, एक आघात लगा। उसकी आँखें नीचे झुक गयीं। अब तक जिस बात को उसने सोचा नहीं, या जानबूझकर स्मृति के दरवाजे से ढेल रक्खा था, वह सामने खिंच आया। उसके पिता की मृत्यु, बुआ का मुकदमा, जन्म का रहस्य—और इसके सम्मिलित-प्रभाव के कारण शरीर मे अन्तरित मानसिक पीड़ा!—उसकी आँखें वर्तमान से पिछड़ गईं!

कल्पनाने कहा : "मुकदमा आप जीत ही गये हैं। इस युग में मकान होने पर भी मकान का अधिकार सरलता से नहीं मिलता, वह भी आपको अनायास ही मिल गया है। एक दरबान रख देने ही से अभी तो काम चल जायगा। बाद में तब तक कोई भला किरायेदार भी मिल जायगा। कॉलेज मे उपस्थिति तो आपकी बहुत नहीं गिरी होगी।"

किन्तु निर्मल ने कुछ नहीं सुना। कल्पना ने भी नहीं देखा, वह कहती रही—

"गिर भी गई हो, तो आप जैसे मेधावान के लिए इस शर्त्त को निरस्त करने में यूनिवर्सिटी को भी प्रसन्नता होगी। रहा प्रश्न अध्ययन का, सो आप

जैसे के लिए वह है ही नहीं।—पर आप जवाब क्यों नहीं देते निर्मल बाबू ?"

एक लम्बी साँस लेकर निर्मल ने ऊपर देखा, और कहा : "अभी मेरा चलना सम्भव नहीं है कल्पना।"

"क्यों ?"

"पता नहीं, कितनी बातें तुमने यहाँ सुनी हैं, और कितनी नहीं, और सब सुनने पर तुम्हारे मन का क्या भाव होगा ! तुम समझती हो कि मेरा प्रयोजन समाप्त हो गया, किन्तु मैं जानता हूँ, मेरी कठिनाइयों का तो श्रीगणेश ही अब हो रहा है। पता नहीं, मुझ मे इतनी योग्यता भी है या नहीं, कि उनसे पार पा सकूँ।"

कल्पना सतर्क होकर बैठ गई। वास्तव मे निर्मल के हृदय की पुकार उसी के हृदय की गोपनकारा को चीर कर क्यों नमिता के द्वार पर टकराने गई थी, उसका आभास प्राप्त करने का अवसर ही अब आया है। मूल मे तो यही निर्मल का प्रयोजन था। वह इसे ही तो जानना चाहती थी, पर जानने का कोई उपाय न होने के कारण उपलक्ष्य ही से मन को बहलाकर वह लौट जाना चाहती थी। पूछने का उसे साहस नहीं हो सकता था। एक तो उसने यहाँ आकर नमिता के अधिकार-क्षेत्र मे प्रवेश झपट लिया था, अब आगे और बढ़ना निर्मल के ही मन मे संशय उपस्थित कर देता।

निर्मल ने लम्बी साँस लेकर कहा : "मनुष्य इतनी विचित्रताओं और विभिन्नताओं का समूह हो सकता है, यह अब से पहले मैंने कभी नहीं जाना था। प्रकृति की योग्यतमात्रशेष सृष्टि मे मनुष्य चरम-प्राणी है, इसे सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ और सर्वसमर्थ भी कहा जाता है ! प्रकृति के समस्त-तत्त्वों से सत्व सग्रह करके यह कितना जटिल हो गया है, यह इसकी निर्मात्री प्रकृति भी आज नहीं जान सकती। आज इसकी ये सब विशेषताएँ ही इसका काल हो गई हैं, इसे मनुष्य के सिवा और जानता ही कौन है ? और चूँकि मनुष्य के सिवा और कोई नहीं जान सकता, इसलिए इस विश्वास की प्रतीति ही उसे कौन करवाए ? वह अपनी ही आग में हाथ फैला कर ताप रहा है, और जलता हुआ भी खुशी मना रहा है। नहीं क्या ?"

कल्पना कुछ न समझी, बोली भी कुछ नहीं, केवल निर्मल की ओर निर्निमेष दृष्टि गड़ाए रही।

और निर्मल कहता रहा : "तुम तो जानती ही हो, प्रकृत रूप से मनुष्य पशु ही है, शिक्षा, संस्कार और सभ्यता ने उसके मूल रूप पर आवरण डाल दिया है। जानती हो इस आवरण ने क्या किया है ? नृशंसता मे तो वह पशु है ही, किन्तु उद्देश्य की हीनता में वह पशु से भी बढ़ जाता है।

और फिर भी यह आवरण ही उसके मूल रूप से अधिक सत्य है। प्रवृत्तियाँ उसे पशु की मिली हैं।

"किन्तु यदि वह व्यवहार मनुष्य जैसा नहीं करता तो उसकी लज्जा की सीमा नहीं है। और कठिनाई यह है कि यदि वह केवल इस आवरण ही का आधार लेकर अपनी प्रवृत्ति को सयत करना चाहे, तो उसकी आदिम प्रवृत्ति उसे युद्ध के लिए ललकारती है।"

कल्पना ने बाधा दी, और कहा : "आपका मन्तव्य क्या है निर्मल बाबू! यह तो बड़ी निराशावाद की बाते है।"

"सभ्यता के इस आवरण की सच्ची कसौटी निराशा ही तो है। उसकी घन-कृष्ण पीठ पर सभ्यता का चिन्ह खरा टिकता ही नहीं।"

"हो सकता है, पर अपनी ही बात कहिए न।"

"मैं निर्मलकुमार हूँ, इतने-मात्र परिचय को दुनिया मेरे लिए पर्याप्त नहीं समझती। मनुष्येतर प्राणियों के लिए सामूहिक परिचय भी पर्याप्त नहीं होता!—मेरे लिए समाज चाहता है कि मैं किस पिता का पुत्र हूँ, किस माता की कोख से मैंने जन्म ग्रहण किया, कौन-सी परिस्थितियाँ मेरे जन्म का कारण हैं, और आज मैं उन सबके लिए जिम्मेदार ठहराया जाता हूँ, यद्यपि उन सबके लिए वस्तुतः सबसे कम जिम्मेदारी मेरी थी।"

"इन परिस्थितियों में ही वह बनता जो है।"

"इन परिस्थितियों से वह बनता है, इनको बनाता तो नहीं। सच तो, परिस्थितियाँ उसके लिए जिम्मेदार हैं, न कि वह परिस्थितियों के लिए। कर्म होकर भी उसे कर्त्ता की विडम्बना क्यों सहन करना पड़ती है?"

"जहाँ क्रिया अकर्मक हो, वहाँ पर कर्म का भार कर्त्ता पर ही पड़ता है, किन्तु सकर्मक क्रिया होने पर तो यह बात नहीं रहती निर्मलबाबू!"

"साहित्य और भाषा की बात रहने दो कल्पना, मैं जीवन की बात कह रहा हूँ।"

"मैं भी जीवन ही की बात कहती हूँ। मनुष्य परिस्थितियों ही से पैदा होता है, पर इसीलिए तो वह परिस्थितियों को छोड़ नहीं देता। वह उन्हें वश में करता है, उन्हें मोड़ता है और समय आने पर उनका निर्माण भी करता है। बिना कर्म की क्रिया केवल शास्त्र ही में होती है, जीवन में नहीं।"

निर्मल ने कल्पना की ओर देखा। कल्पना के शब्दों में सचमुच ही शक्ति है, किन्तु शब्दों की शक्ति ही आखिर कितनी है,—यदि प्रयोक्ता की शक्ति का विश्वास भी प्राप्त हो सके।

कुछ देर तक अपने अन्तर को मानो टटोलते हुए निर्मल ने कहा : "किन्तु कर्म का पुतला ही यदि मनुष्य होता, तो क्या बात थी ? बिजली का स्विच दबा कर क्या उससे इच्छानुसार कार्य नहीं ले लिया जाता ?—वह भावना का भी पुतला है, और इस आवरण ने इसी की बेड़ियाँ तो उसके पैरों मे डाल दी है।"

"यही इस आवरण का वरदान भी तो है निर्मलबाबू। ये बेड़ियाँ मनुष्य के पैरों मे नहीं, ये तो उस पशु के पैरों मे है, जो उसी मनुष्य में निवास करता है।"

निर्मल के लिए यह केवल-मात्र तर्क नहीं था। यदि तर्क होता तो कदाचित् वह अपने मत की पुष्टि के लिए प्रमाण जुटाता, किन्तु यह तो उसकी तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव था। अतः कल्पना की तर्कोक्ति से उसे एक सहज-शक्ति प्राप्त हुई। उसने सिद्धान्त को छोड़ कर स्थिति का आश्रय लिया, और कहा—

"पर मेरे हाथ तो इसी भावना ने बाँध दिए हैं कल्पना! मेरा किस्सा मालूम है तुम्हे ?"

"बहुत थोड़ा। इतना ही कि पिता की मृत्यु के बाद आप पहले जैसे नहीं रह गए।"

"यह तो कार्य है। कारण का पता है ?"

"नहीं!"

"तो सुनो, मैं शायद अपने पिता का तो पुत्र हूँ, किन्तु मेरी माता शायद मेरे पिता की विवाह द्वारा स्वीकृत पत्नी नहीं थी।

"कहते क्या हैं आप ?"

"जानता था कि तुम्हें भी आघात पहुँचेगा—"

"उसे बीच ही मे रोक कर कल्पना ने कहा : "आघात नहीं निर्मलबाबू, केवल आश्चर्य हुआ। आखिर इतने लम्बे परिचय के अवास्तविक प्रमाणित होकर टूट जाने का झटका तो लगता ही है। पर यह तो बन्धन टूटने पर भी होता है।"

"तुम इसे आघात का विषय नहीं समझती कल्पना ?"

"क्यों समझने लगी ? और समझूँगी तो आपको क्यों दोष दूँगी ? कौन कह सकता है कि इसमे शायद आपके पिता का भी न दोष हो।"

"पर समाज तो मुझे ही दोषी समझेगा! घूरे पर इकट्ठी तो गन्दगी ही होती है।"

"होती रहे, पर रत्न मिलने पर भी उसे गन्दगी समझूँ, ऐसी शिक्षा मेरी नहीं है।"

निर्मल कुछ देर चुप रहा, शायद अपने हृदय की गुहा को टटोलने के लिए।—कल्पना ने कहा : "ऐसा ही कुछ आभास उस दिन आपकी बुआ की बातचीत मे पाया था, पर सोचा शायद वह नारी के कोप के सिवा वास्तव में कुछ नहीं है। किन्तु—"

"मुझे पैतृक-सम्पत्ति से वञ्चित करने के लिए बुआने कोर्ट की शरण ली थी, और वहाँ उन्होंने साबित करना चाहा कि मैं अपने पिता की केवल जारज संतान हूँ।"

"किन्तु मुकद्दमा तो आप जीते हैं न ?"

"शायद इसलिए की मेरे पिता की और कोई वैध सन्तान नहीं है, और चूँकि जीवितावस्था मे उनके व्यवहार से यह कभी समर्थित नहीं हुआ कि मुझे अपना समझने से उन्होंने इनकार किया हो। अतः कोर्ट ने यह स्वीकार कर लिया कि मेरे पिताकी यह इच्छा थी कि मैं उनके पुत्र के समस्त दावों का अधिकारी मान लिया जाऊँ।—कोर्टने केवल मेरे दावे को स्वीकार किया, मैं उनका पुत्र हूँ या नहीं, इस पर विवेचना करना कोर्टने प्रासगिक नहीं समझा।"

"निर्मलबाबू, आपकी चिन्ता का मूल-स्रोत फिर भी आपके ही अधिकार में है। आप अपने मन को भ्रान्ति से मुक्त क्यों नहीं रखते ?—यह भ्रान्ति ही तो आपके अन्धकार का कारण है ?"

"शायद मैं इसकी इतनी अधिक चिन्ता नहीं भी करता, किन्तु इस प्रसंगने मेरी वृत्तिको एक दूसरे तथ्य की ओर केन्द्रित कर दिया है।"

"वह क्या तथ्य है ?"

"इस मुकदमे की प्रतिपक्षिनी बुआ मेरे जन्म के वृत्तान्त को अवश्य प्रारम्भ से ही जानती थी फिर भी उन्होंने मुझे अपनी सन्तान की भाँति ही प्यार किया था।"

"सचमुच प्यार किया था ?"

"उसे अन्यथा कैसे समझूँ ? जब जब मैं पिता के पास लौटा हूँ, तब, तब बड़ी ही व्यग्रता से बुआ मेरी सुधि लेने के लिए आ पहुँचती, और जितने दिन मैं यहाँ रहता उनकी आदर-अभ्यर्थना का ठिकाना न मिलता।"

"निर्मलबाबू, क्या यह सम्भव नहीं कि आपके प्राप्य छीन लेने का यह केवल एक षड्यन्त्र मात्र हो, जो आपकी बुआ सफलता के साथ फैला सकी ?"

"शायद हो, न भी हो, किन्तु उनका चित्त एकाएक मुझ से फिर कैसे गया ?"

"फिरा नहीं, प्रारम्भ ही से ऐसा हो सकता है!—शायद आपके प्यार

करने के नाटक ही से उस समय उनकी स्वार्थ सिद्धि सम्भव होती। आपके पिता का उनके साथ कैसा व्यवहार था ?"

"बहुत सुन्दर। मेरे पिता बड़े उदार थे। वे पैसेको कुछ समझते ही न थे। बुआ तो आखिर उनकी बहन ही थी, चचेरी थी तो क्या हुआ। यहाँ पर ही ऐसे कई व्यक्ति हैं, जिनका गुजर उन्हीं की सहायता से होता था।"

"तब तो स्पष्ट है, यह सारी जाल आपकी बुआ का बुना हुआ है।"

"मुझे जाल का बहुत दुःख नहीं है कल्पना, मैं तो अपनी ही हानि की बात सोच रहा हूँ। बुआ के ऊपर बहुत विश्वास था। उसने मुझे स्नेह किया हो या न किया हो, मैंने तो उन्हें माता से किसी तरह कम नहीं समझा। मा कौन थी, यह तो मैं जान ही नहीं सका। होश सम्हाला, तब से नर्सरी, कान्वेण्ट और स्कूल के आगे सिवा बुआ और पिता के मैं किसी को जानता ही नहीं। अगर बुआने मुझसे यही कहा होता कि निर्मल मुझे यह सारी सम्पत्ति चाहिए, तो सच कहता हूँ कल्पना, उनके चरणों पर विसर्जित करते हुए मुझे एक क्षण के लिए भी असमंजस न होता। इस सम्पत्तिने बुआ का स्नेह चर डाला!"

निर्मलकुमार की आँखें आर्द्र हो गईं। कल्पना उठ खड़ी हुई, और बोली : "आपकी व्यथा मैं समझती हूँ निर्मलबाबू! आपको सम्पत्ति की भूख नहीं, स्नेह की भूख है, किन्तु यह जानना आपको शेष है कि सम्पत्ति का वरदान स्नेह की भूख को भी तृप्त कर सकता है।"

"यह तुम्हारा दम्भ है कल्पना—तुम सम्पत्ति शालिनी हो, इसलिए तुममे भी स्नेह की कोई सद्वृत्त अनुभूति नहीं है। तुम मेरे आँसुओं का मजाक उड़ा सकती हो।"—और निर्मल की आर्द्र आँखों मे आँसू छलछला उठे।

कल्पना निर्मल के पास और भी खिसक आई निर्मल तकिए के सहारे आधा लेटा हुआ था। उसके पीछे खड़ी होकर उसने अनायास ही निर्मल की आँखों के आँसू पोंछ डाले, बोली :

"कोई स्त्री पुरुष के आँसुओं का मजाक उड़ा सकती है निर्मलबाबू? मैं केवल एक तथ्य की बात कह रही थी। पैसे की भूख के मूल मे पेट की भूख है, और जब वह सताती है तो स्नेह की भूख का कोई स्थान नहीं रहता। आँसू तो तब भी बिखरते हैं, पर उनके मोती तब भी नहीं बनते।"

और कहते-कहते ही वह उसके सिरहाने बैठ गई। निर्मल को कुछ उत्तर नहीं सूझा, वह शून्य आँखों से छत की ओर देखता रहा। कुछ क्षण यों ही बीत गए, न जाने कब से कल्पना की अँगुलियाँ निर्मल की केश-राशि में उलझ गई थीं।

धीरे-धीरे कल्पना ने फिर कहना प्रारम्भ किया, कहने के पहले एक बार उसके अधर काँप कर रह गए, वह बोली : "स्नेह का स्रोत जब इस तरह सूख कर प्यास को बढ़ा देता है तो व्यक्ति दूसरे स्रोत के लिए उदग्र हो उठता है। कभी न सूखनेवाला प्रपात ईश्वर की निष्ठा है, पर वह मार्ग बड़ा दुरूह है, और बहुत बड़ी कीमत चाहता है। जब सभी मार्ग रुद्ध हो जाते हैं, और पिपासा अतर्पनीय दुःस्सह ज्वाला लेकर उपस्थित होती है, तब वही शेष-मार्ग शांति देता है। किन्तु आपको तो निराश होने का कारण नहीं है।"

"सो कैसे ?"

"अधिक विलम्ब न करके आपको नमिता से विवाह कर लेना चाहिए।" और उसकी अँगुलियाँ एक क्षण के लिए रुक गईं।

"अपने जन्म की विडम्बना का यह भार लेकर विवाह के क्षेत्र मे मैं सफल हो सकूँगा, यह विश्वास ही कहाँ से पैदा हो ?—नमिता को मैं जानता हूँ, किन्तु विवाह तो केवल हम दो-प्राणियों ही का खेल नहीं है।—पीछे सारा समाज विवाह से उत्पन्न जिम्मेदारियाँ, सन्तान, भविष्य—"

किन्तु तभी विघ्न उपस्थित हुआ। बातचीत के दौरान मे शायद दोनों ही को पता न रहा कि कोई ऊपर चला आ रहा है। लेटा हुआ निर्मल छत की ओर देख रहा था, और सिरहाने बैठी हुई कल्पना, अपनी अँगुलियों को निर्मल के मस्तक पर अड़ाए, उसकी आँखों के शून्य भाव को ताड़ रही थी।—कि खुले दरवाजे से आवाज आई : "यदि बाधा न हो, और आज्ञा हो, तो भीतर आ जाऊँ।"

दोनों ने आँखें उठाकर साश्चर्य देखा कि सामने नमिता और उसके पीछे-पीछे च्यवन प्रकाश चले आ रहे हैं। कल्पना अपने आसन से उठ खड़ी हुई।

नमिता ने कहा : "क्यों तकल्लुफ करती हो कल्पना देवी ?—हमारा इरादा आपके ऐश और आराम मे बाधा डालने का बिल्कुल नहीं था। यदि मालूम होता कि आप यहाँ पर हैं तो शायद किसी दूसरे ही मुहूर्त्त में आने की चेष्टा करते !"

निर्मल भी हड़बड़ाकर बैठने लगा, कल्पना ने एक ही क्षण में अपने आप को संयत कर लिया। नमिता का कण्ठस्वर और स्वर-भंगिमा दोनों उससे छिपे न रहे। उसने निर्मल से कहा : "निर्मल बाबू, आप व्यर्थ परिश्रम या उत्तेजना न दिखाएँ। आपकी अवस्था अभी इस योग्य नहीं है।"

आगन्तुकों को निर्मल की बीमारी का पता न था। पीछे खड़े हुए च्यवन ने कहा : "क्या हुआ निर्मलबाबू आपको ?—स्वाथ्य के बारे में तो विशेष आपने कुछ लिखा न था !"

नमिता ने कहा : "जितना आवश्यक था, उतना तो लिखा ही था ! और फिर कल्पना कुमारी जब मौजूद हैं, तो च्यवन, तुम्हारा यह आक्षेप गलत है। यदि सम्वाद देना आवश्यक था, तो सम्वाद दिया गया ही; प्रमाण कल्पना कुमारी हैं, और यदि कल्पना कुमारी हैं, तो सम्वाद देना आवश्यक नहीं था।"

कल्पना ने कहा : "नमिता दीदी, जितना जिसका प्राप्य होता है उतना ही उसे मिलता है। यही नहीं ; अधिक उपलब्ध होने पर भी अधिक ग्रहण करने की पात्रता होनी चाहिए। पर बैठिए तो, आप लोग, कब आए ? इस समय तो कोई गाड़ी आती नहीं।"

कल्पना के सहज ढंग से सूत्र पकड़कर निर्मल ने कहा : "बैठो च्यवन, बैठो नमिता।—मैं बीमार जरूर हो गया था, पर अब काफी अच्छा हूँ। केवल कमजोरी मात्र रह गई है सो भी डॉक्टर ने आश्वासन दिया है कि शीघ्र ही चगा हो जाऊँगा।"

"सो तो हम भी देख रहे हैं।" कह कर नमिता कुर्सी खींचकर बैठ गई, उसका अनुसरण कर च्यवन भी दूसरी कुर्सी खींच कर बैठ गया।

कल्पना ने कहा : "मैं चाय बना लाती हूँ।"

कुटिल हास्य से मुस्कराकर नमिता ने कहा : "तो गृहदेवी का स्थान अधिकृत कर लिया है ?—अभिनन्दम कल्पना। पर बेचारे तुम्हारे माता-पिता तो यही सोचे बैठे हैं कि कहीं तुम पिकनिक के लिए गई हुई हो।"

कल्पना ने भी उसी तरह हँसकर कहा : "पिकनिक ही तो है ! कुछ अन्तर था कि तुम नहीं थी, अब तो वह भी नहीं रहा। कहो क्या खाओगी ?"

नमिता जल उठी; पर क्या जवाब दे ?—उसने कल्पना को कुछ कहना उचित नहीं समझा, वह निर्मल की ओर मुड़ी। "पर निर्मल ?"—कल्पना बाहर चली गई थी।

"कहो।" दोनों की आँखें चार हो गईं।

"यह सब कुछ था तो फिर मुझे क्यों बुलवाया था ?"

"पर यह सब कुछ है क्या ?"—निमल ने कहा।

"कुछ नहीं ?—तुम समझते हो मैं कुछ जानती नहीं ?—चोरी-चोरी से कल्पना को पत्र लिखना, और हमारे प्रेम की कहानियों को व्यंग्य मानकर मजाक उड़ाना, और दूसरी ओर मुझे भी फँसाए रखना—क्या मतलब है आखिर इसका ?"

निर्मलकुमार अपनी शैय्या पर बैठ गए, बोले : "नमिता, मैं नहीं समझा तुम क्या कह रही हो ?"

"क्यों समझने लगे ? समझने में हानि जो है। किन्तु तुम्हारे न समझने से ही, कोई दूसरा व्यक्ति भी नहीं समझेगा, सो बात नहीं है। मैं जानती हूँ कि कल्पना कितने दिनों से यहाँ पर है। घर पर उसके मा-बाप समझते हैं कि लड़की कॉलिज की छात्राओं के साथ पिकनिक पर गई है। पर यह क्या पिकनिक है, उसका प्रमाण मैं ही नहीं, इस गाँव की गली-गली है। अपनी बुआ को दोष देकर गालियाँ देना सरल है, पर उसके अभियोगों को अस्वीकार करना सरल नहीं है।"

"बुआ का अभियोग ?"—अपने जन्म की घटना का अनुमान करके निर्मल का सिर नीचा हो गया, और चेहरे पर सफेदी छा गई। कुछ क्षण तक चुप रहकर उसने पुनः कहा :

"वह मेरा दुर्भाग्य हो सकता है नमिता, पर मेरा अपराध तो नहीं है।"

"मैं उतनी मूर्ख नहीं हूँ निर्मल, जितनी तुम समझते हो। क्या तुम्हारा दुर्भाग्य है और क्या तुम्हारा अपराध, यह तुम समझना नहीं चाहोगे—पर मुझे तो समझना चाहिए।—और खुशी है कि मैं समझ गई हूँ।"

"पर क्या तुम मुझे नहीं समझा दोगी ?"—फिर च्यवन की ओर देखकर उसने कहा : "च्यवन प्लीज इफ यू डॉण्ट माइण्ड—"

"नो नो ?—व्हाइ शुड ही गो आउट ?—बैठे रहो च्यवन ! मेरी कोई बात ऐसी नहीं है, जिसे मैं छिपाना चाहूँ।"

च्यवन उठने लगा, तो नमिता ने कहा : "अगर ऐसा हुआ तो मैं खुद भी बाहर चली जाऊँगी। और तुम्हें यह बता देना चाहती हूँ कि आज मेरे विश्वास का सम्बल ही च्यवन है।"

खुद नमिता को नहीं मालूम कि वह क्या कहे जा रही है। च्यवन भी आश्चर्य-हत हो गया। पर इस समय कुछ कहना उसके लिए शक्य नहीं था। वह चुपचाप बातचीत सुनने लगा।

निर्मल के लिए भी अधिक सहना शक्य न था। प्रेम का प्रवाह बड़ा तीव्र होता है, यदि उसे मार्ग मिलता रहता है तो उसकी गति तीव्रतर होती है, किन्तु अवरोध मिलते ही, या तो वह कट कर दूसरा मार्ग तलाश कर लेता है या फिर वह बाधा को ही तोड़-फोड़ देना चाहता है ! निर्मल का दैन्य काफ़ूर हो गया। वह बोला : "जहाँ तक मैं समझता हूँ तुम्हारी शिकायत का कारण कल्पना की मौजूदगी है ?"

"मेरी बला से ; ऐसी एक क्या एक दर्जन कल्पना हों तुम्हारे कक्ष में, तो भी मुझे क्यों शिकायत होने लगी ?"

"फिर भी एक ही कल्पना के होने से तुम्हें शिकायत हो गई, यहाँ तक

कि बात को समझने का या समझाने का धैर्य और विवेक भी तुम खो चुकी हो। मेरी बुआ का अभियोग मुझ पर है, और यदि उसकी जिम्मेदारी भी तुम मुझ ही पर थोपती हो तो मैं इसके सिवा कह ही क्या सकता हूँ कि तुम मुझे दोषी और अपराधी मानना ही चाहती हो।"

"मैं ही क्यों ? तुम्हारा ही सारा गाँव मानता है।"

"मैं तुम्हे इस गाँव से ऊपर समझता था।"

"और अब नहीं समझते यह भी मैं जानती हूँ। पर इस सारे ढोंग की जरूरत क्या थी ?"

"किस ढोंग की ?"

"मुझे फुसलाए रखने की। और इससे अधिक कहूँ ?"

· "क्या कहना चाहती हो ?"

"तुम भूल गए हो कि चरित्र की हँडिया काठ की होती है, वह दुबारा चूल्हे पर नहीं चढ़ती।"

"और कुछ ?"

"मुझे पता न था कि तुम्हारा इतना पतन हो गया होगा।"

"नमिता। जब कि हृदय के समझौतों को तुमने उखाड फेंका है, तो फिर मुँह की भाषा ही को यथार्थ मानकर भी तुम्हे संयम से काम लेना उचित था।"

"तुम्हारे चारित्रिक असंयम से मेरी वाणी का असयम कुछ बुरा नहीं है।"

"मेरा चारित्रिक असयम ?" विद्रूप की हँसी हँसकर निर्मल ने कहा : "नमिता देवी, तुम चाहती हो कि मैं तुम्हे कोई बात कहूँ तो च्यवन प्रकाश भी उसे सुने ? मेरा ऐसा चाहना ज्यादती होगी, पर तुम विवश भी कर रही हो कि मैं अपनी इच्छा के विपरीत तुम्हें यह सुझादूँ कि हमारे-तुम्हारे बीच प्रेम चरित्र या प्रेम या व्यक्तित्व को छूने वाले किसी तत्व के बारे मे कभी कोई मौखिक समझौता नहीं हुआ था। यदि कुछ दिनों से अपने कमरे का किराया मैं नहीं दे सका, तो वह मेरी इच्छा की बात न थी, विवशता की थी। शायद इससे अधिक का दावा मुझ पर तुम्हारा न होगा।"

नमिता की आँखों से आग बरसने लगी, वह खड़ी हो गई और बोली—

"तुम यदि यह समझते हो कि मैंने कभी तुम्हें चाहा था, तो आज से यह भूल जाओ। मैं खुद लज्जित हूँ कि जिस व्यक्ति का आँकने का पैमाना इतना हीन हो, वह कैसे मेरे ध्यान का आधार पा सका ? यदि मैंने कभी यह आभास दिया हो कि मैं तुम्हे प्रेम करती हूँ, तो वह तुम्हारी महत्ता के कारण नहीं, बल्कि अपनी हीनता के कारण ही।—मुबारक हो तुम्हें कल्पना ! पर यह याद रखना, उसके मा-बाप तुम्हें कभी क्षमा न करेंगे। वे प्राचीन विचार के और

धार्मिकवृत्ति के सज्जन व्यक्ति हैं। धोखा देकर उसका धन हड़पने का जो जाल तुमने रचा है, वह इसीलिए सफल न हो सकेगा, कि धर्म और रूढ़ि उनका कवच है।"

और उसने च्यवन का हाथ पकड़ लिया। एक तरह से उसे घसीटती हुई बाहर लेगई! लेकिन इस छीना-झपटी में भी च्यवन निर्मल को नमस्कार करना न भूला।—

दरवाजे के बाहरसे आती हुई कल्पना ने हँस कर कहा: "देर हो गई, पर चाय ऊपर ही आरही है।"

नमिता ने बिना कुछ कहे चाहा कि उसे पार करके आगे हो जाए, पर कल्पना ने हाथ पकड़ लिया।

"सखी, इस तरह झटक कर जा कहाँ रही हो?—प्राचीन युग की अभिसारिका तो तुम हो—"

"जहन्नुम मे जाय तुम्हारा प्राचीन युग—और अभिसारिका तो तुम हो—"

"ओह तो प्रवत्स्यत्पतिका का अभिनय हो रहा है। पर सखी, चाय तो पीकर ही जाना पड़ेगा। और, अरे! आँखों मे यह आँसू?—क्या नायक ने कुछ कहा है? चलो, मैं मेल करा दूँ।"

"छोड़ो मुझे—"

"नहीं सखी—यह कैसे होगा? मान की एक सीमा होती है, उसके पश्चात वह न सहनीय होता है न शोभनीय।"

और लगभग जबरदस्ती हा कल्पना नमिता को ढकेलकर पुनः उसे निर्मल के कमरे मैं खींच लाई। च्यवन ने बुद्धिमानी की, वह बाहर ही रहा। कल्पना ने उसे लक्ष्य कर कहा: "धन्यवाद।"

करीब-करीब तभी पीछे से दासी चाय का सामान ले आई। कल्पना ने नमिता को एक कुर्सी पर बैठादिया, और आप भी दूसरी कुर्सी पर बैठ गई। दासी से कहा: "ज़ो साहब बाहर खड़े हैं, उन्हें नीचे बैठक मे चाय दे आओ।"

दासी चली गई!

चाय बनाते हुए कल्पना ने कहा: "यह मान का अभिनय क्यों इतना बढ़ता चला जा रहा है?"

निर्मल ने कहा: "कल्पना, नमिता मुझ पर यह अपराध लगाती हैं कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ, और वह भी तुम्हारे लिए नहीं, तुम्हारी सम्पति के लिए।"

कल्पना के चेहरे पर क्षणभर को रक्त दौड़ गया पर उसने सम्हाल लिया। बोली केवल: "अच्छा? और आपने इसके उत्तर मे क्या कहा? देखती हूँ अभिनय प्रवत्स्यत्पतिका से आगे खण्डिता तक पहुँच गया है।"

निर्मल ने कहा : "मैंने जो सच बात थी वही कही, किन्तु ये मानती ही नहीं हैं।"

कल्पना ने मुस्कराकर कहा : "तो सच ही होगा, पर सापेक्ष्य सच तो नहीं?"

नमिता ने कल्पना की ओर देखा। कल्पना चाय बना रहीं थी, पूछा : "कितनी शक्कर दूँ ?—मुँह की कड़वाहट दूर करने का अन्दाज मैं कर लूंगी।"

नमिता बोली : "तुम्हारी मनोहर मुखश्री और श्रुति मधुर वचनावलि के बाद मधुर और क्या रह जाता है?"

कल्पना ने हँस कर कहा : "नयन तृप्ति और श्रवण-तृप्ति तक तो हुआ! अधर-तृप्ति का क्या होगा?"

"निर्मलकुमार तो वह सौभाग्य प्राप्त कर ही चुके होंगे।"

"उनकी वे जानें, पर सखी, तुम्हारे लिए क्या दुर्लभ है?" कह कर चाय का प्याला उसने नमिता के आगे बढा दिया। प्याला टेबल पर रख कर नमिता ने कहा :

"मुझे मालूम न था कि साहित्य-शास्त्र की निष्पन्नता के साथ प्रेम-शास्त्र में भी तुम इतनी निष्णात हो। पर इसके पहले तो तुम्हारे होंठों मे जीभ का ही आभास न मिला।"

"तब वह दाँतों के बीच में जो थी!—पर चाय क्यों नहीं पीती दीदी, सुनूँ?—देखो, मैं भी पी रही हूँ। हाँ, निर्मलबाबू नहीं पी सकेंगे! डॉक्टर का निषेध है।"—कल्पना ने उसका कप उठा कर उसके होंठों तक बढ़ाया!

नमिता फिर खड़ी हो गई, और हाथ से कप एक तरफ झटक दिया। कप नीचे फर्श पर गिर कर चूर-चूर हो गया, किन्तु बिना उसकी ओर देखे वह बोली : "किसका आदेश है और किसका निषेध, यह मेरी बला से! मुझे तुम दोनों का नाटक देखने का चाव नहीं है। और जब कि पुनः तुम मुझे भीतर घसीट लाई हो तो कह देती हूँ कि तुम्हारा प्रेमी तुम्हें मुबारक हो।—" फिर निर्मल की ओर मुड़ कर उसने कहा :

"और मिस्टर निर्मलकुमार, मैंने चाहे तुम्हें प्रेम किया हो, किन्तु तुम्हारे प्रेम की भ्रांति मुझे कभी अन्धा नहीं बना सकी! अगर मैंने तुम्हे कभी प्रेम किया है, तो वह मेरा भी दुर्भाग्य था, अपराध नहीं। तुममे मैंने किसी लोकोत्तर गुण की अपेक्षा नहीं की, तुम्हारे व्यक्तित्व मे, तुम्हारे साधनों मे और तुम्हारी उपलब्धियों में ऐसा कुछ अद्वितीय न था कि तुम्हारी उपेक्षा करना सम्भव न हो, फिर भी जब किसी को चाहा जाता है, तो स्पष्ट है कि चाहने न चाहने पर किसी का अधिकार नहीं है। वही विवशता थी कि मैंने स्वेच्छा से तुम्हें सब से सुन्दर, सबसे सम्पन्न और सबसे अधिक अपना मान लिया था!

मुझे प्रसन्नता है कि मेरी आँखें समय रहते खुल गईं, और अपनी भूल के दण्ड से बच गईं। यह मैं जानती थी कि सम्पत्ति के ऊपर तुम्हारा लोभ है, मैं भी तो अपने पिता की अकेली पुत्री हूँ, किन्तु सचमुच ही मेरे पिता कल्पना के पिता के बराबर जड़-रत्नों के व्यवसायी नहीं! और कल्पना, नाटक तुम खूब करना जानती हो, किन्तु जड़-रत्न से खेलते-खेलते तुम्हे जड़-रत्न ही पाना चाहिए।—लेकिन तुम्हारे माता-पिता शायद जड़-रत्नों से थक गए हैं।"

और वह बाहर निकल गई। उसको रोकना अब शक्य न रहा। चाय कल्पना भी नहीं पी सकी। देखा तो निर्मलकुमार के चेहरे पर रक्त की एक बूँद शेष न थी।

कल्पना जरा बाहर तक गई, देखा कि नमिता ने नीचे से च्यवन को अपने साथ ले लिया, उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, नीचे नमिता के पिता सुमनबाबू भी बैठे हुए थे। नमिता ने उन्हे ऊपर लाना शायद उचित नहीं समझा। यह कहना कठिन है कि ऊपर की मजिल मे घटी हुई इस कथा का कितना-कुछ अश नीचे के अतिथि के कानों मे पहुँच पाया! उसने दासी को आवाज दी।

भीतर आकर कल्पना ने देखा कि निर्मलकुमार छत की ओर दृष्टि गड़ाए कहीं खो गए हैं। तभी दासी ऊपर आ पहुँची। कल्पना ने कहा: "जल्दी-जल्दी में कप भी फूट गया। जा टुकड़े बटोर ले, और बची हुई चाय तू, पीलेना।"

दासी चली गई तो कल्पना ने कहा: "नमिता के पिता भी साथ थे, शायद यह आप नहीं जानते।"

चौंक कर निर्मल ने कहा: "नहीं तो! कहाँ थे वे?"

"नीचे बैठक मे—"

"नीचे क्यों?"

"नमिता शायद झगड़ा करने ही के लिए आई थी, शायद न चाहती हो कि उसके पिता इस कुत्सित दृश्य के गवाह हों।"

"तुमने भी नहीं देखा?"

"अभी देखा जब कि वे बाहर जा रहे थे।"

"पर तुम तो चाय के लिए नीचे गई थी?"

"नहीं, यहीं बाहर खड़ी थी। दासी को चाय के लिए कह दिया था"

"यहीं खड़ी थी? तब तो नमिता ने जो कुछ कहा, सब सुना होगा।"

"जी हाँ, सुन लिया!"

निर्मल को काठ मार गया। कुछ क्षण चुप रह कर उसने कहा: "मुझे

बड़ा अफसोस है कल्पना, कि मेरे कारण तुम्हें यह सब भर्त्सना सहन करना पड़ी। मैं तुम्हारा बहुत ऋणी हूँ। मैं तुम्हारा क्या प्रत्युपकार कर सकता हूँ ?'

"मेरा ऋण उधार रखिए, जब चाहूँगी माँग लूँगी।—पर अब तो मुझे आज ही यहाँ से चले जाना चाहिए।"

"मैं भी यही सोचता हूँ।—तुम्हारे माता-पिता की ओर से तो तुम्हें कोई भय नहीं है ?"

"क्यों नहीं है ?—नमिता ने जो कुछ कहा, वह मिथ्या तो था नहीं।"

"यदि वह कुपित हुए ?"

"कुपित तो वह होंगे ही।—पर जब इस भर्त्सना के बीच से निकल गई, तो उसके बीच से निकलने का भी कोई मार्ग निकलेगा ही।"

★

: १ :

पिता के क्षोभ तथा यात्रा की परिश्राति के कारण, कल्पना की पिकनिक पार्टी का कच्चा चिट्ठा खोलने के पुनीत इरादे को नमिता स्टेशन से सीधे उसके घर जाकर सम्पन्न नहीं कर सकी, किन्तु फिर भी टेलीफोन का सहारा उसने अवश्य लिया ताकि दूसरी गाड़ी से लौटनेवाली कल्पना को घर पर सदैव की भाँति फूलों की सेज न मिले। हुआ भी यही। कल्पना की माता के दुलार और यत्न की जैसे सीमा न थी, वैसे ही उनकी आशंका की भी सीमा नहीं थी। यदि सीमा थी तो केवल उनकी सहिष्णुता की। अतः कविता की कल्पना के समान उड्डयनशील कल्पना कुमारी के पंखों के दिगंत-व्यापी विस्तार को काट देने का संकल्प सुना दिया गया। कॉलिज जाना बन्द, घर के बाहर सखी-सहेलियों से मिलना बन्द, जिसको आना हो घर पर आकर मिले, और पुत्री-वत्सल पिता के प्रति अति शीघ्र ही कन्या का मुँह काला करा गधे पर बिठाकर निष्कासन करने की जगह पीले हाथों डोली मे बिठाकर निष्कासन करने की व्यवस्था के लिए सुतीव्र नालिश, सभी कुछ कल्पना के घरमें पैर रखने के पाँच मिनट के भीतर ही सम्पन्न हो गया। कल्पना के मुँह से बोल भी नहीं निकले। उसके बचपन के अन्यतम साथी रामू और जिमी का हार्दिक-स्वागत भी उसे बल न दे सका। बिछौने पर औंधे मुँह लेटकर फफक-फफक रोने का विधान, साहित्य शास्त्र में ऐसी अवस्था के लिए किया गया है, कल्पना भी साहित्य शास्त्र में निष्णात थी, वही विधान उसे भी स्वीकार करना पड़ा।

किन्तु कल्पना के पिता रमणलाल दूसरी प्रकृति के व्यक्ति थे। कल्पना

की ऊपरी व्यवस्था मे, जो उसकी मा ने उसके लिए नियत की थी, उन्हे योग देना पड़ा, किन्तु इससे आगे उनके मनोराज्य मे अपनी कन्या के प्रति कोई भी भावना या आशका तक प्रवेश नहीं पा सकी। वे ईश्वरात्मा पुरुष हैं, ईश्वर के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों मे वे अनासक्त हैं, यदि कन्या के प्रति उनकी कुछ आसक्ति है, तो केवल इसलिए कि उनकी ईश्वर-प्राप्ति की दिशा मे वह पहली सीढ़ी थी। अतः रात्रि के उस नीरव, निस्तब्ध काल मे जब कि मन्दिर के अपने प्रकोष्ठ मे बैठकर वे परमेश्वर-साधन किया करते हैं, उन्होंने कन्या के मङ्गल-साधन के लिए कृच्छ-साधन की अवतारणा की।

जहाँ वे बैठते हैं, वहाँ से देव-विग्रह ठीक आँखों के सामने पड़ता है, उसके प्रति समस्त श्रद्धा और भक्ति से मन ही मन प्रणिपात कर रमणलाल ने अपनी कन्या से कहा—और मस्तक झुकाकर कल्पना ने सुना—

"मैंने तुम्हे और अधिक लज्जित होने अथवा कष्ट पाने के लिए यहाँ नहीं बुलाया है कल्पना! तुम तो जानती ही हो, आज तक दुनिया मे मेरे विश्वास का भाजन या तो यह निखिलानन्द सन्दोह, परम-मङ्गल की अनन्त-निधि लक्ष्मीनारायण हैं, या फिर इनके निमित्त से पार्थव रूप मे तुम हो। तुमसे अधिक कहने की न मुझे आवश्यकता है, न इच्छा ही, किन्तु आज जो अनजाने ही तुमसे यह काण्ड हो गया है, उसके बारे मे तुम्हे कुछ सावधानी तो बरतनी ही चाहिए!"

किन्तु कल्पना की लज्जा और कष्ट की सीमा न थी। जब से वह लौटी है, वितृष्णा से उसका सारा मनोभाव आच्छन्न रहा है, उसने जिस छल का आश्रय लिया था, उससे जहाँ तक माताजी का लगाव है, चाहे वह अधिक महत्वपूर्ण न हो, किन्तु ऐसे निरीह पिता के साथ तो उसका कोई औचित्य नहीं है। वह अपने आँसुओं को जब्त नहीं कर सकी, और पिता की गोद मे उसने अपना मस्तक झुका लिया।

उसकी पीठ को थपथपाते हुए वे बोले : "नहीं बेटी, इस तरह विचलित न हो। तुम्हारे इस आचरण से तुम्हारी माता की तरह दुःख तो मुझे भी हुआ है, पर क्रोध या लज्जा नहीं! दोष तुम्हारा तो है नहीं। युवावस्था व्यक्ति के विवेक ही से जो खेलती है। किन्तु यह भी नहीं भुलाया जा सकता कि युवावस्था तो केवल शरीर का धर्म है, वह आज आती है तो कल चली भी जाती है। शरीर के पीछे मनुष्य को आत्मा के अमृत का सौदा नहीं करना है। इस स्वरूप को पहचानने के कारण ही तो वह एक स्थिर पशु के सिवा है क्या?"

सिसकते हुए कल्पना ने कहा—उसी तरह मस्तक को पिता की गोद में

छिपाए हुए : "मैं बहुत ही लज्जित हूँ पिताजी, कि मैंने इस तरह आपकी अवमानता की। मुझे दण्ड दीजिए, मैं प्रायश्चित करना चाहती हूँ। किन्तु तब भी आपको मैं विश्वास दिलाना चाहती हूँ कि झूठ का आश्रय लेने के सिवा मैंने तो कोई बुराई नहीं की।"

"मैं समझता हूँ और विश्वास करता हूँ कल्पना! किन्तु यह मिथ्या का आश्रय ही तो सबसे अधिक भयानक है क्योंकि यह चाहे शरीर से सम्बन्ध रखता दिखाई न दे, आत्मा के दावों को तो यह झुठलाता ही है! जिस दुर्ग के पहरेदार डॉवाडोल हो उठें, उस दुर्ग की प्रतिरक्षा पर कौन विश्वास करेगा?" किंचित चुप रह कर मानो उन्होंने अपने अन्तर की निधि से शक्ति संग्रह की और बोले : "मुझे याद है, तुमने गये साल मुझे कुछ मनो-विज्ञान की पुस्तकें पढ़ने को दी थीं। मैं इस तथ्य को भूला नहीं हूँ, कि मूलतः मनुष्य पशु ही है, उसीसे तो वह विकसित हुआ है, अपने पशुत्व को पीछे ढकेलकर ही! इस पशुत्व पर यदि वह विजय नहीं पाता, तो इन कई पशुओं के ऊपर वह राज्य नहीं करता! पशुत्व की धरोहर इस शरीरको वहन और सहन करने के सिवा कोई गति नहीं हैं, पर इस पशुत्व से कई गुना अधिक बलशाली उसकी आत्मा का ऐश्वर्य यदि उस पर अंकुश न रख सके तो यह लज्जा की बात हो ही जाती है कल्पना!"

कल्पनाने कुछ नहीं कहा, किन्तु वह पूर्ववत ही मुँह छिपाए रही। रमणलाल जानते थे कि जो कुछ वे कह रहे हैं, वह उसके मर्म तक पहुँच रहा है। बोले : "और अध्यात्म के ऐश्वर्य के बावजूद शरीर की, इस पशु की वासनाएँ उसे जर्जर करती हैं, उनका प्रवाह उसके पैरों को डगमगाया करता है। उस आवेश को, उस वेग को दबाया नहीं जा सकता, यह भी मैं भूला नहीं हूँ!—किन्तु उस वेग को उदात्त तो किया जा सकता है। यह उदात्ती-करण ही तो मनुष्यता है! मैं इसीके लिए तुम्हें कहता हूँ बिटिया, तुम्हारे लिए यह असम्भव साधन नहीं है। तुम पढ़ी-लिखी हो, मुझसे बहुत अधिक तुम्हें बुद्धि का ऐश्वर्य देने मे भी परमात्मा ने कोई संकोच नहीं किया है! मुझे ही देखो न—आत्मा की इस भूमिका को शरीर की वासनाओं का अकुश पकड़ा देने मात्र से मेरी कितनी सुविधा हो गई है। रत्नों की चका-चौंध मे विवेक की आँख तो मुँद ही जाती है, यदि आत्मा की आँख के भी मुँद जाने का अवसर आ जाए तो वह उसे पशु भी कहाँ रहने देती है?—फिर तो वह कीट क्या, निपट जड़ होने लग जाता है!—आत्मा के स्वास्थ्य से वह मनुष्य तो है ही, वह 'देवत्व' भी प्राप्त कर सकता है।"

"पिताजी, मैं भी क्या देवत्व प्राप्त कर सकती हूँ?"

"देवत्व का मार्ग कठिन है, वह मनुष्यत्व के बाद आता है। 'मनुष्यत्व' समूह की उपलब्धि है, 'देवत्व' व्यक्ति की। वह समूह की तभी हो सकती है, जब कि समूह मनुष्यत्व के स्तर को उपलब्ध कर चुका हो। पर समूह को उस स्तर तक आने के लिए अभी समय लगेगा। बहर हाल मनुष्य तो वहाँ तक पहुँच ही सकता है। कम-से-कम मेरी तो समस्त साधना ही यह है कल्पना।"

"मुझे भी आप अपनी ही अनुगामिनी बना लीजिए न पिताजी ?"

"वह तो कोई किसी को बना नहीं सकता बिटिया। मनुष्य सदैव ही तो चलता रहता है, चलते रहना ही तो उसका सहज धर्म है, प्रश्न तो केवल मार्ग के पाने का है। मार्ग के मिल जाने पर वह मार्ग पर चलता है, नहीं तो भटकता रह कर 'खो' जाता है।"

"तो मुझे मार्ग पर ही छोड़ दीजिए—कम-से-कम भटक तो नहीं सकूँगी।"

"क्या चाहती हो कल्पना तुम ?"

"मुझे अध्यात्म का बोध करा दीजिए न, पिताजी, इस सासारिकता को मैं घृणा करना चाहती हूं।"

रमणलाल सावधान हो गए। सबेदन प्रवण कल्पना की रुझान कहीं शुष्क वैराग्य की ओर चली गई तो ?—उन्होंने कहा :

"किन्तु उस यात्रा के लिए सम्बल तो संग्रह करना पड़ता है। शरीर की प्रेरणाओं मे न बह कर भी हमे यह तो स्मरण रखना ही होगा कि शरीर हमारे साथ है, और यह भी परमात्मा ही का दान है। कदाचित् इसीके कारण हमारी साधना का मार्ग भी सुलभ और सरल हो सका है। हमारे हृदय के देवता को धारण करनेवाला देवालय तो यह कम-से-कम है ही। चाहे इसके कलुष का देव-मूर्त्ति पर कलंक न पड़े, किन्तु देव मूर्त्ति के परमैश्वर्य की काँति तो इसको उद्भासित कर ही सकती है। अपनी भावना के अनुकूल हम इसें सजाते भी हैं, सँवारते भी हैं।"

"शरीर की लिप्सा में अनासक्त होकर ?"

"बिलकुल ठीक बेटी, किन्तु अहेतुक अनासक्ति नहीं, सहेतुक अनासक्ति ! यानी फल से निवृत्ति अवश्य, किन्तु प्रवृत्ति केवल सत्कर्म में ; अकर्म में नहीं !"

"पिताजी, आशीर्वाद दीजिए, कि मेरा मन कभी चंचल न हो।"—और उसकी आँखें भर आईं।

रमणलाल ने दोनों हाथ उठाकर भगवान की ओर बढ़ा दिए : "आशीर्वाद है, बेटी,—वह परमात्मा सब कुछ देख रहा है, देश-काल से परे, उसका पूत-आशीर्वाद सदैव तुम्हारे मस्तक पर रहे ! रहा मैं, मेरा तुम पर पूर्ण विश्वास है, तुम्हारी मा ने जिस बन्धन में तुम्हें बाँधा है, उससे तुम मुक्त हो। तुम्हारी

भलाई की चाहना उसकी इतनी तीव्र अतः अंधी है कि वह नाक से आगे कुछ सोचना ही सहन नहीं कर सकती।"

"यानी?"

"कॉलेज न जाने के उसके आदेश से तुम मुक्त हो।"

"नहीं, पिताजी, अब मैं कॉलेज नहीं जाऊँगी।"

"पर क्यों?—तुम्हारा यह तो फायनल ईयर—"

"हुआ करे। एम० ए० पास करके भी मुझे क्या करना है!—आप इसके लिए जिद न कीजिए। माताजी ने जो आदेश दिया है, उसका पालन मैं करूँगी। अब उन्हें और अधिक कष्ट न दूँगी। पर एक और भिक्षा आपको देनी होगी पिताजी!"

"भिक्षा?—रत्नों का व्यवसायी हो जाने ही से क्या भिक्षा देने की सामर्थ्य हो जाती है बिटिया?"

"मैं अपना पुराना अधिकार चाहती हूँ, भगवान् की सेवा में मेरा कुछ योग, और संध्या को पूर्ववत् आपके चरणों में कुछ काल तक बैठना।"

रमणलाल ने हँसकर कहा: "मा से डरकर?—पर तुझे उस अधिकार से विरत किसने किया था पगली? अपने सम्पर्क की नई दुनिया मे तुझे ही तो उस आसन की आवश्यकता कदाचित् नहीं रह गई थी। वह देख, तेरा आसन वहीं नहीं, मेरे हृदय में भी उसी तरह सज्जित है कल्पना!" और एक लम्बी साँस लेकर उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिए, यह देखने के लिए कि शीघ्र ही वह दिन आ रहा है जब कि कन्या पराई हो जाएगी, और यह आसन सदा के लिए रिक्त हो उठेगा, और उसके लिए पराया घर खोजने की व्यवस्था भी उन्हीं को करना पड़ेगी।

तब से कल्पना की जीवनधारा मानों मुड़ ही गई। कॉलेज से अवकाश लेकर मा की गृहस्थि और पिता का देव-स्तवन कल्पना के बुद्धि-प्र[illegible]भव से जगमगा उठा!

कॉलेज में बिला नागा उपस्थित रहने वाली नमिता अवसर की खोज में थी कि कब कल्पना आए, और उसे अपनी बोई फसल का आभास हो! प्रतिदिन की उसकी सतर्क सज्जा, अतिरिक्त उल्लास और अथक प्रतीक्षा, संध्या के बाद उसके मन पर शिला का भार पटक कर व्यर्थ हो जाते। अन्त में जिस तरह उसने एक दिन अपनी अमन्द ईर्ष्या की फसल बोई थी, उसी तरह टेलीफोन के सहारे उसने मालूम किया कि अब कल्पनाकुमारी कॉलेज पढ़ने के लिए नहीं आएँगी! नमिता के आत्माभिमान को और कड़ी चोट पहुँची;

उसका क्रोध का उफान, जब पास कोई न मिला, तो उसी पर बिखर गया। उसके मन में फफोले उठ आए।

उस दिन वह मध्यान्तर के बाद ही सिरदर्द का आश्रय लेकर कॉलेज से लौट आई। संध्या को लौटते ही च्यवनप्रकाश सीधा ही नमिता के कमरे में जा पहुँचा। अपने पलंग पर लेटी हुई, किसी मासिक पत्र के पन्ने उलेटते ही उसने कहा :

"च्यवन! आज मेरी तबीयत खराब है, आज मैं घूमने नहीं जा सकूँगी।"

"पर तुम्हारी तबीयत को हुआ क्या है?—कॉलेज से भी बिना कुछ बताए ही तुम भाग आई! क्या बात है?"

"बात क्या होगी? यही सिर-दर्द—"

च्यवन पास ही कुर्सी खींच कर बैठ गया। सिगरेट-केश से निकाल क उसने सिगरेट जलाई, और कहा : "यों तो इस ऊमर मे सिर दर्द न होना ही आश्चर्य की बात है, किन्तु मचमुच ही तुम कुछ दिनों से गिरी-गिरी-सी दिखाई देती हो! बात क्या है?"

"सो ही तो मैं नहीं जानती।"

"किसी डॉक्टर को बताया जाए—मजाक नहीं सीरियसली कह रहा हूँ।"

"क्या सचमुच मैं ऐसी हो गई हूँ कि डॉक्टर को बतलाया जाए? परसो पिताजी भी कह रहे थे कि मुझे क्या होगया है?" फिर कुछ क्षण की चुप्पी के बाद बोली : "मैं समझी थी कि वात्सल की यह भी एक कमजोरी है कि वह संतान को सदैव ही दुबली देखता है।" मुँह से धुँआँ फेंकते हुए मुस्कारा कर च्यवन बोला : "और 'उनको देखे से जो मुँह पे आती है रौनक' को अगर और बाद दे दिया जाए तो बैलेन्स कितना 'पूअर' होजाएगा, वही मैं देखरहा हूँ नमिता।"

कुछ मुस्करा कर नमिता ने कहा : "क्यों, तुम्हारे आने से क्या रौनक नहीं आती?"

"तभी तो उसे बाद देने की बात कर रहा हूँ! इस 'व्हाइट-कॉलर लार्सनी' को मैं खूब पहचानता हूँ—एपीअरन्सेस (चेहरे) हमेशा डिसीटफुल (धोखेबाज) होते हैं! लेकिन पार्टनर, एक बात है, डॉक्टर तुम्हारी बीमारी को पकड़ सकेगा, इसका विश्वास नहीं है!—नौजवानों की बीमारियाँ बूढ़े डॉक्टर कहीं पहचानेंगे!—पहचान भी लें, तो क्या इलाज उनके बस का है?"

"तो किनके बस का है?"

"बात मानो तो एक प्रस्ताव है।"

"क्या?"

"जिस तरह तुम पढ़ रही हो, कहना चाहिए जिस तरह तुम जी रही हो,

उससे तो परीक्षा देने का कोई मानी नहीं है। चलो न, पिता से कह कर कुछ दिनों के लिए पहाड़ हो आएँ!—जलवायु भी बदल जाएगा, और नए उत्फुल्ल वातावरण में तुम भी बदल जाओगी।"

नमिता ने च्यवन की ओर देखा, दृष्टि के उस प्रश्न को समझ कर च्यवन ने कहा: "मेरी परीक्षा?—वह कोई तुमसे बड़ी थोड़े है नमिता! और वह भी तो एक परीक्षा ही है! यदि तुम्हे मना सका, तो और क्या पास करना रह जाएगा मुझे!—न होगा, कॉलेज की परीक्षा दोनों ही अगले वर्ष दे लेंगे।"

"परन्तु पिताजी--जबसे हम लोग निर्मल के यहाँ से लौटे हैं, उनका रुख कुछ ऐसा होगया है कि मेरा साहस ही नहीं होता।"

"उसका दायित्व मुझ पर रहा। सही बात तो यह है नमिता, यदि बुरा न मानो, कि तुम्हारे मन पर अभी तक निर्मल की छाया काम कर रही।"

नमिता छत की ओर देखती रही, उसने कोई उत्तर नहीं दिया, तो च्यवन ने पूछा: "क्या सोच रही हो?"

"यही कि निर्मल की छाया को हटा सकनेवाला प्रकाश मुझे कहाँ मिल सकेगा?"

निश्चित विश्वास से सिगरेट के धुँएँ को नमिता के चेहरे पर फेंकते हुए च्यवन ने कहा: "लेकिन छाया को ध्रुव मान लेने से बेचारा प्रकाश कर ही क्या सकता है?—आँखे बन्द कर लेने से सभी तो छायामय बन जाता है। आँखे खोलो नमिता, और देखोगी कि प्रकाश तुम्हारे सामने ही है। प्रकाश का एक कण भी छाया के लिए बहुत है।"

मुस्करा कर नमिता ने कहा: "सामने देखने को कहते हो?—यह सिगरेट का धुँआँ तो हटाओ।"

"चलो इस जगह से दूर चलें। यहाँ की आबहवा तुम्हारे लिए विषैली है।"

"तो पिताजी से—"

"यह मुझ पर छोड़ो।"

: १० :

नमिता ही नहीं, निर्मल की बुआ भी निर्मल की जड़ें काटने में दत्तचित्त थीं। किसी एक अज्ञात जवान लड़की के साथ बन्द कमरे में तीन-चार रात बितानेवाले निर्मल के चरित्र को लेकर सारे गाँव में एक दुर्वाद प्रचारित हो गया। जिस महिला ने भी सुना, 'छिः छिः' की बौछार की। कुशल थी कि वह लड़की किसी बाहर गाँव की थी, और अब लौट भी चुकी थी। गाँव की बहू-बेटियाँ यदि कहीं निर्मल को गुजरते हुए देखतीं तो दौड़ कर छिप जातीं, या दूसरे रास्ते से घर लौट जातीं, यदि कभी यह सम्भव नहीं होता, तो डरी बिल्ली की तरह साँस रोके पञ्जों के बल इस तरह भागती कि गोया निर्मल कोई कुत्ता है जो उन्हें देखते ही दबोच लेगा। सदैव नीची नजर करके चलने वाले निर्मल को पहले तो महिलाओं के इस व्यवहार का पता ही नहीं लगा, बाद में जब लगा तो उसने समझा, गाँव की लज्जाशील तरुणियों का यह भी एक रिवाज है, जो अवश्य ही हँसने लायक है; किन्तु धीरे-धीरे जब गाँव के कुछ बूढ़े भी उससे कन्नी काटने लगे तो वह संत्रस्त हो उठा। और एक दिन एक सहृदय ने उसके कानों पर गाँव की जनता का मंतव्य भी प्रकट कर ही दिया। यों गाँव में उसका हित चाहनेवाला केवल कालिकाप्रसाद था। एक दिन कालिकाप्रसाद ने स्वयम् ही इस प्रसंग की चर्चा की तो निर्मल ने सच्ची बात बतादी। दुनिया में झूठ का सिक्का इतना चलता है कि सच बात को सच मान लेना ही सबसे कठिन हो गया है। मालूम दिया, कालिकाप्रसाद के उत्साह में ठण्डे पानी के छींटे पड़ गए।

यह सोच कर कि नमिता का क्रोध अबतक शायद शान्त हो गया हो, सारी

परिस्थिति को समझते हुए निर्मल ने साहस बटोर कर एक पत्र उसे लिखा भी, प्रतीक्षा के पहले दिन ही उसे उत्तर भी मिला, काफी भारी, खोल कर देखा कि उसका भेजा हुआ वह लिफाफा बिना खुले ही वापिस आगया है, साथ मे एक टुकड़े पर दो पंक्तियाँ लिए हुए, 'जो कुछ हो चुका है, उसके बाद मैं आपसे किसी प्रकार का सम्बन्ध बनाए रखने की अपने मे कोई इच्छा नहीं पाती। आश्चर्य के साथ पाया हुआ आपका यह पत्र बिना पढ़े ही वितृष्णा से लौटा रही हूँ। नमिता।'

लम्बी साँस लेकर निर्मल ने कागज को टुकड़ों में परिवर्त्तित करके खिड़की के बाहर फेंक दिया। सोचते-सोचते उसकी विचारधारा कल्पना के उपसर्ग पर अटक गई। कल्पना, वही तो है इस सारे विभ्राट् का मूल। यदि वह न आती —बला से उसे मरने दिया जाता, वह नमिता के मधुर-प्यार का विश्वास लेकर तो मर पाता, आज उसकी भर्त्सना की मार से तिल-तिल कर मरते हुए जीवित रहने की अपेक्षा कहीं मृत्युकल्याणकर और सुखकर होती! न जाने किस जन्म का बदला इस कल्पना ने लिया? क्यों वह उसके मार्ग में आई? सदा से ही तो वह उससे बचता आ रहा है? जो कभी कल्पित नहीं था, उसी को घटित होना था?

कल्पना—उसका ऋण तो है। यदि उस दिन जीवन के शेष मे वह मा के ममतामय वरदानकी भाँति एकाएक ही उपलब्ध न हो गई होती, तो कौनजाने उसका क्या हाल होता। नमिता ही की तुलना में जो उसने अपना आत्मभाव प्रदर्शित किया, क्या वह, उस पर क्रोधित होकर भी, भुलाया जा सकता है? कल्पना के उस आत्मभाव की कीमत तो चुकानी पड़ी है, किन्तु क्या यह सौदा सचमुच ही घाटे का रहा?—कल्पना और नमिता, नमिता और कल्पना।

जब अधिक दिन और इसी तरह आलस्यमय अवसाद में बीतना नहीं चाहते थे, तो एक दिन निर्मल ने सोचा कि इस गाँव मे ही अकर्मण्य पड़े रहने का क्या प्रयोजन है? निठल्ले दिमाग ही में तो सामान्य-सी मानसिक उलझनें भी विराट् विभीषिकाएँ बन जाती हैं! यदि किसी अथक कर्म-प्रवाह मे वह अपने आप को डाल सके, तो उसके छायावादी अहम् को पंख लग जाएँ! लेकिन वह प्रवाह कहाँ मिलेगा उसे? इस गाँव के तो सभी द्वार उसके लिए अवरुद्ध है। तो क्या शहर लौट जाया जाए? परीक्षाएँ तो इस सत्र की समाप्त भी हो चुकीं। और परीक्षाओं का अब प्रयोजन ही क्या है?—और नमिता की प्रतारणा क्या शहर में उसके लिए कठिन नहीं होगी? उसका सामान अभी वहीं रक्खा है, एक पत्र लिखने मात्र से उसकी व्यवस्था हो सकती है, और सामान?—बड़ा मोह है निमल!

पर—यदि मोह न होता तो यहाँ पर यह मुकदमे और अदालत की शरण लेकर जो महाभारत रच डाला गया, वह क्या था ? और इस महाभारत के स्वस्ति-पाठ पर बचा क्या ?—हिमालय-गमन को छोड़ कर अब शेष उपाय क्या है ? तो क्या अपनी कब्र अपने ही हाथों खोदने के लिए मनुष्य का निर्माण हुआ है ? —न न न न—निर्मल के लिए यह आत्म हनन स्वाभाविक नहीं हो सकता ! उसी दिन संध्या को वह बुआ के घर उपस्थित हो गया।

शिशिर बाहर खेल रहा था। निर्मल को देखते ही उल्लास से चमत्कृत हो उठा—झट से बड़े भैया का हाथ पकड़ कर बोला—

"भैया, लेमनचूस लाए हो ?"

हँसकर निर्मल ने दो-तीन उसके हाथ मे थमा दिए, एक उसके मुँह में ठूँस दिया।

"कितने अच्छे हो भैया तुम !—तुम रोज-रोज क्यों नहीं आते हो भैया ?"

"मैं अगर न आऊं, तो तुम ही क्यों नहीं मेरे यहाँ आजाते ?'

"मैं तो बहुत कहता था, पर अम्मा जो नहीं आने देतीं ! एक दिन तो मैंने हेमन्त से कहा था कि चल, हम दोनों बिना अम्मा से कहे ही मिल आएँ। पर हेमन्त ने कहा कि वह अम्मा से कह देगा ! भैया, हेमन्त बहुत बुरा है। तुम उससे नहीं बोलोगे न ?—मैंने उससे कहा था कि उसे तब लेमनचूस ही नहीं मिलेंगे !—उसे लेमनचूस मत देना भैया !"

"अच्छा नहीं देंगे !—यह तो बताओ शिशिर, अम्मा भीतर हैं ?"

"हैं न !"

"और कौन है ?"

"हेमन्त घर पर नहीं है। स्कूल से लौटते ही कहीं खेलने चल दिया। अम्मा से पूछा भी नहीं। कह रही थीं कि घर लौटा तो पैर तोड़ देंगी। मैं तो बिना पूछे कहीं नहीं जाता भैया। मैं अच्छा लड़का हूँ न ?"

"बहुत अच्छा लड़का है ! अच्छा, चाचाजी हैं घर पर ?"

"हाँ चाचाजी तो हैं भैया !"

"अच्छा, जा, भीतर जाकर कह, कि मैं मिलने आया हूँ।"

हाथ पकड़ कर खींचते हुए शिशिर बोला : "चलो न भैया। बड़ा मजा आयेगा, जब कमरे मे पलंग पर लेटी हुई अम्मा एकाएक तुम्हें आते हुए देखेगी !"

"मुझे चाचाजी के कमरे में छोड़कर तू अम्मा से कह आना !"

"वहीं पर तो है अम्मा !"

सुनते ही एकाएक दुर्निवार लज्जा से निर्मल आपादमस्तक सिहर उठा !—

शिशिर कहता रहा : "हेमन्त एकबार इसी तरह चला गया था; तो अम्मा

बहुत नाराज हुई थीं। कहा, कभी दूसरों के कमरे मे इस तरह नहीं जाना चाहिए। हेमन्त ने पूछा, तुम कैसे आई ? बस,अम्मा और नाराज हो गई, कहने लगीं छोटा मुँह बड़ी बात--यह तो भैया, खैर हुई, हेमन्त उसी समय मौका पाकर उल्टे पैरों भाग गया, वरना खूब पिटाई होती।—अच्छा भैया, यह मकान तो तुमने पहले कभी देखा नहीं न ?"

तन्द्रा से जैसे चौंक कर निर्मल बोला : "हैं ?—क्या"

"मकान चाचाजी का है न भैया, सो वे कभी-कभी बड़ा रोब जमाते हैं ?"

"सो तो जमाना ही चाहिए शिशिर—अच्छा—अब आज मैं घर जाऊँगा, फिर कभी आकर मिल लूँगा बुआजी से।"

"क्यों क्यों ?—अम्मा से नहीं मिलोगे ?"

"नहीं नही—अब आज नहीं, कल फिर आऊँगा लेमनचूस लेकर।"

निर्मलको लज्जा के साथ ही साथ नफरत भी हो गई, और इतनी कि बुआ से मिलने का अब कोई उत्साह उसमे नहीं रह गया। किन्तु तब तक तो वे इतने निकट पहुँच चुके थे कि वाचाल-शिशिर की आवाज मकान के भीतर रहनेवालों के कानों पर पहुँच ही गई। ऐसी नाजुक परिस्थितियों में भी कान जरा बाहर ही की खबर लेने मे अधिक व्यस्त रहते हैं। अतः इसके पहले निर्मल वहाँ से परिवर्त्तित हो सके, उस के कण्ठ ने पकड़ लिया · "कौन है रे शिशिर ?"

हाथ छुड़ाकर शिशिरने कहा : "बड़े भैया हैं अम्मा।—निर्मल भैया।"

एक क्षण की चुप्पी के बाद सुनाई पड़ा : "निर्मल भैया हैं! क्यों ?—कुड़की लेकर आये हैं ?—विधवा के सिरकी यह साड़ी मात्र बची है, दुःशासन बनने का शौक है क्या ?—" और सिर की साड़ी को सम्हालते हुए उन्होंने दरवाजे पर से ही दर्शन दिया।

निर्मलने आगे बढ़कर पाँव छूना चाहा तो बुआ बोली : "रहने दो, रहने दो अपनी भक्ति। गाँव मे जैसा यश फैल रहा है, उससे यह भक्ति के बजाय अपनी दुश्मनी का ही रूप बनाए रक्खो, तो ही समझ लूँगी कि अगले जन्म में कुछ पुण्य किया था। और क्यों रे शिशिर, फिर तू लेमनचूस खा रहा है न ?—खाँसी हो रही है, डॉक्टरने मना किया है, और फिर भी तू नहीं मानता। ठहर देख—"

डरकर शिशिर ने मुँह की सारी ही गोली को गलेमे निगल डालना चाहा पर वह गले में उलझ गई। शिशिर के मुँह से बोल नहीं निकला, ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की नीचे, कपार पर चढी आँखों में तराइयाँ उतर आईं—देखते ही मा दौड़ी, निर्मल भी घबराया, पर गनीमत हुई, दूसरे क्षण

गोली नीचे उतर गई। एक खाँसी के साथ गला साफ हो गया, शिशिर एकाएक बोल नहीं सका।

बुआने शिशिर की छाती सहलाते हुए कहा : "जाने क्या-क्या मुँह में भर लेता है बदजात कहीं का।—मालूम नहीं, गली गली मे दुश्मन घूमते फिरते हैं। जिसने जो दिया, वही मुँह मे रख लिया! कभी कोई जहर ही दे दे तो—"

निर्मल के मुँह पर राख छा गई, क्या यह भी सोचा जा सकता है?—पर सोचा ही नहीं, कहा भी गया है, और लक्ष्य भी वही है, तो साहस करके उसने कहा : "बुआजी, शिशिरने कुछ नहीं खाया मैं, सिर्फ मैंने ही उसे कुछ लेमनचूस दिए थे।"

"तो तुमही कौन से दूध के धोए हो!—जो आदमी अदालत में लड़ सकता है, वह क्या मौका पाकर जहर नहीं दे सकता?"

"पर अदालत मे मैं तो नहीं गया था बुआ।"

"तो अदालत ही तुम्हारे दरवाजे मेहरबानी करके पहुँच गई थी! धन्ना-सेठ के बेटे जो ठहरे! कमर मे चार पैसों का जोर क्या हो गया, पतुरिया तो पतुरिया, अदालत घर पर नाचने लग गई।—"

बुआजी बराबर ही सप्तम सुर का प्रयोग कर रही थीं। काम-धाम का समय था, पर फिर भी पुरुषों की अपेक्षा बहुमत मे स्त्रियाँ ही तमाशा देखने के लिए वहाँ एकत्रित हो गईं, जो नहीं जानती थीं, उन्होंने बुआ के पास जाकर सहानुभूति से पूछा कि यह लड़का कौन है!

"कौन है नहीं जानतीं?—अरे राम सारा गाँव तो जानता है। शहर की एक चमकचन्दा छिनाल जिसके यहाँ बेहया होकर तीन रात काट गई! मेरा भतीजा?—ऐसे भतीजे से सात जनम तक बे-भतीजे होना भला।" और उन्होंने दोनों हाथ अपने मस्तक से लगा लिए।

निर्मल को काटो तो खून नहीं। क्या करे वह? क्या कहे?—जिस बात के लिए आया था वह, तो बिलकुल ही भूल गया। किस माई के लाल को ऐसी अवस्था मे होशो-हवास रह सकता है।

किसी प्रौढ़ाने कहा : "क्यों बहू, इसीने तो जनार्दन का बेटा बनकर तुम्हारे खिलाफ अदालत लड़ी थी।—हे राम! कलयुग सचमुच ही आ गया क्या?"

दूसरी बुढ़िया ने अपनी पतोहू को धक्का देकर कहा : "तू कलमुँही यहाँ क्या देख रही है। लुच्चों-लफंगों के सामने कहीं इस तरह भले घर की बहू-बेटियों को निकलना चाहिए?—जा, घरमें जा!" और जब बहू घर मे लौट गई, तो बुआ को लक्ष करके बोली :

"जनार्दन की बीमारी मे सेवा तो तुमने की थी न दुलहन ?"

"लो—इन छोटे-छोटे बच्चो का गला काट कर मैंने ही तो उसकी दवा-दारू का इन्तजाम किया था। कुछ भी हो, था तो आखिर मेरा भाई ही। विधवा राँड हूँ तो भी लाज-शरम और माया-ममता तो छूटी नहीं। माल के वक्त तो दौड़े आकर कोई भी बेटा बन सकता है, पर जब बाप बीमार था तो शहर मे छोकरियों के साथ मौज करने से फुरसत नहीं मिली! और तो और, यहाँ आने पर भी, उसको बुलवा लिया। मर गया सो मर गया, मुफ्त का माल, बढ़िया मकान सब कुछ तो मिल ही गया।—सच कहती हूँ माँजी! मैं तो लुट गई, बरबाद हो गई भाई के पीछे; इन मासूम बच्चों का गला काट कर उसका दवा-प्रानी जुटाया, और नतीजे में गलीगली की धूल पाई।" और उसने अपनी आँखों को लम्बे आँचल से पोंछ लिया।

निर्मल अधिक देर ठहरने और सुनने मे असमर्थ हो गया। उसने कहा—

"बहुत कह लिया, आपने बुआजी! आँसुओं से अगर सच साबित हो सकता है, तो जीत आपकी हुई; पर सच इतना सस्ता नहीं है, जितने कि आपके आँसू! अपने पिता की सेवा मैं नहीं कर सका, अपने इस दुर्भाग्य का जिम्मेदार शायद मैं ही हूँ, और इस दुर्भाग्य की कीमत भी मैं चुकाने को तैयार हूँ। उनका मकान और उनकी सम्पत्ति, यही न आपके लोभ का विषय थी।—लीजिए यह कागजात, और यह चाबी मकान की। कल सवेरे ज्यों का त्यों सारा मकान आपको मिल जाएगा।—पर याद रखिए, यह सिर्फ कीमत है इस बात की कि आपने मेरे पिता की अन्तिम समय मे सेवा की थी। केवल सेवा!"—और कागज तथा चाबियाँ फेंककर निर्मल वहाँ से अन्तर्धान हो गया।—सारा मजमा देखता ही रह गया।

दूसरे दिन सवेरे एक चक्कर हेमन्तने लगाया, और देखा कि मकान मे ताला लगा हुआ है। दस बजे आफिस जाते हुए बसन्तकुमार भी चक्कर काट कर इधर से निकले, और सन्तोष की साँस ली। दुपहर तक बुआ भी अपने आपको नहीं रोक सकीं। लेकिन शाम तक भी ताला खोलकर भीतर जाने का साहस किसी का नहीं हुआ।

दूसरे दिन बुआ के कहने-सुनने पर हेमन्त एक और अपना ताला वहाँ लगा आया। लेकिन जब एक सप्ताह तक भी कोई चिड़िया का पूत भी नहीं झाँका, तो सब लोगों को निश्चय हो गया कि निर्मलकुमार, मकान ही नहीं, गाँव छोड़कर अपने रस्ते लग गया है।

× × × +

स्टेशन पर उतरते ही निर्मल को सोचना पड़ा कि वह कहाँ जाए?— यों तो अब भी उसका सारा सामान नमिता के मकान पर उसी के कमरे में पड़ा है, किन्तु इस समस्त घटना काण्ड के बाद भी क्या वहाँ जाना उचित है?—सचमुच तो वह कमरा उसने किराए पर लिया था, कुछ दिनों तक किराया भी बराबर दिया जाता रहा। फिर एकाएक ही बीच मे बाप और बेटी के सम्मिलित आग्रह से, किसी दिन से, वह बन्द हो गया। यद्यपि ठीक कब से बन्द हुआ इसका निर्मल को पता नहीं, किन्तु जरा चेष्टा करते ही करीब-करीब समय का पता तो लग ही जाएगा। और जब कि कमरा उसके चार्ज मे रहा, तो किराया वह सब चुका देगा। किन्तु तब भी, एकाएक वहाँ जा पहुँचने मे उसे कोई संगति नहीं दिखाई दी।

कल्पना के यहाँ?—उसकी कृपा का आधार लेकर? जिसके बचपन भरे आगमन की उसको इतनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है!—पर—कीमत क्या उसे नहीं चुकानी पड़ी होगी?—क्या बीता होगा उसके घर पर?—कितना कृतघ्न है वह कि उसने उसके बाद उसकी सुधि ही न ली।—क्या सोचती होगी वह मन मे?—नहीं, नहीं, आज संध्या को ही उसकी भी टोह लगानी है। प्रश्न के इस पहलू पर तो उसका ध्यान ही नहीं गया था।

निर्मल एक होटल में जा ठहरा। होटलवाले उसे पहले से ही जानते थे, यद्यपि जो होटल उसने चुना था, वह उसके अंचल से काफी दूर पड़ता था। निर्मल जिस सोसाइटी मे मूव करता था, वह काफी ऊँची थी, और उसकी पार्टियों के अड्डे लगभग सभी अच्छे होटलों मे लगते रहते थे। होटल के कर्मचारी उसे हाथों पर उछाले रहे। उसे कोई असुविधा नहीं हुई। सभी जानते थे कि वह लक्ष्मी का लाड़ला बेटा है।

शहर की हवा पाते ही उसे लगा कि उसका स्वास्थ्य लौट आया है। मन ने स्फूर्ति की दिशा प्राप्त की। पलंग पर लेटे-लेटे उसे अनुभव हुआ कि इतने दिनों के थका देनेवाले प्रवास के बाद अब वह अपने घर लौटा है। वह वापिस अपना दैनिक कार्यक्रम प्रारम्भ कर सकेगा, उसी पूर्व उत्साह के साथ, यह वर्ष व्यर्थ गया तो गया, अगला वर्ष तो है, और अब कोई झंझट मे वह पड़ेगा नहीं। नमिता को नमस्कार-निवेदन कर ही दिया गया है, कल्पना से भी कोई वास्ता रखने की जरूरन नहीं है।—सच तो, ये दोनों ही इस वर्ष निकल चुकी होंगी। बस, जरा मेहनत कर ली जाए तो फर्स्टक्लास उसके सिवा किसी का हो नहीं सकता। और अब फर्स्टक्लास उसके लिए निहायत जरूरी है; उसके बिना कहीं लेक्चरार-शिप कैं अच्छे मौके नहीं रहते।

शान्ति की साँस लेकर उसने आँख बन्द कर लीं, और सो भी गया वह।

खूब डट कर सोया, शाम को पाँच बजे उठा, जब कि शाम की चाय के लिए बेरा झाँक रहा था।

शहर तो आ ही गया है। ऐसी जल्दी क्या है?—और कौन-सा वहाँ पर स्वागत का आयोजन बासी हो रहा होगा कि निर्मल को आज ही सन्ध्या को अपने कमरे का हाल-चाल ले लेना चाहिए।—नमिता को पता तो लग जाएगा, तो वह भी देखे कि मुझे उसकी उतनी चिन्ता नहीं है!—और तब तक इन नरम-नरम गद्दों पर, गरम-गरम भोजन के सहारे विश्राम के कुछ और दिन क्या स्वाभाविक स्वास्थ्य के लिए उत्तम न होंगे?

अतः लगभग तीन-चार दिन तक वह होटल ही मे पड़ा रहा। बाहर जाने की उसने आवश्यकता ही नहीं समझी।

इसी बीच उसने हिसाब लगाया कि कम-से-कम डेढ़ वर्ष से वह किराया नहीं चुका रहा है, यदि दो वर्ष का किराया वह सुमनबाबू की नाक पर रख दे तो उसकी प्रतिष्ठा को चार चाँद लग जाएँगे, दो वर्ष का किराया—यद्यपि सामान्य तौर पर किराए की दर काफी ऊँची है, किन्तु वह चालीस रुपए माहवार देता आ रहा था। इस हिसाब से दो वर्ष का किराया—साल भर का चार सौ अस्सी और दो साल का दूना—यानी नौ सौ साठ, एक हजार रुपया?—निर्मल के दिल को एक आघात-सा लगा।

वह शहर में है, जहाँ बिना पैसे के कोई उससे बात भी नहीं करना चाहेगा—उसने अपनी परिस्थिति की ओर ध्यान दिया। नकद पैसे की उसे कभी जरूरत ही नहीं पड़ी थी। मास के अन्त में जितने बिल उसके पास इकट्ठे हो जाते, उनको वह पिताजी के पास भेज देता। पिताजी बिल चुका देते, और सौ-दो-सौ रुपया अलग से उसे मिल जाता। इस रुपए को खर्च करने की उसे जरूरत ही नहीं पड़ती थी। कभी-कभी कॉफी हाउस का खर्चा जरूर उसके जिम्मे पड़ जाता था। उसी का जोड़ा हुआ कुछ रुपया यहाँ पर बैंक में जमा है।

पिता की संपत्ति का उसे पता ही न था। अदालत में सवाल था केवल अपने आप को अपने पिता का वारिस साबित करने का। उनके पास क्या नकद है, कहाँ है, कुछ है भी या नहीं?—उनके आखिरी दिनों बुआ उनके पास थी। मकान मे क्या है?—और दूसरी स्थावर संपत्ति क्या है, इसका उसे कुछ भी आभास नहीं था, और अब सब कुछ वह बुआ को सौंप आया है। उसका कहने को अब रहा ही क्या है वहाँ?—अदालत में जाने पर मकान मिल सकता है, पर शेष और कुछ?—वह दावा भी करे तो किसका?

शायद कुछ नकद बैंक मे जमा हो उनके हिसाब में! कुछ बीमा भी

होगा ! बैंक से पता लगाया जा सकता है ! यहाँ भी वे भुगतान चेक द्वारा ही किया करते थे, और कालिकाप्रसाद को लिखने से बीमे का भी पता लग सकता है। पर एक बात साफ है।—अब हर चीज की कीमत उसे ही चुकानी पड़ेगी, और छोटा बड़ा चाहे जैसा भुगतान हो, उसके साधन सीमित हैं, उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। हायरे दैव ! निर्मल को अपने जेब की सीमाएँ देखना भी बदा था।

संध्या को वह जेब मे चेक बुक डालकर सुमनबाबू के घर पहुँचा। टैक्सी से उतरते ही उसे हरी की मा दिखाई दे गई। बोला : "हरी की मा, मजे में हो ? हरी कैसा है ?"

"अरे, छोटेबाबू आप ?—कब आए ?—पहचान मे ही नहीं आए बाबू—बहुत दुबले हो गए।"

मुस्करा कर निर्मल बोला : "सो तो होना ही था हरी की मा !—बाबूजी के बाद, अब वहाँ पर कौन तुम जैसी जतन करनेवाली थी ?"

"तो फिर इतने दिन वहाँ क्यों लगा दिए !"

"सो क्या अपनी मरजी से लगा दिए ?—अरे हरी की मा, वहाँ के काम से फुरसत मिले तब न !—इतना काम पड़ा था कि बस ; रोज ही लौट आने की सोचता था, पर आ ही कैसे सकता था ?"

"अब तो फुरसत मिल गई न ?"

"सो कहाँ ?—तुमलोगों की इतनी याद आई कि बीच ही मे छोड़कर भाग आया हूँ।—और कोई अपना तो वहाँ रहा ही नहीं, पर रहता और वह मर जाता, तो भी मैं नहीं जाता अब ! सब हैं तो अच्छी तरह न ?—बड़ेबाबू कहाँ हैं, कैसे हैं ?"

"अच्छे ही हैं ! अपने कमरे मे हैं।—सामान कहाँ है ?"

"सामान है ही क्या ?—एक बिस्तरा और पेटी—सो स्टेशन पर ही छोड़ आया हूँ। सोचा, बहुत दिनों के बाद चल रहा हूँ। शायद कमरा किराए पर उठा दिया हो, तो पहले खबर कर लेना अच्छा है।—च्यवनबाबू हैं भीतर ?"

—एकाएक नमिता के बारे में पूछने का साहस नहीं हुआ।

"च्यवनबाबू तो—आप नहीं जानते छोटेबाबू ?—दीदी और वे दोनों तो करीब पन्द्रह दिन हुए, पहाड़ पर गए हैं, हवा बदलने !"

"हवा बदलने ?"

"हाँ ; दीदी की तबीयत कुछ ठीक नहीं रहती थी।"

"पर ये तो उनके परीक्षा के दिन हैं ?"

"सो तो मैं क्या जानूँ छोटेबाबू,"

"क्या सचमुच ही नमिता की तबीयत ठीक नहीं थी ?"

"ठीक तो जब से आप गए तभी से नहीं थी ; पर ऐसी कोई—छोटे सरकार, बड़े आदमियों की बातें हम क्या जानें !—पर कुछ जानकर ही तो आप भी अपना सामान स्टेशन पर छोड़ आये हैं !"

आगे और बात करना निर्मल ने उचित न समझा। नौकरानी को इससे अधिक जानने या जनाने की जरूरत नहीं है। और नमिता घर पर नहीं है, मानो उसके मन पर से एक बोझ हट गया। चक्षु-लज्जा के जिस प्रसग के उपस्थित होने की आशंका थी, वह तो नहीं रही ! हरी की मा कह रही थी : "आपके कमरे मे च्यवनबाबू का ताला लगा है, पर सामान आपका सब उस कोठरी में रक्खा हुआ है। पर सामान सब आपका ज्यों का त्यों है, मैं बराबर निगरानी रखती रही हूँ।"

"ओह !—सामान का क्या होना है, और जब कि तुम जैसी रखवाली हो। तो बडेबाबू अपने कमरे मे हैं ? अच्छा, मैं चला !—मिल लूँ उनसे।"

कुशल-समाचार की रस्मअदा हो जाने के बाद निर्मलने पूछा : "नमिताको बीमारी क्या थी पापा ?"

"बीमारी क्या होगी—इम्तिहान के लिए जी तोड़कर मेहनत कर रही थी, खाने-पीने तक को भूल बैठी—देह कैसे चलती ?—बड़ी कठिनाई से पहाड़ जाने को राजी हुई। डॉक्टरने कह दिया कि इसके सिवा कोई चारा नहीं। इसे कहते हैं अविचार—यानी जिस इम्तिहान के लिए स्वास्थ्य खोया, वह भी हाथ न लगा।"

"यह अच्छा है छम्मी साथ है। नौकर कौन गया है ?"

"ले ही नहीं जाना चाहती थी ; पर एक नया आदमी गया है ! काम तो सब कर लेता है। तुम्हारे जाने के बाद ही रखा था। हरी की मा को भेजने का इरादा था, पर वह मानी ही नहीं ; बोली, मेरा क्या होगा ! पगली, कहीं की।"

"पापा, अगर आप भी कुछ दिनों के लिए चले जाते तो—आपका स्वास्थ्य भी तो कोई अच्छा नहीं रहता।"

हँसकर सुमनबाबू ने कहा : "कुछ दिनों के लिए क्यों, हमेशा के लिए ही जाना नहीं पड़ेगा ?"

"यह आप क्या कह रहे हैं पापा ?—आप लाख-लाख वर्ष जिएँ।—"

सुमनबाबू ने लम्बी साँस ली, पर अपने मन के आवेग को दबा दिया। निर्मल कुमार भी आगे कुछ नहीं बोल सका।

कुछ देर चुप रहकर सुमनबाबू ने कहा : "तुम्हारा कमरा जरूर खाली

नहीं है, किन्तु फिर भी होटल मे कही न ठहर कर सीधे यही चले आते तो भी एकाएक तुम्हारे लिए जगह का अभाव नहीं होता निर्मल ! खैर, फिर भी तुम ने अच्छा ही किया कि तुम शहर लौट आये। अब आगे क्या करने का इरादा है ?—यह साल तो तुम्हारा व्यर्थ हो गया।"

"एक तरह से तो व्यर्थ हो गया पापा, पर जितना कुछ इस वर्ष मे सीखा है, वह भी कम नहीं है।"

जैसे सुमनबाबू ने नहीं सुना। बोले : "शादी-व्याह करके घर कब बसा रहे हो ?"

निर्मल ने बूढ़े की चश्मे के भीतर छिपी आँखों को घूर कर कहा : "अभी तो इस बारे मे सोचा ही नहीं पापा।—जहाँ मेरी मति काम नहीं देगी, वहाँ पर गुरुजनों के निकट प्रार्थी होना पड़ेगा। आपकी क्या राय है ?"

"अब चिन्ता क्या है तुम्हें।—घर मिल गया है, तो एक अच्छी-सी लड़की कहीं तलाश कर लो—या कोई करली है ?"

हँसकर निर्मल ने कहा : "अब, पापा, इस मकान मे तो अब कोई फ्लैट या कमरा खाली है नहीं, मकान तो कोई ढूँढना ही पड़ेगा। मेरी तरफ किराया क्या निकलता है, यह पता लग सकेगा ?"

सुमनबाबू ने अपनी क्षीण दृष्टि को निर्मल पर गडाते हुए कहा : "तुम किराया देना चाहोगे, यह मैं अनुमान कर सकता था निर्मल। बात ही तुम ने नहीं उड़ा दी, बल्कि उसके पहलू को भी तुमने स्पष्ट कर दिया। इस व्यापार को व्यवसाय-दृष्टि से देखने के लिए तुम्हे साधुवाद देना ही पड़ेगा। किराया देना ही यदि तुम ने निश्चय किया है, तो वह मुनीम से मालूम हो जाएगा, मैं भी कह दूँगा ताकि बिना विस्मय के वह ले ले। किन्तु सचमुच ही क्या तुमने यह निश्चय कर लिया है ?"

मानो कुछ न समझ कर निर्मल ने कहा : "आपके विश्वास का परित्राण पाकर यदि सुविधा न होने से बीच में किराया नहीं दे सका तो इसका यह तात्पर्य तो नहीं कि किराया नहीं देने का कभी मेरा इरादा रहा हो।"

"तुम्हारी सुविधा की बात भी मैं जानता हूँ, और इरादे की बात भी।"

"तब भी एक दिन आप सयोग से मेरी कुटिया में उपस्थित होकर भी, शायद मेरा तिरस्कार करने के लिए ही बिना पदधूलि दिए ही परावर्तित होगए थे।"

"उसका कारण तो तुम भी जानते हो।"

"किन्तु आप जो नहीं जान पाए।"

"निर्मल—"

"मेरा कोई अनुरोध नहीं, कोई शिकायत भी नहीं, परन्तु जो सच है, वही तो मान्य है।"

"अच्छा, तो बताओ वह लड़की कौन थी ?"

"यदि नमिता ने नहीं बताया, तो मैं ही क्यों बताऊँ ?"

"उसने शायद तुम्हारी और उस लड़की की प्रतिष्ठा का ख्याल रक्खा है।"

व्यंगमय हँसी हँस कर निर्मल ने कहा : "तो मेरे लिए आवश्यक है कि कम-से-कम नमिता ही की प्रतिष्ठा का ध्यान रक्खूँ।"

"ये पहेलियाँ क्या बुझा रहे हो निर्मल ?"

"जाने दीजिए पापा।—जो बीत गई, उसे कुरेदने से क्या ? मैं गलत समझा गया हूँ, सच न होने पर भी स्वाभाविक तो यह है ही। और इसीलिए इसके लिए मैं किसीको दोष नहीं देता। तो आज्ञा हो, फिर दर्शन करूँगा।"

नौ सौ साठ नहीं; तब भी लगभग साढ़े सात सौ हुए जो चेक के रास्ते निर्मल की जेब से मकान किराए के बहाने खिसक गए। परीक्षा हो रही थी, इसलिए कॉलेज जाने में तो कोई लाभ नहीं था। एक दूसरे मित्र के यहाँ वह एक संध्या को पहुँच गया, और कितना पानी तबसे बह गया, इसकी खबर उसने लगा ली। कल्पना ने एकाएक कॉलेज छोड़ दिया, कारण का किसी को भी पता नहीं ; शायद कहीं उसके विवाह की बात चल रही हो। यदि ऐसा है तो सहज ही कल्पना की जा सकती है कि उसका मगेतर अवश्य ही कोई धनी-मूर्ख है। धनी तो इसलिए कि कल्पना के मा-बाप धनी ही को पसन्द करना चाहेंगे, और मूर्ख इसलिए कि वह कल्पना का आगे पढ़ना सहन नहीं कर सकेगा। निर्मल के यह कहने पर कि वह मूर्ख नहीं भी हो सकता है—तो भी यह तो स्पष्ट है कि वह नए विचारों का कभी नहीं हो सकता, अतः निश्चय ही नए विचारों मे पली हुई कल्पना के लिए यह सम्भावित-विवाह असम्भावित गतिरोध पैदा कर देगा।

नमिता का तो सब हाल निर्मल को विदित होगा ही ! नहीं !—तो फिर च्यवन का हाल भी उसे निश्चय विदित नहीं होगा ! दोनों ही परीक्षा से गायब हैं, यह तो स्पष्ट है; लटी-लटी-सी नमिता भी थी तो—पर यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे परीक्षा ही को ठेंगा बता देंगे !—पास भी दोनों को होने मे कोई कठिनाई न होती, फर्स्टक्लास की तो खैर कोई बात ही नहीं है ! च्यवन के भाग्य पर ईर्ष्या होना स्वभाविक है। उस गाँवठी के ठाट देखते ही बनते हैं अब तो।—सब के बीच में केवल च्यवन ही नमिता की आँख का लक्ष्य बना, यह सबसे आश्चर्य का विषय है। शायद निर्मल की अनुपस्थिति ही इसका कारण हो। निर्मलकुमार कहाँ अटका रहा इतने दिन ? और प्रोमिसिंग ब्लोंडी को भी भुला देने वाली ऐसी कौन-सी सौन्दर्य की प्रतिमा उसे

मिल गई थी ?—विश्वास कैसे किया जा सकता है कि निर्मल की प्यासी आँखें, बिना पानी के अभी तक वैसी ही रिक्त दिखाई देती हैं ! अवश्य वह नमिता से श्रेष्ठतर होंगी, क्या मजा हो यदि एक बार नमिता उसे निर्मल के बगल में देख ले, और शर्म से कट मरे—मालूम देता है, शायद उसने देख लिया है, और इसीलिए—आदि आदि, और भी कई बातें निर्मल ने मालूम कर लीं।

कल्पना से कैसे मिला जाए—या नहीं मिला जाए कालेज वह उस समय से ही नहीं जाती, जब कि वह कल्पना निर्मल के घर गई थी, अतः स्पष्ट है कि उस घटना से इसका कुछ सम्बन्ध है, और इसीलिए उसके घर जाकर तो मिलना कभी उचित नहीं होगा !—पर मिलने ही की क्या जरूरत है ?—उसके विवाह की बात—सत्य न हो पर, पर असम्भव भी तो नहीं है; और यदि उस कार्य को कल्पना की उच्छृंखलता माना जाए तो उच्छृंखलता का एक यही तो उपाय है !—पर उसके विवाह से भी निर्मल, तुम्हारा क्या बनता-बिगड़ता है ?

निर्मल का कुछ बने-बिगड़े नहीं, किन्तु कल्पना का तो अवश्य ही कुछ बने-बिगड़ेगा ! बन जाए तो उसे सहस्र अभिनन्दन, किन्तु यदि बिगड़ जाए ? —क्या वह स्वयम् उसके लिए जिम्मेदार न होगा ?—कल्पना ने उसे प्राण दान दिया, और पुरस्कार मे वह उसके भविष्य का नाश करनेवाला प्रमाणित हो ?—यदि सचमुच ही वह कारण है, तो उसे प्रतिविधान करना ही चाहिए। उसके पिता से वह अवश्य मिलेगा। पर इसके पहले कल्पना से मिलना आवश्यक है। यह कैसे सिद्ध हो ?

"नमिता ने कहा था कि कल्पना मुझे मुबारक हो। सुन्दर वह नमिता जैसी नहीं है, पर प्रतिभा और बुद्धि के लोहा मानना ही पडेगा ! और सौन्दर्य मे ऐसा अभाव क्या है ! एक डिग्री और अधिक उज्वल नहीं हुआ, यही न ? किन्तु तब तो नमिता भी एक डिग्री और क्यों अधिक उज्वल नहीं हुई ? और क्या इस एक डिग्री की कहीं पर समाप्ति है ?—किन्तु भीतर के सौन्दर्य का कहीं पैमाना है ?—जब कोई दयालु होता है, तो कोई यह नहीं कहता कि वह एक डिग्री और अधिक दयालु क्यों नहीं हुआ ? करुणा से किसी की आँखें भर आएँ, यह नहीं कहा जा सकता कि दो आँसू और क्यों न अधिक छलके ?—और कल्पना अपनी परिचर्या का शीतल-छत्र तान कर उस संध्या को जाने को उद्यत हो गई तो यह नहीं कहा जा सका, कि उसकी तपस्या का एक क्षण शेष रह गया !—पर कहाँ तू और कहाँ कल्पना !—नमिता ही के लिए जब तू योग्य प्रमाणित न हो सका, तो कल्पना की क्या आशा भी की जा सकती है।

दूसरे दिन साहस करके कल्पना के घर टेलीफोन कर दिया।

"कौन साहब हैं ?" पूछने पर निर्मल ने नाम बता दिया, और मालूम किया कि बोलनेवाला सेठ रमणलाल के यहाँ से बोल रहा है, नाम है रामू! कल्पनाकुमारी नीचे हैं, रसोई घर मे अम्मा के साथ। बुलवा दे क्या ?—क्या काम है ?

निर्मल ने मुक्ति की साँस ली! रामू कल्पना का प्रीतिभाजन नौकर है। वह कल्पना से कहे जब वे अपने कमरे मे हो कि कविता नाम की उनकी सखी अपने गाँव से शहर आई हुई है, मैं उसका भाई हूँ, वे बीमार हैं इसलिए चिकित्सा के लिए यहाँ ले आया हूँ। मेरा भी नाम बता देने में कोई हर्ज नही है। होटल मे ठहरे हुए हैं। अभी बोल रहा हूँ, नम्बर—से। उनसे कहना इस नम्बर पर टेलीफोन करके मेरे लिए पूछलें।—

थोड़ी ही देर बाद टेलीफोन की घण्टी सुनाई दी!

"मैं सेठ रमणलाल की कोठी से बोल रही हूँ—कल्पना, अभी आपने टेलीफोन किया था?"

"जी हाँ।"

आपका शुभ नाम?"

"निर्मल कुमार—मैं निर्मल, जिसको तुमने प्राण दान दिया था।"

"आप कविता देवी के क्या लगते हैं?"

मुस्ककरा कर निर्मल ने उत्तर दिया: "उनका भाई।"

"रामू कह रहा था कि वे बीमार हैं? क्या बीमारी है उन्हें?"

"बीमारी मानसिक है। उन्हीं के इलाज के लिए आय हुआ हूँ।"

"कब आए आप?"

"दो दिन हुए! जब से आया हूँ,कविता आप को याद करती रही है।"

"सो मैं जानती हूँ, सेकण्ड ईयर में हम दोनों गहरी मित्र थीं।—माताजी कह रही हैं, कि आप लोग यहाँ पर क्यों नहीं चले आए। आपका घर था।"

"माताजी को हम दोनों का नमस्कार कह दीजिएगा! यहाँ भी कोई कष्ट नहीं है। आपकी कृपा है। कविता आपसे मिलने के लिए आग्रह कर रही थी।"

"मैं भी कुछ यों ही बीमार हूँ; अधिक बाहर नहीं निकलती—डॉक्टर ने मना कर दिया है। क्या कविता बहन आज नहीं लाई जा सकतीं?"

"लाई क्यों नहीं जा सकती हैं, किन्तु आपके घर पर—"

"अगर ऐसी हालत है तो मैं ही चेष्टाकरूँगी; पर आज मैं बहुत व्यस्त हूँ। —क्या दवाखाने मे शिफ्ट करने का विचार है?—अभी कुछ निश्चित नहीं है। तो कल किसी समय टेलीफोन कर दीजिएगा।—उनको मेरा बहुत-बहुत

नमस्कार कह दीजिएगा। कहिएगा कि बीमारी की खबर पाकर मुझे बड़ा दुःख हुआ है; लेकिन उन्हें धैर्य बँधाइएगा। बीमार के लिए आवश्यक है कि वह कभी आशा नहीं छोड़े।—नमस्ते—"

निर्मल को प्रसन्नता हुई कि कल्पना को कम से कम सन्देश तो पहुँच गया है। मिल करके स्पष्ट बात करने की जुगत भी कोई लग ही जाएगी। यद्यपि कुछ कठिनाई अवश्य होगी। टेलीफोन के समय भी माताजी उपस्थित थीं, परन्तु बुद्धिमती कल्पना ने बात को कितने सुन्दर तरीके से सम्हाल लिया।

उसी दिन कालिकाप्रसाद का उत्तर भी आ गया। जनार्दनबाबू मस्त आदमी थे 'यावत् जीवेत सुखम् जीवेत, ऋणं कृत्वा घृतम् पिबेत्' उनका आचरण था। मृत्यु के बाद की चिन्ता उन जैसे महापुरुष को शोभा नहीं देती। अतः बहुत कुछ कहने-सुनने पर भी बीमे की झंझट उन्होंने कभी नहीं की। वर्त्तमान मे उनका विश्वास था, और बैंक मे उनका हिसाब अवश्य था। किन्तु वहाँ क्या मूल शेष था, इसका पता कालिकाप्रसाद को न था। निर्मल तो स्वयम् बैंक को लिख ही चुका था, उत्तर की अपेक्षा थी।

इसी बीच कल्पना से मिलने का भी सुयोग आ जुटा। कविता से मिलने के लिए अपने साथी जिमी के साथ कल्पना टैक्सी लेकर हॉस्पिटल के लिए रवाना हो गई। समय ऐसा चुना गया कि कार पिताजी को लेकर व्यवसाय पर गई हुई थी।

कमरे का दरवाजा ठेलते ही कल्पना ने कहा : "निर्मलकुमार आप ही का शुभनाम है क्या ?"

निर्मलकुमार पलंग पर लेटा हुआ कोई मासिक पत्रिका पढ़ रहा था, आँखें मुड़ाकर देखा तो कल्पना खड़ी थी। हड़बडा कर उठ बैठते हुए निर्मल ने कहा : "कल्पना तुम ?—इतनी आकस्मिक ?"

मुस्कराकर कल्पना ने हाथ जोड़े और कहा : "कविता कुमारी के अस्वस्थ होने की खबर जो मिली है।—इस सम्वाद के बाद क्या कल्पना स्वस्थ रह सकती थी ?—कहाँ है कविता आपकी ? जरा देखूँ !"

"पहले भाव की परीक्षा तो कर लो !—कविता का स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य क्या भाव के स्वास्थ्य पर निर्भर नहीं करता ? पर कल्पना, यह तुम्हारी हालत क्या हो गई ?—यह वेश क्या बना रक्खा है, तुमने ?"—निर्मल ने देखा कि कल्पना पहले से बहुत कुछ दुबली हो गई है चेहरा सफेद हो गया है। आँखें, मानो किसी गढ़े मे से ऊपर निकलना चाहती हों। वेश भी पहले से बहुत सादा और सफेद ! वह कहता रहा किस महादेव का व्रत डिगाने को यह तपस्या की जा रही है ?—और यह स्पेनियल कब से पाल लिया ?"

ईषत् मुस्कराहट के साथ निर्मल की आँखों मे आँखें डालकर कल्पना ने कहा : "सब प्रश्न एक साथ कर लो, ताकि जल्दी ही उत्तर दे लूँ ! घर जल्दी ही लौटना है ।"

निर्मल खड़ा हो गया था, उससे कल्पना को कधों से पकड़ कर एक कुर्सी पर बैठा दिया, फिर स्पेनियल को हाथ में उठाकर बोला : "बड़ा प्यारा कुत्ता है !—क्या नाम है ?"

"जिमी !"

"तो तुम हो जिमी महाशय !" और पलंग पर बैठता हुआ बोला : "आज हमारी बातों के गवाह रहोगे ?—उस दिन एक नारी हमारी बातों को सह न सकी, समझने का तो सवाल ही क्या था !—तुम्हे ईर्ष्या तो न होगी ?"

"इसे गोद से उतार दोगे तो जरूर होगी !"

निर्मल ने कल्पना की ओर देखा । हँसकर कल्पना ने कहा : "घबराइए मत ! कुत्तों मे मनुष्य की तरह बुद्धि नहीं होती !"

"यानी ?"

"ईर्ष्या होगी, तब भी प्रतिशोध नहीं होगा। पर जाने दीजिए, मुझ से बात करने पर वह ईर्ष्या भी नहीं करेगा !"

"और यदि—"

"यदि क्या ?"

"बात करने पर शायद न करे, पर आसन छिन जाने पर ?"

"निर्मलबाबू—"

"किसी बात को कहने का सदैव सुयोग नहीं मिलता, और कभी-कभी किसी भाव को सुलझाने का जन्मभर अवसर नहीं मिलता। आज दोनों ही योग मुझे मिल गए, तो इसे जल्दबाजी का विकार कहकर मुझे निराश मत कर देना कल्पना—"

अपने आप को उसी क्षण सम्हाल कर कल्पना ने कहा : "आपने कहा था कि आपको मानसिक बीमारी है ।"

"पर इस समय जो कुछ कह रहा हूँ, उसका कारण वह बीमारी नहीं है।

"बात उल्टी भी हो सकती है ।"—किन्तु तब तो आपको और भी सावधान रहना चाहिए। आप नमिता के यहाँ गए थे ?"

"गया था किराया चुकाने के लिये !"

"और किराया उन्होंने ले लिया ?"

"इसमें आश्चर्य की तो कोई बात नहीं !—मकान मैंने किराए ही पर

लिया था, और बीच में मेरा ही प्रमाद था कि किराया नहीं चुका सका। उन्होंने उतने दिन ताकीद न की, यही क्या कम कृपा है?"

"मालूम देता है नमिता देवी का क्रोध कम नहीं हुआ!"

"नमिता तो यहाँ है ही नहीं। दोनों स्वास्थ्य-लाभ के लिए कहीं पहाड़ पर गए हैं।"

"दोनों कौन?"

"वही नमिता और च्यवन।"

"च्यवन?—वही छम्मी?" फिर कुछ क्षण चुप रहकर कल्पना ने कहा, "तो स्वास्थ्य-लाभ की यही शृंखला आपको यहाँ पर ले आने का कारण हुई!"

"मेरी स्पर्द्धा कह सकती हो इसे कल्पना! निराश होने पर भी कुछ विशेष नुकसान मेरा नहीं होगा। निराशाओं को सहने और स्वीकार करने का पाठ मैंने शुरू कर दिया है, और जिस रफ्तार से निराशाएँ मेरे ऊपर कृपा कर रही हैं, उसे देखते हुए शीघ्र ही निष्णात होने में मुझे संशय नहीं है। किन्तु मुझे गलत न समझना कल्पना! मैंने कहा कि कभी-कभी मनुष्य जन्मभर अपने आप को नहीं समझ पाता। मैं भी अब तक नहीं समझ सका था कि मेरी चाहना की वस्तु सचमुच ही नमिता थी? नमिता ने प्रत्याख्यान कर दिया है, इसलिए यह न समझ बैठना कि इस निरवलम्ब समुद्र मे कोई तिनके के ऊपर भी अपनी समस्त आशा, अपना समस्त विश्वास केन्द्रित कर सकता है। डूब मरने से मुझे भय नहीं, किन्तु इसे तुम सच मानो कल्पना, कि आज इस सारे विश्व मे मैं केवल तुम्हारी ही कामना कर सकता हूँ!—" और एक लम्बी साँस लेकर शेष मे उसने कहा: "यह सच होते हुए भी कि तुम्हारी ऊँचाइयाँ मेरे लिए एकदम अगम्य हैं।"

"यह क्या कहते हो निर्मल!—मुझ अपदार्थ को यह सम्मान—"

"तुम्हारा प्राप्य है कल्पना!—मेरी स्वीकृति की वह अपेक्षा नहीं रखता।" जब एक क्षण तक कोई कुछ नहीं बोला, तो निर्मल ही ने कहा—

"जो बात मैं कभी नमिता से नहीं कह सका, केवल हमारी भ्राँतियाँ ही उसे तथ्य मानती रहीं, वही बात आज मैं सरलता से तुम पर प्रकट कर सका, और प्रकट करके चाहे आशा न बँधी हो, पर मालूम देता है, जैसे जीवन का सबसे बड़ा कार्य मैं कर सका हूँ। यही क्या मेरे सच होने का प्रमाण नहीं है?"

लम्बी साँस लेकर कल्पना ने कहा: "जिसकी आशंका थी, वही हुआ निर्मलबाबू!—"

"मेरे इस भाव के लिए मुझे धिक्कार सकती हो तुम, पर इसे मिथ्या मत समझो कल्पना।"

"नहीं समझती निर्मल, मिथ्या नहीं समझती। यही किसे पता था कि जिसे चुराना चाहती थी, वह स्वयम् ही मेरा हो जायगा। परन्तु इच्छा और सुलभ हो जाने मात्र ही से तो किसी वस्तु को पा नहीं लिया जाता।"

"सो तो मैं स्वीकार कर चुका हूँ कल्पना कि मेरी पात्रता नहीं है।"

"बार-बार यह कहकर मुझे क्यों लज्जित कर रहे हो निर्मल! और चाहे तुम न जानो, तुम्हारी पात्रता ही नहीं, तुम्हारी सामर्थ्य भी मैं जानती हूँ। प्यार करके नारी किसी को जाने बिना नहीं रहती। किन्तु—"

"किन्तु क्या—"

"समाज मे रहने वाले व्यक्ति की इच्छा ही सर्वोपरि नहीं होती। समाज ही नहीं, हमारे तो कुटुम्ब भी हैं, इसके अतिरिक्त एक और है बात निर्मल।"

"वह क्या?" आशंकित होकर निर्मल ने पूछा।

लम्बी साँस लेकर कल्पना ने कहा: "भगवान ने नारी को अपनी इच्छा का मालिक नहीं बनाया। उसके प्रेम की एक ही कसौटी नहीं होती! एक तार के स्वरमय हो जाने मात्र से सब तारों का सगीत नहीं सध जाता। जब नारी के सब तार किसी एक ग्राम पर सस्वर हों, तभी उसके अलौकिक संगीत का सौन्दर्य प्रतिभासित होता है, उसके अभाव मे जीवन के समारोह को भग कर देना ही शेष उपाय रह जाता है।"

"मैं नहीं समझा कल्पना!"

"तुम समझना जो नहीं चाहते निर्मल!—देखोगे मेरे जीवन की उलझनें? मेरे मकान पर कभी आए तो नहीं, पर माधव-निकुञ्ज तो अवश्य जानते होंगे।—खास फाटक में घुसते ही ठीक दक्षिण की ओर बढ़ने पर हमारा निवास है, उस दिशा मे मा का अधिकार क्षेत्र है, उधर जाने से तुम्हारी और मेरी दोनों की कुशल नहीं है, किन्तु पश्चिम की ओर परम-मङ्गलमय देवता निवास करते हैं, वही लक्ष्मीनारायण के मन्दिर के नाम से प्रख्यात हैं। वहाँ किसी भी भक्त का प्रवेश निषिद्ध नहीं है।—"

"किन्तु मैं भक्त नहीं हूँ।"

किंचित मुस्कराकर कल्पनाने कहा: "भगवान के न ही सही, किन्तु उनकी पुजारिन के तो हो। भगवान की लीला का समारोह देखने को तो मैं नहीं कहती, मेरे जीवन की उलझनें यदि देखना चाहो, तो किसी संध्या को मन्दिर के अलिन्द मे पहुँच जाना। जीवन की व्याप्ति और तृप्ति का एक पहलू जरा निकट से देख सकोगे।"

"मन्दिर किसके अधिकार क्षेत्र में है?"

"वह तो सर्वजनपूजित स्वयम् भगवान के अधिकार क्षेत्र में है।"

"भगवान तो कभी बोलते नहीं ।"

"कानों में नहीं, किन्तु हृदय में बोलते हैं ।"

निर्मलने कहा : "भगवान के लिए भटकने का साहस इस दीन को नहीं है, किन्तु तुम्हारी भक्ति का पट्टा तो मेरे गले मे बँध गया है । शायद आए बिना निस्तार नहीं है ।—पर प्रसाद मिलेगा ?"

"वहाँ आओगे, तो वहीं पर मालूम कर लोगे !—अच्छा, यहाँ आकर और क्या-क्या कर लिया ?"

"दो चादरें मैली कर चुका हूँ । कमरा, देखती हो, काफी अच्छा है ; होटल का बेरा पहचानता है, टिप की उम्मीद करना उसके लिए अस्वाभाविक नहीं, इसलिए खूब खिदमत करता है, सोचता हूँ आगे के जीवन मे कभी ऐसी नवाबी न मिले, तो अभी ही क्यों न पूरी करलूँ !—न होगा थोड़ा बिल ही बढ़ जाएगा ।"

"तो क्या यहाँ आए तुम्हें—"

"हाँ लगभग एक हफ्ता हो गया !"

"और कविता की बीमारी की खबर—"

"अवश्य ही इस स्प्रिंगवाले पलंग पर तुम्हारी कविता लेटी रही ; पर विश्वास दिलाता हूँ, सात-आठ घंटे से अधिक नींद ने कृपा नहीं की । करवटें जरूर इतनी बदलती रहीं कि क्या कॉलेज की कोई छात्रा साड़ी बदलेगी ।"

"इस इन्द्रपुरी में कब तक ठहरोगे ?"

"अस्पताल में ?—जब तक कविताकुमारी स्वस्थ्य नहीं हो जाती ।"

"क्यों ? कोई मकान नहीं तलाश करोगे ?"

"पर क्यों ?—"

"रहने के लिए—कम-से कम साल भर तो चाहिए ही अगली परीक्षा तक ।"

"परीक्षा का क्या होगा ?—मेरी परीक्षा तो तुम हो कल्पना ! निर्णय मिला कि बस—"

"लिखाई-पढ़ाई को सचमुच छोड़ दोगे ?"

"वह कहीं छूट सकेगी ?—पर परीक्षा देकर क्या करूँगा ?"

"तो क्या गाँव लौट जाओगे ?"

निर्मलने मस्तक हिला दिया ।

"क्या व्यवस्था की है वहाँ पर ?"

"बहुत अच्छी ।"

"शायद कालिकाप्रसाद की देख-रेख में कारबार छोड़कर आए हो ।—यह अच्छा ही किया । वह आदमी बड़ा अच्छा है ।"

"बड़ा अच्छा है, सो तुमने कैसे जाना ?"

"तुम जो कह रहे थे।"

हँसकर निर्मलने कहा : "अच्छाई की भी एक सीमा है कल्पना। तुम मेरे साथ वहाँ रही, यह बात वह भी नहीं सह सका। किन्तु मैंने सम्पत्ति की उससे भी अच्छी व्यवस्था कर दी हैं।"

"पहेलियाँ क्यों बुझा रहे हो ?—जल्दी कहो, मुझे जल्दी ही लौटना है। अम्मा राह देख रही होंगी। बड़ी कठिनाई से आधा घण्टे के लिए आई हूँ। जिसे कहा है, उसे सब चीज-वस्तु ठीक तरह सम्हला तो दी! भरोसे लायक है न आदमी तो!"

"वह सब कुछ मुझसे भी अधिक तो जानता है!—मेरी बुआ को नही जानती ?"

"बुआ ?—कहते क्या हो ?—क्या कुछ वापिस मिलेगा ?"

"वापिस पाने की आशा से तो सब कुछ उसे सौंपा नहीं ?"

"फिर ?"

"फिर क्या कल्पना!—उस उपलक्ष्य में वृत्ति ली नहीं।—देखा कि मैं उलझ गया हूँ, और यदि शीघ्र ही बन्धन तोड़ नहीं डालता, तो शीघ्र ही विवश हो जाऊँगा! एक झटके की ही तो अपेक्षा थी। गाँव के लोगोंने वह सहज कर दिया।"

"फिर ?"

"फिर क्या ?—स्टेशन पर टिकट कटाना भर शेष था! जानती हो न, इस युग मे मनुष्य के पंख हैं टिकिट ; शरीर में लगाने की जरूरत नहीं होती, केवल पाकिट मे रखने से ही काम चल जाता है। चाहो तो पंखवाली मशीन पर बैठकर हवा मे उड़ो, या मन के घोड़े को कलम के जरिए कागज पर उतार कर टिकिट लगे लिफाफे के द्वारा अपनी प्रियतमा के हाथ मे रख दो।—" और वह हँस दिया!

हाथ की घड़ी को देख कर कल्पना ने कहा : "अब मैं अधिक ठहर नहीं सकती!—पर देखती हूँ कि मेरा निस्तार नहीं है। कविता की हालत सच-मुच ही शोचनीय है, और शायद उपाय भी खोजना ही पड़ेगा। अच्छा मन्दिर कब आओगे ?"

"नींद का कोई खास तकाजा तो है नहीं, इसलिए यदि आज्ञा होगी तो आज ही सध्या को मैं भगवान-दर्शन के लिए समुत्सुक हो सकूँगा।"

"तुम्हारा कल्याण हो!—पर देखो—इतने दिनों बाद मिले—होटल मे मिले, पर चाय तक के लिए तुमने नहीं पूछा!"

लम्बी साँस लेकर कहा : "अपनी चाह जो शेष कर दी तुम्हारे सामने !—सचमुच कल्पना, शायद यही कारण है कि यह बात सामने ही नहीं आ सकी। पर मुझे विश्वास है, चूँकि तुमने कहा है, इसलिए तुम्हे आवश्यकता न थी ! और यदि तुमने लक्ष्य कर ही लिया है, तो मैं भी स्वीकार लेता हूँ कि मैं इस दिगन्त हीन समुद्र में लक्ष्यभ्रष्ट नौका की भाँति सम्बल-हीन हो गया हूँ।"

कल्पनाने कहा : "भगवान पर भरोसा रक्खो निर्मल !"

"तुम पर भरोसा करके मैं निश्चित हूँ ।"

कल्पना ने हाथ जोड़े, और जिमी को साथ लेकर बाहर हो गई।

★

: ११ :

नमिता और च्यवन को पहाड़ पर रहते एक माह से अधिक हो गया।

पहाड़ की स्फूर्ति दायक जलवायु, होटल का ऐश्वर्यमय जीवन, उद्दाम यौवन की अतृप्त-पिपासा और उन्मुक्तवातावरण, खो चली अपने आपको नमिता उसका गिरता हुआ स्वास्थ्य, वायु का स्पर्श पाकर धुएँ की कुण्डली मे से सिर निकाल कर उठनेवाली अग्निशिखा की भाँति एकाएक ही प्रकाशित-प्रज्वलित हो उठा। आमोद-प्रमोद था ही, निठल्ला जीवन, स्नेह-परवश पिता की चक्षु-लज्जा भी न थी, वही हुआ, जो स्वाभाविक है, जो नमिता ने चाहा, और जो उसके साथी च्यवन ने चाहा !

च्यवन की गठीली देह भी अपने गठीले मन के साथ निखर आई। परीक्षा में वह नहीं बैठा, अतः छात्रवृति तो उसकी गई ही, शायद पिछला पावना मी उसे लौटाना पड़े। डॉक्टरों से प्रमाण पत्र पाया जा सकता था, किन्तु कॉलेज अधिकारियों पर भरोसा कर सकने की सुविधा न थी। परन्तु इसकी चिन्ता ही क्या है !—नमिता का वरदान उसे मिला हुआ है। घर पर प्रतिमास भी कुछ भेज देने में उसे असुविधा नहीं होती !

पहाड़ का जीवन उसके लिए बहुत ही अनुकूल सिद्ध हुआ है। हर सुविधा से लाभ उठानेवाले च्यवन के लिए स्वाभाविक था कि पहाड़ों पर सुलभ स्वास्थ्य बढ़ानेवाले सभी साधनों का वह प्रयोग करे। अतः जहाँ उसके स्वास्थ्य और देह की सीमाएँ बढ़ने लगीं, वहाँ उसके मन ने भी कुलाचें भरीं। नमिता साथ देती है तो ठीक ही है; नहीं देती, तो सुन्दर लड़कियों का वहाँ अभाव नहीं है। बल्कि लोकल-ब्यूटी में रस्टिक (ग्रामीण) जो एक हृदयग्राही

इनोसॅन्स (भोलापन) है, उसके लिए च्यवन को खास तौर पर दिलचस्पी है।

उस रात नमिता आलस्य के मारे बाहर नहीं जा सकी! दिन को सोकर उठने के बाद ही उसका सिर कुछ भारी-सा मालूम दिया। च्यवन ने अनुरोध तो किया था कि बाहर थोड़ा घूम लेने से सिर दर्द दूर हो जाएगा, पर आज नमिता अनुरोध को थोड़ा और गहरा होते देखना चाह रही थी। च्यवन का मन हवा मे उड़ रहा था, उसने कहा : "लेकिन अगर मैं कभी इस सुनहरी संध्या मे कमरे की चारदीवारी मे कैद रहा, तो मुझे भी सिर दर्द हुआ ही समझो।"

"यू नीड नॉट स्टे बैक! (तुम्हें यहाँ रहना आवश्यक नहीं है।)"

"सो नाइस ऑफ यू! किन्तु डार्लिङ्ग, तुम्हारी कल्पना के अभाव मे सब कुछ फीका रहेगा! —बट, एज़ यू लाइक! ओ-के"

और सिगरेट का बेशुमार धुआँ नमिता के गालों को थपथपाने के लिए छोड़ कर च्यवन बाहर हो लिया। कहना न होगा कि नमिता का सिर दर्द बढ़ ही गया, बढ़ना जो था उसे।

पापा के पत्र का उत्तर देना था। दो दिन हो गए, समय ही नहीं मिला। अगर आज ही वह पत्र लिख नहीं देती तो परसो उनका तार आया समझो! वह घर लौट जाना चाहती है। पहाड़ पर वह स्वास्थ्य बदलने के लिए आई थी, वह होगया, अब उसका यहाँ प्रयोजन ही क्या है?—मई के अन्त तक तो उसे लौट ही जाना है। रस्टिक-लाइफ के लिए उसे कोई खास टेस्ट नहीं। शहर का जीवन शहर का है, वह पौधा गाँव की मिट्टी मे नहीं पनप सकता। इसके सिवा और भी विशेष कारण हैं : एक तो यही कि उस दिन पापा ने लिखा था कि निर्मलकुमार शहर लौट आया है। किराया दे गया और अपने सामान की व्यवस्था कर गया। यह अवश्य ही उसने बुद्धिमानी का कार्य किया। बुद्धिमान निर्मल सदैव से है, और व्यवस्था भी वह कर सकता है, न केवल अपने सामान की, किन्तु दूसरे के सामान की भी। अपनी स्वयम् की व्यवस्था भी तो नमिता ने उसी के हाथों सौंप रखी थी। आज जब वे हाथ उपलब्ध नहीं हैं, तो उसकी व्यवस्था की चिन्ता हो आना भी उसे स्वाभाविक है। वे हाथ उपलब्ध नहीं हैं तो कोई हाथ केवल निर्मल ही के नहीं हैं। हाथों का कोई अभाव नहीं, बल्कि स्वागत करने के लिए जो आगे बढ़े हुए हों उनकी अवहेलना करना भी तो मूर्खता है।

तो निर्मल शहर में है। कल्पना का तो चाँद ही धरती पर उतर आया होगा। और निर्मल?—आँख की शर्म तो अब उसे रही नहीं। पिता की सम्पत्ति का मालिक हो ही गया है, और कल्पना के मणि-माणिक्यों

ने और भी उसकी दृष्टि को चौंधिया दिया होगा ! मनुष्य भी क्या प्राणी होता है, जो निर्मल पैसे को कभी पैसा नहीं समझता था वही पैसे को इस तरह दाँत से पकड़े कि मुँह के बल गिर ही जाए ?—नहीं, नमिता को शीघ्र ही शहर लौट जाना चाहिए। मई का अन्त भी क्यों ?—शहर की गर्मी वह सदैव ही तो इसी शरीर पर सहती आई है !—यहाँ कोई सोसाइटी नही, कोई साहित्य चर्चा नहीं, कुछ नहीं। अगले हफ्ते भी तो जा सकती है। उसने पापा के पत्र का उत्तर लिख दिया, और पोस्ट भी करवा दिया।

साध्य-पर्यटकों के लौटने का समय तो कभी का हो गया। च्यवन अभी तक लौटा नहीं ! खूब है च्यवन भी। आधुनिकता का चरम उत्कर्ष यदि कहीं ढूँढना हो तो दूर नहीं जाना पड़ेगा ! आर्थिक-परिस्थितियाँ आदमी को आमूल कैसे बदल सकती हैं, मैं समझती हूँ, मेरा यह प्रयोग आदर्श है। गाँव की ताजा गीली मिट्टी को जैसा उसने चाहा, गढ़ डाला हैं। सिगरेट के धुएँ मे मार्ग खोजता हुआ किसी अधगोरी छोकरी के साथ किसी केफे में बैठा होगा, या कहीं सिनेमा के पर्दे पर किसी छाया के अङ्ग-सौष्ठव को प्यासी आँखों से पी रहा होगा ! पर नहीं, अब उसे ऐसा उच्छृङ्खल नहीं छोड़ा जा सकता। अब वह केवल मात्र प्रयोग नहीं है, उसके ऊपर जिम्मेदारी डाली जा रही है, तो उसे निश्चित मार्ग पर लगना ही चाहिए।

स्वयम् नमिता को भी सावधानी बरतनी चाहिए। ऐसा न हो कि सींचा हुआ पौधा कुसुमित होकर फिर मुरझा जाए, या किसी दूसरे ही मस्तक का शृङ्गार बने ! आखिर जब उसे अपना होना है तो कोई कारण नहीं कि उसे अपनत्व नहीं प्राप्त हो ! अतः नमिता उस रात च्यवन के लिए मध्य-रात्रि तक भूखी ही राह देखती रही !

च्यवन लौटा तो आपे में नहीं था। फिर भी पीने की लत उसकी ऐसी हो गई थी कि उससे उसे कोई विशेष असुविधा नहीं होती। सिगरेट होंठों में दबाए, आते ही उसने पूछा—

"डार्लिङ्ग—अभी तुम सोई नहीं ?—व्हेरी गुड, हाट ए वण्डरफुल नाइट, इज इट मेट फॉर स्लीप ?—बेवकूफ हैं वे जिन्होंने सोकर इसे बरबाद कर दिया ! गुड, व्हेरी गुड रीअली ! आएम सॉरी, तुम्हें अकेली ही रहना पड़ा।"

" 'वाश' करना है ?— या खाना लगाने के लिए बोल दूँ।"

"खाना ?— अब क्या होगा ? आइ से नमिटा, तुम हमारे साथ नहीं थी। वी मिस्ड यू ऑफुली। हाट ए सम्पचुअस डिनर एट रिट्‌झ !—कल वहीं चलेंगे। तै रही !"

नमिता को एक आघात लगा। वह उसके लिए अभी तक भूखी बैठी है, और यह भला आदमी रिट्‌झ मे किसी के साथ गुलच्छर्रे उड़ा आया!

नौकर ने आकर कहा : "खाना लगाऊँ बीबीजी?"

"नहीं। बाबू का खाना बाहर हो गया है।"

"आपके लिए?"

"अब कोई इच्छा नहीं है। तुम लोग खा-पीलो।"

च्यवन ने कहा : "कुछ थोड़ा-बहुत खालेने से नुक़सान नहीं होता। और अब तो डार्लिङ्ग, यू हैव रिटन्ड टू नॉर्मल! अब तो खाना चाहिए तुम्हे।"

"कल तुम्हारे साथ रिट्‌झ चलूँगी न!"

"दैट्स गोंइंग टू बी क्वाइट ए ट्रीट, आइ से!"

च्यवन भी पास ही कुर्सी पर बैठ गया, और एकटक नमिता की ओर देखने लगा, नमिता किसी फिल्मी मासिक पत्रिका के चित्रों को नितान्त अन्यमनस्क भाव से उलट रही थी। अपनी ओर देखते देखकर नमिता ने कहा : "क्या घूर रहे हो?"

"तुम्हारे सौन्दर्य को! कहता हूँ, क्या यह प्यास कभी बुझती नहीं?"

"तुम क्या नहीं जानते? —अच्छा, आज रिट्‌झ मे कौन साथ थी?"

"नाम तो पूछा नहीं, किन्तु एक सिली प्रेटी गर्ल।"

"सिली?"

"गर्ल्स ऑफ्टन आर! लड़कियाँ प्रायः बेवकूफ होती हैं। मोअर सो, इफ प्रिटीअर—जितनी अधिक सुन्दर, उतनी ही मूर्ख।"

"सौन्दर्य ओर मूर्खता मे कुछ संगति है क्या?"

"सौन्दर्य जो उन्हें वैसा बना देता है। अपने सौन्दर्य के दर्प में वे अपने आप को भूल ही जाती हैं।"

"पुरुष भी उन्हें तो चाहता नहीं, चाहता उसके सौन्दर्य मात्र को है। मुझे भी तो तुम सौन्दर्य ही के लिए घूर रहे थे।"

"एक्सक्यूज मी डालिंग, लेकिन इसके सिवा स्त्री के पास है ही क्या?"

"दुनिया मे सभी स्त्रियाँ तो सुन्दर नहीं होती। उनके पास क्या होता है?"

"सो तो वे ही जानें। पर एक स्त्री तो ऐसी बतादो, जो अपने आप को सुन्दर नहीं मानती हो।"

मुस्करा कर नमिता ने कहा : "एक स्त्री तो तुम्हारे सामने ही बैठी है।"

"मेरे सामने? मेरे सामने तो तुम हो।"

"अपनी ही तो कह रही हूँ।"

"जितना मैं जानता हूँ, उतना तुम भी नमिता, कि यह बात सही नहीं है।"

"शायद न हो; तो मैं उतनी ही मूर्ख भी हूँ। है न ?"

"तुम नहीं हो। इसलिए कि तुम अपने आपको सुन्दर मानती नहीं।"

"जानती तो हूँ।"

"जानना अपने तक ही सीमित होता है, पर मानने के लिए दूसरे व्यक्ति की जरूरत होती है। जब दूसरे व्यक्ति को भी जनाने का सवाल आता है, तभी उसकी मूर्खता का श्रीगणेश होता है।"

"पर इसे मूर्खता क्यों मानते हो ?"

"इसलिए कि यह मूर्खता है। मनुष्य को छोड़ कर किसी भी प्राणी को देखो; मोर, गाय-बैल, घोड़ा, हाथी—सदैव पाओगी कि मेल-सेक्स (नर) ही दूसरे सेक्स से अधिक सुन्दर है ! और यही कारण है कि स्वभावतः पोलीगेमस (बहुविवाह-प्रिय) होता है।"

"बहु-विवाह का इससे क्या सम्बन्ध है ?"

"यही कि पुरुष सुन्दर होता है. नारी उसके पीछे-पीछे फिरा करती है।"

नमिता ने मुस्करा कर कहा : "पर मनुष्य में तो यह बात उलटी ही दिखाई देती है।"

"वह मनुष्यता का 'पर्वर्शन' (विपर्यास) है। आएम श्यूअर, मनुष्य समाज के आदिम युग मे ऐसी बात न थी।"

"शायद यह 'पर्वर्शन' ही मनुष्य को पशु से भिन्न सिद्ध करनेवाली उसकी सभ्यता न हो।"

"पर्वर्शन, और सभ्यता ! —खूब नमिता !—" और वह खुद ही अपनी बात पर हँस पड़ा।

नमिता ने कहा : "और जो तुम 'पोलीगेमी' का जिक्र कर रहे थे न ! —वह अगर है तो इस पर्वर्शन का ही प्रताप है।"

"है तो ! मतलब ?"

"है तो। पर उसका सेक्सुऑलॉजी से कोई सम्बन्ध नहीं है, सम्बन्ध है तो अर्थनीति से !—शायद तुम्हें यह जानकर आश्चर्य भी हो कि पोलीगेमी जैसी वस्तु सिवा सभ्य कहलानेवाले इस पुरुष के, प्राणी जगत में अन्यत्र नहीं मिलती।"

हँस कर च्यवन ने कहा : "ब्रेवो नमिता ! —शैल आइ हैव टु टेल यू ऑफ कॉक एण्ड बुल स्टोरी ?—कुक्कुटराज और वृषभराज की सेनाओं को कौन सभ्य पुरुष नहीं जानता ?—गाँव में जाने की जरूरत नहीं, शहर में भी यह तो सरलता से देखा जा सकता है।"

"मैं जानती थी कि तुम यह कहोगे !—किन्तु तुमने इसे कभी शायद सोच नहीं देखा। मनुष्य मुर्गों को नहीं पालना चाहता, यदि मुर्गियाँ स्वयम् ही अण्डे देने की अपनी परम्परा कायम रख सकतीं ! मुर्गे और मुर्गियाँ तो समान संख्या मे ही पैदा होते हैं, किन्तु एक को छोड़ कर सब मुर्गे मुर्गियों के पहले ही आदमी के पेट मे इसलिए पहुँच जाते हैं कि वह अण्डे नहीं दे सकते। एक मुर्गा इसीलिए दस मुर्गियों के नियोग के लिए बचा लिया जाता है। बैल की कहानी कुछ भिन्न है, इसलिए कि भारतवर्ष मे उसने खेती मे योग दिया है। फिर भी बैल अलग पाले जाते हैं और गौएँ अलग। जहाँ गौएँ पाली जाती हैं, वहाँ पर एक बैल यही काम करता है, जो मुर्गा करता है! यानी इस सभ्य मनुष्य ने केवल अपने आर्थिक तंत्र को बनाए रखने के लिए इन मूक पशुओं के प्राकृतिक जीवन को भी अप्राकृतिक बना डाला है। और तुर्रा यह कि उन पर बहु-विवाह का दोष आयद किया जाता है।"

"लैटस नॉट फाइट!—हम चाहें तो उनके लीडर या प्लीडर दोनों ही बन सकते हैं, पर वे स्वयम् क्या सोचते हैं इस पर राय देने का हमें कोई अधिकार नहीं है। पर मनुष्य पोलीगेमस है यह तो स्वीकार करती हो न!"

"स्वभावतः नहीं, केवल आर्थिक-कारणों से!—स्त्रियाँ भी पोलीगेमस रही हैं। दूर क्यों जाते हो, यायावर जातियों को देखो, हिमालय की तराइयों में द्रौपदी की बहनें आज भी वही करती हैं, जो महाभारत काल में द्रौपदी ने किया था। आज पुरुष सबल है, समाज के शीर्ष पर है, अर्थतंत्र का नियोक्ता है तो क्या हुआ?"

"वेल, लेटस ॲग्री टु डिफर ऑन दिस प्वाइण्ट!—सम अदर टाइम —कभी बाद में, मूड मे, हम डिस्कस करेंगे। इज इट नॉट टाइम टु गो टु बेड?"

नमिता ने जैसे कुछ नहीं सुना। बोली: "अच्छा, च्यवन, अब मेरी तबीयत तो ठीक हो गई है। घर लौट चलें न!—पापा ने लिखा है कि उनका भी मन नहीं लगता।"

"अभी से क्यों?—गरमी तो खास जून में पड़ती है। जून अगर यहाँ नहीं बिताया तो पहाड़ों पर रहना ही बेकार है।"

"पर यहाँ तो तब बरसात शुरू हो जाती है।"

"नेवर माइण्ड—शहर मे तो गरमी असह्य होती है। और तबीयत ठीक हुई है, इसे पक्की तो होने दो!"

"एक बात और है च्यवन।"

"क्या?"

"मैं चाहती हूँ कि—"

"यू हैव ऑनली टू स्पीक एण्ड ह्वाट यू वॉण्ट इज डन।"

"मैं चाहती हूँ कि जून में ही विवाहकी रस्म भी निपटा दी जाए।"

"दैट्स बेरी गुड—लेकिन जून मे ही; इतनी जल्दी ?"—च्यवन का नशा भागता दिखाई दिया।

"बात यह है कि यद्यपि पापा नए विचारों के हैं, तब भी विवाह की अनुकूल प्रणाली तो निभानी ही पड़ेगी।"

"जरूर जरूर !!"

"और तुम जानते ही होगे—इन पण्डितों के पंचाग मे बरसात शुरू होते ही सब मुहूर्त्त गायब हो जाते हैं। अधिक दक्षिणा भी बड़े-बड़े फार्मूला नहीं बदल सकती !"

"तो बरसात के चार महीने भी बीत ही जाने दो न। आखिर एक फॉर्मेलिटी ही तो है न वह ?"

"किन्तु—"

"किन्तु क्या ?—इतनी जल्दी क्या है ? जिस दिन भी हम चाहेंगे, उसी दिन कर लेंगे ? व्हाइ नॉट, लेटस रिमेन फ्री फॉर सम टाइम मोर ? इफ वी कैन एफर्ड टु बी।"

"बट केन वी एफर्ड ?"

"क्यों नही ?"—

नमिता, मालूम दिया, शब्दों के लिए भटकती रही, फिर बोली, नीची गरदन किए हुए : "आइ सपोज, आइ एम गोइग टु बी दी मदर ऑफ योर बेबी।"

"नमिता, व्हाट डू यू से ?"— च्यवन का नशा हिरन हो गया।

नमिता ने उठकर च्यवन की गोद में अपने मस्तक को छिपा लिया, और बोली : "आइ सपोज सो, आइएम नॉट क्वाइट श्यूअर।"

"लेकिन, क्या हम इसे श्यूअर न करलें ?"

"जरूरत क्या है ?—समय आने पर आप ही निश्चय हो जायगा।"

"जरूरत है नमिता !—इतनी शीघ्र सतान का दायित्व—"

"तुम्हें चिन्ता क्या है ! हम लोगों की आर्थिक स्थिति इतनी गई बीती नहीं है कि तुम्हें—"

"नो नो, उस दृष्टिकोण से नहीं। मैं केवल तुम्हारे दृष्टिकोण से सारी समस्या को सोच रहा था।"

"क्या ?"

"मैं मानता हूँ कि स्त्री मे जो कुछ भी स्पृहणीय है, वह विवाह के बाद आधा रह जाता है, और माता बनने के बाद एक चौथाई। दो-एक बच्चे और हो जाएँ, तो फिर नारी नारी नहीं रहती।"

"फिर क्या हो जाती है नर ?"—हँस कर नमिता ने कहा।

"नहीं नमिता, मजाक नहीं, मै सीरियस्ली कह रहा हूँ।"

"लेकिन स्त्री-पुरुष के मिलने का विहित मार्ग तो विवाह ही है।"

"यही तो समाज की ज्यादती है।"

"तो क्या तुम विवाह नहीं करना चाहते ?"—और नमिता एकाएक उठ खड़ी हुई, उसके चेहरे पर क्रोध का रक्त पुत गया। च्यवन भयभीत हो उठा, बोला : "नहीं, नहीं, विवाह तो करना ही है, मैं तो समाज की ज्यादती की बात कर रहा था, किन्तु मैं तुमसे तुम्हारे ही हित के लिए प्रार्थना करूँगा कि इतनी जल्दी मा बनने की साध किसी के लिए लाभदायक नहीं। हमारी आर्थिक स्थिति चाहे बहुत अच्छी हो, पर हमे देश की अवस्था पर ध्यान देना आवश्यक है ? भूलता नहीं हूँ तो शायद महात्मा जी ने ही एक विवाहोत्सुक जोड़े को यही आदेश दिया था कि कम से कम आने वाले दस वष तक वे प्रजनन-अनुष्ठान मे प्रवृत्त न हों।"

"किन्तु—"

च्यवन ने उठकर नमिता को अपने वक्ष से लगा लिया और बोला—

"क्या तुम सोचती हो, अपनी सन्तान का पिता होने की प्रसन्नता मुझे नहीं है ?–मैं केवल बड़े हित की बात सोच रहा था। और अभी तुम भी श्यूअर तो हो नहीं ? मैं समझता हूँ, सबसे ठीक तो, कल किसी नर्सिंग होम में जाकर तुम्हे दिखला दिया जाए।--वी आर इन ए बेरी गुड प्लेस !--यदि जरूरत हुई तो यहाँ बड़ी ही सरलता से 'इवेक्यूएशन' करवाया जा सकेगा। कानोंकान किसी को खबर भी नहीं हो सकेगी।"

"इवेक्यूएशन ?" घबड़ाकर नमिता ने कहा --

"लो, तुम 'वरी' ही करने लग गई। लेट्स फर्स्ट मेक श्यूअर, इफ द लिटिल डेविल इज देअर !"–और उसे अपने आलिंगन पाश मे जकड़े हुए च्यवन 'बेड रूम' की तरफ खींच ले गया।

यह कहना कठिन है कि उस रात को दोनों कितनी देर बाद सो पाए, यद्यपि एक दूसरे पर दोनों ने विदित किया की दोनों ही गहरी नींद में सो रहे हैं।

दूसरे दिन नमिता को नर्सिंग होम में परीक्षा हुई। बहुत कुछ बहस-मुबाहस के बाद नमिता को मानना पड़ा कि किसी भी अवस्था मे जून के अन्त

तक उसे वहीं रहना पड़ेगा। तब तक स्वास्थ्य पुनः औसत हो सकेगा, और वे बिना किसी आशंका के शहर लौट सकेंगे। अतः दूसरे ही दिन नमिता को फिर पापा को पत्र लिखना पड़ा कि डॉक्टर की राय के अनुसार, उसकी इच्छा के खिलाफ, उसे जून का महीना वहीं बिताना पड़ेगा। कोई चिन्ता जैसी बात नहीं है, नहीं तो शायद अपनी कन्या की मगल-कामना को न दबा सकने के कारण कहीं सुमनबाबू सशरीर ही वहाँ न उपस्थित हो जाएँ ?—च्यवन ने वहाँ जून तक साथ रहना स्वीकार कर लिया है यद्यपि शहर लौट जाने के लिए वे बहुत ही व्यग्र और आतुर थे—केवल इसलिए कि सुमनबाबू को अगर वहाँ आना पड़ा—और च्यवन वहाँ नहीं रह सकता तो सुमनबाबू अवश्य वहाँ आते इसमे कोई संशय नहीं—तो उन्हें कितनी असुविधा होगी। अब उन्हे बिलकुल चिन्ता नहीं करना चाहिए।—आदि आदि!

: १२ :

उस रात को निर्मल भी अपने कमरे में काफी विलम्ब से लौटा। सारे शहर में यों तो सन्नाटा छाया हुआ था, किन्तु इन पाश्चात्य ढंग के होटलों में चहल-पहल मध्य-रात्रि तक तो रहती ही है। लेकिन यह समय अभ्यागतों के लौटने का है, प्रवेश करने का नहीं ? अतः सहज ही निर्मल दरबान की आँखों को पकड़ाई दे गया। दरबान ने सोचा कि जहाँ दिन रात ठहरना होता है, आजादी का खुला इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। शहर मे न बेश्यालयों की कमी है, न शराब खानों की।--और मजा यह है कि निर्मल लौटा सचमुच मन्दिर से था।

तो भी दरबान की कल्पना के साथ न्याय करना होगा! बेश्यालय मे भगवान नहीं होते, वहाँ होती है लड़कियाँ, और देवालय में लड़कियाँ नहीं होतीं, वहाँ होते हैं भगवान्। देवालय मे जाकर भी जिस मूर्त्ति को निर्मल मन में बैठा लाया था, वह भगवान् की नहीं थी, प्रत्युत् एक लड़की की थी; और उस मूर्त्ति में वह इस तरह उलझा हुआ था कि उसकी सहज गति को मदिरा के अटपटेपन ने जकड़ लिया था।

सीधे अपने कमरे मे जाकर उसने पंखे का स्विच ऑन किया और पलग पर पड़ रहा, आँखों मे मन्दिर की सारी दृश्यावलि तैर रही थी। ईश्वर के लिए निर्मल के मन मे कोई आग्रह नहीं था, कभी इसकी जरूरत ही नहीं पड़ी थी। प्रारम्भ ही से पैसे के ऊपर पलने वाले को किसी भाव का बोध ही नहीं हो पाता, अतः अभाव के अनुभव का प्रश्न ही नहीं पैदा होता! ईश्वर के बारे मे जब दूसरों के अनुभव से उसे कुछ सूचना मिली, तो वह उसका कोरा ज्ञान ही था,

अनुभूति नहीं, और तभी अस्ति और नास्ति के दार्शनिक-पाटों मे पिस कर ईश्वर की व्याप्ति कहाँ पिछड़ गई, इसकी उसे सुधि ही न थी। अगर ईश्वर है तो अच्छा है, नहीं है तो और भी अच्छा है। वह तो है, इसमें कोई संशय नहीं!

वह है इसमे कोई संशय नहीं, इसी तरह कल्पना भी है, इसमे भी कोई संशय नहीं! अगर यही दोनों होते, तो कितना अच्छा था! कोई झंझट न थी, पर आज रात को वह देख आया कि यह ईश्वर भी कोई है! दो बिन्दुओं के बीच मे एक सीधी रेखा थी, कोई व्यत्यय नहीं था, अन्य बिन्दु हैं तो उसी क्षितिज पर जिस पर वे खड़े हैं, उनसे केवल दोनों के बीच रेखा अधिक लम्बी होती जाती है, किन्तु शीर्ष के इस बिन्दु ने उस रेखा को कल्पना के बिन्दु से मोड़ दिया है? यह क्या उपसर्ग बीच से आ जुटा है?—कल्पना और उस बिन्दु के बीच भी ऐसी ही गहरी रेखा खिची हुई है, जैसी कल्पना और उसके स्वयम् के बीच, बल्कि और भी गहरी। इस 'एङगुलैरिटी' (भेद-भाव) का क्या तात्पर्य हो सकता है?

वह जानती थी कि निर्मल मन्दिर के प्रागण मे विद्यमान है! अवश्य जानती थी, निर्मल ने टेलीफोन से इसकी सूचना उसे पहले ही दे दी थी, फिर भी एक क्षण के लिए भी उसने मुड़ कर उसकी ओर नहीं देखा। किस तन्मयता से उसने उस पत्थर की मूर्त्ति का प्रसाधन किया, यदि मूर्ति पत्थर की न होती, तो कल्पना के उसके चरणों मे प्रणिपात होने की अपेक्षा, वह मूर्ति ही कल्पना के चरणों मे प्रणिपात होती?—कम-से-कम निर्मल तो कभी अपने आपको नहीं रोक पाता, और फिर भी कल्पना ने उसकी ओर भ्रूपात भी नहीं किया?

कीर्त्तन, कथा, उपदेश—सभी कुछ मानो कल्पना के कानों में अमृत उढेल रहे थे! फटे बाँस जैसी आवाज से घुटी चाँद का वह वैष्णव कीर्त्तन के नाम पर जैसा रेंक रहा था, उससे कौन बहरा हो जाना पसन्द नहीं करेगा? फिर भी कल्पना इस तरह कान लगाए बैठी थी, मानो अलका के गन्धर्व किसी शची को प्रसन्न करने के लिए अपनी समस्त-साधना का व्यय कर रहे हों! मृदग की कर्कश आवाज, वह बन्दरों की तरह उछल-कूद—क्या मजाक है सभ्यता की।—और कल्पना, साहित्य-शास्त्र-निष्णाता कल्पना उस भौंडे प्रदर्शन में इस तरह खो गई कि मानो विश्व का चरम-सौन्दर्य वही पर एकत्रित हो गया है। कथा और कथावाचक की ओर उसका ध्यान नहीं गया यही अच्छा है, वरना भाग्य की विडम्बना से तिल धरने को भी धैर्य को जगह न मिलती!

हाँ वह भद्र व्यक्ति ही शायद कल्पना के पिता थे। पर क्या अजीब-सा बेश बना रक्खा था! रेशमी साड़ी को अन्तरीय की तरह पहन लेने मात्र से वह उत्तरीय नहीं हो जाती। और वह चन्दन की चर्चा?—वाहरे भगवान्—खूब तमाशा बना रक्खा है तुमने इस दुनिया में? तुम्हारे 'अस्ति' की अपेक्षा, मैं समझता हूँ, तुम्हारा 'नास्ति' ही अधिक भावमय है! और मुझे ही कुछ चनना पड़ा, तो मैं 'नास्ति' ही को चुनना अधिक सुविधा जनक समझूँगा, चाहे शास्त्रों का अम्बार ही मेरे मस्तिष्क मे क्यों न ठूँस दिया जाय।

जाने कब पिछले पहर वह सो गया। दरवाजा भी बन्द नहीं किया जा सका, खाली किवाड़ अटके रहे। बेड टी लेकर बैरा लौट गया। उठाने का साहस न था, पर बड़ा हाजरी लेकर जब लौटा तो देखा कि तब भी बाबू सोए हुए हैं! क्या करे? जगा दे?—मैनेजर साहब ने भी मिलने के लिए कहा है, आते ही होंगे। धीरे से उसने पुन दरवाजा बन्द कर दिया, और बाहर से घण्टी का बटन दबाने लगा। निर्मलबाबू को उठना पडा।

बैरे ने आकर सलाम किया। कहा :"हुजूर, मैनेजर साहब मुलाकात करना चाहते हैं।"

"अच्छा, भेज दो।—और देखो, एक कप और दे जाना।"

"जब बेरा कप दे गया तो निर्मल ने मुस्कुराकर चारों ओर देखा—ओह, नौ बज रहे हैं।—इतनी देर से तो वह और कभी नहीं उठा! तभी उसे रात की सारी बातें याद आ गईं, और करीब था कि वह पुनः उसी तन्द्रा में खो जाता कि होटल के मैनेजर साहब ने प्रवेश किया।

प्रातः नमस्कार के बाद मैनेजर पास की कुर्सी पर बैठ गया। चाय बनाते हुए निर्मल ने पूछा—

"चीनी कितनी चम्मच लीजिएगा? दो?'

"ओह क्यों तकलीफ करते हैं। मैं अभी लेकर आया हूं। यू कैरी ऑन" दैटस जस्ट नथिंग?"

और चाय का प्याला उसने मैनेजर के हाथ मे थमा दिया।

मैनेजर ने पूछ : "कोई तकलीफ तो नहीं है आपको।"

"धन्यवाद, बिलकुल तकलीफ नहीं है!"

चाय की चुस्कियाँ लेते-लेते मैनेजर ने पूछा : "बाइ दी वे, आप कबतक ठहर रहें हैं। मेरा मतलब है, देखिए, अभी आप डेली रेट्स के हिसाब से चार्ज हो रहे हैं, ह्विच इज ट्वेलव् रुपीज ए डे। लेकिन मासिक रहने वालों को हम खास सुविधा देते हैं! वह करीब ढाईसौ रुपया महीना है। मन्थली बोर्डर्स के लिए हमने कुछ कमरे अलग रख छोड़े हैं। कम्फर्ट्स तो सब यही हैं!

बट दे आर नॉट ओव्हरलुकिंग द रोड। क्या आप उस सुविधा को चाहते हैं—?"

निर्मल ने चाय पीते हुए ही सारी बात सुनी, और बहुत कुछ सोच भी लिया। किन्तु बड़े इतमिनान के साथ उसने कहा: "मैं खुद नहीं जानता था कि मुझे इतने दिन यहाँ रहना पड़ जाएगा। लेकिन अब आशा है कि एकाध दिन ही मे मैं कुछ निश्चित कर लूँ। आपको सचमुच धन्यवाद देना चाहिए कि आपने यह बात मुझे सुझा दी। मैं जानता था इस नियम को, और यदि जानता होता कि इतना मुझे ठहरना होगा तो आपके सुझाए हुए प्रस्ताव को ही स्वीकार करता। किन्तु अब तो दो-चार दिन ही की बात है। और पेमेण्ट का सवाल हो तो---आइ केन मेक इट नाऊ।"

"नो, नो, डोण्ट प्लीज मिसजज मी। दिस वाज नेवर माइ आइडिया," और वह उठ गया।

निर्मल ने चाय खतम की।

स्नानादि से निवृत्त होकर निर्मल ने पुनः पलंग पर आसन ग्रहण किया, और सिर खुजलाते हुए कुछ देर के लिए कल्पना के खयाल को मन से विदा किया, ताकि वह तत्कालीन अधिक गहरी आवश्यकता पर ध्यान दे सके।

आज इस होटल मे उसे बीसवाँ दिन है: ढाईसौ रुपये तो यही हो गए, दो चार दिन और समझ लिया जाए, तो पूरे तीन सौ! मकान किराए का चेक अवश्य ही भुन गया होगा। अगर होटल का बिल बढ़ता गया, तो श्रीमान निर्मलकुमार की पोल खुलने मे कोई सशय नहीं। शहर से विदा लेना, खयाल तो अच्छा है, पर और अन्यत्र कहाँ जाएं?—क्या करेगा अन्यत्र वह?—शायद इससे पहले वह जानता ही न था कि रुपये मे कम-से-कम चौंसठ छिद्र तो होते ही हैं, जिनमें से उनकी चाँदी प्रतिक्षण गल कर बहती रहती है। टूटने के बाद, चाहे वह नोट हो या रुपया, या चेक ही क्यों न हो—वह बिखर जाता है, बह जाता है! पाने का कोई सूत्र नहीं! नौकरी तो करना ही पड़ेगी, पर क्या नौकरी करे? जानता क्या है वह? बी० ए० पास है तो क्या हुआ? किताब पढ़ सकता है, कविता समझ सकता है, चाँद की चाँदनी किन अवस्थाओं मे अंगारे जैसी तप्त हो उठती है, यह भी वह जानता है,—इससे आगे नायिका-भेद, रस-संचार, कला-पक्ष, अलंकार—किन्तु इन सब के लिए कौन उसे तीन-चार सौ रुपया मासिक दे देगा? यह सब कुछ पढ़ना इतना निरर्थक भी हो सकता है, यह आज के पहले उसे क्यों नहीं मालूम हुआ?

नौकरी तो उसे करना ही है, क्लर्क की नौकरी में सौ-सवा सौ से अधिक

नहीं मिलेंगे! एक कमरा भी इतना हर महीने कमा लेता है!—कल्पना देवी का वह भगवान अवश्य ही उसके धन्यवाद का पात्र होता, यदि उसे मनुष्य की अपेक्षा कमरा ही बनाया गया होता, अवश्य ही यदि उसको मनुष्य बनानेवाला भी वही हो!—तो, जब तक नौकरी नहीं मिले, तब तक क्या किया जाए?—किसी दूसरे सस्ते होटल में?—पर उससे क्या होगा? जो समस्या चार दिन बाद आएगी, वह आठ ही दिन तो दूर होगी!

उसे याद आया कि च्यवन जब शुरू-शुरू आया था, तो किसी धर्मशाला में ठहरा था। पता नहीं, शहर मे पैर रखने के दिन उसके पास कुल क्या जमा थी, किन्तु होटल का बिल चुका देने के बाद, कुछ ऐसा नहीं दीखता कि निर्मल उसकी अपेक्षा किसी ऊँची व्यवस्था की कामना करे। यदि चौकीदार को दो चार आने दे दिए जाएँ, तो मजे से आठ दिन की अपेक्षा पन्द्रह दिन तक रहा जा सकता है, और फिर उसके बाद दूसरी धर्मशाला, दूसरी के बाद तीसरी, तीसरी के बाद,—खैर, तब तक फिर देखा जाएगा, और यों शहर में कोई धर्मशालाओं की कमी नहीं है।—और जब छोड़ना ही है, तो होटल आज ही क्यों नहीं छोड़ दिया जाय?—जो कुछ बचेगा, वही गनीमत है। अब तो उसे एक-एक कौड़ी बचानी चाहिए।—आज भर के लिए वह रहले। कल वह किसी धर्मशाला मे बदल लेगा। पर एक बात और है।—नौकरी की तलाश अभी से शुरू कर देनी चाहिए, बल्कि आज ही से।

एक नया लक्ष्य पा लेने से निर्मल का भरा हुआ मन थोड़ा हलका हो गया!

उसके कुछ सहपाठी थे, जिनके पिता अच्छे पदों पर थे, अगर उनसे मिला जाए तो वे अवश्य कुछ सहायता करेंगे, पर वह किसी का एहसान लेना नहीं चाहता। उत्तम यही होगा कि वह स्वयम् चेष्टा करे, ऐसा कोई पहाड़ नहीं आ पड़ा है उस पर, कि उसे निराश होना चाहिए!—पिता सब किसी के सदा जीवित नहीं रहते, और धन्धा भी सब को कुछ न कुछ करना ही पड़ता है। यह सच है कि बेकारी बहुत बढ़ी हुई है, किन्तु यह केवल उसी के कारण तो नहीं। नौकरी की अपेक्षा बिजिनेस करना या और कुछ ऐसा ही काम करना अवश्य अच्छा है, पर—न उसके पास सुविधा है, न समय ही। और दूसरों को उपदेश देने के लिए ये बातें बहुत अच्छी हैं।—सब दूसरे कामों मे कुछ करना पड़ता है, तब रास्ता खुलता है; पूँजी भी चाहिए। किन्तु नौकरी में—माँगा और गाड़ी चली! चिट्ठी लिखना भी नहीं आया, तो भी कोई खास दिक्कत नहीं। पहली तारीख के लक्ष्य तक दौड़ते रहिए, गिरते-पड़ते हर नौकर पहुँचता ही है, और फिर रेस शुरू! बस मजा ही मजा है।

उसकी इन समस्त आशाओं का क्या फल मिलना था, यह हम सब अच्छी तरह जानते हैं। नहीं जानता था तो केवल निर्मल! पर उसे भी जानने में देरी नही हुई। नौकरी के विधाताओं ने यदि उसे इतना अधिक अपमानित नहीं किया, जितना कि हमे सिनेमा के दृश्य-पट बतलाते हैं, तो केवल इसलिए कि वह अच्छे कपड़े पहने था, और बड़े ही भद्रजनोचित व्यवहार से उसने नौकरी की माँग की थी—शायद इसलिए भी कि वह नौकरी मॉगने का किसी सिनेमाचित्र के लिए नाटक नहीं कर रहा था, शायद ऐसा होता, तो स्टूडियो के बाहर उसकी प्रतिष्ठा की कमी नहीं होती।

पूर्ति की विरलता के कारण उसकी मॉग का मान कम से-कम होने लगा—चार सौ से उतर कर वह सौ रुपए मासिक तक चला आया, हाँ, मँहगाई-भत्ते सहित सौ, इस बड़े शहर मे! परन्तु मालूम देता था, पूर्ति का मान विरलतम तो क्या—शायद शून्य भी नही था! कभी किसीने किनारा ढूँढने के लिए पूछा, टाइपिंग जानते हो?—संकेत-लेखन भी नहीं सीखा?—और क्लर्की की खोज मे हो?—बहुत हुआ तो किसी ने वेटिंग-लिस्ट मे नाम लिख लिया। 'पेनल' खतम होने पर 'सिलेक्शन' होगा, यदि उस चुनाव मे आगए तो अवसर है! सिलेक्शन-बोर्ड मे कम-से-कम पॉच सदस्य होते हैं, उन सब को पसन्द आना जरूरी है! उनके नातेदार रिश्तेदार न भी हों तो भी—पर ठहरो, ऊमर तो इक्कीस के पार नहीं कर गए?—कर गए, तो दुनिया में इतना जल्दी आने की ही क्या जरूरत थी?

और पूँजी के लिए आवश्यक नहीं था, कि वह नौकरी की उपलब्धि को ध्यान मे रख कर अपने आकार के लाघव को सयमित करे! निर्मल के सामने निराशा चित्र बनाने लगी, रेखाएँ गाढतर होने लगीं, अन्धकार-सा छाने लगा! उसके ध्यान का एक मात्र केन्द्र होने लगा: नौकरी, नौकरी, नौकरी!! कल्पना की कल्पना भी उसके मस्तिष्क के किसी दूर के कोने मे सो गई!

उस दिन शाम को जब चौकीदार ने आकर कहा कि उसे इस धर्मशाला मे सात दिन हो गए हैं, और अब वह नियम के अनुसार अधिक नहीं रहने दिया जा सकता, तो नियम की सामर्थ्य को अनुकूल करने के लिए उसे नियम के रक्षक को एक रुपए का प्रसाद चुकाना पड़ा! वह खाना खाने के लिए बाहर जाने ही वाला था, किन्तु उसके मन ने अनुभव किया कि उसकी भूख लगभग समाप्त हो गई! अब उसके दिन पूर्व-निर्धारित बजट के ऊपर कटते थे। घड़ी और अँगूठी वह बेच चुका था। बहुमूल्य ऊनी वस्त्र उसके अब भी शेष थे। गरमी के दिनों में वे नितान्त अनावश्यक प्रतीत हों, तो अस्वाभाविक नहीं है; वस्त्रों का गिरवी रखने की दिशा मे कोई मूल्य नहीं है, अतः उन्हें बेचना

ही पड़ेगा। और जब बेचना ही पड़ेगा, तो दीखता यही है कि उनकी आवश्यकता नहीं ही पड़ेगी!

शाम को धर्मशाला के कमरे में अधिक देर तक निष्क्रिय ठहरे रहने का कोई अर्थ नहीं है। गरमी के दिन है, पंखा कमरे मे है अवश्य, पर वह भी पैसे के जोर से चलता है। मच्छर और खटमलों की इन्तिहा नही! अतः श्रेष्ठतम उपचार यही रहता है कि काम हो, या न हो, शाम को बाहर बाजार मे घूम लिया जाए, तब तक घूमा जाए जब तक कि पैर थक कर जवाब न दे दें, ताकि बिस्तर पर लेटते ही नींद की ऐसी गाढ़ी किलेबन्दी शरीर को सुरक्षित कर ले कि मच्छरों और खटमलों की अविराम सेना भी उसे टस-से-मस न कर सके। यों शहर मे सध्या को देखने के लिए वस्तुओं की कमी भी नहीं रहती। बाजार मे किसी भी सड़क पर हो लीजिए, एक छोर से दूसरी छोर तक चले जाइए, पैर थक जाएंगे, पर आँखें नहीं थकेंगी। कहते हैं, शहरों का सौन्दर्य शाम के बाद ही निखरता है, शाम के बाद ही वह निखरता ही नही, बिखरता भी है, लूटने वाले लूटते हैं, लुटानेवाले का भी कुछ जाता हो, ऐसा दिखाई नही देता। मतलब यह कि शहर मे रह कर जिसने रात्रि की प्रारम्भिक घड़ियों को शहर की उद्भासित सड़कों पर नही बिताया, उसकी उपमा काबुल के गधों के लिए भी शर्मनाक होगी।

अतः निर्मलकुमार भी स्वेच्छा से या विवशता से अपने कमरे का ताला बन्द करके बाहर हो गए!—खर्च बजट से अधिक हो गया था, इसलिए उत्तम उसने यही सोचा कि जेबों के सुपुर्द कुछ पैसा कौड़ी नहीं किया जाए, वरना शहर की सड़कों पर उन्हे अमानत मे खयानत करते देर नहीं लगती।

बाईं ओर जो सड़क मुड़ती है, उस पर हो लिया जाए, तो बीसेक मिनिट की चहल कदमी के बाद माधव-निकुज का आलीशान अहाता आ जाता है। लम्बी सड़क ठेठसेठेठ तक पार्क है, जिसमे फूलों से भरी हुई हरियाली छाई हुई है। यदि कोई पार्क में घूम रहा हो तो सड़क पर से दिखाई दे जाता है! निर्मल दाईं ओर को मुड़ गया।

क्या ठिकाना, कल्पना विचरण कर ही रही हो। जिस हालत मे वह है उसमे कम-से-कम कल्पना से तो उसे नहीं मिलना चाहिए। उसने उससे प्यार किया है, पर बराबरी की सतह पर, और बिना इस बात की चिन्ता किए कि वह उसका प्यार लौटाएगी या नहीं। उसने लौटाया, या कहाँ तक लौटाया यह वह नहीं जानता, फिर भी माँग तो उसने नहीं ही की।—यह भी वह देख चुका है कि मनुष्य की अपेक्षा पत्थर मे उसके प्राण अधिक रमण करते हैं, जिस उत्साह से वह पत्थरको मणि-माणिक्य से सजा सकती है, उसका एक क्षुद्रांश

भी वह निर्मल की भावना को केवल अपनी दृष्टि के ऐश्वर्य से सजाने में व्यर्थ नहीं करना चाहती। मणि-माणिक्य से वह दरिद्र हो सकता है, पर भावना से नहीं। नहीं, इस अवस्था मे वह उसके निकट नहीं जाएगा।

विदा होते समय नमिता ने कहा था कि निर्मल की आँखें कल्पना की रत्न राशि पर भटक गई हैं, अगर इस समय वह कल्पना के समक्ष समुपस्थित हुआ तो नमिता का वह व्यग चरितार्थ हो उठेगा।—क्या इसी भाव की प्रतीति स्वयम् कल्पना को नहीं हो उठेगी?—फिर उसके प्यार का महत्व?—

बाएँ पैर के बूटका तस्मा खुल गया था, आशंका थी कि लटकती हुई लेस कहीं पैर के तले आ गई, तो वह गिर भी सकता है। उसने रुक कर लेस कस ली; देखा कि पंजे के दाहिने भागमे सींवन उधड़ गई है, और हवा के साथ-साथ धूल भी भीतर प्रवेश कर गई है।—मालूम पड़ता है यदि दो आने अभी उसके ऊपर खर्च नहीं किए, तो फिर चार आने खर्च करना पड़ेंगे, या फिर नया बूट ही खरीदना पड़े। अवश्य अब की बार वह कीमती जूता नहीं खरीदेगा, पर मामूली जूता खरीदना भी अभी अपव्यय ही है। सच तो उसके लिए पैसा नहीं है।

ऐसे जूते बहुत पहले ही उसके नौकरों को या कॉलेज के चपरासियों को मिल जाया करते थे। पर अब वह बात नहीं है! क्यों हुआ ऐसा?—यह दुनिया कभी तो उसे पहले इतनी कुरूप नहीं दिखाई दी, जीवन पहले कभी तो उसे ऐसा वितृष्ण नहीं मालूम दिया। क्या यहसब कुछ अर्थ ही की माया है? पिता के जीवित न होने से ही क्या सब कुछ कदाकार हो उठना था। नमिता के छूटने और पिता के स्वर्गस्थ होने मे क्या सम्बन्ध है?—यदि नमिता का साथ न छूटता तो कदाचित् यह समस्त प्रवंचना सहन न करना पड़ती। उसकी सम्पत्ति का मालिक तो वह होता, परन्तु केवल इसलिए तो वह नमिता के साथ बन्धन मे नहीं बँध रहा था। सम्भव है, सुमनबाबू के प्रयत्न से उसे कोई अच्छी नौकरी मिल ही जाती! स्वयम् सुमनबाबू का कारोबार भी काफी बड़ा है; जब वह था, तो बहुत कुछ काम वही देखता था। अब एक मुनीम है! शायद वह जगह भी उसे मिल सकती है! अब भी मिल सकती है क्या? प्रयत्न करे वह?

सुमनबाबू की नौकरी, यानी नमिता कुमारी की नौकरी—नमिता कुमारी, जो उस दिन उसे भर्त्सना के अँधेरे कुँए में ढकेल कर अमित दर्प के साथ लौट आई थी?—नहीं, नहीं जीवन ही में ऐसा क्या है कि जो उसकी रक्षा के लिए इतनी भर्त्सना के साथ नमिता कुमारी की नौकरी की जाए!

यह है ताप नियंत्रित कॉफी हाउस! निउन लाइट से दिन की आभा भी

लज्जित हो रही है ! यदि भीतर जाने का सुयोग हो तो पेट ही को नहीं, आँखों को भी राहत मिलेगी। बैठने के लिए गद्दीदार कुर्सियाँ हैं ! बात करने के लिए भी कई मित्र होंगे ही !—सब कुछ है, वह दरवान उसे देखते ही सलाम करेगा, वह जानता है कि निर्मल कॉफी हाउस का विशिष्ट अतिथि रह चुका है ?—सब कुछ है, भूख भी लग ही रही है, बल्कि काफी ज्यादा, लेकिन जेब मे कुछ नहीं है !—शायद कोई मित्र मिल ही जाए ?—सदैव ही बिल वही चुकाता रहा है, आज शायद वही चुकाने के लिए आगे बढ जाए ! परन्तु यदि यह सब नहीं हुआ ?—नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता ! निर्मल जल्दी-जल्दी कदम बढाता हुआ कॉफी हाउस के पार हो गया !

जिस बात की आशा नमिता से की जा सकती थी, क्या उसी की आशा कल्पना से नहीं की जा सकती ?—इसका कारोबार तो नमिता के कारोबार से भी बहुत बढा हुआ है। नमिता यदि बाम हो गई, तो कल्पना तो अभी भी दक्षिण है। प्रेम नहीं तो कम से कम सहायता तो वह कर ही सकती है इतनी सहानुभूति का परिचय तो वह दे ही चुकी है !--लेकिन जिससे प्रेम पाने का दावा किया हो, उससे सहानुभूति की भीख माँगी जाए ? यह कैसे सम्भव होगा ! सच पूछा जाए तो यह कल्पना ही सब आफतों का जड़ है। यदि उस दिन यह अनायास ही दालभात मे मूसर चन्द होकर न कूद पड़ती, तो मेरी आशाओं के इस तरह पंख न कट जाते। और मन्दिर का उस रात्रि का अभिनय ?

काफी दूर निकल आया है घूमते-घमते।—पेट भी बिद्रोह करता मालूम दे रहा है, यदि इस दरी मे कुछ डाला नही गया, तो शायद शरीर की दीवार ढह जाए--किन्तु जेब ?—

फुटपाथ पर एक किताबों की एक दूकान थी। अमेरिकन उपन्यासों के रंग बिरंगे जेबी-संस्करण, दर्शकों की सेक्स—अपील (काम-लिप्सा) उभारने वाले अर्द्ध नग्न नारियों के चित्रोंसे सजे हुए ! कुतूहलवश निर्मल भी खड़ा हो गया। दूकानदार ने एक ताजी-किताब उसके हाथ मे थमा दी, लिखा था अंग्रेजी मे, आर्ट ऑफ फोटोग्राफी, और ऊपर चित्र था एक अज्ञात यौवना मुग्धा नारी का, निर्वस्त्र और निर्व्यस्त !—ओंठों के एक संकोच से उसने विरक्ति प्रदर्शित की। पास मे खड़ा हुआ एक अधेड़ कुछ किताबें देख रहा था। निर्मल भी उसके कन्धे के ऊपर से उसका निर्वाचन देखने लगा।

आखिर कुछ किताबें उस व्यक्ति ने पसन्द कीं। कीमत चुकाने के लिए जेब में से उसने कुछ नोट निकाले। एक दस रुपये का नोट शेष एक-एक रुपए के ! एक रुपए का एक नोट कब उसके हाथ मे से खिसक कर नीचे

गिर पड़ा, इसे उसने नहीं जाना; दूकानदार किताबों की कीमतों को एक बार और दुहरा रहा था, वह भी नहीं देख सका। किन्तु निर्मलने शायद देख लिया, उसी समय जेब मे से उसका हाथ निकला, और रुमाल नीचे गिर गया। नीचे झुककर उसने रुमाल उठा लिया, और फिर जेब में धर लिया! उस व्यक्ति ने पुस्तकों की कीमत चुकाई, और। आगे बढ गया। निर्मल भी दूकान से हट गया और चला उस व्यक्ति के पीछे-पीछे।

जेब मे हाथ डाला, चरमराहट के साथ नोट का पत्ता न केवल उसकी मुट्ठी मे मुखर हो उठा, बल्कि उसके शरीर की समस्त शिराएँ स्फीत हो उठीं। क्या इतना अपदार्थ होगया वह कि एक रुपए का लोभ भी नहीं रोक सका?—चोर सचमुच चोर है वह? यदि वह उसे नहीं उठाता, तो शायद दूकानदार के हाथ लगता वह रुपया, या और कोई दूसरा दर्शक उसे उठा लेजाता। रुपए के मालिक को तो पता ही नहीं है, अब भी वह उस बात को नहीं जानता। पर जा तो रहा है वह, क्या उसे लौटाया नहीं जा सकता? भलमनसाहत, ईमान दारी तो यही है। माना कि निर्मल को जरूरत है रुपए की, किन्तु क्या इस दुनिया मे उसकी जरूरत ही सब कुछ है? जो आदमी रुपए को इस तरह से लापरवाही से व्यय कर सकता है, अवश्य उसे रुपए की इतनी आवश्यकता नहीं, क्यों फिर उसके पास इतना रुपया है, जो किसी जरूरतमन्द के पास होना चाहिए था?—क्या उसी नियम से यह भी चोर नहीं है?

वह शायद मेहनत करके रुपए पाता है। मेहनत करके—कुर्सीपर बैठ कर दस्तखत भर करने के इतने ढेर सारे रुपए, कि वह उनको सहेज कर भी नहीं रख सके! और दूसरी तरफ वह, जो काम तो करना चाहता है, पर उसे कुछ काम ही नहो मिलता।—लो, वह ठहर गया। शायद किसी टैक्सी की राह देख रहा हो! वह चोर है या नहीं, इसकी मीमासा करने को काफी समय है, पर यदि मिर्मल कुमार को सचमुच चोर बनने से नफरत है तो उसे शीघ्र ही रुपया उसे लौटा देना चाहिए। वह तेज कदम आगे बढ़ा।

ओह, तो हजरत इस कार के लिए राह देख रहे थे! वाकई बहुत ही बढ़िया कार है! ड्राइवर वरदी पहने हुए—निर्मल ने देखा कि फुटपाथ पर खड़े हुए एक भिखमगे ने भी साहब को सलाम दिया। ड्राइवर ने उतर कर दरवाजा खोला, दरवाजा खुलते ही गाड़ी मे रोशनी हो गई। निर्मल ने देखा कि साहब ने जेब मे हाथ डाला, हथेली मे आए हुए नोटों को एक क्षण के लिए देखा। शायद कुछ चैंज हाथ मे आई नहीं, तो उसने एक रुपए का नोट ही भिखमगे को पकड़ा दिया। और—

"एक्सक्यूज मी—" निर्मलने कहा, जैसे ही कार का दरवाजा बन्द हुआ—

"यस ?"

"आप—आ—क्या बजा है ?"—

"सिली—ड्राइवर, चलो—" और कार हवा हो गई !

भिखमगे ने कहा : "दस बजे होंगे—इतने बडे आदमी से माँगा भी तो—क्या बजा है ?" और हँसता हुआ वह किसी दूसरे दाता की तलाश मे बढ़ चला।

निर्मल हारे हुए जुआरी-सा परावर्त्तित हुआ, सामने वाली सड़क पकड़कर, हाथ पेंट की जेब मे, नोट उसकी मुट्ठी में उलझा हुआ, तब भी वह बराबर चरमरा रहा था। निर्मल का मस्तक घूमने लगा, मानो वह नहीं चल रहा था, बल्कि जमीन ही उसके पैरों के नीचे से खिसकती चली जा रही थी।

फुटपाथ पर बैठे एक लड़के ने कहा : "बड़े बाबू ! बहुत बढ़िया बूट पॉलिश, सिरफ एक आना ! इतना बढ़िया कि मुँह दीखने लग जाए।"

निमल ने एक बार लड़के की ओर देखा, मुश्किल से दस-बारह साल का, उसने 'हुश' कहा और आगे बढ़ गया ! लड़का पीछे पड़ गया।

"बाबू ! सबेरे से कुछ खाया नहीं है। कोई ग्राहक ही नहीं मिला, अगर चार पैसे मिल जाते तो चना ले लेता—दया हो जाएगी बाबू !"

भीख देने की अपेक्षा यह अच्छा है कि काम लेकर पैसा दिया जाए। अभी उस दिन उसने एक समाचार-पत्र मे पढ़ा था कि भिखमगों की समस्या हल करने का केवल एक ही उपाय है : कि भिखमंगों को भीख न दी जाए बल्कि काम दिया जाए !—लड़का नीचे बैठ चुका था, और बूटवाले पैर को गोद मे लेकर ब्रश फेर रहा था।

देखकर बोला : "बड़े बाबू, बूट तो फट गया है। सी दूँ क्या ?"

"तू सी देगा ?"

"क्यों नहीं ?"

"क्या लेगा ?"

"जो आप दे देंगे।"

"एक आना होगा !"

"नहीं बाबू, दो आना होगा। दो आने से कम कोई भी नहीं लेगा। बड़ा मजबूत काम कर दूँगा।"

"अच्छा ठीक है।"

भिखमङ्गों की समस्या हल करने का मानो दायित्व उसी पर है !—अच्छा, और चोरों की समस्या का हल ?—निर्मल को हँसी आ गई ! पास में चुराया हुआ एक रुपए का नोट, और हल खोज रहा है चोरों की और भिखमङ्गों

की समस्याओं का। यदि मन की इस तरह एक दूसरे से बिलकुल अलग-थलग अनुभूति की व्याप्ति न होती, तो मनुष्य जीवित किस तरह रह पाता ? यह विरोधाभास मन ही को शोभा देता है कि वह चोर भी है, और साह भी; बीमार भी है, और डॉक्टर भी, भिखारी भी है और दाता भी।

निर्मल ने कहा · "मेरे पास छुट्टे पैसे नहीं हैं !"

"नोट है बड़े बाबू ?—कितने का, दस रुपए का ?—लाइए, किसी दूकान से ले आता हूँ।"

"नहीं, एक रुपए का है।"

लड़के ने इतमीनान से जेब में हाथ डाला, और उसने चैंज गिन दी।

हैरत मे आकर निर्मल ने कहा : "तू तो कह रहा था, सबेरे से कुछ खाया नहीं, तेरे पास एक भी पैसा नहीं ?"

लड़के ने मुस्करा कर कहा : "झूठ तो बोला सरकार, पर चोरी तो नहीं की !—अगर झूठ न बोलता तो यह मजदूरी क्या हाथ लगती ?—इस जमाने मे ईमानदारी से कमाने के लिए भी झूठ तो बोलना ही पड़ता है।"

निर्मल ने पूरी बात नहीं सुनी। चोरी तो उसने नहीं की, पर निर्मल ने की है ! और उसी चोरी के रुपए के बल पर साहूकार होकर झूठ बोलने के लिए उसने उस लड़के की भर्त्सना भी कर दी। बेचारे ने मेहनत की, और उसका पैसा पाया, फिर भी पैसे चुकानेवाले ने मुफ्त मे पाए हुए दूसरों के पैसे को उसे चुकाकर दयालुता का भार उस पर लाद दिया ! वाहरे जमाना !

सो, मिस्टर निमलकुमार, क्या समझे ?—यह युग सचाई पर विश्वास नहीं करता, विश्वास करता है केवल सचाई के दिखावे पर ? और यह जरूरी नहीं कि दिखावा सच ही दिखाई दे !—भ्राति जितनी अधिक हो, उतना ही लाभ है ! अर्थ का युग है , ईमानदारी, सच, भलाई इनका कोई मूल्य नहीं, किन्तु बेईमानी, दगा, झूठ ये बहुत ऊँचे मूल्य पर बिकते हैं। मूल्य का पैमाना यहाँ पर उपयोगिता नहीं, प्रत्युत् उपलब्धि है ! स्वण के अभाव मे कोई मर नहीं जाता, इसलिए सब उसके पीछे मरते हैं ! वायु, जल आदि के बिना कोई जीवित नहीं रहता, इसलिए इनको कोई मूल्य ही नहीं मिलता। चूँकि समाज के शास्ता कह गए हैं कि सच, ईमानदारी, भलाई इनके बिना समाज का काम ही नहीं चल सकता, वस्तुतः इसीलिए इनको समाज मे कोई नहीं पूछता ; पर उनके अनुसार जो समाज के लिए घुन हैं उन्हीं मिथ्याचार, पाप, छल, ढोंग, पाखण्ड आदि पर यदि यह समाज पनप रहा हो तो आश्चर्य क्या है ?

—और यह रहा होटल—सरदारजी का दिखाई देता है। कहते हैं, यहाँ

खाना सस्ता पड़ता है। चार आने प्लेट सब्जी और जितनी रोटियाँ लो, उतने आने! चीज कैसी मिलती है, इससे मतलब नहीं, पर मिल जाती है सस्ती, ताकि पाकिट की तंगी के कारण जिनकी भूख भी सिकुड़ने के लिए मजबूर हो, उन्हे भी भूख लग जाया करे!—ठीक तो है, भूख उसे भी लग रही है, बहुत तेज, और जेब में पैसे भी हैं। अगर दो सब्जी न लेकर एक ही सब्जो से काम चला लेगा तो, पान भी खा सकता है, और फिर भी पाकेट खालो नहीं रहेगा। पाकिट तो बेचारा चाहता था कि ईमानदार रहे, पर इस दुनिया में जब स्वयम् मनुष्य लाचार है,तो जड़ पाकिट ही क्या करेगा।

होटलमे विशेष भीड़ थी! एक तरफ खुले में टैक्सी ड्राइवरों से लगाकर आफिस के बाबू तक खा-पी रहे थे, दूसरी ओर लकड़ी के अलगाव लगाकर कुछ केबिन बना दिए गए थे, जिनमे अपने आपको संभ्रान्त समझने वाले कुछ व्यक्ति, या फिर महिलाओं के साथ वाले 'प्रिविलेज्ड' (विशेष) व्यक्ति बैठे गोपनीय-भोजन के साथ ही साथ गोपनीय बातचीत भी कर सकते थे। निर्मल भी अपने आपको सम्भ्रान्त व्यक्ति समझता था, एक केबिन का परदा हटा कर अन्दर बैठ गया।

भोजन की आवश्यक सामग्री का 'आर्डर' दे चुकने पर उसने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई। पास वाले केबिन मे कौन बैठे हैं, यह दिखाई तो नहीं देता, पर वे क्या बातचीत कर रहे हैं, यह सरलता से सुनाई दे सकता है। दो आवाजें तो नारी-कण्ठ की मालूम देती हैं, और एक है पुरुष-कण्ठ की।

मालूम हुआ कि एक संगीत का अध्यापक है, और शेष उसकी छात्राएं! पास ही मे कहीं सगीत-शिक्षणशाला है, जहाँ महिलाओं की नृत्य-गान-वादन की शिक्षा का सुन्दर और विश्वसनीय प्रबन्ध है। भद्र परिवार की महिलाओं और कन्याओं के लिए ही वस्तुतः वह खोला गया है, अतः ऐसे ही कुलों की वे देवियाँ भी होंगी, इसमें कोई संशय नहीं। और ऐसे ही कुलों में तो सर्व-गुण-निष्णात वधुओं की आवश्यकता होती है, चाहे भावी वर कहीं चपरासी की नौकरी पाने में भी असमर्थ साबित हो! और शिक्षण के बाद घर जाने से पहले यदि कुछ चाय-पान के लिए यहाँ बैठ ही गई हों, तो क्या आपत्ति हो सकती है। आखिर किसी गैर मर्द के साथ तो है नहीं, है तो अपने ही अध्यापक के साथ; और शिक्षा ठहरी सगीत की—कला की, बड़ी ही सूक्ष्म कला की! इस सूक्ष्म-भाव को समझना क्या सरल है?

एक कोमल स्वर आया: "देर हो गई, अब तो उठना चाहिए। अम्माजी नाराज हो जाएँगी।"

दूसरा कोमल-कंठ बोला: "चौबीसों घण्टे तो उनके सामने रहती हैं! इन

दो-एक घण्टों में कोई आसमान तो नहीं सर पर उठा लेतीं हम, कि हमारे ऊपर नाराज हों। आखिर कन्याधन को सदैव तो उनके घर रहना नहीं है।"

पुरुष-कण्ठ कुछ उल्लसित हो उठा मालूम दिया : "जब कि आनन्द का सुर तार सप्तक पर हो, तो द्रुत-लय में काम नहीं चलता वीणा !"

तो नाम भी वीणा है !—संगीत का अवतार ही कहना चाहिए !—कि बॉय ने आकर उसके सामने खाने की प्लेटें रख दीं। भूखा वह था ही; न केवल हाथ की कर्मेन्द्रिय, बल्कि आँख-कान आदि ज्ञानेन्द्रियाँ भी खाने पर जुट पड़ीं !

पञ्चम-कंठी वीणाएँ और षड्ज-साधक उनके वादक कब वहाँ नीरव हो गए, इसका उसे कुछ भी ध्यान न रहा। पर तभी उसने देखा कि उसके केबिन का परदा हटाया गया।

निर्मल ने समझा कि 'बॉय' है, जिसको कुछ कहने की फिलहाल कोई आवश्यकता नहीं है, और वह प्लेट मे सिर झुकाए खाना खाता रहा, कि वही पञ्चम स्वर सुनाई दिया, किन्तु हिन्दी नहीं, अंग्रेजी मे—

"माफ कीजिएगा, कोई केबिन खाली नहीं है। मैं बैठ सकती हूँ ?—यदि आपको आपत्ति न हो—"

"कदापि नहीं, कदापि नहीं—" और सिर उठाकर जो उसने देखा तो एक ईसाई लड़की, जवान, ऊमर यही बीस, पर लड़की की ऊमर के बारे मे सोचना व्यर्थ है, और सुन्दर, जब कि लड़की है तो है ही—साफ साबुन के फेन जैसा फ्राक, जिसकी बाँहें खुलीं, कण्ठ अनावृत, और वह सामने कुर्सी पर टेबल का सहारा लेकर बैठ गई है। टाँगें नजर नहीं आतीं, किन्तु घुटने से नीचे उनके भी छिपे रहने की कोई कैद नहीं है। पैरों में ऊँची एड़ी के जूते हैं, इसे भी ज्यामिति की स्वयम् सिद्धि की भाँति स्वीकार कर ही लेना चाहिए !

यह सब आँखों की सतह के नीचे है। जहाँ दृष्टि अटक जाती है, वह स्थान है टेबल से ऊपर और अनावृत कण्ठ से नीचे। अनलस्कन्ध-वपुष केवल आधा इन्च चौड़ी रिबन से परिवेष्टित है, कण्ठ से काफी नीचे दो पर्वतों के बीच की गम्भीर उपत्यका का निबिड़-मार्ग विद्युत के प्रकाश मे स्फीत हो उठा है, और जहाँ से रहस्य के उद्घाटन की सम्भावना है, फ्राक की कंगूरे वाली जाली शुभ्र किनारी पहरे पर आ बैठी है ! उन्निद्र-उरोजों का ठीक मिश्र के पिरामिड के समान सीधे उठने का विधान है या नहीं, यह निर्मल नहीं जानता, पर इसी को क्या वह प्रमाण नहीं मानले ? वास्तव मे वक्ष का यह उभार वास्तविक है या बनावटी, इसकी आलोचना का भी कोई प्रसंग नहीं है, क्योंकि उनके उभार का जो प्रयोजन है, वह यदि पूरा हो जाता है तो

इससे क्या मतलब कि वह वास्तविक है या बनावटी ?—बाजार मे इस तरह की अँगियाँ मिलती हैं, तो क्या हुआ।

इससे ऊपर यदि आँखें जाना चाहे, तो घन-कृष्ण, घुघराले, छटे हुए और तरतीब से बेतरतीब फैले हुए बालों से परिवेष्टित कुछ-कुछ लम्बा-सा मुख मण्डल है। चूँकि गाल जरा पिचके हुए हैं, इसलिए बड़ी आँखे और भी बड़ी दिखाई देती हैं। मालूम देता है, बरौनियों मे काजल की महीन रेखा छिपी हुई है, जो आँखों की सफेदी को चारों ओर से घेर कर ऐसी दिखाई देती है मानो प्रदोष-काल मे घन-वृक्षराजि से घिरी हुई नभ-प्रतिबिम्बिता तलैया! नाक भी महीन, उठी हुई, प्रश्वास की क्रिया-मात्र से उद्वेलित नासा-पुट! और मुख ? लिपस्टिक के रक्तोच्छ्वास से उत्फुल्ल-अधरों के बीच उसकी शोभा किसी दूसरे मुँह से वर्णन नहीं की जा सकती, चाहे कोई लेखक की लेखनी ही क्यों न उसकी सहायता को पहुँच जाए।

सौन्दर्य और यौवन के इस अथाह समुद्र मे, उसके शरीर के रंग की ओर किसी दर्शक का ध्यान नहीं जाना चाहिए! यदि सचमुच वह समुद्र है तो गहराई उसमे होनी ही चाहिए, और फिर उसके ऊपर पाउडर का कुछ कम आच्छादन नहीं है कि शिकायत का अवसर हो, यहाँ तक कि गालों के गढ़े की छाया भी रूज के गुलाबी रग मे दब गई है।

हाँ, तो निर्मल ने यह सब कुछ एक ही क्षण मे नहीं देख लिया। नौसिखिया आँखें ठहरीं; जब तक वह इस परिचय को पा सका, तब तक नवयुवती के सामने कॉफी की प्याली आ चुकी थी, और इधर निर्मलकुमार की प्लेटें साफ हो चुकी थीं!—यानी उसीको अब उठना चाहिए, वरना यह महिला क्या समझेगी मन में!—वह उठा कि सामने वाश हैण्ड बेसिन में हाथ मुँह धो आए, कि लड़की ने अंग्रेजी मे ही पूछा—

"क्या आप कॉफी नहीं लेंगे ?"

"मुझे माफ कीजिए, आप बेतल्लुफी से शुरू कर दीजिए।"

"क्या आपको परहेज है ?"

"कॉफी से तो किसे होगा, किन्तु—" और वह हाथ धोने के लिए आगे बढ़ गया।

"किन्तु क्या—नो नो—हैव वन—ऐ बॉय, देखो एक कॉफी और दे जाओ—"

जब निर्मल हाथ धो रहा था तो सोचने लगा, अजीब प्रसंग है।—जेब में मुश्किल से इतने पैसे होंगे! और जब एक महिला कह रही है तो बिल तो उसे ही चुकाना होगा। पैसे कुल हैं उसके पास तेरह आने! और

शायद और किसी वस्तु का आर्डर देने में वह क्यों हिचकिचाने लगी ?—देखता हूँ कि विवशता से नहीं, बल्कि स्वेच्छा से ही उसने मेरे केबिन में पदार्पण किया है। इतने सारे केबिन जो खाली पड़े हैं! तो क्यों न यहीं से पलायन कर लिया जाए ?—किन्तु—मुड़कर जैसे ही निर्मल ने देखा तो पाया की केबिन के परदे की आड़ से दो आयत नेत्रों की तीक्ष्ण-दृष्टि उसका सधान रख रही है। वह अपने केबिन मे लौट आया, शहर मे रहते-रहते इतने शनिवार टल चुके हैं, आज खैर नहीं है, उसका गला कट कर रहेगा।

कॉफी जब आ गई तो लड़की ने कहा : "मेरा नाम है डोरा—मिस डोरा स्पर्जन, इस शहर के लिए आप नए तो नहीं मालूम देते।"

"कतई नहीं, पुराना पापी हूँ, किन्तु अब नया-नया ही बनना चाहता हूँ।"

लड़की मुस्करादी, जेब में से सिगरेट केस निकाल कर बोली : "वुड यू हैव ए स्मोक ?"

"नो थैंक्यू, आइ हैव गिवनप !"

लड़की ने सिगरेट जला ली : "नया बनना चाहते हैं,आप का मतलब मैं नहीं समझी।"

"मैं खुद भी नहीं समझता मिस स्पर्जन ! किन्तु सोचता हूँ कि इस समय तो अजनबी रहने मे ही कुशल है।"

"कैसे ?—"

"माफ कीजिएगा अगर साफ कहूँ ! देखिए कैसी मुसीबत है, बड़े तकदीर से यदि आप जैसी एक सभ्यमहिला की संगति का सौभाग्य प्राप्त हुआ, तो दुर्भाग्य देखिए कि जेब में केवल तेरह आने शेष हैं। चाहता तो हूँ कि आपका मनोरंजन हो; यही क्या, किसी अच्छे बढ़िया शीत-ताप-नियन्त्रित बार में चला जाए, जहाँ आप मनमाना पान कर सकें, फिर कोई वैसा ही ऐश्वर्यशील होटल, और फिर किसी स्वप्नलोक जैसे मनोरम पिक्चर के प्रेम दृश्य में सारी रात्रि बिता दी जाय—किन्तु—" और निर्मल ने एक लम्बी साँस लेकर हाथ फैला दिए, और मुँह लटका लिया !

डोरा ने कहा : "व्हॉट ए पिटी, मैं अपना वैले ही घर भूल आई; बट नेवर माइण्ड, ग्यारह आने दीजिए, जरा इस बॉय को 'आउट ऑफ साइट' किया, कि मैं एक दूसरा रास्ता जानती हूँ।"

दोनों की आँखें मिलीं, और दोनों ने मुस्करा दिया। निमल ने पैसे गिन दिए।

डोरा ने बुलाया : "बॉय ?"

"देखो एक पॉकेट 'गोल्ड फ्लेक' ले आओ जरा।"

लड़के ने पैसे लिए, कहा : "जरा दूर जाना पड़ेगा। कुछ देर लगेगी।"

"ठीक है।"

लड़का सिगरेट लेने बाहर चला गया। होटलमें अधिक भीड़ न रहीं थी। साढे दस बज रहे थे। मैनेजर अपनी सीट पर बैठा था, दोनों ने कॉफी खतम कर ली थी, दोनों उठे, और हाथ मे हाथ डाले बाहर निकल गए। किसीने न समझा कि दो शरीफ युवक और युवती बिना बिल चुकाए इस तरह निकल सकते हैं!

कुछ दूर आगे बढ़ने पर निर्मल ने कहा : "तुम अद्भुत लड़की हो मिस स्पर्जन, मैं तुम्हे अभिनन्दन करता हूँ।"

डोरा ने हाथ की उलझन को जरा दृढ़ करते हुए कहा : "मिस स्पर्जन नहीं, कहो डोरा।—और तुम्हारा नाम?"

निर्मल के पैर डगमगाने लगे, बोला : "मेरा नाम है निर्मल! तुम्हारा परिचय पाकर कितना खुश हूँ मैं! पर क्या अब मैं विदा माँगूँ?"

"क्यों?—मेरे घर नहीं चलोगे?—"

"लेकिन, डोरा, मेरे पास तो कुछ नहीं है।"

"ओह, डोण्ट बी सिली!—आइ डोण्ट वॉण्ट यूअर मनी!—कम अलॉग!"—और वह उसको एक तरह से खींचने लगी!

"लेकिन तुम्हारे माता-पिता—"

"मेरे कोई पिता नहीं है, किन्तु मेरी मा एक पिता की तलाश में जरूर है; तीन दिन से उसका भी कोई पता नहीं है। घर पर मैं अकेली हूँ, और रात को अकेले बड़ा डर लगता है!"

निर्मल को हँसी आगई, किन्तु वह चुप रहा। उसे याद आगई संस्कृत की एक उक्ति 'कुलिशादपि कठोर और कुसुमादपि कोमल', और अकबर-बीरबल का वह लतीफा भी कि कौन सबसे अधिक बहादुर तथा सबसे अधिक कायर है।

कुछ उत्तर न पाकर डोरा ने कहा : "तुम कहाँ रहते हो डार्लिंग?"

"कोई ठिकाना नहीं, एक धर्मशाला मे रहता हूँ।"

"मजाक करते हो!"

"इससे अधिक गम्भीरता से मैंने कोई बात नहीं की।"

"तो क्या मा-बाप से रूठ कर भाग आए हो?"

"मा-बाप ही रूठ कर मुझसे भाग गए हैं।"

"पढे-लिखे तो बहुत मालूम देते हो। काम क्या करते हो?"

डोरा अनजाने ही निर्मल के दर्दभरे फोड़े को छूती जारही थी। निमल ने बहुत चाहा कि वह अपना दर्द किसी को न दिखाए, किन्तु दर्द सहने की भी सीमा होती है। उसने कहा :

"इस दुनिया में श्रम की कीमत नहीं है डोरा, कीमत है भ्रम की। श्रम करना भी चाहो तो गुजारे लायक भी नहीं मिलता, पर भ्रम पैदा करने के लिए दूसरे के सहयोग की जरूरत नहीं, खुद अपने दिमाग से कर सकती हो, और आराम से टाँग पसार कर सो सकती हो। कोशिश करने पर भी मुझे कोई नौकरी अब तक नहीं मिली।"

"अहाहा! क्या विचित्र संयोग है निर्मल! तुम और हम एक ही थैली के चट्टे-बट्टे, और मजा यह कि तुम्हारे घर नहीं, पर मेरे घर है तो रहनेवाला नहीं। क्यों नहीं मेरे यहाँ चले चलते? रहा सवाल गुजारे का, सो एक से हम दो भले नहीं हैं क्या? अरे जब निराशा होती है, तो दूसरा साथी उसे भी बँटा लेता है! चलो, मेरे घर चलो। बड़ा नहीं, दो ही कमरे हैं, और किराया भी छः माह से नहीं चुकाया है, किन्तु मकान-मालिक मेरे ऊपर मेहरबान है, अधिक तंग नहीं करता।"

निर्मल का दिल बैठा जारहा था। किस नरक मे वह चला जारहा है? घृणा से उसने ओंठ सिकोड़ लिए, किन्तु मानो उसके पाताल में धँसते जारहे दिल के साथ कोई एक साथी भी है, वह भी धँसता जा रहा है। साथ कोई है, यह आश्वासन भी कम नहीं है।

डोरा ने कहा: "क्या कहते हो डार्लिंग?"

"पर लोग क्या कहेंगे डोरा?"

"लोग कुछ कहेंगे इसीलिए तो जिन्दगी में लुत्फ है! यदि न कहते, तो कोई ऐसा काम नहीं करता।"

डोरा एक अपेक्षाकृत अँधेरी गली की ओर मुड़ी। एक क्षण के लिए निर्मल के पैर रुके, किन्तु डोरा के हाथों का पाश न छूटा, वह बोली:

"मेरा मकान तो देख लो! मुझे विश्वास है कि तुम्हें उसकी जरूरत पड़ेगी। शहर में रहनेवाली लड़कियों का और खास कर जवान लड़कियों का अवश्य भरोसा नहीं करना चाहिए, पर इसमे लड़कियों का तो कोई दोष नहीं है। शहर की हवा ही ऐसी है, और शहर ही की क्यों, यह तो युग का अभिशाप है। पर मैं विश्वास दिलाती हूँ, तुम्हारे साथ मैं कोई छल नहीं करूँगी।—अरे, दो दुखीजन भी दुनिया में बड़ी मुश्किल से मिलते हैं। मैं दुखी हूँ जरूर, पर दुःख को दूर ही रखना चाहती हूँ, नहीं तो जिन्दगी का लाभ ही क्या?—लो चलो, अगर पसन्द न आए, तो लौट जाना। मैं मजबूर नहीं करूँगी।"

बेमन से ही सही, निर्मल डोरा के साथ हो लिया। शायद इसके सिवा कोई चारा भी नहीं था।

: १३ :

जिस दिन निर्मल मन्दिर गया था, उसके बाद कल्पना को निर्मल से मिलने का कोई अवसर ही नहीं मिला। स्वयम् टेलीफोन करना सम्भव न था, किन्तु निर्मल तो कर ही सकता था। क्या बात होगई ? आखिर एक दिन पहले के समान ही, जब कि उसकी स्वयम् की कार उपलब्ध न थी, अम्मा से आध घण्टे का अवकाश लेकर अपनी सहेली कविता देवी के कुशल समाचार पूछने के लिए कल्पना को निर्मल के होटल पर जाना पड़ा। कमरे के भीतर झाँक कर देखा—जिमी पहले ही कमरे मे पहुँच गया था, अतः कमरे के मालिक, वेश से साहब और रंग से हबशी, एक अधेड़ व्यक्ति ने दर्शन दिए। कल्पना चौंक उठी। बोली—

''एक्सक्यूज मी। माफ कीजिएगा। पहले इस कमरे मे मेरे परिचित श्रीनिर्मल कुमार ठहरे हुए थे—जिमी, चलो। आइ एम सॉरी टु हैव डिस्टर्वड यू!''

"नेवर माइण्ड। बट, वान्चू स्टे ऑन फॉर ए कप ऑफ टी ? ह्वॉट ए प्रेटी पपी।" और उसने भागते हुए जिमी को अपनी गोद मे उठा लिया। भाषा से कुत्ते का परिचय नहीं है, पर भावों को वह मनुष्य की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह पढ सकता है, कम-से-कम अपने स्वामी के भावों को। इसलिए जब कि वह सज्जन कह ही रहे थे कि 'कुड आई आल्सो बी इन द ऑनर ऑफ योर चार्मिंग एक्वेण्टन्स ?' तो जिमी अपनी स्वामिनी के मनोभावों को पढ़कर बिना उपद्रव का मौका दिए, उनकी पकड़ से छूट गया और कल्पना के पैरों में उलझ गया।

कल्पना ने कुछ रोब के साथ कहा : "थैंक्यू, बट आई सपोज यू वुड डू बेटर विदाउट माय एक्वेंण्टन्स।"

मुड़कर उसने मैनेजर से पूछ-ताछ की। पता लगा कि निर्मलकुमार पाँच दिन पहले ही होटल से विदा होगए हैं! कहाँ गए हैं, इसका पता नहीं।

आध घण्टे के पहले ही जब कल्पना घर लौट गई, तो मा ने पूछा : "क्यों जल्दी क्यों चली आई? उस दिन दो घण्टे भर से भी अधिक लगा दिया?"

कल्पना ने कहा : "उसका ऑपरेशन हुआ है, डाक्टर ने मिलने से मना कर दिया। फिर कभी जाकर मिल आऊँगी।"

और बिना अधिक प्रश्नों का अवसर दिए वह अपने कमरे में लौट आई, और आराम कुर्सी पर पड़ रही।

किसी ने लक्ष्य नहीं किया, किन्तु जिमी से छिपा न रहा कि स्वामिनी बड़ी त्रस्त हैं। जब उसे अवकाश रहता है तो उसकी अमलदारी मकान की दहलीज के पास रहती है। वहाँ से वह कुछ बाहर तक की गश्त लगा आता है, आस-पास के छोटे बच्चे उससे काफी हिल-मिल गए हैं। कोई उसके लम्बे कान पकड़ता है, कोई उसकी सदैव हिलती रहने वाली पूँछ को पकड़ कर स्थिर करने की चेष्टा मे उसे और अधिक चचल पाता है, कोई उसके जबड़े पकड़ कर दाँत गिनने की कोशिश करता है, तो कोई उसकी चमकीली मुलायम पीठ पर ही आसन जमा लेना चाहता है, और जिमी है कि सब बच्चों को अमित स्नेह के साथ सूंघ कर कभी पीठ के बल जमीन पर लोट कर चारों टाँगों को ऊपर करके उनकी ओर देखता रहता है, तो कभी-कभी आँखें बन्द करके बूढ़े दादा की भाँति उनके अत्याचार सहन करता रहता है। कभी उनमें पकड़ापाटी का खेल भी चलता है, वह दौड़ कर उनके फेंके हुए रुमाल लाकर उन्हे देता है. उनकी गोद मे लुढक-पुढ़क कर उन्हे गुदगुदा देता है, कभी उनके हाथ को दाँतों मे दबा कर उन्हे डराने की बेकार कोशिश भी करता है, बच्चे जानते हैं कि जिमी उनका प्यारामित्र है। वे उसके लिए अपने माता-पिता से छुपा कर भी अपने हिस्से की मिठाइयाँ लाकर उसके सामने पटक देते हैं, और बड़े प्यार से उसकी पीठ थपथपा कर उसे खिलाते हैं। कल्पना जब घर मे होती है, तो वह उसके पैरों के चारों ओर चक्कर काटता रहता है, अगर वह कहती है कि बाहर चला जा, तो वह अमलदारी मे अपनी हुकूमत चलाता है, वरना अपनी मालकिन के पैरों के पास घूमते रहने या उनकी गोद में आलस्य पूर्ण अहेतुक निद्रा मे पड़े रहने के समान उसे अन्यत्र सुख नहीं मिलता।

आज भी जिमी घर मे घुसते ही दरवाजे पर ही रहने का आदेश पा चुका था, किन्तु जब कल्पना अपनी मा के पास से लौटी तो जिमी ने उसकी उदासी-

नता पकड़ ली। स्वामिनी के आदेश को वह भूल गया, और उसके कक्ष में पहुँच गया। देखा कि कल्पना आराम कुर्सी पर किसी अलक्ष्य को लक्ष्य करती हुई निश्चेष्ट पडी है। उसकी समस्त अन्तरात्मा व्यग्र हो उठी कि किस तरह वह अपनी हृदयेश्वरी का दुःख बँटा सके? सारी चेतना को अपनी घ्राण मे केन्द्रित करके उसने कल्पना के चारों ओर से चक्कर लगा कर उसके पैर सूंघे। यों कुत्ते की घ्राण शक्ति बड़ी ही तीव्र होती है, यदि कल्पना के दुःख का कोई भौतिक कारण होता, तो अपने तरीके से जिमी को अवश्य उसका आभास मिल गया होता। मानसिक वेदना का निदान उसके लिए असम्भव है, हाँ आभास उसका वह किसी मनोविश्लेषक से भी पहले प्राप्त कर सकता है।

पर सब बीमारियों के लिए उसके पास एक रामबाण औषधि भी है, वह है उसकी मूक जिह्वा के माध्यम से आत्मा-विनियोग! जब वह अपनी नुकीली पतली किन्तु अत्यत संवेदनशील जिह्वा से आपके शरीर के किसी भी अंग को चाटने लगता है तो मानो उसकी अन्तरात्मा का समस्त स्वारस्य आपका अभिसिंचन करना चाह रहा हो, और उसकी लोलुप-दृष्टि मानो अपने ही उस रस-कोष की अकिंचनता पर सकोच प्रदर्शित करती हो। आप कितने ही अन्यमनस्क क्यों न हों, तब आपके हृदय का स्नेह-निर्झर शिलाओं की बाधाओं को भी चकनाचूर करता हुआ बड़े वेग से प्रधावित हो उठता है। आप अपने को इस अनन्तविश्व मे एकाकी नहीं पाते, आप मे आत्म-विश्वास जाग्रत हो उठता है। आप अपने प्यारे श्वान को अनन्त कृतज्ञता के साथ अपनी गोद मे उठाए बिना नहीं रह सकते!

जिमी ने जब कल्पना के चरणों में अपनी जीभ की श्रद्धा भी अर्पित कर दी तो कल्पना के अंध-आँधियों में उड़ते हुए मन की रास खिंच गई। झुक कर उसने जिमी को अपनी गोद मे उठा लिया। उसकी पीठ पर जैसे ही उसके कोमल हाथ के कमल-पल्लव फिरने लगे, उसके उन्निद्र-कान एक दम आलस्य में नीचे गिर गए। कानों की अगति ही श्वान का सर्वस्व समर्पण है!

कल्पना ने सामने पड़ी हुई चाय की टेबल पर उसे रख दिया, और अपने गालों को उसके मस्तक से छुआते हुए बोली—

"जिमी! मेरे कष्ट को तू समझता है?"

जिमी ने अपनी अर्द्ध निमीलित आँखों को थोड़ा-सा और अनावृत किया, और फिर पूरा ढँक लिया, और फिर किंचित ग्रीवा उठा कर मानो कहा "तुम्हारा कष्ट यदि मैं ही न समझा, तो कौन समझेगा?—परन्तु मुझे कहो न, मैं क्या करूँ?"

"तू क्या नहीं कर सकता? तू तो बड़ा चौकीदार प्रसिद्ध है! तेरे देखते

देखते मेरा मन चोरी चला गया। निर्मल ने चुरा लिया। सचमुच यह तो सही है, कि मैं स्वयम् अपने मन को यदि उसे चुराने की प्रेरणा न देती, तो यह न होता ! क्या करूँ ? मेरी ओर इस तरह उपालम्भ के साथ क्यों देख रहा है ? तेरी गलती कहाँ कह रही हूँ इसे ?—तू ने तो उस अमानत की बडी रक्षा की है ! मजूषा तो विद्यमान है, सील-मोहर सभी कुछ जैसा का तैसा है, इससे अधिक क्या कर सकता है जिमी तू ? पर तू तो जानता है, क्या मन इनमे कैद रह सकता है ?"

जिमी ने अपनी शून्य दृष्टि को नीचे झुका लिया : "मनुष्य के इस अलभ्य-कामी और दुर्गम-गामी मन को मैं क्या जानूँ ?"

"किन्तु मालूम देता है, निर्मल मुझसे क्रुद्ध हो गए हैं। मन चुरा कर क्रुद्ध हो जाने के समान भयानक बात और नहीं होती जिमी। यदि मैं तेरी प्रीति का समस्त ऐश्वर्य चुराकर एकाएक अदृश्य होजाऊँ, तो तुझे कैसा लगे ?"

जिमी ने मानो कल्पना की सारी बात का मर्म समझ लिया, लेकिन उसने उत्तर कुछ नहीं दिया।

"क्यों ? उत्तर नहीं देता ? क्या करेगा तू अगर मैं बिना तुझसे कहे अचानक कहीं चली गई ?" और उसने जिमी के मुँह को दोनों हाथों मे दबा लिया। जिमी टेबल पर से कूद कर कल्पना की गोद मे लुढ़क गया, उसने अपनी सारी देह ढीली कर दी, अपनी निर्वाक-वाणी में जैसे बोला : "मुझे अपनी गोद मे निश्चेष्ट मर जाने दो ! फिर तुम कहीं चली जाना ! शरीर-बंधन से मुक्त मेरी आत्मा तुम जहाँ कहीं जाओगी तुम्हारे साथ रहेगी।"

"तू आध्यात्म तत्व भी जानता है ?"

उसके बिना आत्मा का प्यार कोई कर ही कैसे सकता है।

"मालूम देता है, उस दिन मन्दिर में देख कर उनकी ईर्ष्या की सीमा न रही। पर इसमे मेरा क्या दोष ? भगवान् तो एक लब्धि है, जिसे पाना मैं अपने लिए भी उतना ही आवश्यक समझती हूँ, जितना निर्मल के लिए या तेरे लिए। पाने पर क्या वह मेरा अकेली का रहेगा ? बल्कि मैं तो चाहती हूँ कि यदि मेरा प्रयत्न पूरा न पड़ता हो, तो हम सब मिलकर उसे प्राप्त करें। किन्तु, उसे समझा भी तो न सकी और वह चला गया। कहाँ चला गया ?—"

जिमी के कान खड़े हो गए, भाव-भंगिमा से कल्पना को जैसे उत्तर मिला : "आदेश दो म,ाँ मैं अभी जाता हूँ, शहर की समस्त सड़कों को नाप लूँगा। अपनी शक्ति पर मुझे भरोसा है ! मैं ढूँढ़ निकालूँगा तुम्हारे मन के चोर को।"

कल्पना ने किंचित हँस कर कहा : "शहर इतना सरल नहीं है, जिमी ; घर के बाहर तो तू सदैव ही मोटर मे बैठ कर मेरे साथ गया है ! वहाँ तमाम ट्राम, बसें, ट्रकें इतनी घूमती-फिरती हैं कि तुझ छोटे से प्राणी पर शायद किसी की दृष्टि ही न अटके ! मन विशाल है तो क्या हुआ, तेरा शरीर तो बस बालिश्त भर का ही है, इतना-सा ! अरे पूँछ के हिलाने से भी क्या होता है, टाँगों के बीच मे दबी फिरेगी बेचारी ! और सड़कों पर मटरगश्ती करने वाले—अपनी गली के छोटे-छोटे निश्छल शिशु नहीं हैं, कि तू उनके बीच निर्भय विचरण कर सके।"

कहीं से उड़ती हुई एक मक्खी उसके नाक पर आ बैठी, शीघ्र उसने मुँह को इस तरह झटका दिया, कि वह उसके खुले मुँह का शिकार हो गई।

हँसकर कल्पना ने कहा : "सचमुच जिमी, बहादुर तो तू है, पर असाध्य-साधना के लिए तुझे नहीं कहूँगी !"

उसे टेबल पर बिठा कर कल्पना उठ खड़ी हुई। जिमी से इतनी देर बात करके उसने अपने हृदय के बोझ को हलका पाया ! रामू चाय लेकर भीतर आया बोला : "अरे, जिमी यहाँ नवाब बना बैठा है ! मैं सोच रहा था गया कहाँ ? आपने इसे बहुत सिर चढ़ा लिया है दीदी।"

कल्पना ने हँस कर कहा : "सिर पर कहाँ रामू ? टेबल पर चढ़ा रक्खा है !"

जिमी ने सिर ऊँचा करके रामू की ओर देखा, मूक वाणी मे बोला : "तू जलता है रामू ? तो जल ! मालिक की कृपा यों ही प्राप्त नहीं हो जाती ! उसके लिए अपना सब स्वार्थ विसर्जन कर देना पड़ता है।"

रामू ने जिमी को गोद मे उठा लिया, बोला : "अब हम जैसों की क्यों परवाह करने लगा ! नीचे तेरा नाश्ता लगा रक्खा है, पर अब उसकी तुझे गरज होगी ?" उसने उसके मुँह को चूम लिया।

प्यार की भाषा को कौन नहीं समझता ? जिमी ने यथा साध्य अपने शरीर को सिकोड़ कर आँखें बन्द कर लीं।

चाय की टेबल के पास लौट कर कल्पना ने कहा : "रामू ! मालूम देता है आजकल इसकी देखरेख बराबर नहीं होती। पहले से दुबला हो गया है ! देखता नहीं ?-शायद इसकी देखभाल मुझे ही करना पड़ेगी।"

"दुबला हो रहा है दीदी ?"—कुछ मुस्कराकर रामू ने कहा : "आप बहुत जल्दी भूल गईं कि अभी गए हफ्ते तो इसे उस कुत्तों के इम्तिहान मे पहला इनाम मिला है।—"

हँसकर कल्पना ने कहा : "क्या करें, डॉग-शो या बेबी शो की तरह 'सर्वेण्ट्स -शो का रिवाज नहीं है, वरना तुझे भी पहला इनाम मिल सकता था।"

"सो तो मिल ही गया दीदी, बिना किसी ऐसे 'शो' के ही! आपलोगों की खिदमत क्या कम इनाम है ?—पर इस पिल्ले से जरा जलन होती है, कि आपको यह दुबला नजर जाता है! जितनी फिकर और हिफाजत आप इसकी करती हो, अगर उसकी आधी अपनी देह की करतीं —"

"तो मैं तुम्हे दुबली नजर आती हूँ रामू ?"

"मुझे क्या, सभी को नजर आएँगी।"

चाय का घूँट गले के नीचे उतारती हुई कल्पना ने मुस्करा कर कहा : "क्या करूँ ?—मेरी तो देख-भाल करने वाला कोई है नहीं।"

"क्यों शर्मिन्दा करती हैं दीदी ?---आपको कमी किस बात की है ?—आपको इशारा भर करने की जरूरत है।"

तभी बिजली की घंटी बज उठी। रामू जिमी को लिए नीचे उतर गया।

चाय का प्याला खतम भी नहीं कर पाई थी कि कल्पना ने सुना :

"कल्पनाजी हैं क्या ?" आवाज नमिता की थी।

"जी हाँ।"

"क्या कर रही हैं ?—चाय पी रही हैं ? —देखती हूँ कि सचमुच कोई अच्छा शकुन लेकर घर से निकली थी। मिस साहब से मुलाकात तो होगी न, या बहुत काम मे हैं ?"

कल्पना ने ऊपर ही से कहा : "नमिता दीदी हैं क्या ?--तब तो मुलाकात करनी ही होगी !--यह लो, सब काम बन्द--चाय तक !"

नमिता ऊपर प्रविष्ट हुई। कल्पना ने उठकर दरवाजे पर स्वागत किया, हर्षोल्लास से दोनों बाहुओं को पसार कर उसने नमिता को बाहुपाश मे भर लिया।

"पहाड़ से कब लौटी दीदी ?--अरे रामू !—देखता क्या है ? यह चाय ले जा। क्या पिओगी दीदी ? चाय या कॉफी ?"

"जो भी पिला दोगी! कहो, कैसी हो ?—ईद के चाँद की मैं कभी खोज नहीं करती, पर गधे के सिर के सींग कहूँ तो क्या बुरा मानोगी ?"

दोनों सखियाँ बैठ गई थीं। रामू इशारा पाकर चाय आदि लाने के लिए नीचे चला गया था।

कल्पना ने कहा था : "तुम कहोगी और मैं बुरा मानूँगी ? तुम्हे शायद अपने वैभव का पता न हो, किन्तु जब यह अधर-शुक्तक खुलते हैं, तो तुम्हारी मोतियों की बरसात को कौन आँचल पसार कर बटोर लेना नहीं चाहता ?"

"धन्यवाद कल्पना! कद्रदानी के लिए! क्या करू, यदि तुम पुरुष होती तो इसी बात पर पचहत्तर प्रतिशत अधिकार तुम्हें देकर मैं निश्चिंत हो जाती।"

"और शेष पचीस प्रतिशत ?"

"वह अपने लिए रखती कि कब तुम्हारी पलकों के घनस्वाती का वरदान पाकर, मेरे अधरों के शून्य-शुक्तकों को आप्यायित करते।"

"कृतार्थ हुई, पर यदि पुरुष होती! आज कितना अधिकार दे रक्खा है ?"

आँखें बन्द करके नमिता ने कहा: "नाइन्टी नाइन प्वाइट नाइन परसेंट!"

"तो उस प्वाइट एक के लिए मैं अपने लोभ को रोकूँगी नहीं!" कह कर कल्पना ने नमिता को चूम लिया! फिर उसने पूछा: "अच्छा यह तो हुआ, पर यह तो बताओ, पहाड़ पर से यह चाँद धरती पर उतरा कब?"

"कल सबेरे, पर उतर गया यही क्या कम बात है ?"

"जरूर नहीं, हम बौने तो इसे स्वप्न ही मानते रहेगे! पर पूछती हूँ दीदी, परीक्षा देने तक का तुम मे धैय नहीं रह गया, ऐसी उस आसमान पर चढने की क्या आवश्यकता हो गई थी ?"

तभी रामू एक ट्रे मे उष्णपान का उपस्कर तथा दूसरी मे भाँति-भाँति की मिठाइयाँ, नमकीन और फल आदि लाकर रख गया। नमिता ने कहा: "दैट्स फाइन!—चाय चाहे दुपहर की हो या सबेरे की, बस तुम्हारे यहाँ की है।—माताजी, पिताजी कैसे हैं?"

"बहुत अच्छी तरह! मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया ?"

"उत्तर क्या है?—तुम तो तब से सूदखोर का ब्याज हो कि थैली से बाहर निकलो ही नहीं, वरना देखती कि मैं कितनी बीमार हो गई थी। खग्रास-ग्रहण होने का योग था।"

"सो तो यह शकल ही बता रही है! पर इतने दिन पहाड़ पर रहने पर भी क्या कुछ लाभ नहीं हुआ?"

"लाभ नहीं हुआ?—दस पौण्ड वजन बढ़ गया है।" और वह हँस दी।

"सो बढ़ सकता है, शरीर की परिधी भी कुछ बढ़ ही गई मालूम देती है! किन्तु वह शिशु-सुलभ सरल चाचल्य की स्वाभाविक चमक तो नहीं रही तुम्हारे चेहरे पर!"

एक क्षण के लिए नमिता के चेहरे पर मानो घना कुहासा छा गया, पर बरबस उसकी हँसी ने उसे अलग हटा दिया, और बोली—

"तो क्या बूढ़ी हो गई हूँ, तुम सोचती हो ?—चलो छुट्टी हुई, लोगों की आँखों का कुछ तो भय टलेगा!—पर सच कहो, कैसी दीखती हूँ?"

"यों अच्छी ही दीखती हो दीदी, बल्कि एकाएक तो बादलों के हट जाने से चन्द्रमा की कान्ति चौगुनी ही हो जाती है, पर ऐसा मालूम देता है मानो

कसे हुए बदन ने कुछ ढील दे दी हो।—नख-शिख में तो कोई नुक्स नहीं है, वहाँ हर चीज का अलग-अलग मोल जो होता है।"

उठती हुई दीर्घ साँस को अलक्ष्य ही मे दबाकर नमिता ने कहा : "अब तुम अपना हाल कहो! कॉलेज से तुमने ही क्यों विदा ले ली?"

"इसका उत्तर भी मुझे ही देना होगा दीदी?—जैसे कुछ जानती ही नहीं। फिर भी क्या मेरे ही मुँह से सुनना चाहती हो?"

"चाहती ही होऊँ?"

"तुम शायद सोचती थी कि मैं कहीं तुम्हारी स्पर्द्धा न करने लग जाऊँ!"

"जो सही बात है, उसे क्या इनकार करोगी?"

"नहीं करूँगी!—पर दीदी, यह तो तुम भी जानती होगी कि स्पर्द्धा करने ही से कुछ मिल नहीं जाता। तुम ने मेरा दरवाजा तो बन्द कर दिया, पर नहीं जानती थी कि दरवाजा बन्द करने से मेरा प्रवेश ही नहीं रुद्ध हो गया, तुम्हारा क्षेत्र भी शून्य रह गया।"

"पर दरवाजा ठेलकर आने की भी तो तुम मे क्षमता थी कल्पना?"

"तुम भूलती हो दीदी! मा को जो तुमने पहरेदार बना दिया था। मैंने भी सोचा कि यदि छत्ते मे कुछ मधु सचित हो गया है, तो उसकी रक्षा होनी ही चाहिए। पहरेदार को मना भी लिया जाए, तो स्वयम् बर्रे का भय तो रहता ही है न!—पर तुम्हारा मधु-संचय?"

नमिता ने जबर्दस्ती मुस्कराकर कहा : "उसका मुझे अफसोस नहीं है, किन्तु तुम्हारे आकर्षण के जादू की सफलता पर तुम्हे बधाई देना चाहती हूँ।"

"धन्यवाद! पर उस आकर्षण की सफलता को क्या महत्व दोगी?—वह तो केवल रोकता है, प्रेरित नहीं करता। द्वार जो रुद्ध हैं!"

"यह तो तुम्हारी छल की बात है कल्पना!—मैं जानती हूँ कि निर्मल-कुमार भी यही पर हैं।"

"यहीं पर?—तुम्हारा मतलब है इस घर में—इस कमरे मे?"

"आवश्यक नहीं, पर इस शहर मे तो हैं।"

कल्पना हँस दी : "इसी से उसे छल कह दोगी?—"

"क्यों, हँसी क्यों?"

"इसलिए कि हँसी आती है दीदी!—तब भी, निर्मल शहर ही मे थे, लगभग प्रतिदिन ही कक्षा मे हम मिलते ही थे, तो भी तब तो तुमने उसे कभी छल नहीं कहा! आज तो मैं यह भी नहीं जानती कि क्या वास्तव में निर्मल शहर में ही हैं।"

"तो क्या वह यहाँ नहीं हैं?"

"सो कैसे कहूँ ?—"

"पर वह यहाँ आए तो जरूर थे ! पापा से मिले थे !"

"अवश्य, जहाँ ठहरे थे वह स्थान भी जानती हूँ ! एक बार मिले भी थे, पर उसके बाद तो दिखाई ही नहीं दिए। वहाँ भी पता करवाया, पर कुछ लाभ नहीं हुआ। लेकिन, जब तुम आ गई हो तो शायद अब पता लग जाए।"

"लेकिन मैं तो इसके लिए उत्सुक नहीं।"

"क्यों, अभी तक क्रोध नहीं गया बहन ?—सच कहती हूँ, तुम तो उन्हें बहुत अच्छी तरह जानती हो। वह क्या क्रोध करने के पात्र हैं ?"

"तभी तो कहती हूँ कि तुम से अधिक तो नहीं जानती। और जब नहीं जानती तो उत्सुक होना क्या व्यर्थ नहीं है ?—तुम उन्हें अधिक अच्छी तरह जानती हो, तुम्हारी उत्सुकता तुम्हें मुबारक ! मैं आज तुम पर नाराज नहीं हूँ कल्पना, सच्चे मन ही से कह रही हूँ। बल्कि यदि मेरी सहायता की अपेक्षा हो, तो मैं प्रसन्नता के साथ सहयोग दूँगी। कहो तो तुम्हारे पिताजी से या माताजी से बात करूँ ?"

"नहीं दीदी !"

"क्यों ?—अच्छा, मुझे निर्मल का ठिकाना बता दो, मैं ही पहल करके उससे कहूँगी कि तुम्हारे पिता से वह बात करे।"

लम्बी साँस लेकर कल्पना ने कहा : "फिर भी मुझे अधिक खुशी होती कि दीदी, तुम उससे अपने ही लिए मिलती ! तुम को कितना अधिक उन्होंने चाहा है, शायद तुम नहीं जानती, विश्वास भी शायद नहीं करोगी, किन्तु उस बीमारी में मैंने इसका कुछ आभास पाया था।"

"तुमने बीमारी से उन्हें बचाया है, तुम्हारा उन पर दावा भी है !—मैं सच्चे मन से कह रही हूँ कल्पना ! मुझे उनका पता बता दे।"

"तुम सोचती हो, मैं छिपा रही हूँ ?—सचमुच दीदी, मैं नहीं जानती ! और इसीलिए कहती हूँ, यदि उन्होंने मुझ से दूर ही हट जाने की सोची है, तो शायद यही उनके और मेरे लिए उत्तम भी है, सही भी है। और यह भी मैं कह सकती हूँ कि यदि वे मुझे रास्ते मे नहीं पाना चाहते तो केवल इसलिए कि तुम्हारी स्मृति कहीं धुँधली न हो जाए।"

"पर कल्पना अब मुझे उनकी आकाक्षा नहीं है। मैंने अपना भविष्य एक तरह से निश्चित कर लिया है।"

"कर लिया ?—क्या मुझे अपने रहस्य का भाग न दोगी ?"

"क्यों नहीं ?—बड़ी खुशी से, और उससे भी पहले यह कह देना चाहती हूँ कि वह निर्मलकुमार नहीं है।"

"विश्वास करने को जी नहीं चाहता ! पर तुम कहती हो तो करना ही पड़ेगा !—किन्तु दीदी, क्या मेरे ऊपर दया करके तो तुम यह नही कर रही हो ?"

"तुम्हारे ऊपर दया ? मैं नहीं समझी !"

"यानी, यह सोचकर कि इससे निर्मल को शायद मुझ ही से संतोष करना पड़े ?"

नमिता के गर्व को कुछ उत्तेजना मिली । श्रेय यदि इतना सस्ता मिलता हो तो कौन छोड़ देगा ? बोली—

"तुम्हारा सुख क्या मेरा सुख नहीं है ?—तुम भी तो मेरी अपनी ही हो !"

"दीदी ! तो, निर्मल तुम्हे ही शोभा देगा ! मैं विश्वास दिलाती हूँ, मेरे जीवन की धारा भी तब वैसी ही भरी रहेगी ।"

"किससे ? सुनू तो ?"

"एक बाँकी छवि से बहन । सलिल-भार से झुके हुए श्यामल मेघ-सी शरीर की आभा, स्निग्ध-मोम की देह-काति, चन्द्रिका-स्नात रजनी-जैसी सघन आँखें, रसके समुद्र मे उतराते विद्रुम-दल से मुग्ध अधर—"

बात काटकर नमिता ने कहा:"रूप तो खूब मालूम देता है, और रौप्य ?"

मुस्करा कर कल्पना ने कहा : "स्वयम् भगवती लक्ष्मी उनकी चरण सेविका हैं !"

"तब तो तुम्हे जरूर भा गया होगा !—बेचारा निर्मल क्या फिर त्रिशंकु ही रह जाएगा ?"

"क्यों—तुम क्या उसे स्थान न दोगी ?"

"स्थान मेरे पास भी नहीं है कल्पना, मेरे विवाह की बात पक्की हो चुकी है ।"

"हो चुकी है ? किससे ?"

"जानती हूँ, तुम हँसोगी, पर सब बातों को मिला कर देखने ही से तो लाभ-हानि का हिसाब किया जाता है ।"

"मैं हँसूँगी क्यों ?—लेकिन खुश तो होने दोगी न दीदी ?"

"कॉलेज छोड़ कर भी, आशा है, तुम छिम्मी को भूली न होगी ।"

"च्यवनप्रकाश ?"

"हाँ वही !—मैं विवाह को सौदा समझती हूँ कल्पना ! और कुछ नहीं तो यह सबक तो निर्मल मुझे सिखा ही गया है, अनजाने ही सही ।"

"पर च्यवन से क्या सौदा—"

"जरा कठिनाई से समझ में आएगा । प्रारम्भ में छिम्मी चाहे जिस अवस्था मे यहाँ आया हो, पर आज कॉलेज में उसका सानी नहीं है ! मैं पूछती हूँ उसमे अभाव क्या है ?—शिक्षा, दीक्षा, संस्कार—"

"अभाव की तो बात ही मैंने नहीं की दीदी। मैं तो केवल तुम्हारी ही बात पर पूछ रही थी सौदे की बात—"

"सौदे का तात्पर्य यही तो है कि जिसका हमारे पास अभाव हो वह हम प्राप्त करें, और जिसकी बहुलता हो वह दे दें।"

"ठीक।"

"जानती हो न, च्यवन को संस्कारों की इस सीमा तक पहुँचाने का श्रेय मुझे है! मैं चाहती हूँ ऐसा साथी, जो मेरी चाह के साँचे मे सरलता से ढल जाए! च्यवन से बढ़ कर कोई दूसरा व्यक्ति मुझे मिल सकता था?"

लम्बी साँस लेकर कल्पना ने कहा: "यह तो मैं नहीं जानती दीदी, पर अवश्य निर्मल ऐसा मिट्टी का माधो शायद साबित न होता! मिट्टी का माधो च्यवन होगा, यह भी मैं नहीं मानती, पर यदि तुम कहती हो तो मैं मान ही लेती हूँ।"

"पर तुमने लम्बी साँस क्यों ली?"

कुछ मुस्करा कर कल्पना ने कहा: "ईर्ष्या से अपने भाग्य की हीनता पर दीदी! तुम्हें मिल गया ऐसा मोम का पुतला, कि जैसा चाहा वैसा ढल ही नहीं गया, अपितु जब जैसा चाहा, गढ़ लिया—"

हँसकर नमिताने कहा: "बिलकुल ठीक उपमा है कल्पना! कहती हूँ कुछ कविता क्यों नहीं करती तू?"

"उससे क्या पाषाण पिघल सकता है?"

"क्यों?—"

"इसलिए कि मेरे प्रेमी को शरीर-कान्ति तो मिली है स्निग्ध-मोम की, किन्तु हृदय मिला है कठोर स्फटिक-शिला का!"

"वह है कौन कल्पना? क्या बताएगी नहीं?"

"क्यों नहीं बताऊँगी बहन! किन्तु, क्या सचमुच ही निर्मल के लिए कोई आशा नहीं है?"

हँस कर नमिता ने कहा: "अब मेरा उस पर कोई क्रोध नहीं है कल्पना! उस समय था जब तुम्हे मैंने वहाँ देखा था, बल्कि उसी क्रोध के आवेश मे मैंने तुम्हारी माताजी से तुम्हारी शिकायत भी कर दी! क्रोध में भी आदमी क्या-क्या कर गुजरता है! खैर उसकी तो मैं तुमसे क्षमा माँग लेती हूँ, पर सच कहती हूँ अब मेरा निर्मल पर कोई क्रोध नहीं है।"

कल्पना किसी विचार मे खोगई, अतः उसने नमिता की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। नमिता ने प्याली की चाय समाप्त करते हुए अपना कथन जारी रक्खा: "हो सकता है, तुम कहो कि चूँकि मैंने कूल पा लिया है,

इसलिए मुझे नाव की आवश्यकता नहीं रही ! तुमने बहुत बड़ा काम किया कल्पना, कि एक झटका देकर मेरे मोह को तोड़ दिया। अब तो जब भी सोचती हूँ कि कभी मुझ पर निर्मल का भूत भी सवार था, तो केवल विस्मय पूर्ण हँसी ही अपने ऊपर आती है।"

कल्पना ने कुछ न कहा, वह केवल फिर से नमिता के लिए चाय बनाने लगी, तो नमिता ने कहा—

"नहीं, अब नहीं ! सचमुच बहुत हो चुका ! पर कल्पना, तूने अपने चितचोर का ठिकाना तो बताया ही नहीं ?"

"साहित्य तो कहता है कि हृदय चीर कर बताया जा सकता है, किन्तु विज्ञान की साक्षि से सावधान रहना उचित नहीं क्या ?"

"विज्ञान के युग मे चितचोर ही ऐसे निषिद्ध-क्षेत्र मे आवास नहीं ढूँढ़ते यह भी तो जानती हो कि खोज निकालने के भी अनेक सूत्र विज्ञान ने सुलभ कर दिए हैं ?"

"जैसे ?"

"एक तो नाम ही ले लो—जातिवाचक संज्ञा मे व्यक्ति-विशिष्ट का बोध कराने वाला।"

हँसकर कल्पना ने कहा : "उस रूप का इतना विशद वर्णन करने पर भी पहचान नहीं पाई ?—"

"नाम का आवरण खुलते ही शायद पहचान लूँ !"

"जरूर पहचान लोगी, नाम है उनका लक्ष्मीनारायण !—इसी माधव निकुज में बड़े भव्य प्रसाद में रहते हैं ! सारा शहर तो जानता है उन्हे ! तुम्हीं नहीं जानती दीदी ?"

सहम कर नमिता ने कहा : "मजाक छोड़ो कल्पना !"

"मजाक कहती हो इसे दीदी ?—इतनी गम्भीर होकर मैंने शायद ही कोई बात कही हो ! क्या सचमुच ही तुम उन्हे नहीं जानती ? जिसे सारा शहर आँखें बन्द करके भी पहचानता है।"

"सारा शहर पहचानता है; पहचानने की जरूरत भी है उन्हें ! उनकी चरम-यात्रा का रथ जो सन्नद्ध खड़ा है। किन्तु शहर की युवा बालाएँ उन्हें पहचान कर क्या समस्त शहर ही को तपोवन बना देना चाहती हैं ?—तुम्हें उनका क्या प्रयोजन है ?"

"लक्ष्मीनारायण जो हैं वे—और मैं लक्ष्मी ! नहीं क्या ?—खाली नाम कल्पना होने ही से क्या होता है ?"

"खाक होता है! अच्छा जरा निर्मल से अपनी भेंट का हाल तो कह सुनाओ! सच-सच सुनाओगी न?"

कल्पना ने सारा हाल सच-सच ही सुना दिया।

जब नमिता उठी तो सूर्य पश्चिम में जा रहा था। नमिता ने कहा कि अब जब वह दूसरी बार मिलने आएगी, और शीघ्र ही आएगी तो, या तो निर्मल साथ होगा, या उसके बारे मे विशद सम्वाद।

और उधर कल्पना के चितचोर लक्ष्मीनारायण के मन्दिर में कल्पना की राह देखी जा रही थी।

★

: १४ :

संध्या धीर पर्दों से उतर रही थी। सुमनबाबू टहलने के लिए जा रहे थे। नमिता के कमरे के सामने आकर बोले—

"लो बेटा, ये ढाई सौ रुपए जरा कहीं रख लो। मुनीमजी से ले लिए थे। जब ड्राइवरको छुट्टी दो तब दे देना उसे! कौन-सी गाड़ी से जा रहा है वह?"

"उसी से जो करीब रात को एक बजे छूटती है।'

"कितने दिन के लिए जा रहा है?"

"पन्द्रहेक दिन तो लग ही जाएँगे। मैंने कह दिया है कि दस दिन से अधिक न लगाए। दस दिन बाद मेरा कॉलेज भी तो खुल रहा है। न हुआ तो तब कुछ दिन के लिए दूसरा आदमी रख लिया जाएगा।"

"तुम जानो! मुझे तो गाड़ी की जरूरत कभी पड़ती भी नहीं।"

और सुमनबाबू बाहर हो लिए!

एक सौ का और शेष दस-दस के नोट थे। पिक्चर से लौट आए, बस उसके बाद ड्राइवर को छुट्टी! रुपए उसने टेबल की ड्रॉवर में रख दिए। दो-एक घंटे बाद तो उसे दे ही देने हैं।

पाँच बज गए, अभी तक च्यवन आया नहीं। क्या टिकिट नहीं मिले?—या और कहीं अटक गया?—सचमुच च्यवन को अब यदि लगाम न लगाई तो अन्देशा है कि हाथ से निकल जाए! यह पिक्चर शायद साढ़े पाँच बजे ही शुरू हो जाती है—गोअन विथ द विण्ड—'हवा के साथ उड़ी हुई', शायद यह अंग्रेजी की सबसे लम्बी पिक्चर है। बीस हजार फुट से ऊपर, भारतीय-फिल्मों को भी मात कर दिया इ

कभी टेबल पर पड़े ब्लाटिंग पेपर, कभी पेपरवेट, कभी कलम आदि से जब उसके हाथ उलझते-सुलझते जा रहे थे, तब मन भी इसी तरह कई गलियों में घूम-फिर रहा था, कि अकस्मात् ही आज का दैनिक उसके हाथ में पड़ गया। ' गोअन विथ द विण्ड' के लिए 'शहर के विशेष-समाचार' कॉलम में, विशेष-सम्वाद है। काफी अच्छा 'कमेण्ट' है। च्यवन की प्रतीक्षा मे व्यग्र नमिता ने अनजाने ही उस विशेष-सम्वाद को एक बार और पढ़ डाला, और उसी धुन में शहर के और भी विशेष-समाचार वह उसके नीचे पढ़ने लगी। सहसा उसका ध्यान आकर्षित हो गया!

एक सम्वाद था: शहर के उत्तरी अंचल की पुलिस ने निर्मलकुमार नामक एक व्यक्ति को रात्रि को दस बजे उसके आवास पर शराब के नशे में उत्पात करने के अपराध में गिरफ्तार किया है। प्रारम्भिक जाँच से अभियुक्त के, जो एक पढ़ा-लिखा युवक मालूम देता है, और अन्य कई अपराधों से सम्बन्धित होने की सम्भावना पाई जाती है। पुलिस की जाँच जारी है। सम्वाददाता का विश्वास है कि जाँच पड़ताल के बाद कई रहस्यों के उद्घाटन होने की सम्भावना है। इत्यादि इत्यादि।

यह निर्मलकुमार कौन है? अवश्य ही वह निर्मलकुमार तो नहीं, जिसका पता पाने के लिए वह इतनी उत्सुक थी? शराब का नशा, उत्पात, अन्य अपराधों के उद्घाटन की सम्भावना—वह निर्मल तो सम्भव नहीं है; किन्तु पढ़ा-लिखा—टेलीफोन से क्यों न पूछ लिया जाए? ऐसा न हो कि यह सूत्र हाथ से निकल जाए! दुनिया कम विचित्र नहीं है कि यहाँ असम्भव की सम्भावनाएँ न हों!—सबेरे का आया हुआ पत्र है! पढ़ा ही नहीं उसने; यदि पहले पढ़ लेती तो दिन को छानबीन की जा सकती थी। पर अब? —संध्या हो रही है। उसे पिक्चर जाना है। किन्तु कल जरूर वह इसका पता लगाएगी।

नमिता ने सम्वाद की ओर एक और दृष्टि डाली, फिर से उसे पढ़ गई! कल रात को वह गिरफ्तार किया गया। प्रारम्भिक जाँच तभी हो गई होगी। शराब के नशे में रात को वह कुछ-का-कुछ बक सकता है। खबर छपने के बाद तो होश मे आ ही गया होगा। सन्देह मे किसी को अनावश्यक अधिक देर तक गिरफ्तार नहीं रखा जाता। पुलिस ने कहीं उसे छोड़ न दिया हो! —उसकी दृष्टि घडी की ओर गई! क्या हुआ?—साढ़े पाँच बज गए?— दीवाल की घड़ी भी वही बतला रही है, जो हाथ की घड़ी! च्यवन भी क्या है?—साढ़े पाँच बजे तक पिक्चर शुरू हो जाती है। अगर टिकिट नहीं मिले तो आकर यही कह देता। किसी दूसरे पिक्चरमे भी तो जा सकते थे!—

एकाएक नमिता के मन मे जाने क्या आया, कि वह उठ खड़ी हुई। हरी की मा से दरवाजा बन्द करने के लिए कहा, और नीचे उतर कर कार मे बैठ गई। ड्राइवर पीछे सीट पर बैठ गया, तो गाड़ी पुलिस स्टेशन की ओर पूरी रफ्तार से चल पड़ी। अगर च्यवन उसे तग कर सकता है, तो वह भी उसे परेशान कर सकती है!

थाने पर पहुँचते ही मालूम दिया कि सर्कल-इन्स्पेक्टर तो बाहर गश्त पर निकला हुआ है, सब-इन्स्पेक्टर जरूर अपने कमरे में है। सब-इन्स्पेक्टर से बात करने पर मालूम हुआ कि अभियुक्त से इस समय मिलना सम्भव नहीं है। सध्या जो हो गई है। नियम तो नहीं है, किन्तु कल दस-ग्यारह बजे के बाद वह उससे मिलने की व्यवस्था कर सकता है! उसे अफसोस है कि वह आज शाम को उसकी कोई सहायता नहीं कर सकता।—हॉ, अभियुक्त के बारे मे वह जानकारी दे सकता है। हॉ, मझोला कद, फीचर्स काफी उभरे हुए, रंग एकदम कुन्दन की भाँति निखरा हुआ, पढ़ा-लिखा—हाँ, ऐसे ही अपराधी तो सबसे अधिक खतरनाक होते हैं। बताया नहीं उसने, लेकिन नशा उतर जाने के बाद जिस तरह उसने बातचीत की, उससे वह काफी पढ़ा-लिखा मालूम देता है। यहाँ पड़ोस मे जो धर्मशाला है, उसमें ठहरा हुआ है। अभी उसके कमरे की तलाशी नहीं ली गई, वरना बहुत कुछ रहस्य उसके बारे मे मालूम हो गया होता। कल रात को नौ बजे धर्मशाला के चौकीदार ने खबर की कि एक मुसाफिर शराब के नशे मे कुछ बक-बक कर रहा है, धर्मशाला मे कहीं कुछ उपद्रव न हो जाए इसलिए यदि पुलिस उसे हिरासत मे लेले!

कमरे के बाहर किसी से बहस कर रहा था। कोई मारवाड़ी सेठ था। अभियुक्त कह रहा था कि अबकी बार चुनाव मे वह देश का प्रधान मंत्री बन रहा है, फिर उस सेठ जैसे सब धनवानों को वह एक साथ कत्ल कर देगा। शान्ति भंग होने के आसार थे, उसकी हिमायत करने वाला कोई था नहीं, इसलिए पुलिस उसे थाने पर ले आई! पहले तो यही विश्वास था कि नशा उतरने पर साधारण जाँच-पड़ताल के बाद छोड़ दिया जाएगा। पर उसकी तलाशी लेने पर उसके पास एक चुराया हुआ पर्स बरामद हुआ!

"चुराया हुआ पर्स?"

"रुपया तो उसमे अधिक नहीं था, शायद कुल तीनेक आने शेष थे; पर उसमे एक डायरी और कुछ जरूरी दस्तावेज भी थे।"

"पर, वह चोरी ही का था, यह कैसे कह सकते हैं आप?"

सब-इन्स्पेक्टर जरा हँसा: "अभियुक्त का कुछ दिमाग और भाग्य भी खराब मालूम देता है! कल ही लगभग तीन-चार घंटे पहले उस पर्स के गुम

होजाने की थाने में रिपोर्ट दर्ज हुई थी। रिपोट दर्ज कराने वाले एक इसी मुहल्ले के वकील हैं। पर्स में उनका कार्ड भी निकला है; और पैसों को छोड़ कर बाकी सारा सामान रिपोर्ट के मुताबिक सही-सलामत पाया गया। पैसे, अपने मूल रूप मे नहीं, किन्तु शायद पिघल कर उसके दिमाग में उत्पात मचा ही रहे थे, सो वे भी बरामद ही समझिए।"

"क्या रिपोर्ट कराने वाले की जेब काटी गई थी?"

"नहीं!—शायद उसकी जेब मे से निकाला गया था। यही तो और भी कौशल का पता देता है।"

"यह भी तो सम्भव है कि वकील की जेब से वह गिर गया हो, और उसे मिल गया हो।"

सब-इन्स्पेक्टर ने तिरछी निगाहों से नमिता की ओर देखा, क्या यह उस व्यक्ति को जानती है? क्या उस व्यक्ति से उसका कुछ सम्बन्ध हो सकता है?—

उसने उत्तर दिया: "यह हो सकता था, किन्तु चूँकि उसने उन रुपयों की शराब पी डाली, इसलिए मानना पड़ेगा कि नीयत उसकी मुजरिमाना थी! और बटुआ उसने उनकी जेब ही से सफाई के साथ निकाल लिया!—मगर आपकी उनमे इस दिलचस्पी की वजह जान सकता हूँ क्या?"

नमिता ने सब-इन्स्पेक्टर की ओर दृष्टि डाली। मुस्कराकर सब-इन्स्पेक्टर ने नजर नीची कर ली। सब-इन्स्पेक्टर भी नया ही मालूम देता है। ऊमर यही तीसेक-साल, क्या उस पर नमिता का जादू नहीं चल सकता?

मुस्कराकर नमिता ने कहा: "जब यही नहीं कह सकती कि अभियुक्त कौन है, तो उसमें दिलचस्पी की बात कैसे कह सकती हूँ?"

"मैं कह चुका हूँ, इसके लिए तो मैं लाचार हूँ।"

"इस मामले की जाँच कौन कर रहा है?"

"सो तो मैं ही कर रहा हूँ।"

"माफ कीजिएगा, मैं आपका बहुत अधिक समय ले रही हू। पर बात यह है—"

नमिता को रुकते देखकर सब-इन्स्पेक्टर ने कहा: "कहिए, कहिए! व्यस्त तो मैं जरूर हूँ, किन्तु आपकी कोई सेवा करने मे मुझे प्रसन्नता ही होगी!—आपका परिचय?"

मुस्कराकर नमिता ने अपने बटुए से दस रुपए का नोट निकाला, सहसा उसके मन में एक कुटिल भावना भी तैर गई, नोट को पेपरवेट के नीचे दबाते हुए बोली: "मैं सेठ रमणलाल जौहरी की कन्या हूँ, कल्पना। कह नहीं

सकती, आपका निर्मलकुमार कौन हैं, पर मेरी एक सहेली है, उसके मँगेतर का भी यही नाम है, और वह उसके गाँव से दो-एक माह से लापता है! किन्तु आप तो बताते हैं कि यह पक्का अपराधी है।"

"सो तो साफ ही मालूम देता है। शराब, चोरी—"

"शराब तो उसने पी ही होगी सब-इन्स्पेक्टर साहब; किन्तु क्या आप सोच सकते हैं कि पक्का पॉकेटमार पर्स चुराकर भी उसे जेब में लिए फिरेगा? ऐसा पर्स जिसमे कीमती दस्तावेज हों और उसके मालिक का पूरा पता हो?—पक्का चोर तो पक्का चोर, साधारण चोर भी पैसे अपनी जेब के हवाले करके पर्स को सड़क पर फेंक देता।"

"पैसे तो जेब से भी सुरक्षित उसने गले के हवाले किए, पर पर्स—शायद वह कीमती दस्तावेज के जरिए कुछ ब्लैकमेल करना चाहता हो—"

"ताकि वह बहुत जल्दी पुलिस के हाथों मे पहुँच जाए!"

"देखिए, यह सब तो आगे की जाँच के ऊपर निर्भर करता है। कठिनाई तो यह है कि होश आने पर वह अपने बारे में कुछ भी नहीं बताता!"

"क्या किसी भी तरह मैं उसे नहीं देख सकती?—सम्भव है, मेरी शिनाख्त से आपकी पड़ताल ही में कुछ सहायता हो।"

सब-इन्स्पेक्टर ने कुछ सोचा: "पर यह तो आप कल भी कर सकती हैं!"

"क्या मैं उसे देख भी नहीं सकती?—मेरा मतलब है, यदि वही व्यक्ति हो तो मैं, न हुआ, कल फिर आ जाऊगी। किसी को कानोंकान खबर न होगी बल्कि यदि किसी को कुछ पुरस्कार आदि देना हुआ तो—"

"बात यह है मॅडम, कि होश में तो वह अधिक बोलता नहीं, अतः अधिक रहस्य जानने के लिए उसे अभी और शराब पिलाई गई है। मेरा मुहर्रिर उसकी बातचीत को नोट कर रहा होगा।"

नमिता के हृदय को एक धक्का लगा। वह उठ खड़ी हुई और बोली: "शायद एक अनिश्चित बात के लिए कल और समय नष्ट करना मेरे लिए सम्भव न हो। बेल गुडबाई।"

सब-इन्स्पेक्टर ने भी उठ खड़े होकर कहा: "अच्छा देखिए, दो मिनिट और बैठिए—मैं देखता हूँ, यदि कुछ कर सकूँ!"

"कुड यू?"—और मुस्कराते हुए नमिता पुनः बैठ गई।—सब-इन्स्पेक्टर बाहर चला गया।

नमिता का हृदय धड़कने लग गया। उसें न जाने क्यों विश्वास हो गया कि निर्मलकुमार सचमुच वही है। उसे देखकर निश्चय भी कर लेगी। किन्तु निर्मल का इतना पतन हुआ कैसे! शराब और चोरी आदमी को कहाँ

नहीं ले जाती ? उस दिन कल्पना से तो उसके किसी ऐसे आचरण का आभास नहीं मिला! तो क्या यह अवस्था उसके बाद में हुई ?—प्रेम की प्रतारणा—नहीं, यह तो सम्भव नहीं। उस दिन स्वयम् ही अपनी आँखों वह देख आई कि किस तरह वह कल्पना मे मगन है, और कल्पना स्वयम् भी तो उसे चाहती है!—तो क्या उसके माता-पिता की रोक है ?—प्रेम मे असफलता के सिवा और तो कोई बात दिखाई नहीं देती।

देखना उसके लिए अवश्य सम्भव हो जाएगा। सब-इन्स्पेक्टर पुलिस का ही अफसर है, और इन्सान भी है ही। रूप और रुपए का जादू जिस पर न चले, बीसवीं शती को अभी ऐसा माई का लाल देखना शेष है! देखना ही क्या, चाह करके वह उससे बातचीत भी कर सकती है। कर सकती है, पर करना चाहती है क्या ?—पर नहीं, अभी तो वह कल्पना बनी हुई है। इतने दिनों बाद उसके सामने पहुँचने पर जाने कैसा मालूम पड़े। बेहतर यही है कि दूर ही से देख-सुन लिया जाए!

सब-इन्स्पेक्टर तब तक लौट आया! उसने कहा : "भीतर लॉकप मे है। इस समय मुहर्रिर उससे भेद की बात पूछ रहा है। कानून तो नहीं है कि बाहर का कोई आदमी ऐसे समय मिल सके, परन्तु आपकी खातिर बड़ी जोखिम लेकर मैं आपको ले चलता हूँ।"

"बड़ी जोखिम है ? आपकी कृपा के लिए धन्यवाद! किन्तु यदि ऐसा हो, तो जाने दीजिए। मैं नहीं चाहती कि आपको किसी तरह की आँच आए।"—और वह भीतर ही भीतर कुटिल हास से खिल उठी।

सब-इन्स्पेक्टर अप्रतिभ हो गया। चाहता तो कृपा लूटना था और इसने मानो उसी पर ऋण लाद दिया। बोला : "नहीं, वैसे बड़ी जोखिम तो नहीं है। आखिर आपकी मदद से उसकी शिनाख्त तो मालूम हो सकेगी। लेकिन बातचीत के लिए तो मुझे विशेष प्रबन्ध करना ही पड़ेगा।"

"ना ना, बातचीत की कोई आवश्यकता नहीं है मुझे। उससे लाभ क्या ? मैं तो केवल यही भरोसा करना चाहती हूँ कि यही वह व्यक्ति है या दूसरा! अपनी सहेली से कह दूँगी, फिर आग जाने और लुहार जाने। बल्कि मैं तो यह भी नहीं चाहती कि वह मुझे देख सके। यदि ऐसा प्रबन्ध आप कर सकें तो मैं कृतज्ञ हूँगी।"

सब-इन्स्पेक्टर खिसिया कर बोला : "जैसी आपकी इच्छा! पर उस मुहर्रिर को कुछ इनाम तो देना ही पड़ेगा। आप तो जानती ही हैं, ये अदने लोग बड़े हरामजादे होते हैं! आप बात न करेंगी फिर भी सर्कल-इन्स्पेक्टर से शिकायत कर सकता है कि आपने अभियुक्त से घण्टे भर तक बातचीत की।"

हँसकर नमिता ने कहा : "उसके लिए आप चिन्ता न करें। चलिए।"

दोनों ही थाने के भीतर वाले भाग मे दाखिल हुए। पहरे पर खड़े सिपाही ने दूसरे साथी से आँखें मिलाकर आँखों ही आँखों मे हँस दिया। नमिता ने इसे देख लिया, कट कर रह गई वह, पर करती क्या ?—वह सब-इन्स्पेक्टर के पीछे-पीछे चली।

कुछ आगे बढ़कर सब-इन्स्पेक्टर ने कहा : "इस कमरे मे दाहिनी ओर एक खिड़की है। अगर आप जाली की खिड़की चढ़ा देंगी और लाइट न करेंगी, तो पास के प्रकाशित कमरे का सारा दृश्य देख सकेंगी, और उस कमरे की सभी बातें भी सुन सकेंगी। उसी कमरे मे वह जवान बन्द है। डरेंगी तो नहीं आप अकेली अँधेरे कमरे मे ?—यह कमरा वस्तुतः ऐसी ही परीक्षा के लिए बनाया गया है, ताकि पास के कमरे मे बन्द अभियुक्त क्या करता है, यह देखा जा सके।"

नमिता ने भयभीत होने का कोई कारण नहीं देखा; वह निश्शंक उस कमरे मे प्रविष्ट हो गई, और भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। जाली की खिड़की तभी से बन्द थी, किन्तु उस पार अन्धकार के सिवा कुछ दिखाई नहीं देता था।

सहसा सामने की खिड़की विद्युत के तीव्र प्रकाश में प्रदीप्त हो उठी, सामने का कमरा नमिता की आँखों मे फैल गया, और फैल गया उसके साथ ही उस कमरे मे एक ओर कम्बल पर गठड़ी बने तथाकथित निर्मलकुमार का दैन्य !

टाँगें एक दूसरे को क्रास करती हुई, घुटनों पर दोनों हाथों की कुहनियाँ, और हथेलियों में मुँह ढँका हुआ, मिट्टी मे सने, रूखे, बिखरे हुए बाल कपड़े-पट और कमीज निहायत गन्दी, कई दिनों के निरन्तर प्रयोग स्वरूप पड़े हुए सल, कमीज दो-एक जगह से फटी हुई और कई जगह मिट्टी के दाग, फिर भी नमिता को सशय न रहा कि वह गठड़ी उसी शरीर की है जिसे वह कुछ दिन पूर्व तक अशेष लोभ का विषय मानती आरही थी। सब इन्स्पेक्टर ने कहा था कि उसे शराब पिला रखी गई है, पास मे कुछ दूर पर बोतल देखी जा सकती है ! कमरे का एक ही हिस्सा उस खिड़की से दिखाई देता है, खिड़की के पास-वाली बाजू मे क्या-कुछ है, यह कहना कठिन है ; किन्तु छिपे हुए मुँह से तथा कमरे के ढँके हुए अंश के बावजूद, मूर्त्तिमान दैन्य की कराल छाया विद्युत के उस सुतीव्र प्रकाश मे भी किंचित् भी कम न हो सकी। नमिता का ईर्ष्या से दग्ध हृदय अब राख होने लगा। उसकी साँस रुक गई।

सब इन्स्पेक्टकर गठड़ी के पास पहुँचा, बोला : "कहिए श्रीमान् निर्मलकुमार जी साहब !"

कोई उत्तर नहीं ।

"ऐ श्रीमान महामाननीय श्री निर्मलकुमार महाशय !—सुनते हैं ?"

कोई उत्तर नहीं ।

"इस मुद्रा में सो सकने का विधान किसी शास्त्र मे मिलता नहीं, इसलिए साफ है कि सो तो आप नहीं रहे हैं ।"

फिर भी कोई उत्तर नहीं । एकक्षण नीरव रहकर सब-इन्स्पेक्टर ने कड़क कर कहा, "निर्मल !"

निर्मल ने हथेली के ऊपर से मानो हजारों मन वजन ठेल कर सिर उठाया, फटी हुई शून्य आँखें एकक्षण के लिए सब-इन्सपेक्टर के क्रूर चेहरे पर निक्षिप्त हुईं और फिर नीची हो गईं, दूसरे क्षण सिर भी घुटनों मे छिप गया । शब्द फिर भी एक भी नहीं निकला ।

नमिता का ऊँचा उठा हुआ स्तूपवान दिल जलकर राख ही नहीं, नीचे बैठता हुआ भी मालूम देने लगा । सब-इन्स्पेक्टर ने कहा था कि शरीर का रङ्ग एकदम कुन्दन के समान निखरा हुआ, किन्तु व्यक्तियों के व्यक्तिगत अनुभवों की मात्रा मे कितना अन्तर हो सकता है ! जिसने निर्मल को पहले देखा है, वह यही कहेगा कि निर्मल का इस समय का रङ्ग तो जग खाए हुए ताँबे को भी श्रेय दे सकता है । और स्वास्थ्य इन्हीं दो-चार महीनों, या इसी रात्रि मे ?—इतना गिर गया ! क्या सच-मुच ही यह वही निर्मल है, या उसका प्रेत मात्र ?

सब-इन्स्पेक्टर कह रहा था : "जवाब क्यों नहीं देता ?"—पर निर्मल ने जो सिर झुकाया सो उठाया ही नहीं ।

सब-इन्स्पेक्टर पुलिस का अफसर ठहरा । धैर्य उसकी कमजोरी है, क्रोध अन्य प्राणियों मे कहाँ रहता है, इसकी खोज होना शेष है, किन्तु बहुत पहले से सभी जानते हैं कि पुलिस अफसर की तो वह नाक पर रखा रहता है । पुलिस अफसर सारा वातावरण मानों भूल गया, और जरा आगे बढ़ कर अपने लोहे से सज्जित बूट से कसकर उस गठड़ी को एक ठोकर मारी । असावधान और शायद हतचेत मासपिण्ड उस अनाशित आघात को सह न सका और लुढ़क गया, और साथ ही पुलिस के दैत्य की गर्जना सुनाई दी : "बोलता है या नहीं ?"

तड़पड़ा कर निर्मल उठ खड़ा हुआ । उसकी आँखें बरसती हुईं, खून, आग या आँसू ?—कहना कठिन है । हथेली से आँखें ढाँकने की अब नमिता की बारी थी, बड़ी कठिनाई से वह अपने आपको गिरने से बचा सकी ।

एकक्षण-भर मे निर्मल ने मानो मुँह में इकट्ठे थूक को निगल कर लड़खड़ाते हुए कहा : "अए, थानेदार साब, मारते काय को हो ! शराब मैंने नेई चुराई । तुम्हारा मोहर्रिर सारी बोतल गटक गया !"

"तुमने चोरी नहीं की ? झूठ बोलता है, फिर वह पर्स तुम्हारी जेब में कैसे मिला ?"

"जेब मे मिला ?—इस जेब में ?—तो मुझे क्यों मारते हो—इस जेब को सजा दो—लो मैं इसे फाड़े डालता हूँ ." और उसने अपने कमीज की जेब को खींच लिया।

"जिस आदमी का यह पर्स है उसे जानते हो ?"

"क्यों नहीं जानता !"

"कौन है वह ?"

"पर्स वाला !"

"उसका नाम ?"

"निर्मलकुमार ! अब बैठ जाऊँ ?—मारोगे तो नई ?—आपके बूट बहुत खराब हैं थानेदार सा'ब । मारने के लिए ये अच्छे नही है । ठोकर मारना हो तो कनवास के क्रीपसोल्स अच्छे रहते हैं । बैठ जाऊँ ? टाँगे दुखती हैं ।"

"बैठ जाओ । तुम्हारा यहाँ पर कोई रिश्तेदार है ?"

"है न ! बहोत सारे !"

"कौन कौन ?"

"एक तो आप हैं, दूसरे हेड मोहर्रिर, यह बोतल।—और तो कुछ मालूम नहीं पड़ता ।"

"तुमने और कहाँ-कहाँ चोरी की है ?"

"उस के यहाँ"— और उसने अँगुली छत की ओर उठा दी।

"कुछ खाओगे ?"

"मार नहीं थानेदार सा'ब !—बहोत खा चुका हूँ—ये पसली अब भी दुख रही है।—पेट ही नहीं भर गया, दिमाग भी भर गया है।"

"सच-सच नहीं बोलोगे तो और मार खाओगे !"

"सच ही तो बोलता हूँ थानेदार सा'ब सच ही तो बोलता हूँ ! मगर लोग इतने झूठे हैं कि सच को पहचानते ही नहीं । नहीं पहचानते !"

"शराब पीना चाहते हो ?"

"शराब ?"—और वह हीSSS करके हँस दिया, एक क्षण चुप रहकर बोला : "शराब पीना चाहता हूँ ?—मेरे कान ही जैसे मेरी बात नहीं सुनते ! 'बिना पिए भो पछताते, पीकर पछताते हम आए । हँ SSS .."

"गाना जानते हो ?"

"क्यों नहीं जानता ?—तानसेन भी तो खूब पीता था ! पीता न अगर तो न पीता ! बच्चन भी खूब पीता है, खूब गाता है।"

"कौन है यह बच्चन ?"

"बच्चन ?—नेईं जानते ?—कुछ नहीं जानते थानेदार सा'ब !—बच्चन बच्चन है, छोटा-सा बच्चन, बोतल नेईं, एक पेग ! मधुशाला नेईं, छोटी-सी मधुबाला ! दद्दन नेईं बच्चन, सिरफ़ बच्चन !"

"क्या बक रहे हो ?"

"बक रहा हूँ ?—कविता कर रहा हूँ सा'ब, कविता ! 'बन्दीशाला मे मधुशाला' 'सब इन्स्पेक्टर हो मधुबाला' 'मैं कवियों का कवि दद्दन हूँ'—'हेड मुहर्रिर मधुका प्याला !' वाह वाह, कवि दद्दन की जय।"

"चुप रहो ?"

"चुप रहूँ ?—अच्छा लो, चुप हो गया। नहीं बोलता ! आप ही ने तो कहा था कि बोलता हूँ या नहीं। बोलता हूँ तो चुप रहने के लिए ठोकर खाता हूँ, चुप रहता हूँ तो बोलने के लिए !--सच कहता हूँ थानेदार सा'ब --

"यही नियम बन्दीशाला का।

यही नियम है मधुबाला का ॥

जहाँ कहीं हो परिणय प्याला—"

"वेस्ट—शीअर वेस्ट ऑफ टाइम"--कह कर सब-इन्स्पेक्टर ने लाइट ऑफ कर दी, और दरवाजा फिर बन्द हो गया।

लेकिन यह क्या ?—वह तितली कहाँ चली गई ?—दरवाजा खुला हुआ, क्या यह वही छोकरा नहीं है ?—सब-इन्स्पेक्टर आगे बढ़ा तो देखा उसी के आफिस मे नमिता बैठी हुई किसी शून्य को ढूँढ़ रही है।

"ओह, आप यहाँ कब आ गई ?"

"नहीं थानेदार साहब, किसी की मूर्खता भरी बातों को सुनने का न मुझे उत्साह है, न समय ही। यह शौक आप ही लोगों को मुबारक हो।"

हँसकर थानेदार ने कहा : "शौक नहीं मिस साहब, यह बदनसीबी है, बद-नसीबी—मगर दिलबस्तगी है थोड़ी बहुत, इसमे कोई शक नहीं—है नहीं, बल्कि कुछ बना लेनी पड़ती है--टु मेक द बेस्ट आउट ऑफ इट—अच्छा, यह तो बताइए, क्या पहचान सकीं आप लड़के को ?"

कुछ बनावटी हँसी हँस कर नमिता बोली : "मुझे सोचना चाहिए था थानेदार साहिब, कि चाहे मेरी सहेली ही का मँगेतर हो, पर चूँकि वह मेरी सहेली है, इसलिए कुछ उसका स्टैण्डर्ड तो होगा ही।—नहीं,नहीं, यह आवारा लड़का वह नहीं है। मुझे आपका और साथ ही मेरा समय बरबाद करने का सख्त अफ़सोस है ! उम्मीद करती हूँ, आप माफ़ कर देंगे।"

"सो तो कोई बात नहीं, लेकिन—"

"लेकिन क्या ?"

"वह हेड मोहर्रिर क्या सच बात समझ सकेगा ? शायद---"

"मैं भूली नहीं थानेदार सा'ब,—यह लीजिए उसके लिए उपाय।" और नमिता ने एक और दस का नोट सब-इन्स्पेक्टर के हवाले कर दिया।

"अच्छा, धन्यवाद आपकी कृपा के लिए।"—कह कर नमिता उठ खड़ी हुई।

सब-इन्स्पेक्टर भी उठ खड़ा हुआ, बोला : "धन्यवाद,—सेठ रमणलाल का मकान शायद माधव-निकुंज—"

"जी हाँ।"

"वह हमारे इलाके में तो नहीं पड़ता, किन्तु फिर भी यदि कोई सेवा हो तो मुझे खुशी होगी मिस साहिब!"

"थैंक्यू!—" जरा आगे बढ़कर नमिता फिर रुक गई, बोली : "और देखिए इन्स्पेक्टर साहिब, मुझे इस लड़के के ऊपर भी कुछ दया आती है। मैं नहीं विश्वास करती कि वास्तव में यह अपराधी है! इसे क्या छोड़ा नहीं जा सकता ?—जो दस्तावेज गायब हुए थे, वे तो बरामद हो ही गए हैं, सिरफ दो चार रुपए की बात है, पुलिस को मामला आगे बढाने में क्या मिल जाएगा ? यह तो मेरे से ज्यादा शायद आप जान चुके हैं, कि स्वयम् उस लड़के से तो आपको कुछ मिल नहीं सकता।"

"जी नहीं, लेकिन महकमे को नेकनामी तो मिलेगी न।"

"आपका महकमा यों ही कुछ कम नेकनाम नहीं है। मेरी तो प्रार्थना है कि अब इस लड़के को पुलिस के अधिक हथकण्डे न दिखाए जाएँ! लड़का पढ़ा-लिखा मालूम देता है, और जुर्म मे फँस भी गया हो, तो उसे मौका दिया जा सकता है। आप तो जानते ही हैं, नियम तो यही है कि शक का फायदा मुजरिम ही को मिले।"

"सो तो मैं महसूस करता हूँ, लेकिन यह भी तो आप जानती होंगी कि पुलिस शक का ही फायदा उठाती है। दूसरी बात यह है कि मैं अकेला ही तो इस मामले में नहीं हूँ! यह हेड मोहर्रिर ऐसा बदजात है, और रिश्वत खा खाकर ऐसा मुँहफट हो गया है कि शराफत की बात तो जानता ही नहीं। ऐसे ही लोगोंसे तो महकमा बदनाम होता है, मगर सर्कल इन्स्पेक्टर ही नहीं, सुपरिंटेण्डेण्ट तक के मुँह लगा हुआ है।"

यह बताने के लिए कि नमिता को लड़के में कोई विशेष अभिरुचि नहीं है, वह दरवाजे की ओर बढ़ी; वह कुछ कहना ही चाहती थी कि सब इन्स्पेक्टर ने कहा : "किन्तु, मुझे अफसोस रह जाएगा कि मैं आपकी एक

अदना-सी बात नहीं मान सका। मेरा ख्याल है कि अगर कुछ रुपया और उसे मिल जाए, तो शायद इस मामले को दबाया जा सकता है।"

नमिता रुक गई, मुस्करा कर कहा : "जो मामला है ही नहीं, उसे दबाने का तो सवाल ही नहीं उठता। लेकिन हाँ, पुलिस की ख्याति मामले को दबाने मे उतनी नहीं है, जितनी कि उठाने मे है। नहीं मजूर करते आप?"

मुस्करा कर थानेदार ने कहा : "आपकी बात को कौन नामंजूर कर सकता है?"

"खैर—तो चलूँ मैं!—आखिर मुझे उस व्यक्ति से कोई खास सहानुभूति नहीं है। खामखा, मैं क्यों किसी के लिए दर्द सर लूँ? हाँ, दसेक रुपए की बात हो तो बात भी है।"—नमिता दरवाजे की ओर बढ़ी।

सब-इन्स्पेक्टर ने कहा : "मेरा ख्याल है, बीस-पचीस मे मैं उसे मना लूँगा।"

हँसकर नमिता ने कहा : "आपका ख्याल ही है, अनिश्चित बात के लिए सट्टा कौन करे?"

"नहीं, अनिश्चित बात तो नहीं, यों आखिर मैं उसका सीनियर तो हूँ ही, मेरी बात भी उसे माननी तो होगी ही!"

"ऐसा है?—तो लीजिए ये बीस रुपये और—मैं विश्वास करूँ न कि वह छोड़ दिया जाएगा?"

"जी हाँ—अभी ही—"

"अभी नहीं, रात भर तो रहने दीजिए बेचारे को। बाहर कहाँ जाकर सोएगा। धर्मशाला मे तो जगह होगी नहीं उसके लिए। कुछ सामान-सुमून भी है उसके पास?"

"नहीं, अभी उसके कमरे की तलाशी नहीं ली गई। कल लेने का इरादा था। पर यह सच है, धर्मशाला वाले अब इसे वहाँ रहने नही देंगे।"

"तो सबेरा हो जाने दीजिएगा। रात को अब उसे अधिक कष्ट न पहुँचाया जाए। उसे मेरे बारे मे कुछ बताने की जरूरत होगी ही नहीं! और विश्वास करूँ न, कि वह सबेरे जरूर छोड़ दिया जाएगा?—या मैं याद दिलाऊँ?"

हँसकर सब-इन्स्पेक्टर ने कहा : "आप सबेरे जिसे भेजेंगी, वह आपको इतमीनान दिला देगा।"

"धन्यवाद" कहकर नमिता बाहर चली आई। सब-इन्सपेक्टर बाहर पहुँचाने आया। ड्राइवर दरवाजा खोले राह ही देख रहा था।

लम्बी साँस लेकर नमिता पीछे की सीट पर निश्चेष्ट पड़ गई। —इतना पतित हो गया निर्मल, पर कैसे? और क्या प्रमाण है कि पर्स उसने जेब

से न चुराया हो !—छिपाने मे यदि असावधानी न रहे, तो उस पाप को जानेगा ही कौन ? शराब तो उसने असावधानी में नहीं पी !—गिरा हुआ भी मिला तो, तब भी पर्स के पैसे का उपयोग खुद के लिए कर लेना क्या पतन नहीं है ? और यही क्या लज्जा की बात नही है कि वह खुद भी एक ऐसे पतित व्यक्ति के बारे मे दिलचस्पी ले ?—मुफ्त मे पचास रुपये की चपत, अगर यही रुपया किसी सचमुच भले गरीब व्यक्ति को दिया जाता, या अपने ही किसी नौकर या ड्राइवर ही को इनाम दे दिया जाता तो अहसान वह कभी भूलता नहीं !—और एक दिन था, कि वह इसी को अपना सब कुछ समझती थी !—यह तो सयोग ही की बात थी कि उसने अपना परिचय ही कल्पना के नाम से दे दिया।—किन्तु कल्पना को निर्मल का यह सब चरित्र वर्णन तो कर ही देना चाहिए। मुझसे चुरा कर उसने क्या पाया है, सो भी तो वह देखले !

गाड़ी बहुत तेज भाग रही है। ड्राइवर होशियार है, इसमे कोई संदेह नहीं, आठ बरस हो गए, कोई दुर्घटना नही हुई। और हाँ, आज रात को उसे जाना भी तो है, शायद इसीलिए जल्दी भाग रहा है।—पर, नमिता ने कलाई उठा कर देखा, तो दस बज रहे थे !—

—चलो, एक तरह से अच्छा ही हुआ ; च्यवन भी समझ गया होगा कि अवहेलना करने पर नमिता भी अनुभव कर सकती है। उसकी शाम भी कोई अच्छी नहीं बीत सकती ! जेब मे दो टिकिट, बढ़िया पिक्चर, कई दिनों से जाने का प्रोग्राम, और ऐन मौके पर वही साथी गायब, जिसके लिए यह सब कुछ समारोह किया गया हो ? और अब लाइट ऑफ करके बिस्तर पर पड़ा बन्द आँखों से अन्धकार को गिन रहा होगा—और देर करना फिर कभी ! और जैसे ही च्यवन के कमरे के सामने से वह गुजरी, उसने सोचा, चलो खिड़की ही मे से 'नमस्ते' तो कर लिया जाए !—पर, देखा तो दरवाजे पर ताला लगा हुआ है। तो क्या नमिता ही के कमरे मे बैठा हुआ है ?—शायद अभी ही लौटा होगा। दस बज कर दस ही मिनिट तो हुए हैं ! या हो सकता है, अभी लौटा ही न हो। अकेला तो सिनेमा देखने क्या जाएगा ?

गैरेज मे गाड़ी रख कर ड्राइवर भी लगभग नमिता के पीछे ही पीछे कमरे मे दाखिल हुआ। जैसे ही नमिता बाथ रूम से निकली कि ड्राइवर ने चाबी टेबल पर रख दी, और बोला : "हुकुम हो तो जाऊँ मैं ! घर जाकर सामान वगैरह बाधना है।"

"जरूर,जरूर, एक मिनिट ठहरो, मैं कपड़े बदल लूँ, पर क्यों, देखो उस दराज मे ही तो रुपए रखे हुए हैं। खोल लो दराज, ताला-वाला नहीं है। मैं कह रही हूँ, हिचकिचाते क्यों हो ?"

ड्राइवर ने हुक्म का पालन किया। दराज मे अल्लम-गल्लम तमाम चीजें बिखरी पड़ी थीं, किसी वस्तु को साधारणतया खोज निकालना सरल न था। खोलते-खोलते ही ड्राइवर बोला : "कितने निकालूँ?"

"हैं ही कितने!-पापा शायद ढाई सौ लाए थे। वही पड़े हुए हैं।"

ड्राइवर ने दराज देख डालीं, पर वहाँ कुछ नहीं था।

"अरे ऊपर ही तो रखे हैं।"

"जी,इसमे तो एक भी रुपया नही है।"

"पागल हो गया है!—कागज-पत्र बहुत पड़े है तो क्या हुआ! क्या नोट भी नहीं पहचानता?"—और वह हँस दी।

"बीबी जी, सचमुच कुछ नहीं है। आप ही न देख लीजिए।"

"अच्छा तो कपड़े बदल कर—"

"नहीं बीबी जी, एक बार आप देख लीजिए—मैं गरीब आदमी हूँ। दराज मे सचमुच कुछ नहीं है।"

नमिता ने आकर देखा—सभी दराज उसने बाहर निकाल कर उलट दी; एक-एक वस्तु को अलग-अलग करके देख लिया, पर एक भी नोट उसमे न था। दो चार पैसे अवश्य इधर-उधर किसी जमाने के रक्खे हुए वैसे ही पड़े थे।

"देख तो, हरी की मा को बुला जरा! यहाँ से गई हूँ तब दराज मे रखे थे, आज तक कभी कोई चीज यहाँ से गई नहीं। रुपए, जेवर सभी तो बराबर रखती आई हूँ; कभी एक पैसा कम नहीं हुआ"

"आपने कहीं भूल से दूसरी जगह रख दिए होंगे।"

"नहीं; मुझे खूब याद है, जैसे ही पापा ने दिए मैंने यहीं रखे थे। तुम हरी की मा को आवाज दो तो।"

ड्राइवर चला गया तो नमिता ने एक बार फिर दराज को छान डाला। अलमारी की खोज भी कर डाली। इधर-उधर भूल से भी जहाँ कहीं रखने की सम्भावना थी, सब जगह देख डाली गई।

बदहवास हरी की मा खबर सुनते ही दौड़ी आई। वह घर की विश्वस्त दासी है, सारे मकान मे उसका प्रवेश है, कहीं पर उसे रोक-टोक नहीं है। पैसे-कौड़ी को हाथ लगाने की भी उसे पूरी आजादी है। आज तक इस घर मे कभी ऐसी बात सुनी नहीं गई। आज भी इस कमरे मे वह गई थी, नमिता सब चीजें बिखेर देती है, उसी को सब पुनः तरतीबसे रखना पड़ता है। तो क्या उसी पर शक किया जाएगा!—उसे तो पता भी नहीं था कि रुपया बाहर रखा गया है। यदि उसे सम्हला दिया जाता तो फिर कहाँ जा सकता था?

हरी की मा ने सारा कमरा छान डाला, पर कुछ सार न निकला। ड्राइवर अलग परेशान हो रहा था। आज की इसी गाडी से जाना बहुत जरूरी था, और उससे भी ज्यादा जरूरी था रुपए ले जाना। अब क्या होगा—उसके मुँह पर रुआसी छा गई।

नमिता ने ड्राइवर से पूछा: "कल जाओगे तो क्या कुछ हर्ज हो जाएगा?"

"हर्ज होगा ही बीबी जी, परसों की तो शादी ही है। कल ही कुछ कपड़े वगैरा खरीद कर लेता, और रख देता, अगर यह सब नहीं हुआ तो नाक ही कट गई समझिए।"

नमिता ने अपना वैले खोल कर देखा। तीस रुपए के नोट तब भी उसमे शेष थे। निकाल कर बोली—

"नहीं, नाक नहीं कटने पाएगी। यह तीस रुपए अभी ले लो, और जैसा सोचा है, उसी मुताबिक गाड़ी से चले जाओ! कब तक पहुँच जाओगे वहाँ?"

"सवेरे दस बजे तक!"

"तो ठीक है। मुनीम जी के आते ही तार के जरिए तुम्हें वहाँ मनी-ऑर्डर मिल जाएगा। मुनीम जी आठ बजे तक तो आही जाते हैं। दस बजे तक तुम्हें रुपया तुम्हारे घर पर मिल जाएगा।"

"घर की इज्जत आप ही के हाथ है बीबी जी।"

"क्या मेरा विश्वास नहीं है?"

"है इसीलिए तो अर्ज कर रहा हूँ।"

"बेफिकर सफर पर जाओ तुम!"

ड्राइवर ने एक बार और सलाम की, और बेमन जल्दी-जल्दी चल दिया। हरी की मा तब भी अनुपस्थित वस्तु की खोज में लगी हुई थी।

नमिता ने पूछा: "कोई इस कमरे मे आया था?"

"मेरे सिवा तो और कोई नहीं बीबी जी।"

"फिर क्या हुआ?—क्या दराज खा गई या कमरा?"

"मैंने लिया हो बीबी जी, तो भगवान हरी को देखे—"

"मैं तुम्हारे लिए कह रही हूँ?"

"पर इस कमरे में मेरे सिवा तो कोई आता नहीं"

"पर मैंने जब खोला, तो ताला तो नहीं था।"

"ताला कभी लगता तो नहीं बीबी जी। मैं भी आध घड़ी पहले ही तो सोने के लिए गई थी। इसी आध घड़ी में कोई इस तरफ आया भी नहीं।"

"पर मेरे जाने के बाद?—और क्या च्यवन बाबू अभी नहीं आए?"

"अभी नहीं, पर आपके जाने के थोड़ी देर बाद ही वे आए थे"

"फिर ?"

"कोई दस मिनिट ठहरे होंगे कि चले गए ?"

"इस कमरे मे आए थे ?"

"इसी कमरे मे तो आए थे। अपने कमरे मे तो गए भी नहीं।"

"हूँ! अच्छा तू जा हरी की मा। सवेरे देखा जाएगा, और अभी फिलहाल यह रुपए गुम हो जाने की बात कहीं पर फैले नहीं!"

हरी की मा जाने को हुई, पर जाते-जाते बोली, स्पष्ट था कि मन पर उसके तब भी वजन था—

"पर बीबीजी, आप तो जानती हैं, हजारों के जेवर मेरे हाथ रहते हैं, पर कभी एक रत्ती इधर-उधर नहीं हुआ। अगर यह कलक मेरे सिर पर लग गया, तो मैं तो कहीं मुँह दिखाने लायक भी नहीं रहूँगी।"

"तेरे ऊपर सन्देह नहीं है हरी की मा, तू जा! पर फिर भी अचरज की बात जरूर है! खैर तू जा अभी तो!"

हरी की मा चली गई, पर उसके कदम तक बता रहे थे कि वह हलकेपन की गति नहीं है।

ढाई सौ रुपया कोई बडी बात नहीं है। और हरी की मा इतनी पुरानी दासी है, तथा ईमानदारी से इतनी खिदमत कर चुकी है कि उसके लिए ढाई सौ रुपए कोई बड़ी बात नहीं है। दुःख है तो केवल यही कि वह माँग कर लेती तो उसे पापा भी इनकार नहीं करते।—आदमी को बदलते क्या समय लगता है?—भविष्य मे कुछ अधिक सतर्क रहने ही से काम चल जाएगा। आजकल दासियाँ कठिनाई से मिलती हैं,और खासकर ऐसी दासी, जो मालिक की आवश्यकताओं को समझ सकती हो!

सचमुच मनुष्य को बदलते समय नहीं लगता। प्रतिक्षण वह न केवल शरीर ही से बल्कि मन से भी बदलता जाता है। शरीर की अपेक्षा भी मन शायद अधिक शीघ्रता से बदलता है। नहीं तो क्या आज रात को ही उसे निर्मल को नहीं पहचानने के मिथ्याभास को इतने गहरे सत्याभास के साथ स्वीकार करना पड़ता?

विचारों मे खोई हुई नमिता जब सोने के लिए कपड़े बदल रही थी, तभी मालूम दिया कि च्यवनप्रकाश लौट आया है; किन्तु अपने कमरे मे न जाकर वह सीधा नमिता के कमरे मे ही चला आया। पिक्चर का कार्यक्रम बिगाड़ देने की शिकायत होगी, और क्या है?—नमिता ने भी ठीक मौके पर गायब होकर अच्छा बदला लिया!

बाहर निकलते ही नमिता ने देखा कि च्यवनप्रकाश आराम कुर्सी पर टाँगें फैलाए पड़ा हुआ है, दोनों हाथों की हथेलियाँ आपस मे गुथ कर आँखों पर छाया किए हुए है!—कोट टेबल के एक कोने पर पटका हुआ लटक रहा है।

"लौट आए?—इतनी देर कहाँ हो गई?—पिक्चर तो नौ बजे ही समाप्त हो जाता है।"

"पर रात तो खतम नहीं होती डार्लिङ्ग!"—नमिता चौंक पड़ी, उसकी आवाज लड़खड़ा रही थी।

"आज क्या फिर तुमने पी है?—"

"पी है तो,—किसी की चोरी की है?"

"यहाँ पर तो पहले कभी तुमने पीने का साहस नहीं किया था?"

"बार-बार किया जाय वह क्या साहस होता है?—आज इब्तिदा है, आदत पड़ जाने दो मेरी जान, मैं भी पाँचवा सवार हो जाऊँगा।"

"जाओ तुम अपने कमरे मे!—कोई देख लेगा तो क्या कहेगा! सबेरे तुम से बात करनी होगी।"

"जाऊँ?—चला जाऊँ?—मगर क्यों? आज की रात तो मुद्दत के बाद मिली है डार्लिङ्ग!—मुद्दत के बाद।"

च्यवन कुर्सी पर से उठा, नमिता डरी कि कहीं कोई देख न ले। दरवाजा तब भी खुला हुआ था, पलक मारते उसने दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया। मुड़ कर नमिता ने देखा कि च्यवन तब भी लड़खड़ाते पैरों उसी की ओर बढ़ता चला आ रहा है।

"च्यवन! तुम्हें ध्यान रखना चाहिए कि यह मेरे पिता का मकान है।"

"तुम्हारे बाप का?—हाऽहाऽहाऽ, मेरे बाप का नहीं,—नहीं; मेरे बाप का क्या है? मेरे बाप का तो मैं भी नहीं हूँ!—मेरे बाप ही नहीं है।"

"अच्छा है कि तुम्हारे बाप नहीं हैं, बेचारे को लज्जा से तो छुट्टी मिली। —पर जाओ, अपने कमरे मे सो क्यों नहीं जाते?"

"सोने के लिए तो जिन्दगी है! यह रात?—यह रात सोने के लिए नहीं—रोमियो अगर जूलिएट के घर तक आ पाया है, तो क्या सोने के लिए?"

और च्यवन ने नमिता को अपनी बाहुओं मे आवद्ध कर लिया। नमिता के नासा रन्ध्र च्यवन के कपड़ों पर छिड़की तीव्र सेंट की महक से भर गए। उसने ऊपर दृष्टि उठाई। च्यवन की रक्तिम आँखों मे भेड़िए फुदक रहे थे, च्यवन ने अपने प्यासे अधरों को नमिता के अधरोंपर रख दिया।

किन्तु एक ही क्षण मे नमिता ने अपने आपको मुक्त कर लिया। मद्य की तीव्र गंध से उसके मस्तक मे मरोड़ी उठने लगी। किन्तु नमिता के मुँह से निकला केवल "निर्लज्ज!"

"धन्यवाद, माइ हनी, फॉर द कॉम्प्लीमेण्ट! लेटस डान्स!"

"डान्स?—तुम्हें कुछ होश भी है?"

"होश नहीं—डान्स, डार्लिङ्ग डाँस! वाल्ट्ज के इण्ट्रोडक्टरी स्टेप्स—" और वह लड़खड़ाते पैरों को अंग्रेजी के वॉल्ट्ज डान्स के भ्रम में इधर-उधर पटकने लगा।

"कहीं इविनिग डान्स-क्लास मे गए थे?"

"डान्स-क्लास?—सब बेवकूफ उसे डान्स क्लास कहते हैं, लेकिन—वह है हैवन, ड्रीम लैण्ड, यहाँ अप्सराएँ देवताओं की कमर मे हाथ डाल कर झूमर लेती हैं—अलकापुरी डार्लिङ्ग, अलकापुरी!"

जब च्यवन ने नमिता की कमर में हाथ डाला तो उसे ढकेल कर नमिता ने सोफे पर बिठा दिया, लेकिन तब भी च्यवन ने नमिता को छोड़ा न था, इसलिए वह भी उसके ऊपर गिर पडी। च्यवन ने उसे थामे रहने की चेष्टा की; किन्तु छूट कर वह पास मे बैठ गई!

बोली: "देखती हूँ कि नवाबियत तो खूब की है, किन्तु इस सबके लिए पैसे कहाँ से लाए?—सबेरे तो कह रहे थे कि सिनेमा के टिकिट के लिए भी पूरे पैसे न थे।"

"पैसे?—पैसे की परवाह क्या है?—स्वर्ग मे पैसे को कौन पूछता है?"

"लेकिन स्वर्ग के बाहर?"

"स्वर्ग के बाहर—स्वर्ग के बाहर नर्क है डार्लिङ्ग, उसकी बात मत करो। आज तो बस, तुम हो और मैं हूँ—"

"आओ, मैं तुम्हे तुम्हारे कमरे मे पहुँचा दूँ।"

"मेरे कमरे मे?—वहाँ क्या है मेरी जान?—नहीं, मैं यहीं सोऊँगा। तुम्हारे कमरे मे नमिता! मुझसे डर लगता है क्या?—आज मैं रोमियो हूँ रोमियो; मेरी जूलियट!"

"अभी नहीं, यहाँ पर तुम्हें वह प्रिव्हिलेज अभी नहीं है।"

"शादी करनेके बाद?—तो लो; मैं तुमसेअभी शादी कर लेता हूँ!—अभी।"

"तुमने आज बहुत शराब पी ली है च्यवन! मैं जानती हूँ कि अभी तुमसे बात करने से कोई लाभ नहीं होगा, लेकिन अगर पिताजी को मालूम होगया तो जानते हो क्या होगा?"

"पिताजी को मालूम हो जाए तो क्या मैं उनसे डरता हूँ?—मैं किसीसे

नहीं डरता। मैं पिताजी के सामने शराब पिऊँगा ?—और तुमसे शादी करूँगा डीयर !"

"पर पिताजी एक शराबी को अपना दामाद बनाना गवारा नहीं करेंगे।"

"तो मैं भी उनको ससुर बनाना गवारा नहीं करूँगा।—मैं रोमियो हूँ, मैं ससुर के बावजूद जूलियट से लव करता हूँ। जूलियट मेरी होगी मेरी।"

नमिता ने उठकर च्यवन का हाथ पकड़ा और उसे उठाकर बोली: "चलो तुम्हें तुम्हारे कमरे मे छोड़ आती हूँ, सबेरे तुम से बात करूँगी।"

च्यवन मना करता रहा, किन्तु नमिता उसे प्राय: घसीट कर उसके कमरे मे छोड़ आई। आते ही भीतर से कमरा बन्द किया। देखा तो रात के साढ़े बारह बज गए थे।

तो नमिता की अनुपस्थिति मे च्यवन ने यह किया। नमिता ने तो सोचा था कि उसकी अनुपस्थिति से च्यवन को अमित क्लेश होगा, किन्तु, शायद उस के अभाव से ही, च्यवन की संध्या तो बड़े ही आनन्द-प्रमोद मे बीती है। 'गोअन विथ द विण्ड' यदि वह न देख पाया हो, तो जरूर वह रोमियो एण्ड जूलियट देख आया है! फिर डासिंग, बार—आश्चर्य तो यह है कि कौन उसे ऐसा साथी मिल गया कि उसके लिए पैसा खर्च करके अपने स्वयम् के आनन्द में विघ्न डाले। महिला साथी स्वयम् कभी खर्च करना चाहेगी नहीं, और पुरुष साथी ऐसे स्थानों मे पुरुष की अपेक्षा स्त्री ही की कामना करता है। पैसा च्यवन के पास विशेष था नहीं। 'गोअन विथ द विण्ड' के टिकट खरीदने के लिए भी नमिता से उसे पैसे माँगने पड़े थे।

च्यवन हाथ से निकलता जा रहा है, इसमे संशय नहीं। लोभनीय ऐसा उसमें है क्या ?—जिस नमिता ने हीरा जैसे चमकने वाले निर्मल को काँच के सामान्य टुकड़े के समान त्याग दिया, वह काँच के टुकड़े जैसे च्यवन की परवाह करेगी ?—परवाह नहीं करती थी, इसीलिए तो च्यवन की आजादी को वह सहन करती आई है। पर च्यवन को न चाह कर भी क्या छोड़ा जा सकता है? नमिता को सावधान रहना है कि वह अब अधिक हाथ से बाहर न हो।

लम्बी साँस लेकर नमिता सोने के कमरे में जाने के लिए उठी, कि उसकी दृष्टि टेबल पर लटकते हुए च्यवन के कोट पर जा पड़ी। ठीक से रखने के लिए नमिता ने उसे उठाया।—पर इतना भारी ?—ओह—नमिता ने देखा तो एक बोतल आधी से अधिक खाली, भीतर की जेब से गर्दन निकाल कर उसका उपहास करती हुई! नमिता का सारा बदन काँप उठा, उसने एक बार और कमरे के दरवाजे पर दृष्टि डाली, वह ठीक तरह से बन्द था, दक्षिण की खिड़की खुली थी, लपक कर उसने उसे भी बन्द कर दिया, छत का पखा पूरे बेग से

चल रहा था। सारे कोटसे बढ़िया लैबेण्डर की महक उसके नाकमें छा रही थी अनजाने ही जेबों में उसने हाथ डाला। बाहर की जेब में दो टिकिट सिनेमा शो के निकले। शो का नाम भी लिखा था 'रोमियो जूलिएट।' दूसरी जेब से बरामद हुए दो टिकिट 'गोअन विथ द विण्ड'। पूरे टिकिट बता रहे थे कि वह शो नहीं देखा जा सका। ऊपर की जेब मे एक जनाना-रूमाल जिसके एक कोने मे कढा हुआ था अंग्रेजी का 'डी' अक्षर, मालूम देता है किसी डॉली, डिलाइला, डोरा या दमयन्ती या किसी डाइन ?—किसी का भी हो सकता है। सारा रूमाल लैबेण्डर मे तर है। भीतरी जेब मे, यह क्या !—एक नोट सौ रुपए का, तथा दो दस के, शेष मे कुछ चैञ्ज !

तो क्या च्यवन ने ही यह चोरी की है ? यह सौ का नोट तो वही है, उसे याद है यह मुहर भी उसने देखी थी, उसी के पिता के नाम की ! नमिता का चैतन्य आहत हो गया ! और वह हरी की मा को चोर समझे बैठी थी !—कैसा दयनीय चेहरा था उसका उस समय, जब वह कमरे से बाहर जा रही थी ! —तो इसी शाम को हजरत सवा सौ रुपए भी खर्च कर चुके हैं। क्यों न कहे कि वे स्वप्न लोक की सैर कर आए हैं, और जूलियट की निराशा वाला रोमियो नहीं, प्रत्युत शकुन्तला से विहार का वरदान पाकर लौटने वाले लम्पट दुष्यन्त का पार्ट अदा कर रहे हैं।

नमिता ने लम्बी साँस लेकर सारी वस्तुएँ पुनः यथा पूर्व कोट मे रख दीं। रुपए भी वैसे के वैसे भीतर की जेब मे रख दिए, जैसे कुछ नहीं हुआ। शराब की आधी भरी बोतल भी उसी तरह जेब मे रख दी, और कोट को खूँटी पर लटका दिया। क्रोध, निराशा और भर्त्सना से उसकी आँखें सजल हो उठीं।

उसने स्विच बन्द करके पखा और रोशनी बुझा दी, सोने के कमरे का पर्दा हटाया, उसकी रोशनी भी बुझा कर वह पलंग पर पड रही ! आधी रात बीत चुकी थी, किन्तु उसकी आँखों मे नींद न थी। जो अंधकार कमरे मे छाया हुआ था, उससे सहस्र गुना अधिक अधकार उसकी आँखों में फैल गया था। क्या इस रात्रि की विभीषिका कभी समाप्त न होगी ?

एक-ओर निर्मल, दूसरी ओर च्यवन—एक ही रात के उसके दो अनुभव क्या तुलना के सयोग के लिए ही नहीं उसके जीवन में घटित हो गए थे ?—दोनों चोर, दोनों शराबी—एक केवल ढाई रुपये का चोर, दूसरा ढाई सौ का एक पुलिस के द्वारा शराब पिलाया हुआ, दूसरा स्वेच्छा से लहालोट—और फिर भी एक पुलिस की नृशंसता का शिकार और दूसरा नमिता के शयन कक्ष का अतिथि ! पर क्या उसका लौटने का मार्ग अब भी खुला है ?

यह कहना कठिन है कि रात को कब उसे नींद आई।

: १५ :

वादे के मुताबिक निर्मलकुमार को बडे सबेरे ही पुलिस थाने से मुक्ति मिल गई। धर्मशाला में, उसके कमरे मे पुलिस का ताला भी लगा हुआ था, पुलिस का एक कान्स्टेबुल ताला खोलने के लिए साथ गया। यह भी निश्चित था कि जाते ही निर्मल को वह कमरा खाली कर देना है। पुलिस के सिपाही के साथ रहने से वह धर्मशाला के अन्य मुसाफिरों की आलोचना से अवश्य बच गया। सामान उस के पास रहही क्या गया था?—जो कुछ कपड़े बच गए थे, उसने पुराने फटे हुए होल्डाल में डाले, और बगल में दबा कर सड़क पर आ खड़ा हुआ!

सिपाही ने कहा: "किधर जाने का इरादा है?"

"जिधर भाग्य लेजाए!"

"यह क्यों नहीं कहते कि उसी चिड़िया के घोसले जारहे हो?"

"चिड़िया?—कौन-सी चिड़िया?"

"उड़ते हो हमीं से?—वही जो तुम्हें छुड़ा गई है?"

"कौन छुड़ा गई है?"

"मानता हूँ कि तुम उनमे से हो जो जेल की हवा खाकर जीते हैं; पर मैं भी उनमे से हूँ, जो न सिर्फ खाते ही हैं, बल्कि खिला कर जीते हैं।"

"सो तो बिलकुल ठीक है। पर जमादार, सच कहता हूँ, मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम कि वह कौन परी थी!—सचमुच कोई परी थी क्या मुझे छुड़ाने वाली?—कैसी थी? देखा था तुमने?"

"मैंने ही क्या, सभी ने देखा था। सारे थाने मे चाँदना हो गया था।

वह बढ़िया-सी कैडिलेक कार चमचमाती हुई, और कसम खुदा की, हुस्न तो वह गजब का था, शोखी वह कयामत की थी—किसे पता था कि तुम इतने छिपे रुस्तम हो क्यों ?''

निर्मलने मुस्कराने की कोशिश की और कहा : ''कार का रङ्ग कैसा था ?''

''बढ़िया चमचमरता हुआ अगूरी रङ्ग और छत बैंगनी !—सच बताओ कौन थी वह ?''

''नहीं पहचान पाया दोस्त, अपनी कसम !'' लम्बी साँस लेकर निर्मल ने बिस्तरा फुट-पाथ पर पटक दिया और बोला : ''क्या बताएँ, 'वो आएँ हमारे दर पे और हमे खबर ही नही ?'—अगर इतनी मेहरबानी की, तो एक लमहे के लिए जलवागर होजाना ही क्यों गवारा नहीं किया मेरी सरकार ने ?—जिन्दगी का कुछ तो लुत्फ हासिल होता !—लो यार, तब तो तुमने हिरासत से रिहा करके भी कोई एहसान नहीं किया।''—और वह बिस्तर पर बैठ गया।

''बनते हो मिस्टर !—मैं जानता हूँ तुम उस चिडिया को अच्छी तरह जानते हो। नहीं तो कार का रङ्ग क्यों पूछा था ?''

''इसलिए कि शहर मे कारों की कोई कमी नहीं है। कभी ऐसी कार दिखाई दे गई, तो आँखें धन्य करने की कोशिश तो कर सकूँगा !—नम्बर तो तुम्हे याद नहीं रहा होगा।''

''नहीं, यह नहीं दिमाग मे घुसा। तब यह भी तो मालूम नहीं था कि वह बिजली की तरह अगर चमकीं तो गायब भी उसी तरह होने का इरादा था !''

''अच्छा जमादार, स्टेशन का तो यही रास्ता है न ?''

''है तो, पर स्टेशन क्यों ?''

''इस शहर को नमस्कार करना चाहता हूँ दोस्त, यहाँ गुजारा चलता दीखता नहीं।''

सिपाही ने मूँछों पर बँट देते हुए कहा : ''शहर की पुलिस गाँव की पुलिस जैसी बुद्धू नहीं है। तो अब कस्बे मे हाथ की सफाई आजमाओगे ?''

''हाथ की सफाई नहीं दोस्त, पहले दिमाग की सफाई।''

''यानी ?''

''यानी कुछ नहीं। दिमाग में बहुत कुछ कूड़ा-कर्कट जो भरा हुआ है !''

''मालूम देता है मुफ्त की शराब का नशा अभी तक गया नहीं है। पर याद रखना, वह पुलिस की शराब थी।''

''रहेगी, याद तो रहेगी जिन्दगी भर जमादार—क्या जारहे हो ?''

''शराबी के साथ बरबाद करने को वक्त किसके पास है ?''

''सिपाही के पास भी नहीं ?—अच्छा जमादार, अलविदा।''

सिपाही एक ओर चला गया तो निर्मल ने मुक्ति की साँस ली।

—तो नमिता थी! वह छुडाएगी?—मजाक करने का इरादा रहा हो, पर शायद मौका नहीं पा सकी। अच्छा ही हुआ कि उसने मुझे इस हालत मे देख लिया। कम-से-कम आँखों की शर्म तो नहीं उठानी पडेगी। गरीबी कदाचित् मनुष्य सह भी ले, किन्तु गरीबी मे सम्पन्नता का जो नाटक करना पड़ता है, वह न केवल असह्य है, बल्कि उसे उपहासास्पद भी बना देता है!—

एक विक्टोरिया जाती-जाती रुक गई। कोचवान बोला: "कहाँ चलोगे बाबू?"

"जहन्नुम मे। ले चलेगी तुम्हारी विक्टोरिय?"

"उसका तो यह वक्त नहीं है बाबू!—शाम को कहो, तो बहुतेरी जगह है। और जहन्नुम तो उसे वहाँ न जाने वाले कहते हैं, जाने वालों के लिए तो वह बिहिश्त है, स्वर्ग का द्वार!"

"तो शाम को आना। यहीं मिलूंगा, फरिश्ते हो न तुम वहाँ के?"

कोचवान मुस्करा दिया, उसने घोड़े की पीठ पर धीरे से चाबुक का इशारा किया, और विक्टोरिया आगे बढ़ गई।

निर्मल ने बिस्तरा उठाया, कन्धे पर रक्खा, और धीरे-धीरे स्टेशन की ओर चल पड़ा।

पर स्टेशन की ओर वह क्यों जा रहा है?—उसके पास है क्या कि वह टिकिट खरीद सकेगा?—और जाएगा कहाँ?—अपने गाँव? क्या बुआ का आश्रय ग्रहण करने?—जिस स्वत्त्व को वह छोड़ चुका है, उसे पाने का अब क्या कोई उपाय है?—गाँव मे शहर की अपेक्षा पुलिस का पंजा शिथिल होता है। तो क्या अब उसे वे साधन अपनाने होंगे, जिसके लिए पुलिस नजर रखती है? पेट का गढ़ा तो भरना ही पडेगा, इस शरीर को ढँकने के लिए कपड़े की व्यवस्था तो करना ही पड़ेगी। पर क्यों?—किसलिए? यदि बिना टिकट के गाड़ी कही दूसरी जगह नहीं लेजाना चाहती, तो उसके आगे लेटकर सत्याग्रह करना क्या बुरा है?

सूरज सिर पर चढने लग गया है। और जब सारा ही शरीर दर्द कर रहा हो, तो सिर दर्द को कौन पूछेगा?—दो रात उसने पुलिस की हिरासत मे बिताई! वह जीवित निकल गया है, यही क्या कम है?—पीठ की चमडी जगह-जगह उधड़ी हुई है, कन्धा दुखने लग गया है, किन्तु बिस्तरा पीठ पर नहीं लटकाया जा सकता। और घुटना फूटा हुआ है, इसलिए सीधा चलना भी सम्भव नहीं। घुटना टूटा नहीं, इसके लिए पुलिस का कृतज्ञ होना ही चाहिए उसे।—रात उतनी बुरी नहीं बीती थी, केवल इसलिए कि किसी ने

उसे मारा नहीं !—आगे और पुलिस पाती क्या उसे सताकर ? जो कुछ वह जानता था, उसने कह दिया था। और वह बैग ?

पीछे से रिक्शेवाले ने कहा : "कहाँ स्टेशन जारहे हो ?"

"जा तो रहा हूँ।"

"बैठोगे ?"

"नहीं—पैसे नहीं हैं !"

रिक्शेवाला हँस दिया : "तो क्या स्टेशन पर मुफ्त मे टिकिट मिलता है ?"—और घंटी बजाता हुआ वह आगे दौड़ने लगा।

स्टेशन क्यों जा रहा है ?—वहाँ मुफ्त मे तो कोई टिकिट नहीं दे देगा, पर हाँ—सत्याग्रह, गाड़ी के सामने लेट कर इस सताने वाले शरीर को तो वह दण्ड दे सकता है !—सताने वाला शरीर—नहीं तो क्या ? यदि यह घुटना न होता, या यह पीठ ही न होती, तो क्या उसे इस तरह भयानक पीड़ा की अनुभूति हुई होती ? यह पेट न होता, तो इस तरह बिस्तर कन्धे पर लटकाए इधर से उधर और उधर से इधर भटकते फिरने की जरूरत होती ?—अगर यह शरीर न होता ?

तो निर्मलकुमार। तुम हो कौन ?—घुटना अलग से दर्द करता हैं, पीठ अलग से दर्द करती है, पेट अलग भूख का इजहार करता है, सबकी पृथक् सत्ता है, फिर तुम ?—हो सकता है, यह मेरा घुटना है, मेरी पीठ है, मेरा पेट है, उसी तरह मेरा बिस्तर, मेरा मकान—पर यह 'मैं' कौन है ?—क्यों जरूरी है कि टूटे हुए घुटने की बेदना इस 'मैं' की बेदना हो, इस फटे हुए बिस्तरे के रन्ध्र इस 'मैं' के गर्व को बहा दें ?—यदि बिस्तरे का छेद मेरे शरीर पर नहीं, तो शरीर का यह घाव भी इस 'मैं' पर नहीं, फिर भी इस अनुभूति के द्वैत को क्या कहें ?

ओह ! यह तो स्टेशन आ गया ! अब चला भी नहीं जाता ! मुसाफिरखाने की सीढ़ियों पर सुस्ता लेने से कोई दिक्कत न होगी। तो यदि इस 'मेरा' के पुल को तोड़ दिया जाए तो क्या यह शरीर और 'मैं' अलग-थलग न हो जाएँगे ?—यह बिस्तरा जब तक 'मैं' के कन्धे पर है, तब तक इसका वजन इस 'मैं' को दुःख देता रहेगा, इस बिस्तर को उतार फेंकने से वजन का दुःख नहीं है, और अब यह 'मैं' इसके ऊपर सवारी गाँठे हुए भी है। क्या इसी अनासक्ति की बात तो ऋषि-मुनि नहीं कह गए हैं ?—अगर यह सम्भव होता तो कैसे मजे की बात थी ?—

अच्छा वह चोरी क्या थी ?—उस दिन डोरा उसका आवास देखने साथ आई थी, उस बड़े मनीबैग को देख कर उसका मन नहीं माना। हाथ की

सफाई तो है उसमे, और मन की सफाई भी, इतना मोटा बैग प्रेम की सौगात के तौर पर उसने मुझे नजर कर दिया। प्रेमिकाएँ आजकल जब दिल टटोलने की अपेक्षा जेब और मनीबैग ही अधिक टटोला करती है, तो डोरा के गम्भीर प्रेम का अन्दाज लगाया जा सकता है। किन्तु,—हसकर निर्मल ने कहा : "निर्मल कुमार महाशय, जब घुटने की पीड़ा आप अनुभव करने और सहन करने के लिए विवश हो, केवल इसलिए कि वह घुटना और किसी का नहीं, केवल आपका है, तो जो आपकी है उस डोरा के करतब का फल यदि आपने चख लिया तो कुछ नया तो नही किया। डोरा आपकी नहीं तो किसकी है?—यदि आपकी न होती तो क्या उसके किए का फल आप भुगतते?—वह आपकी है, यह तो इसीसे सिद्ध है!

—और फिर भी उससे दूर जाना चाहते हो?—क्यों? किसलिए?—किसके लिए?

रिक्शेवाले ने समझा कि मुसाफिर गाड़ी से उतरा है, बोला : "बाबू रिक्शा होगा?"

"होगा, उठाओ यह बिस्तर!"

बिस्तरा और निर्मल दोनों रिक्शे पर सवार होगए, रिक्शा रिक्शेवाले पर, और यात्रा शुरू होगई। दुनिया इसी तरह एक-दूसरे के कन्धे पर सवार होकर चलती रहती है!

डोरा के मकान के सामने रिक्शा रुकवा कर निर्मल बोला : "मैं देखता हूँ, भीतर मालकिन है या नहीं!"

डोरा तब भी सोई हुई थी। भीतर से दरवाजा बन्द था। काफी रात तक जागना और काफी दिन तक सोते रहना उसकी दिनचर्या थी। नया कुछ न था, दरवाजा थपथपाते हुए थक कर जब निर्मल को सो जाना चाहिए था, तब डोरा आँखें मसलती हुई उठी, बोली : "क्या है?"

"दरवाजा खोलो!"

"कौन है?"

"मैं हूँ!—"

"सो तो मैं जानती हूँ कि दरवाजे पर मैं के सिवा कोई कभी होता नहीं, पर—अच्छा ठहरो।"

दो चार मिनिट राह देखने के बाद दरवाजा खुला, केवल चादर लपेटे डोरा खड़ी थी! दोनों एक दूसरे को देख कर स्तब्ध होगए! निर्मल को एक आघात भी लगा, पर एक क्षण ही में सम्हल कर उसने कहा : "रिक्शेवाला खड़ा है, उसे पैसे देना है। कुछ है तुम्हारे पास?"

"मेरे पास ?—इस वक्त तो कुछ नहीं है। कितना चाहिए ?"

"आठ आने।"

"रिक्शेवाले से कह दो कि शाम को लेजाए।"

हँसकर निर्मल ने कहा : "वह मान लेगा ?—" और वह पीछे मुडा; उसने सोचा, बिस्तर तो है, आठ आने की अदायगी के बदले मे कन्धे का वजन हलका हो जाए, तो कोई बहुत बुरा सौदा नहीं है। और डोरा ?—उसे अपने आप के ऊपर नफरत हुई। क्या हुआ, उसे आज के पहले कभी अपनी प्रकृत-श्री मे न देखा हो ?—पाउडर था, रूज था, लिपस्टिक थी, यह सब मेकप था, यह तो वह प्रारम्भ ही से जानता था। डोरा की मूल कल्पना का अभ्यास पाने के लिए उसे इन अतिरिक्त-उपकरणों को तो बाद दे ही देना चाहिए था। घुटना दर्द कर रहा है, फिर भी वह इस मुहल्ले से तो बाहर निकल ही सकता है।

रिक्शेवाले से कहा : "देखो भाई, मेम साहब कहती हैं कि पैसे शाम को ले जाना !—बेहतर यही है कि यह बिस्तरा लेते जाओ। मेरा खयाल है कि बहुत नुकसान मे तो नहीं रहोगे ! हाँ, इसे ढोते रहने की कुछ बेगार तो करनी ही पडेगी।"

रिक्शावाले ने हँस कर कहा : "गरीब आदमी से मजाक करते हैं बाबू ?—कोई बात नहीं, शाम को पैसे लेता जाऊंगा। यह मुहल्ला तो देखा हुआ है। शाम को अक्सर मनचले मुसाफिर हवाखोरी के लिए आ ही जाते हैं ! बिस्तरा मैं पहुँचा दूँ ?"

और उसने बिस्तरा उठा लिया। निर्मल ने रिक्शावाले की ओर देखा, सिवा विश्वास के उसकी आँखों मे अन्य कुछ न था। बिस्तरा उठा कर जब वह आगे हो लिया, तो निर्मल को भी उसके पीछे जाना ही पड़ा। देखा कि दरवाजे के अधखुले किवाड़ों की सँध में से दो आँखों की तीव्र-दृष्टि सारा व्यापार देख रही है। एक और लम्बी साँस परित्याग कर निर्मल कमरे के भीतर हो लिया। दरवाजा पुनः बन्द होगया।

चादर उतार कर पलग पर डालते हुए डोरा ने कहा : "क्या करूँ, गाऊन तो है नहीं कि झट लपेट लिया और निकल गई। पर तुम्हें हुआ क्या है डीयर ?—तुम्हारे मुँह पर यह मुर्दनी क्यों छाई हुई है ?—शामको मैं गई थी तुम्हारी तलाश करने, पर वहाँ पर एक नहीं, दो-दो ताले लगे हुए थे। क्या बात होगई ?"

"खास कुछ नहीं। पर क्या मैंने तुम्हें नींद से जल्दी उठा दिया"

सिगरेट लगा कर धुँआँ छोड़ते हुए डोरा ने कहा : "जल्दी तो कोई खास

नहीं! देर से उठने को मैं भी बुरा ही समझती हूँ, पर जल्दी उठने को उससे भी बुरा समझती हूँ।"

"मानी ?"

"मानी मत पूछो!—हर चीज का मानी होना जरूरी ही है क्या? अच्छा हमारी जिन्दगी ही का क्या मानी है?—हटाओ इस बात को। बोलो चाय पियोगे या कॉफी?—ब्रेकफास्ट मे क्या-क्या लोगे?"

"जो तुम खिला सको। पर यहीं बनाओगी क्या?"

"तो क्या बाजार से आएगा?"

"सो तो तुम कह ही चुकी हो कि तुम्हारे पास कुछ नहीं है।"

"प्रोव्हीजन, दूध, ब्रेड यह सब तो बाजार से ही आएगा। पर घबराओ मत, पैसे अभी नहीं चुकाने पड़ेंगे। उसका सब इन्तजाम मैं कर लूँगी। पर यह कहो, दरवाजा खुलते ही तुम चौंक क्यों पड़े थे?"

"चौंक पड़ा था सचमुच?—याद नहीं पड़ता; पर चौंक ही पड़ा होऊँ तो आश्चर्य क्या है। जिस रूप मे तुमको मैंने देखा, कोई भी मनुष्य क्या चौंके बिना रह सकता है?"

सिगरेट की राख को स्टूल पर रक्खी राख दानी मे डाल कर डोरा ने कहा, "औरतों को अर्द्धनग्न अवस्था में देख कर चौंक उठना आदमी की पुरानी आदत है। पुरानी आदत के बावजूद चौंक उठना और भी चौंका देने वाला करिश्मा है!—पर तुम उस कारण से नहीं चौंके, मुझे विश्वास है।"

"तो फिर?"

"मुझी को बताना पड़ेगा?—अच्छा, तो सुनो, तुम मेरा रूप देख कर चौंक उठे, उस रूप को देख कर चौंक उठे जिसको देखने की तुम्हें आदत नहीं है। मनुष्य को चाहिए कि वह औरत को प्यार न करे, प्यार करे वह पाउडर को, रूज को, लिपस्टिक को और ब्रिलियण्टाइन हेअर क्रीम को। खूबसूरती के लिए पोर्सलीन का स्टेच्यू उसे उत्फुल्ल कर सकता है। इस हाड़ मॉस में क्या रखा है?"—और जोर से कश खींच कर उसने सारी सिगरेट खतम कर दी।

"चाहो तो आसानी से मुझसे नफरत कर सकते हो निर्मल! छिपा कर रखने का मेरा कभी कोई इरादा न था, पर क्या करूँ!-यह आदमी ही तो चाहता है कि छिपा कर रक्खो! छिपा कर रखने ही में सौंदर्य है! जो स्त्रियाँ पाउडर से अपने चेहरे को न छिपातीं, वे छिपाती हैं घूँघट से! सुलभता कभी लोभ का कारण नहीं बनती, लोभ का कारण बनती है, अलभ्यता या दुर्लभता। मुझे पकड़ो तुम, और मैं हाथ न आऊँ तो तुम मुझे चाहने लगोगे, जितनी

दूर भागूँगी, उतनी ही चाहना बढ़ती जाएगी !—और मजा यह कि केवल भागते रहने से ही काम नहीं चलता। वह चाहना फिर केवल कहने भर की रह जाती है। भगवान है न तुम्हारा ? भागता ही रहा है इन्सान से, इसलिए उसकी चाहना सिर्फ कहने भर की रह गई है।—मैं भी वैसी ही रेस लगाऊँ तो मेरा भी उसी तरह वायवीय अस्तित्व रह जाए ! इसीलिए मुझे लुकते-छिपते-दौड़ते-भागते भी हाथ भी आना पड़ता है, कमसे कम यह आभास तो देना ही पड़ता है कि मैं हाथ में आ गई हूं, या आने ही वाली हूँ।—इस दुनिया मे गुजारा चलाने का और कोई तरीका ही नहीं है !—पर ठहरो—बातें तो करनी ही हैं, और समय भी खूब है बिताने को। खाने-पीने का कुछ प्रबन्ध कर लूँ —नहा-धो लिए हो ? खैर बाथ-रूम सभी कुछ तो तुम जानते हो।"

निर्मल को विचारों मे छोड़ कर डोरा ने कपड़े बदले, और थैला लेकर वह बाहर चली गई। निर्मल ने मकान का रंग-ढंग देखना प्रारम्भ किया। इस कमरे मे वह रात ही को आया था, आज उसे यह भी मालूम पड़ा कि प्रकाश भी बहुत कुछ छिपा सकता है !—यानी अभी दिन था, अतः उस कमरे में अंधकार था। शहरों मे एक तल्ले मे कोई प्रकाश की अपेक्षा करता भी नहीं।

बल्कि शहर ही क्यों नए युग मे यदि कोई 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' कहता है, तो उसका तात्पर्य केवल विद्‌युत के प्रकाश से है। सूर्य का प्रकाश शायद डॉक्टर वैद्य चाहें भी, किन्तु और कोई दूसरा प्रकाश होता भी है, यह कोई नहीं जानना चाहता।

एक तो यही कमरा है, जिसमें निर्मल बैठा है, दूसरा कमरा वह है ; और भी अंधेरा। इधर बाईं तरफ वह प्रिवी है, और उस कोने मे वह किचन-कम-स्टोर्स, बस ! किराया पुराने जमाने का सिर्फ तीस रुपया मासिक जो गए छः मास से चढता चला आ रहा है। दीवारें समय की काई से काली, एक बोझिल वातावरण की सृष्टि करती हुईं, उन पर नाना प्रकार के नए पुराने कैलेण्डर, इधर-उधर कूडा-कर्कट फैला हुआ, खिड़की पर लगे हुए नीले पर्दे गन्दगी के कारण काले होते जा रहे थे, सब कुछ रहनेवाले की निपट उदासी का या घोर आलस्य का परिचय दे रहे थे। थोड़ा बहुत जो कुछ फर्नीचर था, यद्यपि वह बनानेवाले की सुरुचि का द्योतक था, किन्तु प्रयोक्ता की लापरवाही प्रमाणित कर रहा था !

यों, शहर की यह बस्ती, उसकी गोपनवृत्ति का परिचायक थी, निपट गूढ घनी-सिमटी-सिकुड़ी, अतः ऊपर से साफ भीतर से गन्दी, ऊपर से ठोस भीतर से खोखली !—ऐसे ही यहाँ के निवासी, कुछ अधगोरे शेष अधगोरों की भद्दी नकल करने के प्रयत्न में अपनेपन से हीन काले !—इसी बस्ती मे निर्मल-

कुमार आ फँसा !

जब तक डोरा सामान लेकर लौटी, तब तक जैसे तैसे निर्मल ने भी नित्य क्रिया से निपट लिया। उसे गन्दगी पसन्द न थी; उसने फर्नीचर को कुछ तरतीब से जमा दिया था, और सोच रहा था कि नहाने के पहले यदि वह कमरे की सफाई की ओर भी कदम उठा लेता तो अच्छा ही होता।

डोरा ने एक नजर कमरे पर डाली, और दूसरी नजर निर्मल पर, फिर हँसती हुई बोली—

"ओ माई गॉड ! यू हैव कम्प्लीटली मेड योर सेल्फ एट होम इन दिस होम--देखती हू ,अब चैन से टाँग पसार कर निरे आलस्य मे पड़े रहने के मेरे दिन हवा होना चाहते हैं। क्या सोच रहे हो, कमरा साफ करना चाहते थे ?" —और थैले को जमीन पर रख कर उसने अपने दोनों हाथ निर्मल के कंधे पर डाल दिए, सिर को उसके वक्ष मे छिपा कर बोली :"सब कुछ हो जायगा ! यही तो चाहिए औरत को ! वह अपने लिए तो कुछ कर नहीं सकती, फिर कुछ करे तो करे किसके लिए !"

निर्मल ने डोराके हाथों को हटाते हुए कहा : "परन्तु फिर भी कुछ सुरुचि का तो तकाजा है।"

"सुरुचि !" और वह खिलखिला कर हँस पड़ी : "सुरुचि !--सुरुचि जो हो, वह पहले तो खुद की रुचि कभी नहीं होती, उसमें असुविधा जो है ! खुद की रुचि तो सिवा सुविधा के और कुछ होती ही नहीं ! इसको बाद दे दिया जाय तो ? सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद बदहजमी की डकार को सुगधित सुपारी आदि से सुवासित करने की जो मनोवृत्ति है, उसी का नाम क्या सुरुचि नहीं ? यह आवश्यकताओं का अफारा है ; सम्पन्नता की क्यारी ही मे सुरुचि फलती-फुलती हैं, गरीबी मे तो सुरुचि तो सुरुचि रुचि का भी कहीं पता नहीं लगता !—पर, खैर, सुरुचि का भी खयाल अब तो रखना ही पड़ेगा।"

उत्तर की चिन्ता किए बिना वह थैला उठा कर रसोई घर में घुस गई, पर पुनः शीघ्र ही बाहर आकर बोली :

"लेकिन, सुरुचि का पहला पाठ अभी से शुरू करना चाहती हूँ !—नहा आऊँ ? लो, तुम्हारे लिए अखबार भी लेती आई थी। तब तक पढो, मैं अभी लौटती हूँ।"

अखबार लेकर निर्मल ने कहा: "पर पैसा तो तुम्हारे पास कुछ भी नहीं था"

"दुनिया पैसा नहीं चाहती—पैसे का दिखावा भर चाहती है !—बिलकुल ठीक बात है, एक गरीब आदमी का एक पैसे के लिए कोई विश्वास नहीं

करता, चाहे जितना वह ईमानदार क्यों न हो! किन्तु एक नादेहन्द बेई-मान अमीर आदमी का विश्वास करने मे किसी को कठिनाई नहीं होती।—मैं कहती हूँ, आज शाम को रही, 'वन मीलियन पाउण्ड नोट' इस थीम को बड़ी अच्छी तरह प्रतिपादित करता है—" और वह बाथ रूम मे घुस गई।

बड़ी विचित्र नारी है!—पढ़ी-लिखी है, इसमे तो कोई सशय नहीं, और सताई जाकर वह समाज को ठेंगा बताने के लिए उत्सुक हो उठी है। इसके अभाव मे उसकी जीभ पर इतने तीखे व्यंग न होते!--परन्तु सताया तो समाज से वह भी गया है, क्या इसीलिए वह भी इन सचित सस्कारों की, युग की मान्यताओं की इस सरलता से सक्रिय मजाक उड़ा सकता है?

—वह उस दिन की खबरों पर नजर दौड़ाने लगा!

कुछ ही समय के पश्चात् जब डोरा स्नान करके लौटी तो देखकर निर्मल आश्चर्यहत रह गया। कहीं से निकाल कर उसने भारतीय ढंग से एक सफेद स्वच्छ साड़ी पहन ली थी, वैसे ही सफेद शुभ्र ब्लाउज पर उसके घुघराले गीले बाल फैले हुए बड़े ही भव्य दिखाई दे रहे थे। मुँह के साँवले रंग की आभा पृष्ठभूमि के सफेद रंग मे बड़ी ही मोहक मालूम दे रही थी। अपनी ओर देखते देख कर बोली: "क्या देख रहे हो?—मेरा वेश या मेरा रूप?"

"दोनों ही!"

"पर पेट किसी से भी नहीं भरेगा। लो आओ, किचन मे कुर्सी खींच लो। काम भी करती जाऊँगी और बातें भी।"

"पर यह भारतीय-वेश पहले तो कभी तुमने प्रयोग किया न होगा?"

"नहीं, फिर भी आशा थी कि किसी दिन तुमसे पाला पड़ेगा ही! यदि उस दिन के लिए यह साड़ी न सहेज रखी गई, तो मेरी तपस्या न व्यर्थ हो जाएगी?"

"तो तुम भविष्य भी जानती हो?"

"कौन नहीं जानता?—जो बुद्धिहीन हैं, वे उसे ज्योतिष कहते हैं; शेष जो उनसे किसी तरह अधिक बुद्धिमान नहीं, उसे आशा कहते हैं!"

"तुम उसे क्या कहती हो?"

"मैं?—मैं कोई समझदार तो हूँ नहीं—मैं उसे केवल स्वप्न कहना पसन्द करती हूँ।—और अधिक चाहो तो 'दिवा-स्वप्न' कहलो।"

दोनो रसोई घर मे आगए। निर्मल ने कहा: "तुम पढ़ी-लिखी लड़की मालूम देती हो। कहाँ तक पढ़ी हुई हो?"

"पढ़ी-लिखी मालूम देती हूँ न!—बस, यही ठीक है! कहाँ तक पढ़ी लिखी हूँ यह तुम्हीं सोच लो!"

"मैं नहीं सोच सकता !"

"यह और भी अच्छी बात है !—सोचने से आदमी न केवल पागल ही बनता जाता है, बल्कि असुन्दर भी !"

"यह कैसे ?"

"लो, अब इसका कारण भी बताना पड़ेगा ?" सोचते रहने से आदमी ईमानदार जो बनता जाता है, और ईमानदारी जीवन का एक ऐसा विरोधाभास है कि उसे सुलझाते हुए दिमाग बौखला उठता है। उसे यह छोटी-सी व्युत्पत्ति नहीं समझ मे आती कि पूर्वापर सम्बन्ध-मात्र से कार्यकारण का सिद्धान्त नहीं स्थिर हो सकता। और वह मुर्गे की बाग को प्रातःकाल का कारण मान लेता है, बल्कि इसीलिए वह घी के आधार से वर्त्तन की स्थिति का प्रयोग भी बड़े संतोष से कर लेता है।"

"तुम तर्कशास्त्र भी जानती हो ?"

"नारी की जीभ उसी को तो कहते हैं ?—इस सोचने की गड़बड़ी में ही आदमी का यौवन खिसक जाता है, और शेष रह जाता है, यह झुर्रियों वाला, पिचके गालों का चेहरा—सोचने का साइन बोर्ड !"—और दोनों गालों मे अँगुलियाँ गड़ा कर गढ़ा करती हुई डोरा ने अपना चेहरा निर्मल के सामने कर दिया। निर्मल हँस उठा।

"लेकिन तुम न तो पागल हो, न असुन्दर ही। बल्कि तुम्हारी बातों से, जो निश्चय ही तुम्हारे सोचने की शक्ति का परिचय देती है, तुम और भी सुन्दर हो उठी हो !"

"मैं सुन्दर ?—शुक्रिया !—पहले किसी समय मैं अवश्य इतनी बदसूरत नहीं थी, जितनी आज हूँ !—तब बिलकुल नहीं सोचती थी, किन्तु दुनिया से मेरा सुख और मेरा सौन्दर्य नहीं सहा गया। मैं सोचने को विवश हुई, यहाँ तक कि मैं पागल भी होगई, और बदसूरत भी ! तब यदि तुमने देखा होता, तो घृणा से आँखें फेर लेते। आँखें तो आज भी मुझ पर तुम्हारी स्थिर नहीं रह सकतीं। किन्तु जबसे मैंने सोचना छोड़ा, तब से मुझे फिर से नया जीवन भी मिला ! इस बीसवीं सदी ने प्रकृति के बहुतेरे रहस्यों का परदा फाश किया है, किन्तु वह प्रकृति की बहुतेरी वास्तविकताओं को उसी कुशलता से परदानशीं करने मे भी कम सफल नहीं हुई है। प्रसाधनों के अम्बार मे अपने आपको छिपाती हुई इतनी मंजिल मैंने भी तै कर ली है, बिना सोचने का कष्ट उठाए ! और आज अवश्य मैं खूबसूरत दिखाई दे रही हूँगी, इसे मैं मान लेती हूँ।"

"आज क्यों ?"

"तुम जो मेरे सौन्दर्य को स्वीकार करनेवाले मुझे मिल गए !"

"दुनिया से तुम्हारा सुख कैसे नहीं सहा गया ?"

"अरे जाने भी दो ; वह लम्बी कहानी है, और दुःख से भरी हुई ! सच तो, अब तो वह मुझे पूरी याद भी नहीं है ।"

"याद भी नहीं है, सचमुच ?"

"आश्चर्य करते हो ?—बड़ी तपस्या करके उसे भुला सकी हूँ ! दुनिया का सबसे बड़ा दुःख मुझसे यदि कोई पूछे, तो मैं कहूँगी, स्मृति है ।"

"स्मृति ?—जिससे दुनिया की इतनी प्रगति सम्भव हो सकी है ?"

"दुनिया की प्रगति से तुम्हारा क्या तात्पर्य है, मैं नहीं जानती ; किन्तु स्मृति न होती, तो कोई आदमी न सोचता । और न सोचता तो उसे कोई कष्ट न होते !"

कुछ देर रुक कर निर्मल ने पूछा : "माफ करना, पर क्या तुम्हारी दुर्दशा के मूल मे क्या कोई रोमान्स था ?"

डोरा हँस पड़ी : "माफी, दुर्दशा और रोमान्स !—सुन्दर समन्वय ! माफ करने को तो मेरे पास कुछ नहीं है । मान-अपमान, यश-अपयश, सुख-दुःख मुझे कुछ छूता नहीं ! गीता में शायद एक विशेषण हैं न ऐसे व्यक्ति के लिए—स्थितप्रज्ञ ?"

"तो तुम गीता भी जानती हो ?—"

"बिना जाने भी जिसे जानना पड़ता है, उसको क्या कहा जाए ?—और रही दुर्दशा, जिसे मैं भूल ही चुकी हूँ !—कुरेद करके भी मैं उसे याद नहीं कर सकूँगी । रह गया तुम्हारा रोमान्स—" वह एक क्षण भर के लिए रुक गई !

"सो ?—"

"रोमान्स का सबसे बड़ा अभिशाप यह है निर्मल, कि आदमी बिलकुल अन-रोमाण्टिक हो जाता है । रोमान्स, उसमे क्या ताजगी रह सकती है ?—उसी चीज को बार-बार देखो, उसी चीज को बार-बार सोचो—ऊहूँ, प्रवाह और गति के अभाव मे उसमें सड़ाध पैदा हो जाती है । मैं रोमान्स के फन्दे में कभी नहीं पड़ती ।—लो यह 'चॉप' तैयार हो गया ।"

और उसने टी टेबल पास सरका कर निर्मल के सामने प्लेट मे चॉप्स परोस दिए । पास की आलमारी में से उसने एक छुरी और काँटा भी निकाल दिया । बोली : "नेपकीन नहीं हैं । सब फट गए ।"

"कोई चिन्ता नहीं—किन्तु क्या यह ठीक न होगा कि हम साथ ही ब्रेक-फास्ट करें ?"

"ठीक तो क्यों न होगा ?—लेकिन अगर तुम्हें भूख लग रही हो, तो तक-ल्लुफ की कोई आवश्यकता नहीं है ।"

"तकल्लुफ नहीं, लेकिन तुम्हारे साथ खाने में कुछ लुत्फ और ही है।—यों भूख तो बहुत लग रही है। कल से कुछ नहीं खाया ?"

"कल से कुछ नहीं खाया ?—अरे भूल ही गई, कल शाम को कहाँ गायब थे ?—मैं तुम्हे ढूंढ़ने तुम्हारे दौलत खाने गई थी। एक-एक नहीं, दो-दो ताले थे ! क्या बात थी ?"

"दूसरा ताला पुलिस ने लगा दिया था।"

"पुलिस ने ?—क्यों ?

"पुलिस के बारे में इस तरह मुँह बिगाड़ कर बात करने का नतीजा जानती हो ?"

"मैं किसी से नहीं डरती। तुम यह बताओ कि पुलिस को तुम्हारे घर पर ताला लगाने की क्या जरूरत हो गई थी ? तुमने क्या कहीं चोरी की थी ?"

"शायद !"

"यानी ?—साफ-साफ क्यों नहीं कहते ?"

"उस दिन जो तुमने मेहरबानी करके वह बड़ा-सा मनीबेग, जो किसी की जेब से निकाल कर मेरी जेब के हवाले कर दिया था—"

"सो पुलिस उसका पता कैसे लगा पाई ?"

"तुम्हे शायद याद होगा, उस दिन संध्या को तुमने मुझे न केवल अपनी आँखों की, बल्कि बोतल की मदिरा भी जब पिला दी थी, तो मेरे कण्ठ में नील-कण्ठ अवतीर्ण हो चुके थे। अपने निवास-स्थान पर, कहते हैं, मैंने वह ताण्डव किया कि पुलिस के सिवा शायद पार्वती भी मुझे नियंत्रित नहीं कर पाती ! बटुए मे कुछ विशेष न था, तीन-चार रुपए थे जो पुलिस ने अपनी जेब के हवाले किए, और दोष मेरी शराब के मत्थे। और जानती हो ?—उस बटुए की मोटाई कुछ ऐसे जरूरी दस्तावेज के कारण थी, जिनका कानूनी महत्व सबसे पहले तो मेरी गिरफ्तारी से ही प्रकट हो गया ! बस, पुलिस ने सोचा कि मारने लायक मेरी कोठरी मे भी कुछ होगा, सो उनका सर्वशक्तिमान ताला वहाँ पर भी जा बैठा।"

"फिर तुम छूटे कैसे और कब ?"

"छूटा आज सबेरे ही ! और कैसे का जवाब क्या दूँ !—शायद तुम सोचोगी कि उससे तो पुलिस की हिरासत में रहना ही मेरे लिए अच्छा होता।"

"भाग कर आए न ?—अभिनन्दन !"

"नहीं; मुझे एक लड़की ने पुलिस को रिश्वत देकर छुड़ाया !"

"लड़की ने—"

"हाँ—उसे शायद मेरे ऊपर दया आ गई ! पुलिस के कारनामों पर किसे

दया नहीं आती ?—वरना सच मानो, वह लड़की मुझसे नफ़रत ही करती है।"

"पुलिस के कारनामे—तुम साफ़-साफ़ सारी बातें क्यों नहीं कह जाते ?—पुलिस ने क्या सलूक किया तुम्हारे साथ ?"

"जो सबके साथ किया जाता है ! अभी तक पीठ और घुटने दर्दकर रहे हैं।"

"सच—पीटा उन्होंने तुम्हें ?"—डोरा उठ खड़ी हुई और पास आकर बोली—"देखूँ ?"—उसने निर्मल के घुटने और पीठ देखते हुए कहा: "तुमने क्यों नहीं कह दिया कि मनीबेग मैंने चुराया था ! मैं समझ लेती पुलिस से ! अच्छा, ब्रेकफ़ास्ट करते ही मैं डॉक्टर बुलवाए देती हूँ।—और वह लड़की—उसका परिचय नहीं दे सकते ?"

"परिचय पाकर क्या करोगी ?—पर डॉक्टर का क्या होगा ?"

"बीमार होने पर डॉक्टर क्या करता है ?"

"पर उसकी फ़ीस ?"

"उसकी चिन्ता करने की तुम्हें जरूरत नहीं है !—पर तुमने पुलिस से क्यों नहीं कह दिया कि बटुआ चुराने वाले तुम नहीं थे, बल्कि मैं थी !"

"उससे लाभ क्या होता ?"

"तुम बच जाते—"

"पर तुम फँस जाती सो ?"

"मेरे लिए"—एक क्षणभर के लिए डोरा मानो कहीं खोगई।

हँसकर निर्मल ने कहा: "वह चूल्हा गुस्सा होकर तुम्हारे चॉप जला डालेगा।"

खाना जब समाप्त हो गया, तो डोरा जाकर पास ही के किसी डॉक्टर को बुलवा लाई। डॉक्टर ने घावों को देख कर कुछ मरहम लगाने के लिए दिया, और कुछ गोलियाँ खाने के लिए, कि घाव बिगड़े नहीं, और जल्दी पुर जाएँ ! यह भी व्यवस्था हुई कि वह अधिक हिले-डुले नहीं, विश्राम करे ! चोटें खास ऐसी भयानक न थीं। पुलिस सतर्क रहती है कि उनके प्रसाद में पाई हुई चोटें साबित न की जा सकें !

निर्मल के विश्राम की व्यवस्था करके डोरा कहीं बाहर चली गई। पूछने पर उसने इतना ही कहा था कि बाहर से जो कुछ उनके लिए आया था, उसकी कीमत चुकाने का प्रबन्ध तो करना ही पड़ेगा।—प्रश्न अवश्य यह महत्व-पूर्ण है, पर इसके सोचने के लिए काफी समय है। इतने दिनों तक वह इस पर सोचता ही रहा है, सोच कर उसने क्या पाया, कि अब भी वह इस सूत्र को दूसरों के हाथ से झपट कर अपने हाथ में ले ले !—क्या यह उत्तम नहीं कि फ़िलहाल तो वह विश्राम करे !

शाम को जब डोरा लौटी तो वह बड़ी उत्फुल्ल थी, साथ में एक लड़का

था जो सिर पर सामान का एक टोकरा लादे हुए था, जिसमे फल-फूल, शाक-सब्जी, चाय-कॉफी, मक्खन आदि न जाने क्या-क्या भरा था !

देखकर निर्मल ने कहा : "यह सब क्या ले आई ?"

"क्यों गृहस्थी जो जमाना है।"

"मुझ जैसे बेकार पार्टनर के साथ ?"

"मुझे बेकार आदमी ही चाहिए !"

"सो मुझसे बढ़िया तुम्हे ढूँढे नही मिलेगा। पर क्या मेरी राय की जरूरत भी तुम नहीं समझती हो ?"

"मुझे तुम्हारी राय की नहीं, तुम्हारी जरूरत है।"

"पर मैं तो किसी भी दिन तुम्हारी पकड़ से खिसक सकता हूँ।"

"क्यों नहीं खिसक सकते ?—किन्तु क्या इसीलिए आज को, जब कि तुम मेरे पास हो, मैं निरानन्द होने दूँगी ?"

"किन्तु भविष्य का खयाल करके ही तो आदमी पूँजी लगाता है।"

"फिर भी सिर्फ इसीलिए तो वह अपनी पूँजी को डूबाने से बचा नहीं सकता। मैं भविष्य की आशंका से अपना वर्त्तमान नहीं बिगाड़ा करती, समझे !—और यही उपदेश तुम्हे भी देती हूँ। मुझे खुशी है कि मैं तुम्हे पहचान गई हूँ तुम मुझे एकाएक धोखा नहीं दोगे। याद है न हमारे प्रथम मिलन की रात्रि ?—आदमी स्त्री से कभी अपना अभाव नहीं स्वीकार करता, किन्तु तुमने अपनी गरीबी छिपाने का कोई भी प्रयत्न नहीं किया।"

हँसकर निर्मल ने कहा : "पर उस समय सिवा उस स्वीकृत के चारा ही क्या था ?—मैं तो समझता था कि तुम कुछ चतुर हो, किन्तु—"

"और उस दिन पुलिस से मेरा उल्लेख क्यों नहीं कर सके ?"

"तुम समझती हो, तुमसे प्रेम के कारण ?—नही डोरा, नारी निर्बल जो है, उसके ऊपर दया दिखाना इस सभ्यता का एक प्रमुख अंग है।"

"तो दया करके ही सही, पर तुम मुझे धोखा नहीं दोगे।—अच्छा जाने दो इन बातों को, अभी पछताने का समय नहीं है, समय है खुशी मनाने का ! घूमने चलोगे ?—पर नहीं, आज नहीं, कुछ घुटने का जोड़ ठीक हो जाए तो दो-एक दिन बाद चलेंगे !—शाम को क्या खाओगे ?"

"तुम्हारा सर !—अभी दुपहर को तो खिलाया ही है! इस तरह तो !—"

"ना, ना, मैं शाम को खाना नहीं पकाती। अब तक तो बाजार ही मे खाती रही हूँ, अच्छा तुम्हारे लिए बाजार ही से कुछ ला दूँगी।"

"पर मैं तो कह चुका कि क्या खाऊँगा ! उसके लिए बाजार जाने की जरूरत नहीं।"

"मेरा सर ?"—हँसकर डोरा ने कहा: "पर उसमे तुम्हे कुछ मिलेगा नहीं। पेट नहीं भरे तो खाया ही क्या ?"

"तो और भी अच्छा है, जल्दी हजम तो हो सकेगा।"

"उसकी भी आशा नहीं है ! मेरे दिमाग मे जो कुछ है, उसे समाज एकाएक अपाच्य ही समझता है।"

शाम को दोनों ने साथ ही खाना खाया। डोरा बिना पिए रह नहीं सकती थी, निर्मल को भी उसने कुछ पिलाया ही; उसके बाद जब डोरा पुनः बाहर जाने के लिए उद्यत हुई तो निर्मल ने रोक लिया। लाचार वह जान सकी। दोनों लेट रहे !

रात को एकाएक निर्मल की नींद उचट गई ! पास मे देखा, डोरा का पता न था ! उठ कर उसने स्विच लगाया, दरवाजे के पास जाकर देखा दरवाजा बाहर से बन्द था।

तो उसे सोता छोड़ कर वह बाहर दोस्तों से जश्न मनाने चली गई है इसीलिए तो कही उसे जबर्दस्ती शराब नहीं पिलाई गई कि पीकर वह बेसुध हो जाए और वह मजे से गुलछर्रे उड़ाए ?—रात को जब वह रोक दी गई थी, तभी क्यों निरीह बालिका की तरह वह उसकी बात मान गई ? ! इस छलना की, स्त्री चरित्र की क्या आवश्यकता थी ? यदि जाने के लिए वह तत्पर ही हो उठती तो उसे रोकने का अधिकार ही क्या था ? आखिर—

किन्तु नहीं, इतनी शीघ्र न्याय नहीं कर डालना होगा ! डोरा कोई उससे बँधी हुई नही; पैसे का अधिकार तक उसका नहीं है, इतने पर भी जब उसने निर्मल की बात का सम्मान रखने के लिए अपना जाना स्थगित कर दिया, तो निर्मल को उसके प्रति कृतज्ञ ही होना चाहिए ? तब से आखिर किस लोभ से यह नारी उसकी चिन्ता कर रही है ?—स्वयम् दीन, हीन, निरवलम्ब, और फिर भी स्वेच्छा से तथा प्रसन्नता से इस अपाहिज का भार उठाने के लिए तैयार हो गई है। यदि उसने कुछ समय अपने स्वयम् के लिए निकाल ही लिया, और वह भी निर्मल, तुम्हारे समय के मूल्य पर नहीं, तो तुम्हें क्यों विरोध होना चाहिए ?—

निर्मल ने स्विच ऑफ कर दिया, और आशा की कि पुनः गम्भीर निद्रा में खो जाए, तब किन्तु सो जाना इतना सरल नही रहा। आखिर करवटें बदलते बदलते जब पास की किसी घड़ी ने दो बजाए, तो एकाएक दरवाजे पर खटखटाहट हुई, और कुछ क्षणों के बाद ही क्षीण पदों से डोरा भीतर प्रविष्ट हुई। इस आशंका से कि सोया हुआ व्यक्ति कहीं अपनी निद्रा में आघात न पाए वह अँधेरे मे ही वस्त्र बदलती रही, उसका हिलना-डुलना तक बड़ा निश्शब्द रहा।

—तो क्या डोरा समझती है कि निर्मल बेसुध सोया हुआ है, और चाहती है कि वह कुछ जाने उसके पहले ही अपनी पूर्व स्थिति मे सो जाए ? एक क्षण के लिए अपने आपसे युद्ध करके उसने कहा—

"मेरी निद्रा-भंग का खयाल न करो डोरा, मैं जाग रहा हूँ।"

"तुम जाग रहे हो ?"—और उसने स्विच दबा कर कमरे मे प्रकाश कर दिया, कहते हुए, "मेरा कतई इरादा न था कि तुम्हारी नींद मे बाधा पड़े।"

"पर पड़ ही गई ?—तुम्हारा अभिसार छिप न सका।"

आश्चर्य से डोरा ने निर्मल की ओर दृष्टि डाली। विद्युत के प्रकाश में उसकी दीर्घ-आँखें दीप्त हो उठीं, मानों एक दूसरी बिजली कौंध गई। निर्मल का अन्तर उस एक क्षणिक दृष्टिपात से ही कट गया।

डोरा कपड़े बदल चुकी थी, उसने पुनः स्विच उठा कर कमरे में अँधेरा कर दिया। फिर धीर पदों से वह बिस्तर के निकट उपनीत हुई, और बोली :

"आवाज का बोझ बतला रहा है कि तुम नाराज हो। कैफियत चाहते हो तो वह भी हाजिर है। किन्तु यह तुम कैसे सोच बैठे कि केवल तुमसे छिपाना ही मेरा उद्देश्य था ?"

निर्मल ने कहा : "सोने दो, रात के दो बज गए हैं। दिन को सोने की मुझे आदत नहीं है।"

"रात को जागे हो तो दिन को नींद आ ही जायगी; और जिस अवस्था में तुम हो उसमे दिन को सो लेने मे कोई विशेष हानि नहीं है। फिर, यह भी तो साफ है कि इच्छा करके भी तुम अभी नींद नहीं बुला सकोगे।"

"तुम तो बुला सकोगी। रात भर जागने का व्रत रखनेवालों को भी दो बजने का समय कोई विशेष जल्दी नहीं होता।"

"अवश्य नहीं होता ? पर—इतनी जल्दी फैसला करके दण्ड का विधान कर दोगे, यह आशा कम-से कम तुमसे तो नहीं थी !"

"क्यों ? क्या परभृत होने मात्र से मैं मनुष्य भी नहीं रह गया ?"

"नहीं !—जो परभृत होते हैं, उनके स्वार्थ नाम की कोई परस्वापहारक भावना नहीं होती ! सब बच्चे ऐसे ही होते हैं; और ऐसे ही होते हैं देवता, जो अपने लिए न प्रयत्न करते हैं न चिन्ता ! वे जो कुछ करते है दूसरों के लिए।"

"निपट अकर्मण्यों को यदि तुम देवता कह कर उनकी खुशामद करना चाहो, तो यह आदर्श तुम्हें मुबारक हो। पर यदि कुछ कहे बिना रह नहीं सकती तो कह डालो। सुन लूँगा।"

कुछ क्षणों तक कमरे मे फैले अधकार की भाँति नीरव रह कर डोरा ने कहा :"जीवन की इतनी लम्बी डगर यदि बिना किसी से कुछ कहे कट गई तो

आज की रात ही नहीं कटेगी, यह मैं भी नहीं मानती। रहा सवाल छिपाने का, सो किसीसे भी जब मैंने कुछ नहीं छिपाया, तो तुम्हीं से क्या छिपाऊँगी! सचमुच चाहती यही थी कि तुम्हारी नींद मे बिघ्न न पड़े। सभी जानते हैं कि सती-सावित्री मैं हूँ नहीं; चाह कर भी हो नहीं सकती! दो कौर रोटी जुटाने के यदि सभी उपाय व्यर्थ हो जाएँ, तो केवल सतीत्व को चाट कर कोई जीवित नहीं रह सकता। इस युग मे यदि कोई यह न समझे कि गरीबी ही सबसे बड़ा अपराध है, तो कैसे कहा जाय कि वह मूर्खों के स्वर्ग मे नहीं रहता! दूधवाला, रोटीवाला आटे-दाल-चायवाला या डॉक्टर कोई मेरे चाचा नहीं लगते कि मेरी आवश्यकताएँ बिना बदले की आशा के पूरी किया करें। बदले मे या तो उनकी आवश्यकताएँ पूरी करूँ या उनकी आवश्यकताओं को पूरा करनेवाली मुद्राएँ उनको अर्पित करूँ। अर्थ शास्त्र के इस साधारण नियम को यदि मैं भूल भी जाऊँ तो और कोई कैसे भूलेगा?"—और करवट बदल कर वह भी मौन हो गई।

गरीबी सबसे बड़ा अपराध है, इसमे तो संशय नही, इसको निर्मल से बढ कर और कौन जानता होगा? मनुष्य ऊपर उठे तो कैसे?—और ऊपर उठने का मतलब? हवाई जहाज मे बैठ कर भी बिना पैरों को कष्ट दिए कल्पान्त ऊँचाई पर क्या नहीं चढ़ा जा सकता?—पैसा जेब मे हो, तो चोर बनने के सचमुच निन्यानबे प्रतिशत कारण घट जाते हैं, और फिर शेष एक प्रतिशत के लिए जेब का भारीपन कम नहीं तुलता।—जेब का भारीपन तो एक प्रतिशत के लिए क्या, निन्यानबे प्रतिशत के लिए भी कम नहीं तुलता, यह भी इस युग मे सरलता से देखा जा सकता है।

और डोरा? वह सब कुछ समझती है, किन्तु निरुपाय है, निरवलम्ब है, वह कोई निर्मल से बँधी हुई नहीं है, फिर भी कैफियत देने के लिए तैयार है। यदि निर्मल का आभिजात्य अब भी कुछ शेष हो, और उस आभिजात्य के खँडहर से अब भी कोई धृष्ट-ध्वनि डोरा को पापिनी कहना चाहती हो, तो भी यह तो उसे भी स्वीकार करना पड़ेगा कि वह पापिनी है तो केवल शरीर से, मन से उसे पापिनी कहना, शायद मन की कैसी भी प्रतिगामी अदालत स्वीकार न करेगी?

जब काफी समय बीत गया तो निर्मल ने कहा: "मुझे माफ करो डोरा, मैं सचमुच अपराधी हूँ।"

डोरा कुछ न बोली, तो निर्मल ने उसकी बाजू पर हाथ रख कर कहा, "क्या सो गई? कितनी सौभाग्यवान हो कि इतने दबाव के बावजूद तुम सो सकती हो!"

आर्द्र कण्ठ से डोरा ने कहा : "नहीं; इतना सौभाग्य अभी मुझे नहीं मिला। मुझे भ्रांति थी भी, तो तुमने उसे स्पष्ट कर दिया!"

"तो मेरे अपराध की मात्रा दुगुनी हो गई! पर मैं क्या करूँ इस प्रकृति को? तुम पर रोष इसीलिए तो हुआ कि यह मन तुम से कुछ आशा रखने लग गया है।"

"सो मैं जानती न होती, तो क्या इस तरह परीक्षा मे असफल होती?—युग की इस आर्थिक विषमता से मनुष्य का यदि सच्चा प्रेम भी कलुषित हो जाए, तो दोष किसे दिया जा सकता है?"

निर्मल ने कुछ क्षणों के उपरान्त कहा : "कैसी परवशता है! किसी भी तरह का कुछ काम पा सकने के लिए मैंने कितने प्रयत्न किए—तुम शायद विश्वास न करो डोरा—"

"विश्वास न करूँ?—क्यों? मैं क्या खुद नहीं जानती?—मैंने भी इसके पहले बहुत जगह चेष्टा कर देखी है। कुछ नियुक्तियों मे लड़कियों को लड़कों से सुविधा है, किन्तु वह सुविधा ही तो उनके लिए काल हो जाती है!-मैं एक जगह टाइपिस्ट का काम करती थी! भूखे भेड़ियों का दल भी शायद आदमी के उन कारनामों से लज्जित हो उठे। टेलीफोन एक्सचैंज मे काम किया, संदेशों के मारे नाक मे दम हो आना स्वाभाविक है, वह भी कोई सहन कर लेता है, किन्तु प्रेम के सन्देश और वे भी विनिमय के स्थान पर केवल लेने ही पड़ें, तो किस अबला के प्राण सचमुच कण्ठ को नहीं आ लगेंगे? जो धन्धा आज कर रही हूँ, करने को विवश हुई हूँ, वह मैंने स्वेच्छा से नहीं स्वीकार किया। जब यह युग आर्थिक है, और अधिक से अधिक अर्थ वसूल करने की क्षमता ही जब किसी इकाई की वास्तविक कीमत निर्द्धारित करती है, तो मैं ही क्यों न अधिक से अधिक मूल्य प्राप्त करने की कोशिश करूँ?—स्त्री हूँ, यौवन की अवस्था ही तो उसकी सुविधा की अवस्था है!"

"तो मुझे अटका कर एक नई असुविधा का सूत्रपात क्यों कर रही हो?"

"दुर्भाग्य यह है कि स्त्री केवल यौवन का नामान्तर मात्र नहीं है। शरीर के लट जाने पर भी मन तो अवलम्बन चाहता रहेगा!"

"तब अर्थ की समस्या का हल कैसे होगा? आवश्यकता अर्थ की तो तब भी वैसी ही बनी रहेगी।"

"मन के अवलम्बन से तो सौदा नहीं किया जा सकता, न उसके खिलाफ कहीं शिकायत ही की जा सकती है!—बरसात के लिए संग्रह करना मनुष्य का सहज संस्कार है। यदि वह सम्भव न हुआ तो इस गत-यौवन शरीर को श्रम की सिद्धि में लगाने में मुझे हिचकिचाहट नहीं होगी। पर आत्महत्या

मैं कभी न कर सकूँगी।"

निर्मल कुमार एकाएक उठ बैठा। डोरा ने कहा : 'क्या हो गया? कल बाजार से एक मसहरी ले आनी होगी! दिन को आज याद ही नहीं पड़ी!—खटमल हाँ भी तो कुछ आश्चर्य नहीं है, यद्यपि मैं सब से अधिक घृणा इन्हीं से करती हूँ। पर एक बात तो है, इन पूंजीपतियों से ये बुरे नहीं हैं। ये कम-से-कम एक दूसरे का रक्त तो नहीं चूसते।—क्या इन खटमल-मच्छरों मे रहने की तुम्हारी बिलकुल आदत नहीं है?"

"इनको सहन करने के लिए आदत की जरूरत नहीं है; पर तुम्हारी बातों ने मेरे समस्त अन्तरतम को छलनी कर दिया डोरा।"

"मेरी बातों ने?—मुझे अफसोस है निर्मल! शिकायत करना मैंने बहुत पहले से छोड़ दिया था। शिकायत करना अपनी कायरता के ढोल पीटने से तनिक भी श्रेयस्कर नहीं। किन्तु आज मानो मेरी समस्त श्रीहत हो गई है। जैसे कहीं गाड़ी देख कर पैर भारी हो उठे है! परन्तु मेरी बातों को तुम वास्तविक न मानो! सदैव ही तो सभी मेरी बातों को इसीलिए सुनते हैं कि उनमे कोई मतलब नहीं होता। मेरा जीवन भी यदि किसी को प्रिय है तो इसलिए कि वह बहुत हलका है। यदि उसमे मृत्यु नहीं है, तो जीवन भी नहीं है।"

"जीवन की कदाचित् यही सब से बड़ी लब्धि भी हो!—नौकरी के लिए मैंने सारा शहर छान मारा, मूर्ख हूँ मैं। निराशा न मिलती मुझे तो मिलता क्या?—देश की यदि सारी जवान पीढी नौकरी ढूँढ़ने निकल जाए तो क्या हो?—हम पढ़े-लिखे लोग, सिवा क्लर्की के और कर ही क्या सकते हैं? नहीं नहीं, डोरा, कल से मैं दूसरा मार्ग तलाश करूँगा! नौकरी नहीं, मजदूरी का मार्ग, श्रम का मार्ग!"

डोरा ने कहा : 'श्रम मे शर्म तो कोई नहीं है डिअर, किन्तु जमाना अब भी श्रम का नहीं है, यह तुम अनुभव से ही जान सकोगे।"

"फिर जमाना किस का है?

"शराफत की जबान में इसे बुद्धि का युग कहते हैं, मैं जरा साफगोई पसन्द करती हूँ, मुँहफट कह सकते हो, मैं इसे तिकड़म का जमाना कहती हूँ! पूँजीवाद श्रम का शोषण तो करता है, बुद्धिवाद ने उसके भी कान कतर लिए, वह श्रम का प्रतिद्वन्द्वी है। मैं तो रईसियत की अकर्मण्य पड़े रहने की सबसे सस्ती आदत ही को सब से अधिक मूल्यवान् मानती हूँ।—तुम्हे कुछ नहीं करना चाहिए।—यदि मेरा कहना ही मान लोगे, तो सचमुच तुम्हे महालस्य के अप्रतिम भोग अनायास ही प्राप्त हो जाएँगे। मेरी और किसी बात में

तथ्य हो या न हो, पर इसमें तथ्य की कमी नहीं है।"

"तुम्हारे ही तथ्य को स्वीकार करूँगा डोरा! पर अब मुझे नींद आ जाएगी, देखता हूँ कि तुमने मेरे हृदय पर से एक शिला का भार हटा दिया है!"

"डर है, कहीं वह भार मैंने अपने ही ऊपर न लाद लिया हो।—पर—अच्छा सोओ डार्लिंग. नींद की परियाँ तुम्हें अपने मधुर शीतल पंखों मे आश्रय दे।"

●

: १६ :

जब से डोरा ने सुझाया था कि जगत को अब दिमागी मेहनत की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी शारीरिक-श्रम की, तभी से निर्मल ने क्लर्की का पीछा छोड़ दिया, और मजदूरी की तलाश मे लग गया। देश मे जब उद्योगीकरण की लहर छाई हुई हो, तो जवान हाथों को काम का अभाव नहीं है , यहाँ तक कि अपने ही क्षेत्र मे किसी प्रकार का श्रम-दान देकर भी लोग सरकार की योजनाओं मे हाथ बँटाते रहे हैं ! किन्तु दान तो वह दे जिसका पेट भरा हुआ हो। भूदान, श्रमदान, अर्थदान, यह दानवीरता उन्हीं को शोभा देती है, जिनके पास दे सकने को कुछ हो।

बहरहाल निर्मल स्टेशन पर मजदूरी के लिए चक्कर काट आया। यद्यपि उसकी वेशभूषा सभ्यजनोचित नहीं रह गई थी, किन्तु उसकी भाषा, उसका व्यवहार, उसके तौर तरीके सभी बतला रहे थे कि वह पढ़ा-लिखा भद्र व्यक्ति है ; और यदि कुर्सी टेबुल पर न बैठकर वह यात्रियों के बिस्तर उठाने के लिए तैयार है तो स्पष्ट है कि उसमे उसकी कोई गूढ़ अभिसन्धि है !—फिर दूसरे लोगों से पैसे भी कम माँगता है !—नहीं नहीं, दो पैसे अधिक देना बुरा नहीं ! कम-से-कम पेटी-बिस्तरे से तो हाथ नहीं धोना पड़ेगा ! प्रतिदिन सध्या को जब लटकाया हुआ मुँह लेकर निर्मल घर लौटता, तो डोरा को आश्चर्य न होता। किन्तु डोरा बड़े उत्साह से उसका स्वागत करती, और उसको उल्लसित करने मे कुछ भी नहीं उठा रखती। आठ-नौ बजे रात को जब डोरा निर्मल को घर पर छोड़कर बाहर निकल जाती, तो सब कुछ जानकर भी निर्मल विवश हो जाता, उसे अपने ऊपर ग्लानि हो जाती कि

वह कितना बड़ा अपदार्थ है !

अपने स्वाभाविक चाचल्य और उल्लास के बावजूद डोरा का एक और पहलू था, जिसे वह निर्मल से चष्टा करके भी बहुत दिनों तक छिपा न सकी। बातचीत करते-करते ही, या कभी-कभी उसके सहज हास्योन्मेश के बीच एकाएक खाँसी का भयानक दौरा उसे हो आता, पूछने पर हँसकर वह टाल देती कि निगलते-निगलते थूक एकाएक उसके गले में अटक गया था, कि यद्यपि उसे इस तरह खिलखिलाकर हँसना नहीं चाहिए, पर क्या करे वह आदत से जो मजबूर है ! एक बार वह निर्मल की प्रसन्नता के लिए नाच रही थी, कि एकाएक उसे खाँसी का दौर पड़ गया, उसने अपने आपको सम्हालने का प्रयत्न किया, और वह नाचती ही रही , फल यह हुआ कि वह और भी उलझ गई, और काँपकर फर्श पर बैठ गई। निर्मल ने घबरा कर उसे हाथों पर उठाकर पलग पर लिटाना चाहा, डोरा ने हाथ से इशारा किया, निर्मल उसे बाथरूम मे ले गया। डोरा ने जो थूका तो निर्मल स्तब्ध रह गया !

"यह क्या है डोरा ?"

"रक्त—"

"यह काहे का लक्षण है, जानती हो ?"

"टी० बी० का—एक्यूट स्टेज—"

"जानती हो तुम ?—फिर भी तुमने कहा नहीं ?"

"बहुत पहले से जानती हूँ, तुमसे मिलाप हुआ उसके पहले से ! कहती तो किसे ?"

"मैंने ही तुम्हें कितनी बार पूछा था ?"

"पूछा तो था, पर जानकर तुम भी क्या करते ?"

सचमुच निर्मल जानकर भी क्या करता ? —उसके मुँह पर निराशा की छाया एकाएक ही घनी हो उठी।

डोरा ने एक क्षणभर में ही अपने को सम्हाल लिया, और निर्मल के गले मे हाथ डालकर उसके फैले हुए वक्ष मे अपना मस्तक छिपाती हुई बोली : "चिन्तित क्यों होते हो ?—इतनी जल्दी मैं मरनेवाली नहीं हूँ। किसी दिन मौत नजदीक आती दिखाई देती थी, पर जबसे तुम मेरे जीवन में आए हो, मुझ मे एक नया जीवन ही आ गया है निर्मल ! अब यदि मृत्यु मेरे पास फटकेगी भी तो उससे जूझूँगी ! मैंने जीवन में पाया ही क्या है कि इतनी जल्दी मर जाना चाहूँ ? हँसती रही हूँ सो क्या केवल इसीलिए नहीं कि हँसना बन्द करते ही कहीं रोना न पड़ जाए ?—लो चलो, मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ। भरत-नाट्य का पूरा पाठ तो मैं बता ही नहीं सकी ! नृत्य का—

"वह तोड़ा—"

"भाड़ में जाए तुम्हारा नृत्य—"

डोरा खिलखिला कर हँस पड़ी, और हाथ से उसे बाहर खींच लाती हुई बोली : "जल्दी से सीख लो इस तरह की भाषा को ! तुमने अपनी कोशिश तो कर ही देखी है, अब तुम्हारे लिए मैं कोशिश करूँगी। यहीं पर मेरा एक परिचित फोरमैन है, जो टेक्सटाइल मिलमें काम करता है, तुम्हें अब जल्दी ही नौकरी कर लेना चाहिए ! मैं कुछ दिन दवाखाने मे रहना चाहती हूँ !"

"मेरा वश नहीं चलता डोरा, मैं क्या करूँ !—पर सच कहता हूँ, तुम्हारे लिए मैं जान भी देने को तैयार हूँ !"

"सो तो तुम मुझे दे ही चुके हो। उस पर अब तुम्हारा तो अधिकार नहीं है, पर कहीं मेरा भी अधिकार न छिन जाए, इसीलिए जीती रहना चाहती हूँ। अच्छा, इस खुशी में कहो कौन-सा नाच देखना पसन्द करोगे? भरत नाट्य नहीं—तुम्हारा हिन्दुस्तानी नहीं, उसमे फेफड़ों पर बहुत जोर पड़ता है। अच्छा, लो आज तश्तरी का चीनी-नृत्य देखो !"

—मतलब यह कि फोरमैन जेकब की सहायता से निर्मल को अनस्किल्ड (अकुशल) कैटेगरी मे एक जगह मिल गई। शुरू-शुरू मे रात-पाली में १० बजे से ४ बजे तक काम करने को मिला। नया काम, रात भर जागना, शरीर को कभी आदत नहीं, और फिर अशिक्षित कर्मचारियों का अभद्र-व्यवहार, सब निर्मल को बड़े अजीब मालूम पड़े, पर यह सन्तोष कि अब वह अपने पैरों पर खड़ा हुआ है, उसके सब कष्टों को कम कर देता ! वह बहुत परिश्रम करता, अपने व्यवहार से सब को प्रसन्न रखता, दूसरों की आवश्यकता पड़ने पर सहायता—आदि गुणों से वह जल्दी ही सब का प्रिय पात्र हो गया।

इधर जब से निर्मल को काम मिला, सबसे पहले उसने डोरा की ओर ध्यान दिया। रात को दस बजे तक वही डान्स-क्लास मे शिक्षा देती थी, वह बन्द हो गया ! निर्मल भी सध्या को सात बजे तक घर पर ही रहता, दिन को वह सो लेता। रात को डोरा को अधिक मेहनत नहीं करना चाहिए ; किन्तु फिर भी अकुशल-कामगर की कमाई ही क्या होती है कि डोरा निर्मल पर सारा भार डाल दे, अतः रात की मटरगश्ती उसकी तब भी बनी हुई थी।

उस दिन पिछली रात्रि को जब निर्मल लौटा तो डोरा को बुखार चढ़ा हुआ था। यद्यपि निर्मल ने उसे सबेरे कोई काम नहीं करने की ताकीद कर दी थी, और पहला काम आज जल्दी जागकर एक अच्छे से अस्पताल मे डोरा को दिखालाने का था, किन्तु उसे डोरा ने जल्दी उठाया नहीं और जब वह

नौ बजे उठा, तो उसने देखा कि डोरा सबेरे का सारा ही काम निपटा चुकी है। ज्वर उसे तब भी पूर्ववत बना हुआ था।

"यह तो तुम्हारा अन्याय है डोरा !"

हँसकर डोरा ने कहा : "मेरा क्या अन्याय नहीं है तुम पर ? पर लो, चाय तैयार है !" और उसने एक स्टूल पास खींचकर उस पर चाय की प्याली रख दी।

निर्मल ने कहा : "चाय मैं खैर, पिए लेता हूँ ! पर तुम भी तैयार होलो; फिर अस्पताल चलना है ! अच्छा, तुम तो जानती ही होगी, यहाँ अच्छा-सा अस्पताल कौन-सा है ?"

डोरा ने निर्मल की ओर देखा, जब आँखें चार हुई तो बोली : "क्या करोगे अस्पताल चलकर ?"

"क्यों ? क्या तुम्हारी तबीयत खराब नहीं है ?"

"कौन नारी है कि पुरुष कहे और वह अपनी तबीयत को खराब नहीं कहे ?—पर देखती हूँ कि बीमार की अपेक्षा तीमारदार ही अधिक परेशान है। अच्छा, घबराओ नहीं, नहा धो लो, खा-पीलो, फिर वह जो मिशन हॉस्पीटल है, उसमे एक डॉक्टर को मैं जानती हूँ। काफी बड़ा दवाखाना है, और खूब नाम भी है। अगर तुम्हारी यही जिद है, तो एक बार दिखा आऊँगी—पर सच कहती हूँ, इन डॉक्टरों से मुझे बड़ी चिढ़ है ! जितना बड़ा डॉक्टर हो, उतना ही बड़ा रोग, छोटा हो भी, तो नाम उसका ऐसा अटपटा कि रोग से रोगी का दम न घुटे, पर नाम से तो उसकी रूह काँप ही जाती है।—"

"मैं भी तो साथ चलूँगा।"

"तुम भी ?—क्यों ?—तुम्हारी जरूरत क्या है ?—रातभर काम करना है, अगर विश्राम नहीं करोगे तो काम कैसे चलेगा ?"

"काम भी चल लेगा, तुम चिन्ता न करो।—मैं जल्दी ही तैयार हो लेता हूँ। खाना लौट कर खालेंगे।—और तब भी सोने के लिए समय की कमी नहीं रहेगी।"

डॉक्टर ने निदान किया, स्क्रीन से फेफड़े जाँचे, और कहा कि स्काइग्राम (एक्सरे फोटो) लेना आवश्यक है। प्रारम्भिक निदान से तो टी० बी० मालूम देता है। रक्त की परीक्षा, थूक की परीक्षा, अदि कई तरह की परीक्षाएँ करनी होंगी। जिस हालत मे बीमार है, उसमे उसे अस्पताल मे ही रहना चाहिए, ताकि उसकी पूरी देखभाल की जा सके, और उसे बिलकुल परिश्रम नहीं करना चाहिए। अस्पताल में रहने की व्यवस्था भी हो सकती है। जनरल वार्ड

मे तो कोई बेड खाली नहीं है, किन्तु प्राइवेट-रूम एक अभी-अभी खाली हुआ है। उसे डिसइन्फेक्ट (छूत-निवारित) किया जा रहा है, यदि वह कमरा ले लिया जाए तो व्यवस्था की जा सकती है।

डोरा ने टाल देना चाहा। जो भी हो किराया ईसाइयों के लिए पाँच रुपए रोज से घटा कर ढाई रुपए रोज है, फिर भी जिसको महँगाई आदि मिला कर कुल एक सौ दस रुपए मासिक मिलते हों, उसके लिए ढाई रुपए रोज का किराया कम नहीं होता। किन्तु निर्मल ने नहीं माना, और डोरा अस्पताल मे १४ नम्बर के प्राइवेट रूम में उसी संध्या को भरती हो गई।

तीन-चार दिन के परीक्षण और विविध परीक्षाओं के द्वारा डोरा के रोग का निदान हो गया। एक फेफड़ा बिलकुल खराब हो चुका था, दूसरे मे भी कुछ-कुछ छेद होजाने का आभास था। यदि रोगी को बचाना है तो अपरेशन आवश्यक है। आपरेशन भी अभी एक दम नहीं हो सकता। बीमार की हालत बड़ी नाजुक है। उसे पहले स्ट्रेप्टोमाइसीन का एक पूरा कोर्स इ जेक्शन देना होगा, बाहर से कुछ औषधियाँ भी देनी होंगी। उसके बाद जब कि रोगी की अवस्था कुछ सुधर जाए, अपरेशन होगा। अपरेशन के बाद रोगी को किसी सिनेटोरियम मे ले जाना होगा। कम से कम छः माह के बाद ही रोगी वहाँ से लाया जा सकता है।—कुल मिलाकर दस-बारह माह लग जाएँगे।—और हाँ—मिशनरी अस्पताल है, पैसा अधिक खर्च न हो, इस बात का विशेष ध्यान रक्खा जाएगा। अधिक-से-अधिक पाँच हजार रुपए—कम-से-कम ?—आखिर एक जीवन का प्रश्न है, क्या पाँच हजार सचमुच अधिक होता है ?

डोरा ने वहाँ से भाग आना चाहा! उसने कहा, जिस जीवन के पाँच हजार रुपए बहुत कम कहे जा रहे हैं, वह उसकी पाँच कौड़ी कीमत नहीं लगाती! पर निर्मल ने कहा—

"पाँच हजार रुपया खर्च होगा वर्ष भर में!—और क्या पता ?—डॉक्टर जब एस्टीमेट करते हैं, चाहे वह खर्च का हो या बीमारी का, या उसके इलाज ही का क्यों न हो। वे उसकी एक्स्ट्रीम (अन्तिम) अवस्था लेते हैं। हो सकता है, इंजेक्शन से ही लाभ होजाए और आपरेशन की आवश्यकता ही न पड़े! अभी तो फिलहाल चिन्ता की कोई आवश्यकता नहीं। और इतने मे कुछ-न-कुछ व्यवस्था तो करनी ही पड़ेगी। जेकब से कहूँगा, मैं दो शिफ्ट में काम कर सकता हूँ; और फिर—नहीं नहीं, डोरा, तुम अभी अपस्ताल मे रहो। मैं कुछ न कुछ व्यवस्था कर ही लूँगा।"

और डोरा अस्पताल मे रह गई। जेकब ने कहा कि दूसरी शिफ्ट मे अभी कोई जगह खाली नहीं है, होने पर वह ध्यान रक्खेगा। इस बीच उसने निर्मल

की शिफ्ट बदल दी, वह अब मिल मे दिन को बारह से आठ बजे तक रहता है।

पैसे का प्रश्न निर्मल और डोरा दोनों को चरने लगा। तनख्वाह बढ़ने की गुंजायश नहीं थी, और अधिक-काम मिलने के आसार न थे। धर्मार्थ-दान देने वालों का अभाव नहीं, किन्तु निस्वार्थ धमार्थ दान देने वाला कौन है ?—दाता का कौन-सा प्रत्युपकार निर्मल कर सकता है, या डोरा कर सकती है ?—और निर्मल जो यह सब कुछ करने पर उतारू हो गया है, वह ही डोरा से किस प्रत्युपकार की आशा मे ? डोरा उसकी कौन है ?—क्या डोरा का मर ही जाना उत्तम नहीं ?—विश्व के इस विराट तंत्र में उसके अभाव से क्या कमी हो जाएगी ? या निर्मल का ही क्या बिगड़ जाएगा? डोरा, अब क्या निर्मल के साथ निरा एक कलंक ही नहीं है ? अब भी उसके नैश विहार के साथियों का अभाव नहीं है। जिस जेकब ने उसे नौकरी दिलवाई है वह—ओफ़ उसका स्वरूप, उसकी आदतें आदि का स्मरण करके निर्मल को कँपकँपी छूट गई। उस पशु की अंकशायिनी डोरा निर्मल की शैया सुशोभित करती है !

किन्तु—कौन इसके लिए उत्तरदाई है? क्या डोरा ? उसकी संस्कृति, उसकी उपलब्धि, उसके मन का वह अलभ्य-ऐश्वर्य, जो बाहर के समाज की विभीषिका को बराबर चुनौती देता आरहा है, क्या ऐसे वन्य-पशु के ससर्ग को सहन कर सकते हैं ?—इन सब काँटों के बीच जो उसके अन्तर का सौरभ है, और जिसे उसने निस्संकोच निर्मल के पैरों में उढ़ेल दिया है, उसकी समता भी मिल सकती है क्या ?

कहाँ से कहाँ चला आया है तू निर्मल ?—कहाँ तेरी प्राप्ति का लक्ष्य थी अलकापुरी की निवासिनी नमिता,या नन्दन-कानन की पराग-पोषिता अनाघ्रात-कलिका कल्पना, और कहाँ यह नर्क के कीड़ा-कंटकित नाबदान मे सड़ते हुए पुरीष में मणि की खोज ?—नमिता को अलकापुरी का स्वामी प्राप्त होगया, कल्पना के निराकार-सौन्दर्य में उसके स्फटिक-धौत लक्ष्मीनारायण का साकार अनुराग जाग्रत होगया—रह गया निर्मल कुमार अपने ही हृदय की आग के प्रकाश में मार्ग खोजता हुआ, उसी आग मे जलता हुआ, और फिर समाज का रोष इन सबके ऊपर !

अच्छा, क्या कल्पना कुछ सहायता नहीं कर सकती ?—उसके लक्ष्मीनारायण के प्रीत्यर्थ ही सही ?—यदि उस पत्थर के देवता का समारोह सजाने में लाखों रुपया व्यय हो सकता है, तो क्या इस हाड़-माँस के देवता का पुनरुद्धार करने के लिए वह चाँदी के चन्द टुकड़ों को नहीं खर्च कर सकती ? उसके पिता के यहाँ कुछ धर्मार्थ विभाग भी तो चलते हैं ! सीधे उसके पिता को कह कर

किसी आशा के फलवती होने की तो कोई आशा नहीं है। किन्तु क्या कल्पना ही इस विचार को सहन कर लेगी कि मैं उसका एक पूर्व प्रेमी, प्रत्याख्यात ही सही, अपनी किसी दूसरी प्रेमिका के लिए अर्थ की उससे सहायता लूं ?— स्त्रियों के स्वभाव से थोड़ा बहुत तो वह परिचित है ही ! किन्तु इसके सिवा डोरा को बचाने का और कोई तो चारा दिखाई नही देता ! यदि कल्पना ने फटकार दिया ?—एक उपाय है, वह सारी वस्तुस्थिति लिखकर कल्पना को भेज दे। यदि वह गवारा करे तो वही उसको समय और स्थान का पता दे दे, ताकि उस जगह मिल कर वह सहायता लेले ! यदि उसे स्वीकार न होगा, तो पत्र द्वारा वह इसका आभास दे सकेगी। यदि या उसे पत्रका उत्तर नहीं मिला, तब भी वह समझ सकेगा कि इन तिलों में तैल नहीं है !

इधर डोरा अलग परेशान थी। जीवन से अब उसको भी मोह हो चला था। अब तक मानो वह जिए जा रही थी इसलिए कि शायद जीने के सिवा उसके पास चारा न था। मरने मे न आग्रह था, न उदासी ही। इसलिए मृत्यु को न निमंत्रण देने की आवश्यकता थी, न उसे निवारण करने की। सहज भाव से सब चल रहा था। किन्तु, अब जब कि मृत्यु का पद उसके जीवन की देहली पर दिखाई दिया, तो वह जीवन की मार्मिकता मे उलझने लगी अवश्य ही निर्मल ने ही उस मार्मिकता का रहस्योद्घाटन किया था, यह स्वीकार करना ही पड़ेगा !

और उसको जिलाए रखने का भार भी निर्मल ही ने अपने ऊपर ले लिया है। उसे भार लेना ही चाहिए, वह जीना भी तो उसीके लिए चाहती है ! जिस समय से वह उसकी आँखों के सामने आया है, वह उसी का हो गया है ! वह तो उसी क्षण से उसे पहचान गई है; वही क्षण तो उसके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण क्षण था ! मानो उसका नारी जीवन ही तब सार्थक हुआ ! यद्यपि अब तक वही निर्मल की व्यवस्था करती आई है किन्तु सचमुच तो मानो उसी पर अपना सब कुछ छोड़कर वह निश्चिन्त हो गई थी ! जीने और मरने में उसे यदि कोई रस है तो केवल इसलिए कि अंधकार मे निर्मल एकाकी न रह जाए ! वह नहीं डूबना चाहती ताकि दूसरे की डूबने की संभावना न रहे !

परन्तु चाहने मात्र से क्या वह जीवित रह सकती है ?—इतना रुपया वह कहाँ पाए ? निर्मल के ऊपर क्या इतना बोझ लाद देना उचित होगा, और लाद देने मात्र ही से क्या वह वहन कर सकेगा ? अब तक जब कि सभी कार्यों मे वही उसका बोझा ढोती आ रही है, तो आज ही अपना भी बोझ वह उस पर लाद देगी ? इनकार वह करेगा नहीं;पर यही डोरा कैसे गवारा करे कि निर्मल

उस बोझ से दब जाए !—उसके प्रेमियों की संख्या कम नहीं है, उसका गुजारा उन्हीं की कृपा से चलता आ रहा था। पर आज क्या वे मदद देंगे ?—मदद दें तो किस आशा से ?—बदले मे जिसकी कामना की जाती है, वही जब उसके हाथ से खिसका जा रहा हो, तो किस मुँह से तो वह माँगे, और क्या देखकर देने वाले ही उसे कुछ दें ?—वहाँ उनके साथ प्रेम का तो सौदा नहीं है, कि जहाँ बिना लिए ही दिए जाने में सार्थकता समझी जाए।

पर जो कुछ वह दे चुकी है,उसकी कीमत ही क्या उसे मिल पाई है ? लोगों ने उसके शरीर का, उसके रूप का व्यापार किया,यदि चाँदी के चन्द टुकड़े देकर वे उसे ठगना चाहते हैं, तो क्या उसे वह स्वीकार कर लेगी ? यदि उसने व्यवसाय किया है, तो वह पूरी कीमत वसूल करेगी ही; तभी उसका व्यवसाय करना सार्थक होगा। केवल स्त्री होने से हानि उठाना उसने नहीं सीखा ! डोरा ने प्रेमियों की सूची का मन की आँखों से निरीक्षण किया ! सभी उसका सहायता करते आ रहे हैं, बदले में उन्होंने उसके अधरों की मुस्कान, आँखों की प्रीति, और मुँह के मीठे बोल के सिवा अधिक नहीं पाया। इस श्रेणि मे वे सम्मिलित हैं, जो समय-समय पर उसकी छोटी बड़ी सहायता करते आ रहे हैं, उसे उधार सामान भी दिया है, पैसे का तकाजा नहीं किया, ब्याज भी वसूल नहीं किया। जो कुछ इस सीमासे आगे बढ़े, वे भी अर्थादि से उसकी सहायता करते रहे, परन्तु एक व्यक्ति उसे दिखाई दिया, जो बड़ी-बड़ी बातें करके भी बड़ा क्षुद्र निकला था। उससे मुलाकात हुई थी नृत्य-शाला में, पीपों से पीने वाला, प्रथम रात्रि को तो उसने ऐसा विश्वास दिलाया कि उस जैसा उदार शायद कभी न मिलेगा—बार, सिनेमा,होटल पैसे की वर्षा कर दी, निशानी के फलस्वरूप उसके रूमाल तक को चूमना न भूला; उन्हीं दिनों उससे एक सामान्य-सा हार भी उपहार मे मिला था। किन्तु बाद की रात्रियाँ उसने वादे ही में गुजार दीं। उसका पता लगाना पड़ेगा ! देखा जाए, वह कितने गहरे में है !—वह हार भी शायद अभी तक उसके पास है।

नृत्य-शाला की कुछ सखियाँ जब उसका सम्वाद पूछने के लिए आईं, तो उसने च्यवन प्रकाश के बारे में पूछ-ताछ की, क्योंकि उसका यह नया प्रेमी च्यवन प्रकाश ही था। सखियों ने सम्वाद दिया कि च्यवन प्रकाश बड़े मजे में है, उसने डोरा के बारे मे पूछा था। जब उसे मालूम हुआ कि डोरा अस्पताल में बीमार है तो उसने दूसरी सखी रेबेका से मेल-मुहब्बत शुरू कर दी है, और दोनों गुलछर्रे उड़ाते हैं। साथ ही उन्होंने च्यवन को यह कहते हुए भी सुना है कि शीघ्र ही उसका विवाह होने वाला है।

डोरा को क्रोध और निराशा दोनों ही एक साथ पागल बनाने लग गए।

इस छली युवक से किस तरह बदला लिया जाए, यही वह सोचने लगी, और उसे अपनी बीमारी का भी अधिक खयाल न रहा। टी० बी० का एक इलाज तो यह है कि बीमारी का खयाल न किया जाए, दूसरा यह है कि बीमार जीवित रहने की इच्छा को दृढ़तर करता रहे, औषधियों का नम्बर इसके बाद आता है। डॉक्टरों ने देखा कि उनकी दवाइयाँ बीमार पर असर करना शुरू कर रही है! इधर निर्मल पर भी औषधियों की अव्यर्थता प्रमाणित होने लगी, और वह नई-आशा, नई उमंग के साथ पैसे की व्यवस्था करने की चिन्ता मे लग गया।

मिल से जब संध्या को आठ बजे उसे छुट्टी मिलतीतो वह सीधा अस्पताल आता; दो तीन घण्टे वह वहीं बिताता, डोरा का मन बहलाने के लिए किस्से-कहानियाँ कहता, शहर की विचित्र बातों को विचित्र ढग से कहता, दम--दिलासा देता, और जब वह सोने की मुद्रा में होती, उसके कपाल को चूम कर घर लौट आता। परिश्रम से चूर जब वह आधी रात को घर पहुँचता तो उसे नींद आते देर न लगती। सबेरा होते ही नित्यकर्म, फिर पास ही के होटल मे कुछ नाश्ता, और फिर हॉस्पीटल, जहाँ से ग्यारह बजे वह अपनी शिफ्ट के लिए रवाना हो जाता! इस व्यस्तता भरे जीवनमे उसे शान्ति मिली थी, उत्साह मिला था, और डोरा के निश्छल प्यार के सम्बल ने उसके हृदय मे आशा की उद्भावना कर दी थी!

यों अस्पताल में पाँच बजे के पश्चात किसी को आने की छूट न थी। निर्मल था डोरा का अभिभावक इसलिए उसे यह अधिकार मिल सका था! फाटक पर जो चौकीदार तैनात थे, वे डोरा के प्रिय पात्र हो गए थे, इसलिए कभी-कभी अतिथियों को भी विशेष कष्ट नहीं होता था।

उस दिन आठ बजे जब निर्मलआया, तो उसने कहा: "डोरा, याद रखना अभी से कहे देता हूँ, चार दिन बाद यानी तारीख अठारह को मैं हमेशा के मुताबिक आठ बजे यहाँ नहीं आ सकूँगा। एक मित्र से मिल रहा हूँ, अर्थ प्राप्ति की आशा है। भूल न जाऊँ, इसलिए अभी से कहे देता हूँ, और यह चाहता हूँ कि उस दिन प्रातःकाल तुम मुझे याद दिला दो! याद रख सकोगी न? मैं तो बहुत जल्दी भूल जाता हूँ। अठारह तारीख, चार दिन बाद।"

डोरा ने दोनों हाथ निर्मल के गले में डाल दिए, बोली: "और यदि मित्र महाशय इनकार हो गए?"

"मैंने कहा था कि जितना वह चाहे मैं सूद दे दूँगा, और ऋण की रकम वह किश्तों द्वारा सीधी तनख्वाह से काट सके, ऐसी व्यवस्था कर दूँगा।"

"पर ब्याज—"

"इसके सिवा चारा ही क्या है ?—पर मित्र से अभी तो उस दिन मिलने ही की बात है। सारी बात तो बातचीत के बाद ही तै होगी। हो सकता है कि मित्रता का ख्याल उस पर हावी हो जाए और सूद की बात ही न उठाए, और यह भी सम्भव है कि वह यों ही कुछ पैसे दे दे। मित्र बड़ा धनवान् है।"

डोरा की आँखें तर होने लगीं, पर बल लगा कर उसने कण्ठ को साफ किया, और मुस्करा कर बोली : "तो मेरा बीमार होना भी सार्थक हो गया, आखिर एक मित्र की परीक्षा तो हो जाएगी ! पर ओ जादूगर, तुम्हे मैं सूद के चक्कर मे नही पड़ने दूँगी, तुम तो यह हाथ मेरे माथे पर फेरते रहो। देखो, कितनी जल्दी मैं चंगी होती हूँ ! यही नहीं, तुम्हारा हाथ इस माथे पर फिरा कि मुझे वे करिश्मे दिखाई देने लग जाएँगे कि तुम्हें पैसे की चिन्ता ही नहीं करना पड़ेगी। फेरो मेरे सिर पर हाथ।"

हँसकर निर्मल ने डोरा के सिर पर हाथ फेरा। डोरा ने उसके हाथ को मस्तक पर पकड़ कर रोक लिया, और आँखें बन्द करके बोली : "मुझे जीवन का आशीर्वाद दो, और मेरे जादू से अठारह तारीख को तुम्हें अवश्य पैसा मिलेगा। चाहे तुम्हारा मित्र इनकार ही क्यों न कर जाए।"

उस दिन जब रात को साढ़े ग्यारह बजे निर्मल चला गया, तो कुटिल हास्य से मुस्कराकर डोरा ने च्यवन प्रकाश को एक पत्र लिखा। कागज थे नहीं, किन्तु अस्पताल के छपे हुए कागजों को ही उसने काम में ले लिया ! निर्मल ने अठारह तारीख को देर से आने की सूचना देकर उसकी एक कठिनाई हल कर दी। च्यवन प्रकाश कॉलेज जाता था अतः छः-सात से पहले उसका डोरा से मिलना सम्भव न था। आठ बजे निर्मल के आने का समय हो जाता है ! जाने क्या बीते और आठ बजे तक च्यवन यदि पुनः लौट न सके तो क्या हो ?—स्वयम् निर्मल ने आज यह बात सहज कर दी।

उसने लिखा, फिर पढ़ा, पसन्द नहीं आया, उसे फाड़ डाला; फिर लिखा, फिर पढ़ा और फिर फाड़ा, आखिर चौथी मर्त्तबा उसने लिखा—लिखा अंग्रेजी में, मैं उसका अनुवाद दे देता हूँ।

"डीअरेस्ट च्यवन, मुझे यह जान कर अत्यन्त प्रसन्तता हुई कि इसी माह में तुम्हारा विवाह हो रहा है। मेरी बधाई स्वीकार करो। जीवन मे तुम्हारे बस जाने के प्रॉस्पेक्ट्स से मुझे सचमुच इतनी प्रसन्नता हो रही है कि दवाखाने में बिस्तर पर पड़े रहने पर भी मैं तुम्हे पत्र लिखने का लोभ नहीं संवरण कर सकी।

यह तो तुम जान ही चुके हो कि मैं अस्पताल मे बिस्तर पर पड़ी हुई हूँ, वरना डान्स हॉल या हमारे अभिसार-गृह-विल्सन-लॉज, कहीं-न-कहीं हमारी भेंट होती ही। तुम्हारी संगति के आनन्द से वंचित रहना कितना बड़ा दुर्भाग्य

है, यह मैं अब समझ पाई हूँ। बुरा हो इस बिस्तर का और प्लेग लग जाए इस बीमारी को। कितना अच्छा हो यदि दुनिया में स्वास्थ्य ही स्वास्थ्य हो, और जब उसका अभाव होने लगे, उसके अंशों में क्षीणता न हो, बल्कि एकदम नितान्त अन्धकार छा जाए! न दईमारे ये डॉक्टर ही, स्वास्थ्य देने की सामर्थ्य के अभाव मे, उस अन्धकार को ही छाने देते हैं, वरंच यह पत्र लिखने की विडम्बना ही शायद मेरे जीवन मे नहीं आती।

वे कहते हैं कि मैं जी सकती हूँ, और यह भी, कि जीना मुझे चाहिए क्योंकि जीने का सभी को अधिकार है! कितनी हास्यास्पद बात है कि मरने का अधिकार वे नहीं स्वीकार करते! और मजा यह कि जीवित रहना चाह कर भी आदमी को जीवित रहने की सुविधा नहीं है, जबकि मरने की उसे सुविधा है, और वह उसे करने नही दिया जाता। इन्हीं विरोधात्मक तत्वों से तो मैं इस जगत को विचित्र-अद्‍भुत मानती हूँ, और इसीलिए तो इसकी फूल-पत्तियाँ दूर रहीं, काँटों से भी मुझे अनुराग हो गया है!—तो वे कहते हैं, कि मेरी जीवित रहने की मेरी इस जरूरत के लिए मुझे अर्थ के इस युग मे अर्थ की आवश्यकता है; और कहीं से मुझे इसकी व्यवस्था करनी ही होगी। मैंने कहा कि यदि अर्थ की व्यवस्था करने का सुयोग न हो तो क्या मुझे मरने नहीं दिया जा सकता? तुम्हीं कहो न, अर्थ की व्यवस्था मैं करूँ तो कहाँ से?

ये डाक्टर, मैं कहती हूँ, इस बीसवीं सदी का एक आश्चर्य ही हैं। मेरे रोग की परीक्षा करते-करते ही वे एक और मजेदार तथ्य पर पहुँचे हैं। यह तो जानते ही हो कि अस्पताल में नाम लिखवाना पड़ता है, मेरे नाम के पहले 'मिस' लगा हुआ देखकर उन्हे बड़ा आश्चर्य हुआ था! क्यों कि उन्होंने पता लगा लिया था कि मैं एक बच्चे की मा भी होने वाली हूँ। किसके बच्चे की, यह उन्हे नहीं मालूम! यह मुझे तो मालूम है! तुम्हारे बच्चे की मा होने का सौभाग्य!—क्या आश्चर्य है कि मुझे जीवन मे आस्था होने लग जाय! और मुझे जीवित रहने के लिए कम-से-कम पाँच हजार की जरूरत है, पूरे पाँच हजार की।

जानते हो, जब मैंने कहा कि मैं पैसे की व्यवस्था कहाँ से करूँ तो उन्होंने क्या कहा?—तुम्हारी दी हुई यह सोने की जंजीर तब से मेरे हृदय से अलग नहीं हुई है। उसे हाथ में लेकर बोले, जिसने तुम्हे यह जंजीर दी है, अपने बच्चे के लिए क्या तुम्हें वह जीवन नहीं देगा? कहा, कि मेरा तुम्हारे ऊपर अधिकार है, और यदि तुम इनकार करो तो मैं कानून की शरण ले सकती हूँ। कोर्ट तो यह तक कर सकती है कि तुम्हें मेरे साथ ही विवाह करना पड़े!— नहीं हैं क्या ये डाक्टर बड़े विचित्र?

विवाह तो तुम्हारा किसी दूसरी देवी से तै हो गया है न? और इसी माह! पर मुझे तुम्हारी तो कोई उतनी जरूरत नहीं है, मुझे जरूरत है केवल पाँच हजार रुपए की, और डॉक्टर कहते हैं कि तुम ये रुपए जरूर दोगे! आखिर मुझसे तुम्हारी चाहे अब अधिक प्रीति न रही हो, पर अपनी ही सन्तान के शत्रु तुम कैसे हो जाओगे! मैंने सुझाया कि न हो तो शुरुआत मे इस जंजीर ही को बेच डाला जाय, पर मेरे सलाहकार ने कहा कि नही, यह कैसे हो सकता है। मेरी यह इच्छा होना स्वभाविक है कि यदि होने वाली सन्तान कन्या हो तो उसी का इस पर अधिकार होगा, और सलाहकार कहता था कि कोर्ट मे तुम्हारी लायबिलिटी प्रमाणित करने के लिए भी तो इसी की आवश्यकता होगी।

सो डार्लिंग, देखते तो हो, कैसी परिस्थितियों में फंस गई हूँ! शायद इस पत्र को लिखने के सिवा मेरे पास कोई चारा ही नही है।—तो अठारह तारीख को मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी, अठारह को ही। दिन को तो तुम्हे कॉलेज जाना रहता है, इसलिए साढे छः-सात तक, किन्तु आठ बजे से पहले पहले!—पॉच के बाद यहाँ वैसे आने का नियम नहीं है, परन्तु मैंने इसका भी प्रबन्ध कर लिया है। उस दिन फाटक पर जो आदमी रहेगा उसका नाम है विलियम। अपना नाम बता देने से वह तुम्हे भीतर आ जाने देगा! एक और नियम है, जो बाहर से आते हैं, उन्हे ड्यूटी वाले डॉक्टर को अपने नाम की स्लिप भेजना पडता है। तुम वह स्लिप लिख देना, उसे हिदायत है कि वह स्लिप डॉक्टर के पास न जाकर मेरे पास आ जाए।—याद रहेगा न अठारह तारीख को, सात और आठ बजे के बीच की संध्या!

आशा करती हूँ कि तुम्हे विशेष असुविधा न होगी। यदि न आ सको तो मेरा सलाहकार कहता है कि दूसरे दिन वह किसी कोर्ट मे मेरा दावा दायर कर देगा। कोर्ट पाँच हजार रुपए तो नहीं दिला सकती, किन्तु मेरे बच्चे के बाप को तो मुझे लौटा सकती है। मेरे लिए तो वह और भी अच्छा है, पर कदाचित तुम्हें असुविधा हो जाएगी।

फिर जैसा तुम उचित समझो। तुम्हारे आदेश और तुम्हारी इच्छा की अवहेलना करने वाली स्त्री मैं नहीं हूँ। अठारह को मैं तुम्हारी राह देखूँगी, और उन्नीस को अपने सलाहकार की!

अच्छा, अपने विवाह की खुशी में मेरा एक बार और अभिनन्दन! विथ लॉट्स ऑफ अफेक्शनेट किसेस, योर्स ओन सेकण्ड हार्ट—डोरा एस—"

कहना न होगा कि दूसरे दिन निर्मल के जाते ही डोरा ने पत्र पोस्ट ऑफिस में रजिस्ट्री के लिए रवाना करवा दिया!

●

: १७ :

सबसे अधिक सुखी थे महाशय च्यवन प्रकाश, यद्यपि गतवर्ष परीक्षा मे नहीं बैठ सकने के कारण उनका वजीफा बन्द हो चुका था, और उन्हें उसी पूर्व पंचम कक्षा में प्रवेश लेना पड़ा था। इच्छा करने पर वे कॉलेज में प्रवेश न लेकर इसी वर्ष एम० ए० फायनल की परीक्षा देने का प्रयत्न कर सकते थे, किन्तु ऐसी इच्छा उनके हृदय मे उदय नहीं हुई। एक तो नमिता ने स्वयम् प्रवेश ले लिया था, फिर इस वर्ष कई नए छात्र और छात्राएँ कक्षा को सुशोभित करने लग गई थीं। कक्षा मे प्रभाव भी कम नहीं था, छात्र-संघ के सभापति वही थे, सब विद्यार्थियों पर उनकी ज्येष्ठता का सिक्का जमा हुआ था! पैसे की चिन्ता न थी, नमिता जो उनकी पृष्ठ पर थी! युग के समस्त ऐश्वर्य उनके कर-तल थे, कोई ऐसा स्थान न था, जहाँ उनसे शोभा न बढ़े—होटल, बार, सभा सभी तरह की जिनमे साहित्य संगीत, सौन्दर्य सब का आराधन हो सके। अब उन्होंने कविता करना भी शुरू कर दिया था, उनका नाम ही इतना कवित्व पूर्ण हो चुका था कि 'परिमल' उपनाम रखने की आवश्यकता ही न थी, और जब कवि थे तो पीठ पर फैले सिर पर बड़े बाल, प्रतिदिन दुहराई हुई क्लीन शेव्ह, क्रीम से सुवासित गौर मुख पर सुनहरी कमानी का हल्के रंग का चश्मा, जिसके भीतर से आँखों का प्रकाश छिपकर शिकार कर सके, मन्द-मुस्कान से भरे रस-सिक्त अधरों के बीच प्रायः ही सिगरेट दबी हुई (अवश्य ही कक्षा की कैद को बाद देते हुए); उन्होंने कक्षा से निर्मल का नाम ही धो-पोंछ कर साफ कर दिया था!

नमिता को असुखी होने का कोई स्पष्ट कारण न था! कक्षा मे अब भी

उसी के सौन्दर्य की चाँदनी प्रकाश फैलाती है, और कल्पना के तिरोधान के बाद उसीका ऐश्वर्य सब की आँखों और कल्पना में है। अब भी सभी पुरुष-विद्यार्थी उसके इशारे के मुन्तजिर रहते हैं, और लड़कियाँ उसे अपना सरदार मानती हैं। फिर भी उसके मन का विकास और दृष्टि का चाचल्य मानो एक डिग्री कम हो गया है! कक्षा मे वह ठीक समय पर आती है, और ठीक समय पर उठ जाती है। च्यवन अब भी उसी के साथ कक्षा में आता है, और उसीके साथ जाता है। मार्ग में यदाकदा कॉफी-हाउस भी दो चार मित्रों के साथ हो आते हैं, किन्तु कक्षा मे कभी-कभी देखा जा सकता है कि उसके पास वाली सीट खाली रहती है। च्यवन कभी-कभी दूसरी बैठकों पर भी जा बैठता है, कोई खास बैठक नहीं, कभी इसके पास, कभी उसके पास, और नमिता की आँखों मे कोई विशेष शिकायत भी नहीं रहती, फिर भी नमिता के पास किसी दूसरे लड़के की बैठने की हिम्मत नहीं होती! नमिता मानो इसे एक तरह से अपनी मुक्ति ही मानती है। विशेष सम्वाद यह है कि च्यवन और नमिता का विवाह इसी माह मे निश्चित हो चुका है!

उस दिन कक्षा समाप्त होने पर ठीक समय पर नमिता अपनी कार में जा बैठी। कुछ देर तक राह देखने के बाद जब च्यवन आता दिखाई दिया तो उसके साथ एक नई बाला थी। कार देखते ही च्यवन ने कहा—

"ओह अभी नमिता, तुम यहीं हो?—मैंने सोचा तुम चली गई। सॉरी टु कीप यू वेटिंग, बट—एक्सक्यूज मी, आज मालती ने मुझे टी के लिए निमन्त्रित किया है।"

मालती ने सकुचाते हुए कहा : "आप भी चलिए बहन, मुझे बड़ी खुशी होगी।"

"धन्यवाद लेकिन मुझे अभी अवकाश नहीं है।" और उसने इशारा किया, कार चल दी!

"बाई बाई!" कह कर च्यवन ने हवा में हाथ फहरा दिए!

घर पर पहुँची, तो नमिता के सिर मे दर्द पैदा हो गया था। जब से उसके कमरे मे चोरी हो गई थी तब से हरी की मा हिफाजत के लिए उसके कमरे का ताला लगा दिया करती है। आज वह कॉलेज से जल्दी ही लौट आई, इसलिए उसने देखा कि उसके कमरे का ताला लगा हुआ है। हरी की मा को आवाज देने के पहले, उसने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई। देखा कि च्यवन के कमरे में ताला नहीं है। च्यवन कभी ताला नहीं लगाता, ताला लगाने की उसे आवश्यकता ही नहीं है। नमिता इतनी थकी मालूम दी कि हरी की मा को बुलाना भी उसे भारी पड़ गया। उसने भिड़े किवाड़ों को धक्का दिया, और भीतर हो ली।

कमरे की वही दशा थी, सब चीजें बिखरी हुईं, किताबें टेबल पर कला-बाजियाँ खाती हुईं; एक किताब खुली उल्टी रक्खी हुई, कुछ किताबें फर्श पर पड़ी हुईं। पलंग पर चादर का एक कोना ठीक बीच मे, दूसरा कोना जमीन को छूता हुआ, पैरों का एक स्लीपर देहली के पास उलटा पड़ा हुआ, दूसरे का पता नहीं। कमीज उधर कोने मे पड़ी हुई, शायद उसी से बूटों की सफाई की गई है, जो उसके ऊपर लगे पॉलिश के लाल निशान से स्पष्ट हो रहा है। पास आलमारी मे भी इसी तरह की व्यवस्था है, यहाँ तक कि कतारों मे रखी हुई किताबों तक का एक मन नहीं है : कोई पीठ दिखा रही है, तो कोई सामना, किसी का सिर बाहर निकल रहा है, तो कोई पर्जों के बल ही खड़ी हुई है, कोई उलटी रखी हुई है तो किसी को फर्श पर ही आसन मिल सका है! नीचे फर्श पर फटे हुए कागज के टुकड़े! सारा वातावरण च्यवन के बिखरे अव्यस्थित मस्तिष्क का परिचय दे रहा है!

नमिता पलग पर पड़ रही, और उसका भविष्य उसकी आँखों में तैरने लग गया! एक माह के भीतर यह अव्यवस्थित व्यक्ति उसकी व्यवस्था मे आजाएगा। पर क्या सचमुच नमिता उसकी व्यवस्था कर सकेगी? च्यवन के जीवन का निर्माण उसी ने किया है, इसमे सन्देह नहीं, उसके साथ च्यवन का विवाह भी उसके जीवन के निर्माण का एक पहलू है, यह नमिता ही नहीं, स्वयम् च्यवन भी जानता है, च्यवन ने कई बार भक्ति गद्‌गद् चित्त से इसे स्वीकार भी किया है, फिर भी उसके मन को सतोष क्यों नहीं होता?—यह जो समय-समय पर च्यवन के उच्छृङ्खल हो जाने की आदत है, वह क्या आशंका का कारण नहीं?—उच्छृङ्खलता तो उसके चरित्र का एक पहलू ही है, यही कमरा देख लेना काफी है। यह टेबल पर—

नमिता ने देखा कि एक पत्र पड़ा हुआ है, खुला हुआ! लिफाफा भी पास ही रक्खा है, अग्रेजी में लिखा हुआ। वह उठी, उसने लिफाफा देखा, रजिस्टर्ड; च्यवन प्रकाश ही के नाम का है पत्र और पते के अक्षर एक ही व्यक्ति के है, इसलिए यह पत्र उसी लिफाफे की सम्पत्ति है। दूसरों का पत्र पढ़ना कोई सभ्यता नहीं है। नमिता के लिए कोई आवश्यक नहीं कि वह किसी का पत्र पढ़े। फिर भी उसने पत्र को उठाकर उलट-पुलट कर देखा। अक्षर बड़े सुन्दर हैं। किसने लिखा है?—तह खोल कर देखा, काफी सुन्दर लिखावट है। यह क्या? मिशन हॉस्पिटल से?—और—नमिता ने देखा, पढ़ा 'विथ लॉट्स ऑफ अफेक्शन्स, योर्स ओन डोरा स्पर्जन!—तो डोरा की है यह चिट्ठी! एक ही क्षण मे डोरा का नाम उसके मस्तिष्क में कौंध गया, और किसी रूमाल के कोने पर कढ़े हुए "डी" अक्षर की स्मृति उसकी ताजा हो

उठी। उसने सारे पत्र को प्रारम्भ से अन्त तक एक ही साँस मे पढ़ डाला।

पढ डाला, किन्तु यह क्या ? वह एक बार नहीं, दो बार नहीं, पूरे पाँच बार उस पत्र को पढ गई। मानो उसका तात्पर्य ही उस पर स्पष्ट होना नहीं चाह रहा था, और जब तात्पर्य उस पर स्पष्ट हुआ तो मानो किसी ने उसके गालोंपर एक भयानक थप्पड मार दिया हो। यह वही पत्र था जो डोरा ने च्यवन के नाम लिखा था और जिसे च्यवन बेपरवाही से वहीं टेबल पर छोड़ कर चल दिया था।

—तो यह है वह छोकरी जिसके जाल में च्यवन फँस कर भी निकलना चाहता है, और जिसे वह छोकरी फँसाए रखना चाहती है। निकट भविष्य मे विवाह हो रहा है, यह सूचना भी उसे मिल गई है, और इस सूचना का लाभ भी उठाना चाहती है। किन्तु यदि इस उपद्रव को शान्त नहीं किया गया, तो बड़ी कठिनाई उपस्थित हो जायगी ! क्या किया जाय ?—पाँच हजार रुपए—और इस पाँच हजार के बाद भी क्या विश्वास, कि आगे भी वह इसी तरह दबाव न डालेगी ?—किससे सलाह की जाए ?

और च्यवन प्रकाश !—क्या नमिता को विश्वास है कि इस युवक से गाँठ बाँध कर अन्त मे पछताएगी नहीं ? परिस्थितियों मे वह फँस गई है, उसका स्वयम् का इतना पतन हो चुका है कि इस विवाह को सम्पन्न किए बिना वह आत्म-ग्लानि से मुक्ति नहीं पा सकती। उसके च्यवन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध भी इतने बढ चले हैं कि अब विवाह से इनकार करने के बड़े भयंकर परिणाम हो सकते हैं। समाज चाहे क्षमा भी कर दे, किन्तु उसके बूढ़े पिता उसे कभी क्षमा नहीं करेंगे ! फिर —और फिर दूसरा युवक ?—निर्मल ?—क्या निर्मल अब यह दलित-कुसुम मस्तक पर चढ़ाना पसन्द करेगा ?—उसके उस पतन के बावजूद, जिसकी वह उस रात्रि को गवाह हो चुकी है, क्या नमिता उसे जूठी पत्तल चाटने को प्रेरित करेगी ? स्वेच्छा से ही क्या उसने उसे कल्पना के लिए नही छोड़ दिया था ? और अब वह होगा ही कहाँ ?

उसके समस्त भेद से अवगत है तो कल्पना !—क्यों न उससे सलाह ली जाए इस मामले मे ? आज पन्द्रह तारीख हैं, अठारह को केवल तीन दिन रह गए हैं, और इसी बीच मे उसे कुछ निश्चय कर लेना है। वह उठी, और दर-वाजे पर आई। देखा कि हरी की मा सामने खड़ी है—

"मैं चाय के लिए पानी चढा रही थी। मालूम ही नहीं पड़ा कि आप कब आ गईं !—खैर, मैं चाय लेकर आती हूँ, मालिक आपको बैठक मे याद कर रहे हैं।"

"क्यों !"

"जेवर वगैरह पसन्द करना है—"

"अच्छा देख; पापा से कहना कि मैं कुछ देर पहले ही घूमने चली गई। मुझे एक जरूरी काम है—"

"पर ड्राइवर तो घर गया—"

"कोई बात नहीं! मैं खुद चली जाऊँगी।"

—और पीछे के दरवाजे से खुद ही ड्राइव्ह करती हुई नमिता माधव-निकुञ्ज की ओर चल पड़ी।

सान्ध्य आरती का समय था, अतः कल्पना घर पर नहीं थी। माता जी ने कहलवा दिया कि वह मन्दिर गई हुई है, यदि नमिता कुछ देर बैठे तो एकाध घण्टे से वह लौट आएगी।

किन्तु नमिता ने वहाँ ठहर कर राह देखना उचित न समझा, वह मन्दिर पहुँची।

नमिता का मन्दिर मे आने का यह पहला अवसर था। जिनके पास यौवन है, रूप है, उन्हे भगवान की आवश्यकता नहीं है; यदि उनके पास अर्थ का ऐश्वर्य भी हो तो वे भगवान को गाली भी दे सकते हैं। नमिता के पास अर्थ का ऐश्वर्य भी है, किन्तु फिर भी भगवान को वह कभी गाली नहीं देती, रहा प्रश्न उनके निकट उसके जाने का, सो आज के पहले उसे कभी इसकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी थी!

सूर्य को छिपे काफी समय हो चुका था। अत, मन्दिर के सभागृह मे विद्युत् प्रकाश के बिखर जाने मे कोई दिक्कत न थी। किन्तु प्रकाश का बिखरना क्या होता है, वह इसी सभागृह मे देखा जा सका! छत के चारों ओर विद्युत् की नलिकाएँ प्रकाशित सीमा बना रही थीं, और जिन स्तम्भों पर सभा-भवन निर्मित था, उनके साथ भी चारों ओर ऐसी ही नलिकाएँ प्रभासित थीं। ऊपर छत पर भगवल्लीला के बड़े ही मनोरम दृश्य चित्रित थे, जो नीचे संगमर्मर के शुभ्र-धवल फर्श पर प्रतिच्छायित हो रहे थे। स्तम्भों पर काँच की मीनाकारी का काम हो रहा था, जिनके काँच विद्युत् के प्रकाश मे चकाचोंध उत्पन्न कर रहे थे। वहाँ पर आँखों का ठहरना कठिन था। मालूम देता था, मानो सहस्रों रन्ध्रों मे से प्रकाश के फव्वारे चारों ओर छूट रहे हैं, और प्रकाश की बूँदों का शुभ्र धुआँ सारे सभागृह मे छाया हुआ है।

सभागृह मे दर्शनोत्सुक-व्यक्तियों का जमाव जमा हुआ है। यह कहना कठिन है कि ये व्यक्ति सेठ रमण लाल ही की गृह व्यवस्था के सदस्यों मे से हैं, या बाहर के व्यक्ति हैं। किन्तु इस युग की धारणा ईश्वर की अपेक्षा मनुष्य ही में विश्वास रखने को अधिक दिखाई देती है, अतः यह निष्कर्ष निकालना गलत

न होगा कि ये भक्ति भावापन्न व्यक्ति रमण लाल ही के अनुग्रह-याची हैं।

सभागृह के भीतर एक और छोटा-सा अलिन्द है जो उतना ही दीप्तिमान् है, जितना कि सभागृह! यह अलिन्द विशिष्ट व्यक्तियों के लिए दिखाई देता है, एक ओर दो-एक व्यक्ति बैठे हैं। उन्हीं के आगे सेठ रमण लाल एक कुशासन पर ध्यानस्थ बैटे हैं सामने की ओर नाना प्रकार के वाद्य रखे हुए हैं, जिनके पास कुछ कीर्त्तनकार—संगीतज्ञ—बैठे हुए हैं। भगवान् की पूजा का एक अग कीर्त्तन भी है, यह उसी की याद दिलाता है।

इसी अलिन्द के भीतर गर्भ-गृह है जहाँ देव-विग्रह स्फटिक के एक ऊँचे आसन पर शोभायमान है। बाईं ओर भगवन् नारायण की चतुर्भुज मूर्ति है चारों हाथों मे शख, चक्र गदा और पद्‌म, हृदय पर आजानु वैजयन्ती माला मस्तक पर मणि-मण्डित मुकुट, कानों मे रत्न-खचित केयूर, पृथुल स्कन्ध पर आलुलायित घन कृष्ण केश-पाश, रंग-बिरगे मणि माणिक्यों की अनगिनती मालाओं से सारा वक्ष प्रान्त ढँका हुआ, महीन रेशम का हरा उत्तरीय तथा पीत अधोवस्त्र! घन कृष्ण आयत-दृग, जिनमे स्फटिक-शुभ्र तरलता चमकती हुई, राग-रंजित रस के समुद्र अधरों पर शालीनता भरी मन्द मुस्कान! मानो उल्लास, कल्याण और अभय उस मूर्ति के अग-अंग से फूटा पड़ रहा था!

दाहिनी ओर लक्ष्मी का वैभव शील रूप प्रभूत ऐश्वर्य मे छलकता हुआ अर्द्ध-निमीलित आँखें ईषत् दृष्टि से भगवान के रजित चरणों मे झुकी हुईं अधरों पर लास्य-भावाच्छन्न आनन्द। देख कर नेत्र तृप्त हो उठते थे।

—और इस सारी सज्जा को सजाने वाले निपुण-हाथों की जीवन्त मूर्ति कल्पना थी, जो तब भी एकाग्र चित्त होकर इस वैभव को सजा रही थी, यह कहना कठिन है कि जो उल्लास, जो कल्याण, जो अभय वहाँ पर विकीर्ण हो रहा था, वह उस प्रस्तर-मूर्ति का प्रभाव था या काव्य की कल्पना के समान ही मनोमुग्ध कारिणि कल्पना कुमारी के हाथों का। किन्तु जिस मनोयोग से वह यह सेवा निष्पन्न कर रही थी उससे स्पष्ट है कि मानो समस्त जीवन की साधना का मार्ग उसे मिल गया है, और उसके जीवन की पुंजीभूत समस्त श्री उसका समस्त रस, उसके निखिल आनन्दोच्छास मानो राह पाकर प्रबल वेग से प्रवाहित हो गए हैं। जिसको जीवन में ऐसा लक्ष्य प्राप्त हो जाए उसकी आगे क्या आकाक्षा हो सकती है, यह उत्सुकता की प्रतिमूर्ति नमिता भी उस क्षण में नहीं सोच सकी!

नमिता कुमारी को देखते ही दरबान को सन्देह न रहा कि उसे विशिष्ट अतिथियों के मध्य-गृह में ले जाना है। वहाँ पहुँचते ही नमिता ने सेठ रमण-लाल को पहचान लिया, और उसने नमस्ते की। सेठ रमण लाल ने भी अपनी पुत्री की सखी को पहचान लिया, और मुस्करा कर स्वागत किया अपने पास बिठाया।

"आओ बेटी, अब भगवान की आरती शुरू होने ही वाली है, पन्द्रह-बीस मिनिट लगेगे, और फिर कल्पना को छुट्टी ! पर अबकी बार तो बहुत दिनों मे दिखाई दी !"

"कॉलेज से जो अवकाश नहीं मिलता चाचाजी, कल्पना ने तो छोड़ ही दिया !—उधर गरमियों में पहाड़ चली गई थी। आपको तो मालूम ही होगा डॉक्टर ने कहा था कि आबहवा बदलना जरूरी है! पर चाचाजी, कल्पना का पढ़ना आपने क्यों छुड़वा दिया ?"

हँस कर रमण लाल ने कहा : "मैंने छुड़वा दिया ?—पर देखता हूँ, पढ़ना तुम्हारा भी अब कौन-सा चलेगा !"

"क्यों ?"

"बनो मत बिटिया !—हम बूढ़े अवश्य हो गए हैं, पर नौजवानों की खबरें तो हमे भी मिला ही करती हैं ? आज तो कल्पना को भी कुछ रोष हुआ जब मैंने उससे तुम्हारे विवाह की बात कही। विवाह में निमत्रण चाहे न देना चाहो, पर जौहरी के व्यवसाय का आखिर यह लाभ तो है ही, कि प्रसन्नता के अवसरों पर उन्हें स्मरण किया ही जाता है !"

नमिता ने कुछ उत्तर नहीं दिया, मुस्करा कर लज्जा से उसने आँखें नीची कर लीं।

रमण लाल ने कहा : "सुमन बाबू आज ही कुछ जेवर ले गए हैं, कि तुम पसन्द कर सको ! वह तो खैर, सुमन बाबू का अधिकार है, पर बिटिया, इस बूढ़े चाचा का क्या कुछ भी अधिकार नहीं !"

"आप मेरे पिता तुल्य ही हैं चाचाजी !"

"तो एक और दिन कल्पना तुम्हे दूकान पर लिवा लाएगी, वहाँ अपनी पसन्द का कुछ चुन लेना।—लो, आरती शुरू हो गई,"—और वे खड़े हो गए। सारा समुदाय खड़ा हो गया, नमिता भी रमण लाल के पार्श्व मे खड़ी हो गई। और मुहूर्त्त भर में पुजारी की घटिका के साथ ही साथ, आरती का तुमुल घोष चारों ओर फैल गया।

एक कोने में नक्कार खाना बज रहा था, सामने सभागृह मे कई व्यक्तियों के हाथों में कास्य-ताल बज रहे थे, कुछ के हाथों में घड़ियाल बज रहे थे, और शेष समुदाय अपने हाथों की करताल ही से मग्न हो रहा था। भीतर से निकल कर कालागुर का सुवासित धूम्र चारों दिशाओं में व्याप्त हो रहा था, जिससे समस्त-दर्शकों के नासारन्ध्र आपूर्ण थे। दीर्घ-शिखा-सूत्र-धारी ब्राह्मण-प्रवर के हाथों में मणि-खॅचित स्वर्ण नीराजन मे घृत की प्रदीप्त पंच-शिखा लक्ष्मीनारायण की बलैयाँ ले रही थी। और ध्यान में मग्न बन्द आँखों से कल्पना किस

अतीन्द्रिय-भावना मे लीन थी, यह उसके परमात्मा के सिवा कोई नहीं जानता था। जब पुजारी की आरती समाप्त हो गई तो उसने कल्पना को इशारा किया। कल्पना आगे बढी, और नीराजन को अपने हाथों में ले लिया। वाद्यों के स्वर और भी तीव्र-तर हो उठे। आरती उतार कर कल्पना ने उसे नीचे चौकी पर रख दिया, और जब पुजारी ने शख से प्रक्षालन का जल उसके मस्तक पर छींटा तो उसने बड़ी भक्ति से देवता के चरणों पर मस्तक लगाया, तथा आरती को आस ली। पुजारी ने आरती के थाल को हाथ मे उठा कर बाहर सभा-मण्डप मे प्रवेश किया, सभी भक्त आरती की शिखा को छूकर आँखों से लगाना चाहते थे। नमिता की आँखें किसी दूसरी ही वस्तु की ओर थीं। पुजारी जब आगे बढ गया, तो नमिता की दृष्टि फिर गर्भ-गृह की ओर मुड़ गई!

रमण लाल ने कहा: "आरती का केवल एक ही भाग समाप्त हुआ है, दूसरे भाग मे कीर्त्तन होता है, और तीसरे भाग मे नृत्य, शेष मे होता है भगवान का गुण श्रवण और तत्त्व-चिन्तन! कल्पना सभी में नेतृत्व करती है,—ना ना, व्यग्र न होओ,—मैं अभी उसे कहलवा देता हूँ, आज उसे छुट्टी है।"

और जब पुजारी लौट कर भीतर प्रवेश कर रहे थे, तब रमण लाल ने कहा "जरा कल्पना को भेज दीजिएगा।"

कल्पना जब गर्भ-गृह से बाहिर आई तो नमिता आगे बढ़ी—

"अरे दीदी! तुम—यहाँ!"—और मानो किसी लज्जा के भाव से मुग्ध होकर उसने नमिता को अपने वक्ष से लगा लिया।

नमिता ने कहा: "तपस्वनी, वरदान मिलेगा?"

हँस कर कल्पना ने कहा: "महर्षि च्यवन-तुल्य अक्षय-यौवन का स्वामी तुम्हें वर रूप मे शीघ्र ही प्राप्त हो।—पर ठहरो, पिता जी से कहलूँ।"

"क्या!—यह बात—"

"नहीं नहीं; आज की छुट्टी ले लूँ।"—और उसने पिता की ओर देखा।

कमरे मे प्रवेश करते ही नमिता ने कहा: "कॉलेज से लौटने के बाद से अभी तक न कुछ खाया है, न पिया है। पहले तो कुछ चाय या कॉफी, और कुछ खाने के लिए—"

"अवश्य, पर पूछती हूँ प्रसन्नता के अवसर पर ऐसी उदासी का कारण?"

"सुनोगी कल्पना, सुनोगी! बहुत कुछ सुनोगी! धीरज रखो पर देखती हूँ कि तुम तो बहुत ही प्रसन्न हो।"

"सो ही तो होना चाहिए न दीदी!"

"सचमुच होना तो यही चाहिए, पर नहीं होने के ही इतने अधिक

प्रसंग मिलते हैं, कि जब यह होता है तो आश्चर्य होता ही है।"

"तुम बैठो, मैं चाय-कॉफी के लिए कह कर आती हूँ, और फिर खाना यहीं खाकर जाना होगा।"

"सो नहीं हो सकेगा कल्पना, पापा मेरे लिए राह देखते बैठे रहेंगे।"

"लेकिन वे बैठे न रहें, यह तो तुम फोन करके कह सकती हो। या तुम कहो तो पापा से मैं ही आदेश प्राप्त करलूँ।"

"अच्छा भाई, चाय की तो कह आओ, खाना अभी कौन खा लेना है।"

नमिता ने देखा कि कोने मे एक छोटी-सी खटिया पर जिमी लेटा हुआ पड़ा है। आँखें खोल कर उसने आगन्तुकों को देख लिया था, ललचाई-दृष्टि से उसने कल्पना की ओर देखा भी था, किन्तु वह समझ गया कि प्रसंग उसके साथ बातचीत का नहीं है, अतः वह फिर अपने आसन पर निरीह होकर पड़ रहा, किन्तु पड़े-पड़े भी उसकी दृष्टि नमिता पर ही टिकी थी। जैसे ही दोनों की दृष्टि चार हुई, नमिता ने कहा—

"ओह जिमी, तुम्हे क्या अपनी मालकिन के ही शयन-कक्ष मे सोने का अधिकार है?"

सिर हिला कर तथा आँखें बन्द कर जिमी ने मानो गर्व तथा उल्लास के साथ इस अधिकार को स्वीकार किया।

"मेरे पास नहीं आओगे जिमी?—आओ!"

जिमी उठा, और धीर-पदों से जमीन सूँघता हुआ नमिता के पैरों के पास जा खड़ा हुआ। विद्युत के प्रकाश मे उसकी चक्षु-कोटरों में मानो दो स्फुलिंग चमक रहे थे। चौड़े पृथुल कान दोनों ओर अलस भाव से झूल रहे थे, मसृण कोमल आधी भूरी, आधी काली लम्बी रोमावली सारे बदन को छाए हुए थी। नमिता ने उसे उठा कर गोद मे बिठा लिया। उसका स्पर्श इतना कोमल, इतना स्निग्ध, इतना आनन्ददायक था, कि उसे गोद से उतारने की इच्छा नहीं होती थी। और अपने प्रति दिखाए गए प्रेम को वह इतनी गहराई और कृतज्ञता से अनुभव करता था, कि आँखें बन्द करके अपनी समस्त वासनाओं को मानो निरस्त कर वह निर्वैयक्तिक होकर अपने समस्त भाव का मूक समर्पण कर देता था!

लौटते ही कल्पना ने कहा: "अच्छा यह बताओ दीदी, इतने दिनों से दिखाई नहीं दी, और एकाएक ही ब्याह पक्का कर लिया!"

"जल्दी न करो; विवाह न तो एकाएक, न पक्का ही हुआ है! गई बार क्या मैंने नहीं कहा था?"

"गई बार तो तुमने बहुतेरी बातें कही थीं। जब और बहुत-सी बातों

को भुला सकी हो, तो इसी को याद रखोगी, यह कैसे माना जा सकता था।"

"बहुतेरी कौन-सी बातें भुला सकी हूँ ?"

"जो भूल गई हो उन्हें स्मरण करने से क्या लाभ होगा !—जो भुला दी गईं, वे भूलने के योग्य ही तो होंगी ! नहीं तो वे भी क्या इसी तरह याद न रहती ?"—जिमी नमिता की गोद से एकाएक उठ कर कल्पना के पैरों में खड़ा हो गया।

नमिता ने कहा : "मैं समझी ! निर्मल का पता लगाने का मैंने वादा किया था। ठीक न ?"

"एक यह भी बात थी ! मंजूर करती हो न ?"

"मजूर करती हूँ ! और उसका पता न लगाया हो, यह भी बात नहीं है। किन्तु—"

"किन्तु क्या—कहो न !—रुक क्यों गई ?"—धड़कते हृदय स कल्पना ने पूछा !

"क्या अब भी तुम उसकी खबर जानने को उत्सुक हो ?"

"यदि मेरा अधिकार न समझो तो जाने दो, किन्तु तुमने तो च्यवन को स्वीकार जो कर लिया है।"

"नहीं, मेरा मतलब था कि क्या तुम्हें मेरे सम्वाद की प्रतीक्षा थी ?"

"जब तुमने वादा किया था दीदी, तो स्वाभाविक तो यही था कि मैं प्रतीक्षा करती !"

"किन्तु जिस लक्ष्य को लेकर तुम व्यस्त हो गई हो कल्पना, उसमें यह तो नहीं दिखाई देता कि तुम किसी की प्रतीक्षा भी कर रही हो !—आज ही तुम्हारे जीवन का व्यस्त भार देख पाई हूँ ! लगता तो नहीं कि तुम्हे और कुछ करने की या किसी की राह देखने की फुरसत भी हो, या गरज भी हो !"

हँस कर कल्पना ने कहा : "जब खुद विवाह करने जा रही हो, तो दूसरों के लिए ऐसा अनुमान करना तभी सुविधाजनक होता दीदी, जब कि तुम्हारे वर मे ही मेरी आसक्ति होती। किन्तु तुम्हारी तपस्या मे मैं तो कहीं बाधा नहीं हूँ !"

"परन्तु तुम्हारी तपस्या क्या अब भी अधूरी है ? जिस ठाठ से तुम्हारी आरती होती है, कौन मनुष्य पत्थर न बन जाना चाहेगा ?"

"मालूम होता है, इसलिए मेरी साधना के भगवान् पत्थर बन गए हैं ! किन्तु इस पत्थर को रिझाने के लिए ही मुझे कितना प्रयत्न करना पड़ता है दीदी, तुम नहीं जानतीं ! यदि मुझे खींच लाने के लिए तुम वहाँ न टपक पड़तीं, तो जानती हो मैं क्या करती ? कीर्तन मे भाग लेती, नृत्य में भाग लेती, और

फिर उस पुजारी की कथा मे योग देती। रात्रि के ग्यारह-बारह बज जाते, जब कि उनके शयन का शंख बजता। निराश और थकित पदों से जब मैं लौटने को होती हूँ, तो सतृष्ण नेत्रों से एक बार और उस मूर्त्ति की ओर देखना नहीं भूलती; और फिर भी पाती हूँ कि वह तो तब भी पत्थर ही बनी हुई है।"—और जब एक दीर्घ-निश्वास उसने ली, तो आँखें बन्द कर उसने उस पत्थर की मूर्त्ति को हृदय की गुफा मे स्पष्ट किया—किसकी मूर्त्ति उसे दिखाई दी, यह नमिता न जान सकी। किन्तु कल्पना ने तभी आँखें खोल कर मुस्करा दिया, और बोली : "तो सुनाओ न निर्मल की बात दीदी, क्या पता लगाया तुमने ?"

"उसे न सुनना ही अच्छा है कल्पना, तुम्हारे दिल को ठेस पहुँचेगी! वादा याद रहते हुए भी, इसीलिए तुम्हे अवगत कराना मैंने उचित नहीं समझा।"

"ठेस मेरे दिल को ?"—कल्पना ने अपने हृदय पर हाथ रक्खा, सचमुच वह धड़कने लग गया था, किन्तु वह बोली : "पत्थर की पूजा वही तो कर सकता है, जिसका दिल पत्थर का हो।—अगर ठेस लगे, और यह टूट जाए तो बुरा क्या है, पत्थर ही तो न रहेगा न ?"

"तो सुन—"

चाय आ चुकी थी। कल्पना ने चाय बनाना शुरू किया, और नमिता ने कल्पना को वह सारी कथा सुना दी जो वह निर्मल के पुलिस स्टेसन पर गिरफ्तार होने के सम्बन्ध मे जानती थी केवल च्यवन का प्रसंग वह बचा गई।— इसी बीच वह दो कप खाली कर चुकी थी, जब कथा शेष हुई तो उसने कल्पना की ओर देखा—

कल्पना ने उठ कर कह : "नहीं अब अधिक नहीं; खाना भी तो खाना है तुम्हें!—मैं अभी आई!" और वह दरवाजे की ओर बढ़ी!

"पर तुम्हें हुआ क्या?—तुम्हारी आवाज,"—लेकिन कल्पना बाहर जा चुकी थी! जिमी साथ होलिया! नमिता ने देखा कि कल्पना ने चाय भी नहीं पी है! चाय पीने मे और बात करने में उसने कल्पना की ओर ध्यान ही नहीं दिया था! जरूर उसके हृदय को ठेस लगी है, उसकी आवाज ने आखिर उसे धोखा दे ही दिया, और क्या पता, उसकी आँखें भी धोखा दे बैठी हों! नमिता ने लक्ष्य नहीं किया, और जरूर वह छिपाने के लिए ही उठ कर चली गई!—शायद उसका कुत्ता अपनी मालकिन के भावों का अध्ययन कर रहा था, इसीलिए वह भी उसके साथ चला गया है।

—तो ?

कल्पना लौटी, तो उसने अपने आप को पूर्ण रूप से संयत कर लिया था।

फिर भी मुँह की श्यामल-आभा पर उद्वेग की कुछ झाँई झलकने लग गई थी, जिसे नमिता ने ताड़ लिया। जिमी को वह हाथों में उठाए हुए थी, मानो उसकी सहानुभूति का उत्तर देना चाहती थी।

आते ही नमिता का प्रश्न हुआ : "तुमने तो चाय भी कुछ नहीं पी ?"

"शाम को पी ही चुकी थी! अगर अभी पी लेती तो खाना कैसे होता ?"

"खाने की अब मेरी भी कोई इच्छा नहीं रही।"

"तुम्हारी बात शुरू हो, उसके पहले कुछ और क्या पहली बात का कहने को शेष नहीं है ?"

"यानी ?"

"पुलिस-थाने से तो निर्मल निश्चय ही छूट गए होंगे। पर बाद में उनका क्या हुआ ?"

"क्या तुम सोचती हो कि इतने पतन के बाद किसी की उसमे दिलचस्पी रह सकती है ?—उसके बाद निर्मल का मुझे कोई हाल नहीं मालूम, न मैंने मालूम करने की चेष्टा ही की।"

एक क्षण के लिए कल्पना मानो अपने आप में खो गई, फिर एक लम्बी साँस लेकर उसने कहा : "क्या दशा हो गई बेचारे की, केवल तुम्हारे प्रत्याख्यान से दीदी, पर खैर अपनी बात तो कहो।"

एक क्षण तक मानो अपने आपको प्रकृतिस्थ कर नमिता ने जेब से एक कागज निकाला और कल्पना को थमाते हुए कहा—

"कहानी शुरू करने की अपेक्षा यह पत्र ही पढ़ डालो—मेरी चिन्ता तुम्हें समझ में आ जाएगी।" यह वही पत्र था जो डोरा ने च्यवन प्रकाश को लिखा था, और जो अनायास ही नमिता के हाथों पड़ गया था। कल्पना ने उसे पढ़ा, एक बार नहीं दो बार, और पढ़ कर टेबल पर रख कर बोली—

"तो यह हैं दीदी, तुम्हारे द्वारा गढ़े हुए च्यवन प्रकाश !"

"हूँ! और इसी माह इनसे मेरा गठबंधन होने वाला है, जिसका अभिनन्दन तुम दे चुकी हो।"

"अभिनन्दन तो तुम्हे दिया गया और इसलिए कि तुम्हारी कामना सफल होने जा रही है, यह सोच कर! तब तो वह दिया ही गया था, अब भी तो वह दिया ही जा सकता है !"—उसकी वाणी मे ईर्ष्या का क्षीण, आभास लक्ष्य किया जा सकता था।

नमिता ने लक्ष्य नहीं किया, बोली : "इसीलिए तो देखते ही पत्र भागी आई हूँ, तुम्हारी राय लेने।"

"मेरी राय की जरूरत हो, तो पत्र को तो रखो इस तरह जेब में—"और

उसने पत्र अपने ही ब्लाउज की जेब में खोंस लिया : "और चैन की नींद सो कर सुहाग रात की प्रतीक्षा करती रहो, उस दिन मुँह दिखाने के लिए जब कहा जाय, तो दिखा देना यह पत्र !"—और वह मुस्करा उठी।

"मजाक रहने दो कल्पना ! तुम नहीं जानती इससे मुझे कितनी चिन्ता हो गई है !"

"चिन्ता ही क्यों, सौतिया-डाह कहो न !"

"और यह अठारह तारीख ?"

"सो तीन दिन बाद विवाह के पहले ही वह भी बीत जाएगी !"—निश्चय ही कल्पना ठीक सूत्र पकड़ना नहीं चाह रही थी !

झुँझला कर नमिता ने कहा : "किन्तु इसमे लिखी हुई बातों का क्या होगा ?"

"ओह !—डोरा से च्यवन की मुलाकात ?—जाते-जाते एक मुलाकात हो ही जाने दोगी दीदी, तो पुराने प्रेमी तुम्हे आशीर्वाद ही देंगे !"

"तुम बड़ी असाध्य हो कल्पना ! मैं कहती हूँ यह मुलाकात आखिरी ही होगी, इसका क्या निश्चय ?"

"सो तो पत्र में लिखा ही है।"

"और पाँच हजार रुपए ?"

"वह भी पत्र मे लिखा है।"

"पर देगा कौन ?"

"इसकी चिन्ता तुम क्यों करती हो ?—अठारह तारीख तो विवाह के पहले ही बीत जाएगी। देना होगा तो जरूर जीजा जी ही दे देंगे।"

"और यदि नहीं देना हुआ तो ?"

"सो भी वही निपटेंगे !"

नमिता खड़ी हो गई ! बोली : "तुम्हें मजाक सूझ रहा है ? मैं चल दी—" और वह आगे बढ़ने के लिए तैयार हो गई।

कल्पना ने उठ कर उसका हाथ पकड़ लिया, और बोली : "मेरी कसम है दीदी, अपनी राय तो मुझे देना ही पड़ेगी ! सोचती थी, यदि कविता की तुक मिल जाए, तो छन्द रचना कर डालूँ ! इस पत्र ने कुछ भाव पैदा कर दिए थे—"

नमिता पुनः बैठ कर बोली : "खाक भाव पैदा कर दिए थे !"

"अरे ! व्यभिचारी-भाव ही सही ! पर लो, तुम नाराज होती हो तो गद्य ही मे बात करूँगी !—अच्छा अब यह बताओ, तुम्हारे ऊपर इस पत्र की क्या प्रतिक्रिया हुई है ?"

"मुझ पर ?—बुरी से बुरी !"

"सो तो देखती हूँ; किन्तु कोई विशेष धारणा—स्पेसिफिकली, हैसे आइ मीन,—"

"साफ साफ कह न, क्यों शब्दों को चबा रही है ?"

"ताकि बात सरलता से पचा सकूँ !—मतलब यह है कि इससे तुम्हारे विवाह के संकल्प मे तो कोई बाधा नहीं उपस्थित हुई ?"

"अगर हो भी, तो पिता जी क्या समझेंगे ?"

"पिताजी क्या समझेंगे ! उन्हें क्या तुम्हारे मतामत की चिन्ता न होगी?"

"मेरे मतामत की चिन्ता ही से तो मेरी इच्छा के अनुसार उन्होंने यह विवाह निश्चत किया है। किन्तु अब उन्हें एक अन्यथा मत देना, क्या उनको विचलित नहीं कर देगा ?"

"सारी बातें उन्हें खोल कर कही जाएँ, तो मैं समझती हूँ, वे कदापि संतप्त न होंगे ! और फिर अभी तक तो केवल विवाह ही की बात लोगों में फैली है, किसके साथ होगा, यह कोई अनुमान ही तो लगाता होगा। उनके लिए भी तो एक आश्चर्य खड़ा किया जा सकता है !"

"तुम्हारा मतलब ?"

"यही कि विवाह का तुम्हारा संकल्प तो रहे, विवाह के पात्र के बारे में तुम्हारा चुनाव—"

"यानी च्यवन की जगह कोई दूसरा ?"

"यदि तुम सोचो कि च्यवन से तुम्हारा मत नहीं मिल सकता हो तो !"

"पर दूसरा कौन ?"

"योग्य युवकों की समाज मे कमी तो है नहीं।"

"पर बिना जाने पहचाने—"

"यदि जाना-पहचाना ही मिल जाए—"

"पहेलियाँ मत बुझा कल्पना, कह न तेरे मन में क्या है ?"

"यदि निर्मल का नाम लूँ?"

"निर्मल ?"—नमिता की आँखें नीचे झुक गईं; अभी-अभी वह कल्पना के सामने कड़े शब्दों में उसकी भर्त्सना कर चुकी थी !—इस प्रसंग की पृष्ठ भूमि में उसने निर्मल को सोचा ही नहीं था ! किन्तु तब भी वह बोली—

"किन्तु उसके जिस चरित्र का मैं उल्लेख कर चुकी हूँ, उसके बाद भी क्या उसकी पात्रता नष्ट नहीं होती ?"

"क्या पात्रता च्यवन की नष्ट नहीं हो चुकी है ?— मैं नहीं जानती, किन क्षणों मे निर्मल इतना नीचे गिर पाया। बिना जाने मैं उसकी आलोचना नहीं

करूँगी। फिर भी एक बात तो स्पष्ट है। अपराध उससे यदि हुआ भी हो, तो यह तो तुम्हें स्वीकार करना पड़ेगा दीदी, कि निराशा और हार के बोझ से जमीन पर ही गिरने की अपेक्षा, आशा और ऐश्वर्य के हिमालय पर चढ़ कर गिरना कई गुना अधिक भयानक है!"

"किन्तु—"नमिता नहीं कह सकी!

कुछ क्षणों तक उसके चेहरे की ओर देखती रह कर कल्पना ने कहा: "जाने दो बहन, भीतर की बातें मैं नहीं जानना चाहती! शायद च्यवन से तुम्हें सचमुच प्यार हो गया है! तो ठीक है, मेरी राय है कि तारीख अठारह को तुम च्यवन से पहले ही उस लड़की से मिल लो। और पाँच हजार रुपया देकर उसे राह से हटा दो!"

नमिता ने कहा: "तुम सोचती हो इस पाँच हजार से पीछा छूट जाएगा?—क्या वह बाद में और हाथ नहीं फैला सकती?"

"क्यों नहीं फैला सकती!—किन्तु एक बार विवाह हो जाए तो फिर उसे कौन पूछता है? केवल विवाह तक वह मुँह बन्द रख ले!"

"बाद में जब वह सन्तानवती हो तब? फिर क्या कोई बखेड़ा नहीं खड़ा हो सकता?"

"खड़ा हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता! मैं कानून तो कुछ जानती नहीं। किन्तु एक बात और हो सकती है। यदि डॉक्टर से कह कर चुपचाप ही उसके गर्भ-स्राव की व्यवस्था करवा दी जाए!—या उसे ही उसके गिरते हुए स्वास्थ्य के कारण इसके लिए प्रेरित किया जा सके! दो एक हजार और अधिक व्यय हो जाएगा। पर काँटा तो सदैव के लिए दूर हो जाएगा!"

लम्बी साँस लेकर नमिता ने कहा: "दीखता है, इसके सिवा कोई मार्ग नहीं! एक बात और करो न कल्पना, क्यों नहीं तुम भी मेरे साथ चलती? तुम बड़ी बुद्धिमती हो। तुम शायद उससे बड़ी अच्छी तरह बात कर सकोगी। हो सके तो मैं अपना वह हार भी वापिस ले लेना चाहती हूँ।"

"वह तो लेना ही पड़ेगा दीदी! पर नहीं मिल सके तो भी कोई खास चिन्ता की बात नहीं है। चुरा कर भी वह ले जाया जा सकता है!—लेकिन मैं कैसे आ सकूँगी! माताजी को तो तुम जानती ही हो!"

"ओह! यह तो मैं भूल ही गई थी।"

नमिता कुछ देर तक ध्यान-मग्न रही। मानो उठती हुई एक लम्बी साँस को दबा कर उसने फिर पूछा: "क्या निर्मल के प्रति तुम्हारे हृदय मे अब भी वही रुझान है?"

कल्पना ने ऊपर नहीं देखा, इसी तरह टेबल की ओर देखते हुए

मुस्करा कर उसने कहा : "वही, जो सदैव से रही है।"

"उसके पतन का सारा इतिहास सुनकर भी ? आश्चर्य है।"

"वह आश्चर्य तो दीदी, मुझे भी तुम्हारे लिए हो सकता है, यद्यपि यह तो मैंने नहीं कहा कि रुझान होने से ही स्थिति मे कोई परिवर्त्तन हो जाता है।"

"यानी ?"

"यानी यही कि रुझान से न तुम्हारा तात्पर्य मुझ पर स्पष्ट है, न मेरा ही तुम पर !"—और वह हँस दी।

"तुम्हारी गूढ बातें मेरी समझ मे नहीं आती।"

"तो कोई चिन्ता नहीं ! जो समझ न आए, वही गूढ हो, यह कोई नियम नहीं है। तुमने रुझान के बारे में पूछा और मैंने हाँ कर दी। फिर भी तुम्हें आश्चर्य हुआ, शायद यह सोच कर कि मिलते ही मैं उन्हें वरण कर लूँगी ! हूँ ? नहीं !! रुझान के होते हुए जो अब तक नहीं कर सकी, वही अब क्यों कर लूँगी, इसका कोई कारण तो नहीं देखती !"

नमिता उठ खड़ी हुई, लम्बी सास लेकर बोली : "परमात्मा तुम्हे सद्‌बुद्धि दे ! मैं चली। बहुत समय हुआ, पापा राह देख रहे होंगे। अगर मेरे साथ होती तो मेरी बहुतेरी कठिनाई हल हो जाती ! पर अगर और कोई बाधा न हो तो क्या आशा कर सकती हूँ ?"

"क्यों नहीं ?"

"तो मैं अठारह तारीख को एक बार और टेलीफोन करूँगी। या कहो तो कॉलेज से लौटते समय यहाँ होती हुई जाऊँ ?"

कल्पना ने हँसकर कहा : "तो क्या च्यवनबाबू आजकल साथ नहीं लौटते !"

"सो तो भूल ही गई थी ! पर शायद 'मेनेज' कर सकूँ।"

"नहीं दीदी, उन्हे शक नहीं होना चाहिए।"

"तो जाने से पहले इधर होती जाऊँगी !"

"पर इतना समय रहेगा क्या ? आठ बजे तक च्यवनबाबू के वहाँ पहुँचने की बात है। इसके पहले ही तुम्हें अपना कार्य निपटा लेना है।—अच्छा तो यही रहेगा कि अठारह को सबेरे ही टेलीफोन से बात करलो।"

"अच्छा ठीक है।—ओ०के०, तो मैं चली ! तुम्हे बहुत बहुत धन्यवाद।

नमिता को बाहर छोड़ कर जैसे ही कल्पना कमरे मे लौटी कि रामू ने प्रवेश कर कहा—

"दुपहर की डाक तो आपने देखी ही नहीं। यह पत्र आपके नाम का आया हुआ है।"

कल्पना ने पत्र का पता देखा, अक्षर पहचानते ही उसका हृदय धड़कने

लगा, वही चिर परिचित अक्षर ! अनजाने ही उसका हाथ सीने पर पहुँच गया। ओह, यह क्या—अरे, च्यवन को लिखे हुए डोरा के पत्र को नमिता यहीं भूल गई !

आराम कुर्सी पर बैठ कर उसने पत्र को चारों ओर से देखा। नमिता कह गई थी 'परमात्मा तुम्हें सद् बुद्धि दे।' दूसरों को उपदेश देना कितना सरल है ! पर निर्मल के पतन की कहानी, क्या वह सच है ?—किन परिस्थितियों में उसे फँसना पड़ा !—उस दिन होटल की वह भेंट, उसका प्रेम-निवेदन, और फिर वह मौन !—उस पत्र मे इतनी झिझक, कि क्या मैं उनसे मिलना चाहूँगी !- उसके किस आचरण ने इतना अविश्वास पैदा कर दिया ! क्या वही तो इस समस्त-विभीषिका के मूल मे नहीं है ?

काँपते हाथों से उसने पत्र को खोला :

"कुमारी कल्पना,

जिस तरह अपने पहले पत्र में केवल विषय-वस्तु का ही उल्लेख करके, दो पक्तियों मे पत्र को समाप्त कर मैं बहुतेरी कठिनाइयों से बच गया था, वह सुविधा तुम्हारे उत्तर ने इस पत्र के लिए नहीं रक्खी। एक सूखे से पत्र को, जिसमे भेंट के बारे मे तुम्हारी सहमति और सुविधा के दिन की माँग की गई हो, भेजकर मैं कैसे सोच सका कि उससे तुम्हारी अतृप्त-प्यास बढ नहीं जाएगी, और यदि सोच सका, तो क्या अतृप्त-पिपासा मे तुम्हें ढकेल देने का ही मेरा इरादा है ?

अभियोग बड़ा कठोर है। उत्तर तो इसका सशरीर उपस्थित होकर ही दिया जा सकता है, पर अभी भी अठारह तारीख दूर है, तथा बीच मे पत्र आवश्यक हो पड़ा है, तो इसमें भी दोष प्रक्षालन की कुछ चेष्टा तो करनी ही चाहिए। फिर, तुम से तो मैं कुछ छिपाना चाहता नहीं, चाह ही नहीं सकता। क्या जाने फिर कभी कैफियत का अवसर मिले या नहीं।

जब हम अन्तिम बार मिले थे तब से अब तक मेरे ऊपर घटनाओं की एक सृष्टि गुजर चुकी है ! जगत को इतने निकट से देखने का मुझे कभी अवसर नहीं मिला था ! देख लेने के बाद भी किसी का विवेक स्थिर रह सकता हैं, यही आश्चर्य की बात है ! किनारे पर रखे हुए पत्थर को पकड़ कर आदमी बहाव मे स्थिर रहने का भरोसा कर सकता है, पर जब बाढ की धारा उसके चारों ओर की मिट्टी को उखाड़ दे, तब भी उस पत्थर पर भरोसा रखना आत्महत्या के सिवा क्या हो सकता है !—और बाहरी दुनिया की नित्य नई बहने वाली ये धाराएँ सदैव ही तो आदमी के पत्थर जैसे विश्वासों को बेबुनियाद करती रहती हैं, उस बहाव मे भी यदि उन्हीं पत्थरों का आधार बना रहे तो क्या हो ?—डूबता हुआ आदमी यदि उन पत्थरों को छोड़े नहीं, तो करे क्या ?

उस दिन होटल मे मैंने कहा था कि मेरे जीवन का ध्रुव नक्षत्र तुम हो। सोचता था कि तुम्हारी मार्ग दिशा का संकेत पाकर शायद मेरे जीवन का जहाज कहीं भटकेगा नहीं ! मैं यह तो कभी अस्वीकार नहीं करता कि नमिता की माया ने भी मुझे मुग्ध किया था, किन्तु मेरे जन्म की विडम्बना ने नमिता की पकड़ ढीली कर दी ? स्पष्ट हो गया कि वहाँ पानी गहरा नहीं है; मुझे जब कि जहाज की सुरक्षा की चिन्ता थी तो तुम्हारी शान्त निश्चल गहराई का आभास हुआ। किन्तु उस दिन रात्रि को उस मन्दिर मे एक और दृश्य देखा, देखा कि तुम्हारे उस ऊँचे भावमय-नीरव वातावरण में पहुँच कर उसे क्षुब्ध चंचल करने का क्या मुझे सचमुच अधिकार है, और उस गहराई मे लगर अटका सकने की भी क्षमता है ?

और फिर जब दिगन्तहीन, लक्ष्यहीन, निराधार मैं बह निकला, तो जानती हो किसने मेरी पतवार थाम ली ?

मेरे ही जैसे एक वित्रस्त, निरस्त्र, किन्तु फिर भी अपराजित, योद्धा ने जिसे समाज ने निकाल कर भी खोटे सिक्के की तरह इसलिए चिपटाए रखा था, कि समय पड़े पर काम आ सके !—बी० ए० तक पढ़ी हुई सुसंस्कृत, किन्तु कुचली हुई, ललित कलाओं मे पारंगत, किन्तु अर्थाभाव के थपेड़ों से पिट-पिटा कर कठोर, और सर्वस्व-हीना होकर और कुछ अधिक खोने की सीमा से परे पहुँची हुई निर्भय, ऐसी एक ईसाई लड़की डोरा को तुम नहीं जानती। समाज की जिन ऊँचाइयों पर तुम पहुँची हुई हो, वहाँ से कोई ऐसी लड़की को जानना नहीं चाहता, किन्तु मानवीय-महत्त्व पर किसी विशेष समुदाय का एकाधिकार नहीं है, यह तो तुम भी स्वीकार करती ही होगी !

यह लड़की अद्भुत है !—मैं स्वीकार करता हूँ कि यह सब पढ़ने का तुम्हें अवकाश नहीं है, आवश्यकता भी नहीं है; और इसीलिए तुम मुझ पर कुपित भी हो रही होगी। मुझ से तो अधिक इस गरीब पर, जिसे मैं अद्भुत कहता हूँ !—मै भी इस पर बहुत कुपित होता हूँ, बहुत—क्यों होता हूँ यह जान कर क्या करोगी ? और अन्त में अपने ही ऊपर कुपित होकर रह जाना पड़ता है मुझे, क्योंकि उस पर कुपित होने का कोई कारण नहीं देखता ! जानती तो हो जब मनुष्य इस स्थिति में पहुँच जाता है तो उसे उसके प्रति सहानुभूति होने लगती है। और यहीं पर वह खतरनाक सीमा-रेखा आ जाती है, जिसे हम प्यार कहते हैं !—मैं कहाँ तक पहुँचा हूँ इसे स्वीकार करने से या अस्वीकार करने से क्या लाभ है अभी ?—फिर भी यह तो तुमसे छिपाना नहीं चाहता, कि प्यार न करके भी किसी को चाहा तो जा ही सकता है !

यही लड़की क्षय से बीमार अस्पताल मे पड़ी हुई है ! मरने से वह नहीं

डरती जिस तरह से सदैव ही आनन्द का वातावरण बनाए हुए यह जीवित रही है, मैं जानता हूँ, उसी तरह मृत्यु के लिए भी वह आनन्द का वातावरण बना लेगी, इसमें मुझे कुछ भी संशय नहीं है ! पर दुख है केवल इसलिए, कि उसकी उचित-चिकित्सा न होगी । समाज की एक धारणा शायद यह स्वीकार करे कि ऐसे व्यक्ति के मर जाने में कोई हानि नहीं है । मै भी कभी-कभी यह सोच लेता हूँ, किन्तु हृदय का दूसरा पक्ष विजयी हो उठता है । कहता है, इस लड़की ने अपने जीवन मे किसी से कुछ पाया नहीं, पाने का दावा भी नहीं किया, सदैव ही यह देती रही है ! तब इसको दुनिया की पीठ पर से चले जाने दिया जाकर क्या हम एक अहैतुकदाता को नहीं खोए दे रहे हैं ?—दुःख से भरी इस सृष्टि मे जिस आनन्द का स्रोत इसने बहाया है, वह क्या कम महत्व की वस्तु है ?

और मैं स्वयम् ?—बहुत ही अपदार्थ हूँ, कल्पना, समझ नहीं पड़ता कि दुनिया मे मेरी जन्म लेने की सार्थकता क्या थी ?—शिक्षा और सस्कार का बोझ लेकर मुझे चिन्ता करनी पड़ती है पेट की !—पर यहाँ तक—संक्षेप यह है कि मैं डोरा की चिकित्सा का भार नहीं ले सकता। वह है पाँच हजार का बाझ !—तुम आश्चर्य कर सकती हो, पर हकीकत यह है कि मेरी कल्पना (?) के कन्धे भी इस बोझ को नहीं उठा सकते !

तब भी यह तो है, कि मेरी कल्पना न सही, एक कल्पना और भी तो है !—यह सौभाग्य मेरा नहीं रहा कि उसे भी मैं मेरी कल्पना कह सकूँ ! यदि कह सकता, तो जीवन मे क्या कोई आकाक्षा शेष रह जाती ?—पर अब छल क्यों ?

--तो पॉच हजार के लिए तुम्हारे सामने हाथ पसार रहा हू ! तुम्हारे लिए यह कठिन नहीं है, यही सोच कर । सोचने को तो और भी बहुतेरी बातें हैं !—उनको याद करने का आग्रह भी हो, किन्तु इसी से याद करने की सुविधा नहीं हो जाती । अतः आज तो इसे समर्थ के प्रति असमर्थ की भिक्षा का दावा ही मैं कह सकता हूँ ! बस !

ये सब बातें स्पष्ट रूप से इसलिए लिख दीं कि अठारह तारीख की प्रस्तावित भेंट की अपनी स्वीकृति का तुम आवश्यकतानुसार परिशोध न कर सको ! विकल्प में कई बातें उठ सकती हैं, सुविधा के लिए मैं ही सुझा दूँ, तो, आशा है, मेरी नीयत को तुम समझ सकोगी ।

(१) मुझ से और उस लड़की से, दोनों से कुपित होकर न मुझ से मिलना चाहो, न उस लड़की की सहायता करना !—पर इसमें तुम सोचोगी तो पाओगी कि वस्तुतः अपराध तो मेरा ही है, उस लड़की का नहीं, इसलिए—

(२) मुझ से न मिलकर भी उस लड़की की सहायता करना चाहो !

(३) वीतराग होकर न सहायता ही करना चाहो, न भेंट ही !

(४) मुझ से अत्यन्त कुपित होकर मुझे दण्ड देना चाहो, और यह आवश्यक समझो कि ताड़ना ग्रहण करने के लिए मुझे उपस्थित होना ही चाहिए।

दूसरे विकल्प के लिए नीचे मैं उस लडकी का पता लिख देता हूँ, चाहो तो स्वयम् जाकर या दूत के द्वारा उसकी सहायता कर सकती हो। स्वयम् डॉक्टर को आदेश देकर भी सहायता कर सकती हो, ताकि तुम्हारा लगाव कोई न जान सके ! यदि चौथा विकल्प स्वीकार करो, या मेरी भिक्षा सफल हो, तो मैं आशा करूँगा कि तुम मुझे किसी स्थान का निर्देश करोगी, ताकि मैं तुम्हारे बताए हुए सन्ध्या के समय मैं वहाँ तुम्हारी प्रतीक्षा कर सकूँ ! मैं समझता हूँ, तुम घर पर तो मुझ से मिलने की आवश्यकता नहीं समझोगी !

कितने धड़कते हृदय से यह पत्र लिख रहा हूँ, यह कैसे बताऊँ ? हृदय की धड़कनें गिनने ही से तो उसकी सीमा का पता नहीं लग जाता ! कितनी आशा, कितनी निराशा, कितना उल्लास, कितना अवसाद, कितना हर्ष, कितना अमर्ष, कितना निर्माण, कितना निर्वाण, इन हृत्कपों में भरा हुआ है ?—भूकम्प की लहरों को गिनने का किसमे तो होता है धैर्य और किसे रहता है होश ? फिर भी मैंने यह पत्र तो तुम्हें लिख ही दिया है। उत्तर दोगी, आशा का हो या निराशा का, लिफाफा देखते ही समझूँगा कि अपराध की एक मात्रा तो कम हो गई।—और यदि नहीं मिला, तो बाध्य न करूँगा ! यह प्रतीति तो है कि पत्र तुम्हें मिल गया। तुम्हारे अनुचर रामू को मैं स्वयम् जो देने का इरादा रख रहा हूँ।

इस लम्बे पत्र के लिए अब तो क्षमा माँगना ही शेष रह गई।—प्रतीक्षा मे निर्मल।"

पत्र को दुबारा पढ़ कर कल्पना ने अपने सीने से लगे हुए डोरा के पत्र को निकाला, और उसे पढ़ा। एक कुटिल हास्य उसके अधरों पर फैल गया ! तो यह लड़की है वह ! कैसा संयोग है ! अवश्य जाएगी वह निर्मल से मिलने, और उसके चेहरे पर इस पत्र को फेंक कर कहेगी कि यही है न वह ईसाई छोकरी, जिसका गुण गाते हुए थके नहीं हैं निर्मल कुमार !

एक बार और उसने निर्मल का पत्र पढा, फिर डोरा का ! सचमुच लड़की है तो अद्भुत, और जैसा कुछ चरित्र उसका उसके पत्र से स्पष्ट होता है, उसको कहीं छिपाने का प्रयत्न भी तो निर्मल ने नहीं किया !—अठारह तारीख, सात बजे—मिला कहाँ जाए ?—क्यों न ग्रेट ईस्टर्न मे ? ठीक है, एक

कमरा स्वरक्षित कर लिया जाए—पर, नहीं निर्मल ही के नाम से !

उसी रात को दस बजे उसने टेलीफोन किया, और कमरे की व्यवस्था कर ली। रूम नम्बर ३७, पेशगी १५ रुपया—कल भेज दिए जाएँगे। रिजर्वेशन निर्मल कुमार के नाम से, हाँ रसीद आदि सब उन्हीं के नाम से हो।—टेलीफोन रखकर उसने शान्ति की साँस ली। और निर्मल को उसी रात पत्र का उत्तर लिखने के लिए बैठ गई।

●

: १८ :

मनुष्य की गुण-दोष विवेचिनी बुद्धि इतनी अवसर-सापेक्ष होती है, कि इस अवसर की पृष्ठ-भूमि के सिवा इन दोनों में वह कोई अन्तर ही नहीं स्थापित कर सकती। कई बार हम देख चुके हैं, कि जब भी निर्मल को पदातिकों के साथ क़दम-ब-कदम चलने के लिए मजबूर होना पड़ा है, उसके कदम घोड़ों की पीठ पर दिखाई दिए हैं! आज जब दिल्ली का पाँचवा सवार होकर उसे ग्रेट ईस्टर्न के दरबान से रूम न० ३७ का पता पूछना पड़ा, तो उसने पुनः अपने आपको पदातिकों के इतने निकट पाया कि सभ्य-बेश मे उपस्थित होने की उसकी सारी चेष्टा उसका विद्रूप कर उठी। अभ्यागतों के प्रति दरबान सदैव सतर्क होकर सलाम झुकाता है, किन्तु निर्मल के प्रति उसने अवज्ञा के साथ देख कर केवल आँख के इशारे से सामने दाहिनी ओर के मैनेजर के कमरे की ओर इशारा कर दिया! सभ्य दीखने के प्रयत्न में निर्मल ने मन ही मन संकल्प किया था कि लौटते समय बैरा, दरबान आदि को कुछ 'टिप' देना ही चाहिए! दरबान का नाम उस लिस्ट से बाद हो गया!

मैनेजर ने सूचना दी कि रूम न० ३७ किसी निर्मलकुमार के लिए संरक्षित किया गया है! यद्यपि संरक्षण टेलीफोन के द्वारा किया गया था, किन्तु संरक्षणकी रकम उसे अग्रिम मिल चुकी है। जो नौकर रकम चुका गया था, उसी ने आदेश दिया था कि रसीद, जब निर्मलकुमार आएँ तो उन्हीं को दे दी जाए। निर्मल अपने कमरे मे आराम करे और रसीद तथा हस्ताक्षर आदि के लिए रजिस्टर वह उसी के कमरे मे भिजवा देगा। उसने बैरा को आवाज दी, यदि साहब के साथ सामान हो तो उसकी व्यवस्था कर उन्हें रूम न० ३७ में ले जाया जाए!

कमरा खूब सजा हुआ था, घुड़ सवारों के लिए जो ठहरा! किसी समय निर्मल को इससे कम तनिक भी रुचिकर न होता, किन्तु आज उसके लिए यह बहुत ऊँचा है, कहना चाहिए अकल्पनीय है। बेहरा ने एक कॉफी लाकर रक्खी, और पूछा कि साहब क्या अपराह्न-चाय लेना चाहेंगे?—यदि स्नान करना चाहे तो टब मे गरम पानी भर दें, उसके बाद भी चाय आ सकती है। रात्रि के भोजन मे वह क्या पसन्द करेंगे यदि यह भी बतला दें तो सुविधा होगी, कमरे ही मे व्यवस्था को जाय, या नीचे 'हाल' मे जाना चाहेंगे, आदि-आदि।

छः बज चुके थे। साढ़े छः और सात के बीच कल्पना के आने की बात थी। आधा घण्टा है। क्यों न नहा लिया जाए? टबका हॉट बाथ उसे स्फूर्ति दे सकेगा! कई दिनों से उसे इसका सौभाग्य नहीं मिला है, और क्या जाने भविष्य मे फिर कभी ऐसा अवसर मिले? आज सबेरे से ही शहर मे मटरगश्ती करता रहा है, यद्यपि डोरा यही जानती है कि वह प्रति दिन के अनुसार काम पर गया है, पर काम पर वह कैसे जा सकता था?—आठ बजे से पहले तो वह वहाँ से लौट ही न सकता, और यहाँ आते-आते नौ बज जाता!—

जब मन की इच्छा के अनुकूल स्नान से निपट कर नितान्त ताजगी के साथ अँगोछा लपेटे निर्मल ने स्नानगृह का द्वार उन्मोचित किया तो देखा कि कल्पना कुमारी ने उठ कर नमस्ते की!

"अरे कल्पना, कब आ गई तुम? माफ करना, सोचा, तुम्हारे आने मे तो अभी कुछ विलम्ब है तो नहा ही लूँ! कपड़े पहन लूँ? तबीयत तो—ठीक ही दिखाई देती हैं! है न?"

"है तो! आपकी तबीयत?"

कपड़े हाथ मे लिए स्नानगृह को लौटते हुए निर्मल खड़ा हो गया, मुड़ कर उसने कल्पना की ओर देखा, आँखें चार होते ही कल्पना ने आँखें नीचे झुकालीं!

निर्मल ने कहा: "जब मैं 'तुम' से 'आप' की पदवी पर पहुँच गया हूँ, तो मेरी तबीयत के ठीक होने मे क्या सन्देह है!" और वह पुनः बाथ रूम मे घुस गया

इधर बैरे ने प्रवेश करके एक रजिस्टर तथा रुपए की रसीद का कागज सामने रख दिया। देखकर कल्पना ने कहा: "ठहरो अभी बाबू आ रहे हैं।"

दोनों ही व्यक्तियों को सम्हलने का अवसर मिल गया। अतः जब कपड़े पहन कर निर्मल कुमार पुनः स्नानगृह से बाहर निकले तो देखा कि कल्पना कुमारी बैरे से संध्या की डिनर का 'मेनू' लेकर देख रही है।

कल्पना ने सहज स्वर से कहा: "चाय के लिए मैं कह चुकी हूँ। डिनर के लिए क्या पसन्द करते हो?"

निर्मल ने पुनः एक बार और कल्पना की दृष्टि पकड़ना चाही, पर जब पकड़ाई न दी तो बोला : "जिस अधिकार से चाय के लिए कह सकी, उसी अधिकार से डिनर के लिए नहीं कह सकतीं ?"

"नहीं कह सकती। मुझे तो पूर्णिमा का व्रत है, और जल्दी ही लौट भी जाना है।"

"तो ठीक है, चाय के साथ ही खाने को कुछ ले आएगा।"

"अच्छा, जैसी इच्छा तुम्हारी। जरा इस रजिस्टर पर दस्तखत कर दो, तो यह जाय।"

हँस कर निर्मल ने रजिस्टर उठाया, और अपने नाम के आगे उसने स्वाक्षर कर दिए ?

बैरा ने कहा : "इस खाने की पूर्ति भी कर दीजिए।"

"क्या करना शेष है ?—नाम लिखा हुआ है, आने की तिथि, समय छः बजे कमरा नम्बर ३७, कुल सदस्य—कितने दो ?"

"नहीं नहीं, मैं तो केवल विजिटर हूँ। एक ही लिखिए।"

"ओ०के०" बैराने सलाम किया, और रजिस्टर उठाकर कमरेसे बाहर हो लिया।

पास कुर्सी खींच कर बैठते हुए निर्मल ने कहा : "बैरा तो चला गया। 'आप' कह कर बात शुरू की जाय, या 'तुम' कह कर ?"

"निर्मल बाबू, इन सम्बोधनों से यदि स्थितिमे परिवर्तन हो पाता, मन की रुझान चाहे धोखा दे भी दे, तो भी केवल मन ही का कहा माननेकी प्रवृत्ति तो हमारी होनी नहीं चाहिए।—इतना समझ लेने के बाद भी, यदि एक बार प्रयोग मे आए हुए सम्बोधन को बदल कर हम औपचारिक सम्बोधन स्वीकार करें तो उससे बातचीत की असुविधा ही तो बढ़ेगी !"

"बिलकुल ठीक कहती हो कल्पना !—आज जिमी क्या हुआ ?"

"उसे घर पर ही छोड़ आना पड़ा। घर पर माता जी जानती हैं कि मैं मन्दिर गई हुई हूँ, और मन्दिर में पिता जी से अवकाश लेना कठिन था। मन्दिर जाते समय जिमी साथ नहीं जा सकता।—और फिर यह मुलाकात—क्या कहूँ मोमेण्टुअस को ?—इसे एकान्त ही रखना चाहती हूँ।"

"कह चुकी हो, जल्दी लौट भी जाना है तुम्हें ! तो काम ही की बात शुरू करूँ ?"—और नीची निगाह किए, वह दोनों हाथों की हथेलियों से हवा को बेलने लगा। कल्पना उसके ऊपर दृष्टि गड़ाए चुपचाप बैठी रही।

"मेरा पूरा पत्र पाकर भी जो तुमने आने की उदारता दिखाई है,उससे मुझे आशा तो करनी चाहिए कि मेरा उद्देश्य पूरा हो जाएगा ! मेरा उद्देश्य तो तुम्हें मालूम हो ही गया है। मुझे क्या करना होगा ?"

कल्पना ने कहा : "सबसे पहले तो, हमारी-तुम्हारी यह मुलाकात एक दम गुप्त रहेगी।"

"यह अतिरिक्त-सतर्कता क्यों ?-पहले क्या कोई मुलाकात कहीं व्यक्त हुई है ?"

"पहले व्यक्त तो नहीं हुई, किन्तु तब व्यक्त होने से कोई विशेष हानि की सम्भावना न थी।"

"और अब है ! ठीक है. मैं प्रतिश्रुत हूँ। सच तो यह है कल्पना, कि जिसके लिए तुम इतनी सतर्क हो, उसे मैं भी समझ रहा हूँ। वस्तुतः इसीलिए, जब तक मुझे सब ओर घोर निराशा नहीं दिखाई दी, मैंने तुम्हारे परिचय में भी प्रवेश करने का लोभ संवरण कर रखा !—मैं आजीवन तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा कि तुमने मुझे यह भेंट दी !"

बैरा चाय तथा खाने का समस्त उपस्कर ला कर पास की चाय की टेबल पर रख गया !

कल्पना ने कहा : "इन सब दिनों कहाँ रहे, यह नहीं पूछूँगी, पर आज-कल क्या कर रहे हो, यह जान सकती हूँ ?"

"कहाँ रहा यह नहीं जानना चाहती ?—यह अच्छा ही है। पूछने पर तुम्हारे निकट इनकार करते न बनता, और वह कहानी है इस सभ्यता के कान का दर्द ! वह बड़े लोगों के सुनने लायक नहीं है ! रही आजकल मेरे कुछ करने की बात—वह भी कोई बड़ी बात नहीं !—एक मिल के अर्द्ध-कुशल कामगर के आशा-विश्वास, सुख-दुःख का कोई विशेष भार नहीं होता। जितना यह सभ्यता सोचने की आदी है, आदमी के कंधे उससे कहीं अधिक शक्तिशाली बनाए गए हैं!"

"मिल मे अर्ध-कुशल कामगर ?"

"दफ्तर की भाषा मे उसे सेमी स्किल्ड कहते हैं !"

"तुम्हारी पढाई-लिखाई ?"

"वह कहीं गई नहीं। यूनिवर्सिटी के सिर्टिफिकेट गुम जाने पर भी डुप्लीकेट मिल सकते हैं। पर उससे पेट की आग नहीं बुझती कल्पना, इसका मुझे कड़वा अनुभव हो चुका है।"

कल्पना ने देखा, रूप-गुण-विवेक की सशरीर-समष्टि निर्मल के चेहरे पर कामगर की कठोर रेखाएँ भी मौजूद हैं। चेष्टा से सँवारे हुए वेश पर से भी अर्द्ध-कुशल मजदूरियत की छाया एकदम नहीं हटाई जा सकी है।

अपनी ओर देखते देखकर निर्मल ने मुस्करा कर कहा : "दो रुपए साढ़े तेरह आने प्रति मजदूरियत की दर-डेली वेजेज़, यानी पचहत्तर रुपया मासिक, अगर आठ घण्टे से अधिक काम किया जाए तो थोड़ा-बहुत ओवर टाइम !

अकेले प्राणी की दुनिया में पेट को पीठ से मिलने से रोकने के लिए तो यह काफी है, नहीं क्या ?"

"अकेले क्यों ? बी० ए० तक पढी हुई सुसंस्कृत, ललित कलाओं में पारंगत, वह निर्भय ईसाई लड़की डोरा कहाँ रह गई ?"

"वही तो कह रहा हूँ ! तभी तो वह और पाँच हजार की भूखी उसकी टी० बी० इस पचहत्तर के लिए भारी पड़ गई ! इसीलिए तो मुझे अपनी झोली फैलानी पड़ी है ।"

"तुम क्या इस लड़की को प्यार करते हो ?"—और चाय कप मे उढेल कर उसने निर्मल क सामने बढा दी ।

"मेरा पत्र तो तुमने पढा है ! क्या विश्वास नहीं होता ?"

"विश्वास किया जा सकता है क्या ?"

"मेरे उत्तर से क्या होगा कल्पना ! कहने से यदि विश्वास पैदा होता हो, तो अपनी बात तो कह ही चुका हूँ । पर यह भी जानता हूँ, कि इस बात पर विश्वास होना कठिन है ।"

"फिर भी तुम मुझसे उसके लिए सहायता की आशा कर रहे हो ?"

"क्यों नहीं !—मैं अपने विश्वास की कीमत तो नहीं माँग रहा । मैं तो एक दीन, निरवलम्ब—"

"निरवलम्ब क्यों ?—तुम जो उसके अवलम्ब हो ।"

"अगर हूँ भी, तो तुम्हें क्या ? तुम तो वीतराग हो !"

"आज तुम्हे सुविधा है, इसलिए मुझे जो चाहो सो कह लोगे, किन्तु उस दिन सध्या को होटल मे क्यों मेरा यह वीतरागत्व तुम्हारी दृष्टि में नही पड़ा ?"

चाय के घूँट को मानो तृप्ति के साथ गले के नीचे उतार कर निर्मल ने कहा : "मेरे होटल मे तुम्हारे राग के अधीश्वर वह लक्ष्मीनारायण जो नहीं थे । किन्तु उस दिन सध्या को मन्दिर मे छिपी नहीं रह सकी ।"

"पर वह परमात्मा तो सबका है !"

"सब का नहीं, जो मानते हैं उनका !—पत्थर के भगवान से तुम्हारी तृप्ति होजाती हो, मेरी नहीं होती । मैं हाड़-माँस के उस भगवान् को भजना चाहता हूँ जो मेरी अनुभूति मे बँध जाए, जो मेरे दुःख पर मरहम लगा दे ।"

"तब तो, डोरा से विवाह भी कर रहे हो ?—कब ?—"और उसकी फटी हुई आँखों मे कप से निकल कर चाय का धुआँ छा गया !

केक का एक हिस्सा उठाते हुए निर्मल ने सहजभाव से कहा : "शादी का तो अभी सवाल ही नहीं उठता, पहले तो उसकी जान बचाना है ।"

"उसकी जान बचाने के लिए मैं पैसा न दूँगी ।"

"पैसा मैं नहीं माँगता !—पर क्या सचमुच ही तुम पैसा नहीं दोगी ?"

"नहीं, अगर तुम्हें मुझसे नफरत है, तो तुम नमिता से क्यों नहीं बात-चीत करते ?"—और उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। चोरी छिपाने के लिए उसने खाली कप फिर ओंठों से लगा लिया !

निर्मल ने हँसकर कहा, "समझा !—पर ईर्ष्या करना व्यर्थ है कल्पना, डोरा से यदि तुम मिलो तो तुम्हें कभी ईर्ष्या न होगी।—"

"मुझे उससे नफरत है, और क्यों है सो भी मैं बता सकती हूँ। तुम न जानो, पर मैं उसकी पोपलीला को खूब जानती हूँ।"

"जरूर जानती होगी कल्पना ! पोपलीला डोरा खुद भी कम नहीं जानती ! बल्कि इस पोपलीला ही के कारण तो वह अप्रतिम मनोहारिणी हो उठी है। पर जाने दो, उसकी बातों से तुम्हें क्रोध हो उठता है। तुमने नमिता की बात कही थी। क्या हालचाल हैं उसके ?"

"नहीं जानते ?—उसका विवाह हो रहा है च्यवन से!"

"अभी हुआ नही ?—कब हो रहा है ?"

"महीने भर मे !"

"यदि मिलो तो मेरा अभिनन्दन पहुँचा देना। पर, तब नमिता से बातचीत करने को कहने मे क्या तुक थी ?"

"क्या तुम उससे कभी प्रेम नहीं करते थे ?"

"क्यों नहीं करता था ?—तुम भी तो गवाह हो !"—फिर उसने लम्बी साँस लेकर कहा : "यदि उस रात को मेरी डूबती हुई नाव को धक्का देकर किनारे पर ढकेलने के लिए तुम्हें उद्यत देखकर वह उबल न पड़ती, तो वही क्या मेरा ध्रुवतारा न होती ?—और एक दिन और एक लड़की ने अपने गुणों की मरीचिका से इस हतभाग्य को मरुस्थल मे तड़पाया था। इस की समुद्र जैसी प्यास को तुम नहीं समझ सकती कल्पना !"

"नहीं, मैं नहीं समझ सकती। शायद डोरा ने समझ लिया है !" और वह मुस्करा उठी !

"मजाक कर सकती हो, क्योंकि तुम उसे जानती नहीं !"

"बला से, तुम्हें तो जानती हूँ ! लो, यह चाय ठण्ढी हो जाएगी।—अच्छा, यह बताओ, यदि पुलिस-थाने तक जाने में तुम्हे संकोच न हुआ, तो मुझे ही खबर कर देने मे इतना संकोच क्यों हो गया था ? यदि तब मर्यादा का खयाल हो उठा था, तो क्या यह अदना-सी छोकरी आज तुम्हारे उस खयाल को भी चर बैठी, कि जो अपने लिए नहीं कर सके, वह इसके लिए कर रहे हो ?"

पुलिस की बात सुन कर निर्मल -हतप्रभ हो गया। यद्यपि पुलिस काण्ड में

वह स्वयम् दोषी न था, किन्तु फिर भी और कोई तो उसके लिए दोषी था नहीं !—कल्पना को इसका पता कैसे लगा !—पर चूँकि पता लग चुका है, इसलिए छिपाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। और छिपाना ही हो तो क्या कल्पना से छिपा सकेगा ?

धीरे-धीरे वह बोला : "पता नहीं; मेरे उस दुर्भाग्य की कहानी तुम्हें कैसे मालूम हुई। सही रूप में वह तुम्हारे निकट पहुँची या विकृत होकर, यह भी मैं नहीं जानता; पर यह तो मैं जानता हूँ कि पुलिस का मेहमान बनाने मे जितनी मेरी परिस्थितियाँ जिम्मेदार थीं, उतना मैं नहीं। सुनोगी मेरी उस दुर्दशा की कथा को ?"

"यदि तुम्हे बाधा न हो।"

"पर तुम यह बताओगी न कि तुम्हें यह पता किसने दिया ?"

चाय के घूँट उतारते हुए निर्मल ने समस्त कथा को जब से वे उस होटल मे मिले थे, बिना एक अक्षर इधर-उधर किए सत्य-सत्य सुना दिया। कल्पना के चेहरे पर मुर्दनी छा गई !—पर उसने भी वह कथा सुना दी, जो वह नमिता के पुलिस स्टेशन जाने के बारे में जानती थी।

अपनी बात समाप्त करते हुए निर्मल ने कहा : "मैं जानता था कि तुम्हारा कोमल हृदय इसको सहन नहीं कर सकेगा, पर घटनाओं की इन्हीं तीव्र चपेटों ने मेरे जीवन के सारे रस को सुखा डाला है ! मैं अब वह पहले का हवाई तानों-बानों का बना हुआ मनुष्य नहीं रह गया। जीवन की इन लड़ाइयों से जूझ-जूझ कर मेरे मन की शान्ति अब केवल शाब्दिक ही रह गई है।"

"किन्तु एक बार भी तो तुमने मुझसे अपनी कठिनाई नहीं कही !"

"कभी किसी से कही क्या ? और जब कही तो सबसे पहले तुम्हीं को तो कही ?"

"क्या डोरा नहीं जानती इस बात को ?"

"जानती है, पर सुन कर नहीं; वह जानती है सह कर !"

"तो क्या तुम अर्थ को ही व्यक्ति की भावना के ऊपर मानने लग गए हो।"

"जिसके अभाव मे व्यक्ति की भावना ही बेकार हो जाए, वह क्या उस भावना से श्रेष्ठ नहीं है ?"

"फिर भी अर्थ तो साधन-मात्र है।"

"यह हकीकत भी तो है कि सब सिद्धियाँ इसके अनुगत हैं ! यदि मुझसे कहा जाए तो कहूँगा कि साध्य तो हमारा केवल औपचारिक लक्ष्य है, वरना सरोकार तो हमें अर्थ से ही है। किसी राज्य के वैधानिक अध्यक्ष की तरह इस साध्य को तो हमे केवल प्रमाण पत्र पेश करने पड़ते हैं ! बस, कार्य करने वाला प्रधान मत्री का तो यही अर्थ है।"

"पर यह तो इस विशेष समाज व्यवस्था के कारण है, इसका स्थाई मूल्य कैसे होगा ?"

"व्यक्ति क्या इस समाज व्यवस्था का अंग नहीं होता ? और स्थाई मूल्य क्या है, इसे जानने की और किसी को गरज हो, पर निश्चय ही उसको नहीं है, जिसका जीवन ही स्थाई नहीं है !"

"तुम समझते हो जगत की तमाम बुराइयों की जड़ मे अर्थाभाव है ?"

"वे पनपती तो उसी में हैं ! मैं जानता हूँ, मेरे आदर्शों की दुनिया बदल गई है, और इससे तुम्हें चोट पहुँचती है। किन्तु सच तो यह है कि मैं अब तुम्हारे भावुक जगत का प्राणी नहीं रह गया। परिस्थितियों ने मुझे धरती पर ला पटका है, और समझता हूँ कि शुरू मे जब, हवा में चलने के आदी पैर जम नहीं पाए थे, तो मुझे सिर के बल चलना पड़ता था। देखती तो हो, अब तो बखूबी धरती पर दौड़ सकता हूँ ! नहीं है तो यही बस चाँद को नहीं छूआ जा सकता।"

"डोरा अच्छी हो गई, तो उसके बाद क्या होगा ?"

"क्या होगा ?—तब भी मैं मजदूरी करूँगा। सचमुच, शारीरिक-मजदूरी मे एक आकर्षण है। सबसे पहला लाभ तो यह है कि शरीर और मन में सामंजस्य बना रहता है ! मन की दौड़ भी व्यावहारिक जगत तक ही रहती है, आसमान के कुलाबे मिलाने की न तो उसे सुविधा मिलती है, न समय ही। एक सतोष भी मिलता है, जो अभूतपूर्व होता है कल्पना, आठ घण्टे के अथक परिश्रम के बाद, यह संतोष क्या कम है कि मैंने अपने रूखे-सूखे अनाज के लिए खुद परिश्रम किया है, किसी के मुँह का कौर नहीं छीन लिया है। सच कहता हूँ, अब तो इस मजदूरी से मुझे लगाव हो गया है।"

"अच्छी हो जाने पर डोरा से शादी कर लोगे ?"

निर्मल हँस दिया : "शादी ? उसकी जरूरत ही क्यों होगी ! बँधने का प्रयोजन ही क्या है ?"

"मालूम देता है, डोरा के ऊपर तुम्हारा अनन्त विश्वास है।"

"यदि तुम उसे देखो, तो शायद तुम भी उतना ही विश्वास करो !"

"अच्छा यह पत्र पढ़ सकोगे !" कल्पना ने एक पत्र उसकी ओर बढ़ाया !

"क्यों नहीं !"—और लेकर देखते हुए निर्मल बोला : "अरे, यह तो डोरा के अक्षर दिखाई देते हैं !—किसके नाम, च्यवन के ?—" और एक ही साँस में वह सारा पत्र पढ़ गया। कल्पना उसके चेहरे का चढ़ाव-उतार देखती रही। जब निर्मल ने पत्र समाप्त किया तो उसका चेहरा राख के समान रक्तहीन हो गया था।

"यही है न तुम्हारी डोरा, जिस पर तुम्हें अनन्त विश्वास है।" कल्पना ने चुटकी काटी।

"मैं स्वीकार करने को बाध्य हुआ हूँ कल्पना कि इस पत्र को पढ़ने से मेरे हृदय को बहुत कठोर आघात लगा है, और उससे भयानक व्यथा भी पहुँची है। डोरा को मैं सती-साध्वी कभी नहीं समझता। उसने स्वयम् कभी अपने आपको ऐसा बताने की चेष्टा नहीं की। किन्तु मैं स्वीकार करता हूँ कि इस पत्र मे विवशता का इजहार नहीं, प्रत्युत संयम-हीनता ही का इजहार है! व्यथा का शायद यह कारण न होता, उदासीनता से अधिक मेरे मन मे कुछ होना नही चाहिए था। किन्तु मेरे दोष से आ फँसे हैं, इसमें च्यवन और नमिता, और मानो यह चक्र इतने मात्र से पूरा न हुआ हो, अतः मैं घसीट रहा हूँ तुमको भी। नहीं-नहीं, अब और अधिक छल की आवश्यकता नहीं है! मैं तुमसे सहायता के लिए अनुरोध नहीं करूँगा!"

—और निर्मल अपनी जगह पर से उठ खड़ा हुआ।

"कहाँ चले?"

"कहीं नहीं।—सोचना चाहता हूँ। सोचना चाहता हूँ कि यह सब क्यों हो गया?—कौन है मेरा ऐसा शत्रु जिसे मेरा तनिक भी सुख सहन नहीं होता और जो इस तरह मेरे ओंठों से मेरा प्याला छीन लेता है?"—और वह व्यग्र होकर कमरे मे चहल कदमी करने लग गया! उसका चेहरा रक्तहीन हो गया था, नाक के पुट रह-रह कर काँप रहे थे, अधरों पर मानो एक अनन्त क्रंदन आ आकर लौट रहा था? देख कर कल्पना को बड़ी बेदना पहुँची!

वह बोली: "हो सकता है कि वह शत्रु न होकर तुम्हारा मित्र ही हो निर्मल! शायद जिसे तुम अमृत का प्याला समझे हुए हो, वह अमृत का न होकर जहर का ही हो?"

"प्यासे रख कर मारने की अपेक्षा जहर ही से गले को तर करके मारने म मारने वाले को क्या अन्तर हो जाता है, कल्पना?—हाँ यदि मरने वाले के शेष क्षण का सुख भी छीन लेने की नृशंसता हो तो उसे दुष्टता के अतिरिक्त क्या कहा जा सकता है? इस समाज को मैंने खूब समझ देखा है! इस समाज का देवता है अर्थ, जो स्वर्ण की चमक, हृदय-हीनता, कठोरता और निर्ममता के पाखण्ड से भरा हुआ है! उसकी सहायता के बिना एक कदम चलना सम्भव नहीं है। उसकी दुष्ट प्रवृत्ति इसमें है कि वह केवल आवश्यकता के कारण ही उसका मुँह देखने को बाध्य नहीं करता प्रत्युत प्राप्त हो जाने के बाद उसकी प्यास उत्तरोत्तर बढती ही जाती है। वह वास्तविक आवश्यकता से उत्पन्न होकर बदले मे नकली आवश्यकताओं को उत्पन्न करता रहता है, ताकि

उसका दामन कभी छूटे नहीं। मैं इस अर्थ की माया से मुक्ति चाहता हूँ।"

"यदि उसकी चिन्ता न करोगे, तो उसकी माया से बच सकते हो।"

"पर उसके बिना रोटी की समस्या कैसे हल हो?"

"वह परमात्मा के ऊपर छोड़ दो।"

निर्मल कुछ हँस दिया: "लक्ष्मीनारायण के?—जो प्रचुर ऐश्वर्य की प्रतीक लक्ष्मी का स्वामी, रत्नों का व्यवसाय करता है?"

"तुम ईश्वर पर विश्वास नहीं करते?"

चहल-कदमी करता हुआ निर्मल एकाएक रुक गया: "इस दुनिया का ईश्वर क्या वही अर्थ नहीं है? क्या मैं नहीं जानता कि पैसे से ईश्वर भी खरीदा जा सकता है? ईश्वर की दुहाई देने वाले रुपयों के ढेर पर बैठे हुए वे ही श्रीमंत हैं, जो ईश्वर के नाम को ही अपना ऐसा रक्षक समझते हैं जो उस ढेर की दूसरे गरीबों से रक्षा करता है। बेचारे गरीब उस नाम से इसी तरह डरते हैं, जैसे कोतवाल से। किन्तु कोतवाल से साँठ-गाँठ करके फिर भी कुछ काला-सफेद किया जा सकता है।—खैर, इन बातों से तुम ऊब जाओगी कल्पना!"

कल्पना ने खड़ी होकर पूछा: "अब क्या करोगे?"

"सीधा अस्पताल जाकर डोरा से कहूँगा कि वह अपने भाग्य के भरोसे जिए या मरे! जो कुछ मुझसे हो सकता था, मैंने किया। भीख माँगी, पर वह भी नहीं मिली। केवल चोरी करना शेष रह गया, उसने मेरे लिए वह भी किया था, पर मैं नहीं कर सकूँगा।"

"वह मैं नहीं पूछ रही। किन्तु उसके बाद?"

"पचहत्तर रुपए मासिक मेरे लिए बहुत होते हैं; और चौबीस घण्टों में केवल आठ घण्टे के काम से मन को पूरी नियुक्ति नहीं मिलती। मैं कहीं दूसरी जगह जाऊँगा, जहाँ यह शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति का आडम्बर घेरे हुए न हो, अधिक से अधिक परिश्रम तथा प्रकृति के मूल तत्वों के बीच, मसलन् किसी कोयले की खान—"

"दुनिया से पलायन?"

"नहीं, अर्थ से पलायन। मैं उन परिश्रम के पुतलों को सिखाऊँगा कि उनका पसीना दुनिया की वह शक्ति है—"

कल्पना ने बात काटी: "बहुत अधिक बिलम्ब हो जाएगा तो दूकान बन्द हो जायगी रुपया तो मेरे पास कहीं न था। यह पुर्जा ले आई हूँ। दूकान पर जाना पड़ेगा। वहाँ ट्रेजरी के इंचार्ज मेरे चाचा हैं, मुझे बहुत अधिक लाड़ करते हैं। यदि यह पुर्जा उन्हें दे दोगे तो वे व्यवस्था कर देंगे। मैंने इसमे लिख दिया है कि यदि नकद न दिया जा सके तो अपने ही नाम का बेअरर चेक दे

दिया जाए! अब तो उसी की सम्भावना है, क्योंकि आठ बजे तक रोकड़ बन्द कर दी जाती है।"

निर्मल हिचकिचाया तो कल्पना ने कहा : "तुम्हारे लिए नहीं, डोरा के लिए है।"

"किन्तु—"

"नहीं; मेरे चाचाजी कुछ न पूछेंगे! उनसे डरना व्यर्थ है।"

"पर क्या यह जरूरी है कि तुम यह सहायता दो ही? मुझ में कोई उत्साह नहीं रह गया है।"

"फिर भी डोरा ने जो कुछ तुम्हारा उपकार किया है, उसका बदला तो देना ही चाहिए! सुविधा होने पर भी उससे इनकार करना कृतघ्नता होगी।—हाँ, उसके बाद—"

"उसके बाद?"

"मेरी प्रार्थना सुनोगे?"

"प्रार्थना?—" विरूप हँसी हँसकर निर्मल ने कहा : "कहो!"

"वह आवास, और वह सहवास छोड़ दो!"

"सो तो मैं कल ही छोड़ दूँगा।"

"तो आज ही से होटल का यह कमरा कुछ दिनों के लिए तुम्हारा मकान हुआ।"

"मैं जानता हूँ कि मेरी गरीबी से पसीज कर—"

"नहीं निर्मल, नहीं; काम तुम्हें करना होगा!—मेरा चाहो तो मेरा, नहीं तो कल चाचाजी से घर पर बात कर लूँगी।"

"नहीं; यह मुझसे नहीं होगा। मैं तुम्हारे ऊपर व्यर्थ अपना बोझ लादना नहीं चाहता।"

"मेरे ऊपर क्या बोझ होगा?—तुम काम करोगे, उसका एवजाना तुम्हें मिलेगा! मेरे ऊपर अगर बोझ समझते हो, तो मैं यह भी प्रयत्न कर देखूँगी कि कोई दूसरा ही उपयुक्त व्यक्ति इस बोझ को ले ले।"

"पर अपना बोझ खुद उठाने के लिए मेरे कंधे काफी मजबूत हैं, कल्पना!"

"होते तो यह दुर्दशा नहीं होती!—यदि कोई तुम्हारा बोझ उठाने वाला न मिला, तो मैं उठाऊँगी। तुम्हें नष्ट न होने दूँगी।"

"कल्पना—"

उत्तर मे कल्पना ने हाथ का पुर्जा निर्मल को थमा दिया।

निर्मल ने कहा : "और तुम्हारे लक्ष्मीनारायण?"

"जब तक उनको स-शरीर नहीं पा लिया जाता, तभी तक तो मूर्ति के रूप मे पूजा जाता है?"

"कल्पना !—कल्पना !!"

निर्मल आगे बढ़ा, किन्तु तब तक कल्पना दरवाजे से बाहर निकल गई।

निर्मल नहीं समझ सका कि वह हँसे या रोए !—डोरा का च्यवन को लिखा हुआ पत्र—नहीं, कल्पना उसे साथले गई। अच्छा ही किया! किन्तु डोरा—कल्पना—

बैरा आया, और चाय का समस्त सामान उठा ले गया।

हाथ मे कल्पना का पुर्जा, जिससे पाँच हजार वसूल करना था। कुछ निश्चय करके निर्मल भी पाँच मिनिट बाद ही कमरा बन्द करके बाहर हो लिया।

अन्तरिक्ष का वह छली पुरुष निर्मल के विधान पर फिर रहस्यमय हँसी हँस उठा !

●

: १९ :

अठारह की संध्या को हमे वहाँ भी पहुँचना है, जहाँ डोरा स्पर्जन अपने कमरे मे उत्सुक प्रतीक्षा मे घड़ी की सूइयों को देख रही है। साढे पाँच बज रहे हैं; अब च्यवन किसी भी समय आ सकता है, किन्तु पत्र मे उसने स्पष्ट कर दिया था कि साढे छः और आठ के बीच मे वह प्रतीक्षा करेगी। फाटक पर तैनात विलियम को उसने खबर कर ही दी है! सब ठीक है। वह मिलने के लिए तैयार है।

दस-पाँच मिनिट ही राह देखने के बाद दरवाजा खुला--लेटी हुई डोरा 'ट्रू रोमान्स' के चित्र देख कर समय बिताना चाह रही थी। प्रसन्नता की मुद्रा से पत्र को नीचे करते हुए बोली : "गुड ईविनिंग डीयर", सामने देखा तो मिस्टर च्यवन प्रकाश न थे, किन्तु थी एक महिला, "ह्रू! एक्सक्यूज मी, हूम डू यू वाण्ट ? (क्षमा कीजिए, आप किसे ढूँढ़ती है) ?"

"मिस डोरा आप ही का नाम है ?"

"यस, मे आइ हैव द ऑनर ऑफ नोईंग योर्स ?"(क्या आपका नाम जानने का सौभाग्य हो सकता है ?)

"मेरा नाम है नमिता कुमारी !"

"सो ग्लैड टु मीट यू ! (मिल कर बहुत प्रसन्नता हुई) आप जानती है कि मैं बीमार हूँ, उठ कर आपका स्वागत नहीं कर सकती ?" फिर एक कुर्सी की ओर इशारा करके बोली : "बैठिए ! आपसे पहले मिलने का कभी सौभाग्य नहीं हुआ; कहिए, क्या सेवा कर सकती हूँ ?" और 'सेवा' शब्द के साथ ही थोड़ा व्यंग्य से मुस्करा कर कहा : "इस, अवस्था मे जितनी सेवा मुझसे हो सकती

है, उतनी ही कहिएगा ! शायद इन डॉक्टरों के विधि-निषेधों से तो आप परिचित ही होंगी ? अच्छा यह कहिए, आपको यहाँ तक आने मे कोई कठिनाई तो नहीं हुई ? हुई अवश्य होगी ।"

"जी हाँ ! पाँच के बाद तो यहाँ किसी को आने ही नहीं दिया जाता ।" फिर मुस्करा कर कहा : "दरबान को राजी करने मे ही पाँच का नोट खर्च हो गया ! तब तो वह स्लिप डॉक्टर के पास ले गया । डॉक्टर ने अलग नखरे दिखलाए ! कहता था बीमार की हित रक्षा मे पाँच बजे के बाद यहाँ पर किसी को नहीं मिलने दिया जाता । बहाने बनाने पड़े कि मैं आपकी पुरानी मित्र हूँ, कॉलेज जाने के कारण पाँच के पहले मिल भी नहीं सकती । बड़ी आरजू-मिन्नतों के बाद उसने स्लिप पर दस्तखत किए और आने दिया और कहा कि अधिक समय न लूँ ?—देखिए न, यह स्लिप रहा !" और उसने स्लिप डोरा को थमा दिया ।

"और मुलाकात को किसी रजिस्टर मे नहीं लिखा !—ऐसी मुलाकात एक से अधिक तो किसी अवस्था मे नहीं होने दी जाती ।"

"वह भी करना ही पड़ा ।"

"इतना कष्ट उठाकर आप आई हैं, यह मेरा सौभाग्य है । कोशिश करूँगी कि आपको अपने कष्टों का एवजाना मिल सके !—पहले तो आपका परिचय—"

"मेरा नाम है कुमारी नमिता, आप नहीं जानतीं ! कभी मिलने का मौका ही नहीं आया ! पर थोड़ा और परिचय देने से आप शायद मेरे आने का उद्देश्य भी समझ जाएँगी ।"

"शैल बी सो ग्लॅड टु हैव द ऑनर !—आशा है, मेरी जल्दबाजी को आप गलत न समझेंगी । आप तो जानती ही हैं, इन डाक्टरों को । अभी कोई आकर न कह दे कि मुलाकात का समय हो गया है ।"

"ओह, आई सी, आपको धन्यवाद कि आपने यह बात सुझा दी, आप च्यवन प्रकाश को तो जानती ही होंगी ?"

डोरा ने आश्चर्य से नमिता की ओर देखा नमिता ने आँखें झुकाकर कहा : "आइ एम हिज फिआन्सी (मैं उनकी मँगेतर हूँ) इसी माह हमारा विवाह हो रहा है ।"

"सो ग्लैड टु हीयर मिस—व्हाट डिड यू से ?"

"नमिता !"

"यस नमिता, नमिता, कितना सुन्दर नाम है ! वेल, च्यवन प्रकाश को मैं जानती जरूर हूँ ! उस तरफ जो ईविनिंग डासिंग—स्कूल है, उसमें मैं ट्यूशन्स

दिया करती थी; और शायद तभी उनसे कुछ परिचय हुआ था। दैट्स रीअली ए लक टू दैट चैप टु हैव ए प्रिटी गर्ल लाइक यू टु मैरी! मेरी बधाई मिस नमिता।"

"धन्यवाद मिस डोरा!"—किस तरह बात शुरू की जाए, यह नमिता को सूझ नहीं पड़ रहा था। उधर डोरा भी काफी व्यग्र हो गई थी, यद्यपि व्यग्रता का भाव उसने व्यक्त नहीं होने दिया! इस लडकी का उद्देश्य क्या है?—स्पष्ट है कि कुछ गम्भीर उद्देश्य है, जिसे व्यक्त करने मे इसे हिचकिचाहट हो रही है। उधर स्वयम् च्यवन के आने का समय हो रहा है! कहीं च्यवन ही ने तो इसे नहीं भेजा हो?

डोरा ने कहा: "च्यवन को मैं अधिक नहीं जान सकी, डान्स के लिए शायद अपने कदमों को वह संयत नहीं कर सका, पर वैसे लड़का बुरा नहीं मालूम दिया, यद्यपि—पर हॅ हॅ हॅ!—इससे अधिक तो उसके बारे मे तुम ही जानती होगी!"

नमिता ने कहा: "आपने मुझे सजग कर दिया है कि समय की पाबन्दी मुझे रखनी चाहिए! मैं आपसे, आपने च्यवन प्रकाश को जो पत्र लिखा था, उस सम्बन्ध मे बात करने के लिए आई हूँ।"

डोरा को आश्चर्य नहीं हुआ। किन्तु नमिता के इस बात के स्वीकार करते ही वह मानो अपने 'मूड' मे आ गई। अब तक वह बैठी हुई थी, अब वह तकिए का सहारा लेकर लेट गई, और किंचित मुस्कुरा कर बोली—

"तो शायद मुझे च्यवन की राह नहीं देखना चाहिए।"

नमिता ने कहा: "नहीं मैं उनकी तरफ से नहीं आई हूँ, आई हूँ अपनी ही गरज से। शायद उन्हें मालूम भी नहीं है कि मैं यहाँ आपसे मिल रही हूँ!"

"ऐसी बात है?—पर मेरा पत्र बता देने के बाद तो आपका यह आना स्वाभाविक ही है।"

"नहीं, पत्र उन्होंने नहीं बताया, पर किसी तरह मुझे मिल गया।"

"आई सी!—सर्चिंग द हार्ट, एण्ड सर्चिंग द पॉकेट्स? (दिल टटोलना, और जेब टटोलना?) खूब? फिर?"

"आपने पत्र मे लिखा था कि इलाज के लिए आपको कुछ आर्थिक सहायता चाहिए।"

"लिखा नहीं था, दावा किया था।—मैं सोचती हूँ, शायद आप भुगतान करने के लिए आई हैं।"

"कोशिश करूँगी, किन्तु—"

"येस, गो ऑन—"

"पहली तो बात यह कि पाँच हजार की रकम शायद मैं नहीं दे सकूँ।"

"लेकिन, यह तो मेरे इलाज का कम-से-कम खर्च बताया गया है।"

"यदि आपकी चिकित्सा का भार कोई ले ले।"

"कोई कौन?"

"मसलन् मैं!"

डोरा ने हँस दिया : "क्या आप सोचती हैं कि मैं इतनी मूर्ख हूँ?"

"नहीं!—किन्तु आप दूसरों ही को क्यों मूर्ख समझती हैं?"

"वे बनते जो हैं मिस नमिता!—और देखिए विश्वास करने के लिए, आपके समान मैं विवश भी नहीं हूँ।"

"अवश्य नहीं हैं। फिर भी क्या आप विश्वास दिलानेकी कोई आवश्यकता ही नहीं समझतीं?—पाँच हजार की हानि उठाकर भी कौन अपने आप को जोखिम में डालता रहेगा?"

हँसकर डोरा ने कहा : "यदि च्यवन बाबू नहीं डालना चाहते, तो मुझे उनसे विवाह करने में कोई बाधा नहीं है।"

नमिता ने चोट खाकर डोरा की ओर देखा और कहा : "पर आप उन्हें चाहतीं तो नहीं।"

"च्यवन भी शायद मुझे नहीं चाहते! पर सवाल चाहने का तो है, नहीं सवाल है विवाह का! उससे मुझे कोई एतराज नहीं, और यदि वही होना है तो च्यवन को उससे छुटकारा नहीं।"—टेढ़ी निगाह से नमिता की ओर देखकर क्षणभर बाद वह बोली : "फिर भी यदि सौदा स्वीकार हो जाए, तो विश्वास दिलाने का प्रयत्न मैं कर सकती हूँ।"

कुछ क्षणों तक विवश-सी बैठकर नमिता ने कहा : "किन्तु पाँच हजार तो मैं नहीं दे सकूँगी।"

"मेरी माँग आपसे नहीं, च्यवन प्रकाश से है!"

"मैं जानती हूँ कि वह भी नहीं दे सकते।"

डोरा ने हँसकर कहा : "मैं भी जानती हूँ, पर नमिता, आपकी सहायता से तो वह बहुत कुछ दे सकते हैं! मेरा अनुमान है कि आपके गले का यह हार ही पाँच हजार से कम न होगा।"—और जब नमिता ने आश्चर्य से डोरा की ओर देखा, तो वह बोली : "और यही नहीं, ऐसे कई हार आपके पास और होंगे।—यह अच्छा है कि आप भी यहाँ आ गईं! पत्र से आपको यह मालूम हो ही गया होगा कि थोड़ी देर बाद च्यवन भी यहाँ आने वाले हैं। यदि मजबूर हों भी, तो भी आपको यहाँ पाकर वे यह कीमत चुकाने मे समर्थ हो सकेंगे!"

घबरा कर नमिता ने कहा : "यह हार आपका हुआ; पर आप विश्वास क्या दिलाएँगी ?"

मुस्करा कर डोरा ने कहा : "आशा है, आपके हार मे धोखा न होगा।"

"मैं राय बहादुर सुमनप्रकाश की पुत्री हूँ, मिस डोरा !"

"आश्वस्त हुई ! आप किस तरह का विश्वास चाहती हैं ?"

"कि यह रकम पा लेने के बाद आप हमारा पीछा छोड़ देंगी !"

"मैं मानती हूँ कि मेरा वचन आपके लिए काफी नहीं होगा ! जिससे आप को विश्वास होसके ऐसा कोई मार्ग आप ही सुझा दीजिए !"

"एक तो आपके पास च्यवन प्रकाश का दिया हुआ कोई छोटा-सा हार है जिसे आप प्रमाण रूप में उपस्थित कर सकती हैं , मैं उसकी कीमत देकर आप से ले लेना चाहती हूँ।"

"मंजूर ! और ?"

"आप मुझे एक ऐसा व्यक्तिगत पत्र लिख देंगी जिससे स्पष्ट हो जाय कि आप जिस संतान की माता होने वाली हैं , वह च्यवन प्रकाश का नहीं किन्तु किसी दूसरे व्यक्ति का है।"

डोरा हँस दी , और बोली :"इससे आप को विश्वास होजाएगा ? --मुझे ऐसे एक नहीं , दस पत्र लिखने मे भी एतराज नहीं होगा। एक सूचना और आप को देदूं कि इलाज शुरू होते ही डाक्टर ने कहा कि सबसे पहले मुझे इस भार से मुक्ति पानी पड़ेगी, तब दूसरा इलाज शुरू होगा ! डाक्टर तो अभी ही इसका प्रारम्भ करने वाला था , किन्तु मैंने कहा कि च्यवन बाबू से निपटारा करने मे यही तो एकमात्र सार्थक प्रमाण है। क्या तब भी आप ऐसे पत्र की आवश्यकता समझती हैं ?"

"ऐसा होजाने के बाद यदि आप चाहेंगी तो वह पत्र मैं आपको फिर लौटा दूँगी।"

हँस कर डोरा ने कहा : "ऐसे पत्रों को ही क्या, किसी भी पत्रको मैं पुनः पाना नहीं चाहती !—पाएहुए या खुद के लिखे पत्रों मे रोमान्स होना है क्या ?—पर भोली लड़की, क्या आप समझती हैं कि इतने मात्र से मेरे बारे के सब संदेह आपके हृदय से नष्ट हो जाएँगे ?"

"इतना हो जाएगा तो, मैं समझती हूँ हम निश्चिन्त हो सकेंगे।"

डोरा ने कुटिलता से मुस्करा कर कहा : "निश्चिन्त करनेके उपाय तो मुझी से पूछती ; क्योंकि हमारे नैश-विहार के जो होटल के रजिस्टर, डान्स हॉल के मैनेजर आदि कई गवाह हैं, उनके जो प्रेम-पत्र मैंने अपने पास सुरक्षित रख

छोड़े हैं, उन सब को चुप करने का एक निश्चित उपाय तुमने सुझाया तो था पर मैंने स्वीकार नहीं किया—"

"क्या ?"

"यही, मेरी चिकित्सा का भार लेकर मुझे स्टेज से हटा देना !—" फिर हँस कर बोली, "पर दूसरे उपाय मैं बतला सकती हूँ ! मसलन् मुझे यह नगर छोड़कर दूर किसी सेनेटोरियम मे जाने की राय दी जा सकती है। किन्तु ये सब चिन्ताएँ आपको तभी तक होनी चाहिएँ, जब तक कि आपका विवाह न हो जाए ! विवाह के बाद तो कोई खतरा नहीं हो सकता।"

"कुछ तो हो ही सकता है।"

"हाँ, कुछ तो हो सकता है। जैसे यदि मेरी गति-मुक्ति न हुई, और मैंने दावा किया तो शायद भरण-पोषण की व्यवस्था सिर पर आसकती है। पर, वैसे हिन्दुओं मे तो शायद बहु विवाह प्रचलित है। है न ?"

नमिता ने अपनी घड़ी की ओर देखा; प्रभावित होकर भी वह इस लड़की से घृणा करना चाहती थी। बोली—

"यह हार मैं आपको अभी दे देना चाहती हूँ, ताकि सारा मामला बेबाक हो जाए। आप बुद्धिमती हैं, यह भार मैं आप पर ही डालती हूँ। आप क्या करेंगी ताकि मुझे विश्वास हो जाए !"—और नमिता ने अपना हार गले से निकाल लिया !

"साथ में आपको लिखना पड़ेगा कि यह हार आपने मुझे भेंट स्वरूप दिया है, ताकि मैं चोरी के दोष से बच सकूँ ! मैं वादा करती हूँ कि इस लेख का प्रयोग बिना आवश्यकता के कभी न होगा। दूसरे, यदि आप यह सोचती हैं कि इस हार की कीमत पाँच हजार रुपए है, तो यह च्यवन द्वारा दिया हार आप ले जा सकती हैं। मैं इतनी क्षुद्र नहीं हूँ कि पैसे को आवश्यकता से अधिक महत्व दूँ।"—दोनों ने हार बदल लिए। डोरा ने अपने गले में नमिता द्वारा दिया हुआ हार पहन कर कहा, "अपने प्रकृत रूप में मेरे गले मे यह आपकी मित्रता की निशानी है, किन्तु जब इसे इस रूप में सुरक्षित रखना मेरे लिए संभव न होगा, तो विश्वास कीजिए, इस शरीर मे यह मेरे जीवन का प्रतीक बन कर आपको याद किया करेगा।—रहा सवाल आपको विश्वास दिलाने का, मैं समझती हूँ इससे बढ़ कर आपको किसी अन्य बात से विश्वास न होगा, कि मैं स्वयम् आपके विवाह के पहले, किसीसे अपना विवाह कर लूँ।"

नमिता ने आश्चर्यान्वित होकर कहा, "विवाह—किससे ?"

"मेरे प्रेमी से।—विश्वास कीजिए, वह च्यवन प्रकाश नहीं है।"

"इस अवस्था मे वह आपसे विवाह करेगा ?—और आप ही—"

हँस कर डोरा ने कहा, "मेरे प्रेमी को आप नहीं जो जानतीं ! मैं यह जो आपका उपकार लेकर जीवित रहना चाहती हूँ सो अपने लिए नहीं मिस नमिता, प्रत्युत् अपने प्रेमी के लिए जीवित रहना चाहती हूँ। उसकी सामर्थ्य नहीं है कि इतना खर्चा बर्दाश्त कर वह मुझे जीवित रख सके ! रहा सवाल विवाह का यह हमारा बन्धन हमारे लिए कभी बाधा तो होगा नहीं। मुझ मे जीवित रहने की आशा बलवती हो उठेगी, यदि जीवित रह गई तो मेरे प्रेमी को मेरे जीवन का लाभ मिलेगा—और मरना बदा हो, तो शेष में उसे मुक्ति ही तो मिलेगी।" —और कहते २ आँखें बन्द कर वह किसी अतीन्द्रिय-लोक मे खो गई। नमिता अभिभूत-सी निर्वाक बैठी हुई आश्चर्य से जड़ हो उठी, कि इस रमणी को वह श्रद्धा करे या घृणा करे।

डोरा ने कहा, "देखिए, यहाँ पर तो कोई कागज है नहीं, अस्पताल के बे रोगी-पत्र कुछ तह कर रखे हुए हैं। यदि आप चाहें तो मैं उन्हीं पर आपकी इच्छा-नुसार पत्र लिख दूँ ?—पर देखती हूँ कि एकाएक मुझ पर थकावट छाती जा रही है ! मेरा फिआन्सी"—और यह शब्द उच्चारण करके वह थोड़ा मुस्कुरा उठी "मिल मे काम करता है। यद्यपि उसकी ड्यूटी आठ बजे रात को खत्म हो जाती है, पर आज वह देर से लौटेगा। यदि आप मान जाएँ तो उससे मैं पत्र लिखवा कर तैयार रखँगी, इससे बीच मे एक गवाह भी हो जायगा। यदि आप विश्वास कर सकें। नहीं तो यह हार ले जाइए, कल ले आइएगा, मैं पत्र तैयार रक्खूँगी।" और डोरा ने पुनः वह हार खोलना चाहा !

नमिता ने कहा, "रहने दीजिए, सबेरे मैं स्कूल जाते समय इधर से जाऊँगी, तब पत्र ले लूगी। आपको मेरे पत्र की भी तो जरूरत होगी। वह भी मैं तभी आपको दे जाऊँगी।—मैं क्षमा चाहती हूँ कि मैने आपको कष्ट दिया, किन्तु सचमुच आपने मेरे जीवन को बचा लिया। ईश्वर आपको बहुत शीघ्र आरोग्य करे।" और चल देने के लिए नमिता उठ खड़ी हुई। -

डोरा ने आखें खोल कर कहा, "मैने आपके जीवन को बचा लिया ?" और एक लम्बी साँस डोरा नहीं रोक सकी !

नमिता ने पूछा, "क्या हुआ बहन ?—कहते कहते रुक क्यों गई ?"

"बहन—" धीमे से उसने दुहराया, "नारी के जीवन की विडम्बना को सोच रही हूँ ! मुझसे अवश्य तुमने अपना जीवन बचा लिया है, किन्तु क्या यह सोच सकती हो, कि मुझसे कई गुने दुर्दान्त व्यक्ति के पंजे में वह जीवन फँसना चाहता है ?"

"मतलब ?"

"मैं जैसी भी हूँ, फिर भी नारी हूँ ! विवाह के सुन्दर से नाम से लुब्ध होकर नारी पुरुष के जिस पिंजड़े मे जा फँसती है, वह कितना बड़ा शोषण है, इसे कौन नहीं जानता ?—और फिर भी प्रति दिन जिस तरह नारी स्वेच्छा से इस कैद मे गिरने के लिए उत्साहित हो उठती है, वह क्या अफसोस करने लायक नहीं है !"

मुस्करा कर नमिता ने कहा, "अफसोस करने लायक तो है , मिस डोरा ! पर क्या यह आवश्यक है कि अपना ही अनुभव सभी का भी हो ? मेरा अनुभव जुदा भी हो सकता है ।"

"ईश्वर करे जुदा हो ! किन्तु मिस्टर च्यवन को जितना आप जानती हैं, उस से कम मैं नहीं जानती; बल्कि हो सकता है, अधिक ही जानती होऊँ, विवाह के बन्धन की भावुकता के परे हम लोग मिले है । हमने एक दूसरे को उस क्षण मे जानने का अवसर पाया है जब कि आवेश विवेक पर हावी नहीं रहता । मैंने उस क्षण का लाभ उठाया है ।"

नमिता की सहज उत्सुकता बढी, "कैसा पाया है आपने उन्हें ?"

"एक शब्द मे कह दूँ यदि बुरा न मानें ?—आपके सर्वथा अनुपयुक्त ।"

"क्यों !—क्या मै आपको अपना हार नहीं दे चुकी हूँ !"

"दे चुकी हो बहन !—बहन कहा न ? थोड़ा राग पैदा हो गया है आपसे —पुरुष के पापों के लिए नारी कितना प्रायश्चित्त कर सकती है, और सहन कर सकती है, यह मैं जानती हूँ । आपने जो उदाहरण उपस्थित किया है, वह नया नहीं है । उस आनन्द को भी मैं महसूस करती हूँ जो नारी की भावना को छा लेता है । पर जिस व्यक्ति के लिए आप यह त्याग कर रही हैं, उसका व्यक्तिव आपके महत्त्व को वहन कर सकेगा, क्या यह कभी आपने सोचा है ? जब आप आ ही गई हैं, तो रुकिए न तनिक और ?—मैं आशा करती हूँ कि वे आने ही वाले हैं ! जरा देखिए न उनका ढंग ?—इस बाथ रूम मे बैठ कर अनजाने ही आप सब कुछ देख लेंगी ! रहा आपके हार का प्रश्न !-यदि आपने मुझे बहन कहा है, तो ले लीजिए इसे । एक नारी के लिए, जीवन का त्याग करने में मुझे आपके त्याग की अपेक्षा अधिक ही संतोष होगा ।"

नमिता फिर बैठ गई थी, जब उसने देखा कि डोरा अपना हार खोलना चाहती है तो नमिता ने कहा—

"रहने दो बहन !—यह अब तुम्हारी बहन की भेंट है, इसे इनकार न कर सकोगी ! और रहा च्यवन के बारे मे मेरा कुतूहल; यदि तुम्हारा आदेश है तो मैं ठहर जाती हूँ !-पर मेरे इस तुम सम्बोधन के लिए तो क्षमा कर दोगी न ?

"नहीं ! बदले में तुम्हें भी यह 'तुम' ही लेना पड़ेगा !"

ठीक इसी समय दरवाजा ठेल कर फाटक का दरबान विलियम सामने आ खड़ा हुआ, और उसने डोरा को एक स्लिप पकड़ा दी!

स्लिप पढ़ कर डोरा ने नमिता की ओर बढ़ा दिया फिर बोली "डॉक्टर ने क्या कहा?"

मुस्कुरा कर विलियम ने कहा—"डॉक्टर क्या कहेगा? वे बाहर खड़े हैं।"

"अच्छा, जाओ, भेज दो।" लड़का चला गया!

डोरा ने कहा, "यह बाथ रूम है सुनती रहना, पर घबराना मत। होश-हवास मत खो बैठना। उत्तेजित हो गई, तो सारा खेल बिगड़ जाएगा।"

उत्तेजित तथा धड़कते दिल से नमिता बाथ रूम मे घुस गई, और दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया। भीतर बैठे हुए बाहर की सारी आवाज वह सुन सकती थी, दिखाई देना कुछ सम्भव नहीं था।

"गुड इविनिंग, डोरा डोअरेस्ट!" कहते हुए च्यवन ने कमरे में प्रवेश किया, और सीधा उसके बिस्तर की ओर लपका मानों वह उसे चूम लेना चाहता था, किन्तु डोरा के चेहरे पर बीमारी की भयानक छाया से, एक कदम दूर वह सहम कर रुक गया, और बोला, "व्हॉट ए पिटी, हाउ आइ मिस्ड यू ऑल दीज डेज, एण्ड देन ऑल ऑफ ए सडन आइ शुड हीयर दैट सच एन एलमेण्ट शुड कन्फाइन यू इन! माइ गॉड, तुम तो बिलकुल दुबली हो गई! व्हाट हैज हैपन्ड टू यू?" (तुम्हारा अभाव मुझे कैसा खलता रहा? अकस्मात् कैसे बीमार हो गईं? क्या हुआ है तुम्हें?)

मुस्करा कर डोरा ने कहा, "वॉन्ट यू किस मी डार्लिंग?"—डरते डरते कहीं छूत न लग जाए,जब च्यवन आगे बढ़ा, तो हँसकर डोरा ने हाथ से रोकते हुएकहा, "ठहरो, मैं मान लूँगी, तुमने मुझे चूम लिया! टी०बी० के बीमार से कुछ दूर ही रहना चाहिए। उस कुर्सी को नजदीक खींच लो।"

च्यवन ने आदेश का पालन किया और कुर्सी पर बैठ गया।

"जब मेरा पत्र पाकर तुम आ गए हो, तो उम्मीद है कि मैं जी ही जाऊँगी! किन्तु डीयर, मैं यह जानने के लिए बेचैन हूं कि मिसेज़ च्यवन के रूप में जीवित रहूँगी या मिस डोरा के? प्लीज, मुझे निराश मत करना।" और एक कुटिल अपांग के साथ वह मुस्करा उठी।

"मैं बड़ी उलझन में फँस गया हूं, डोरा! मैं तुम्हारी सहायता चाहता हूँ कि तुम मुझे सुलझाओ।"

"तुम्हारा विवाह तो तुम्हारी इच्छा से ही निश्चित हुआ होगा, च्यवन! इसमें उलझन कैसी?"

"यही तो मैं तुम्हें समझाना चाहता हूँ! जिस लड़की से मेरी शादी तै

हुई है, उसे मैं बिलकुल प्यार नहीं करता, किन्तु जानती हो ?—वह है सोने की चिड़िया। उसका बाप है राय बहादुर, और उत्तराधिकारी के नाम पर है उसके केवल एक यही लड़की !"

"समझी, तो तुम एक खूबसूरत चिड़िया और उसके सोने के अण्डे को निश्चय ही नहीं छोड़ सकते, च्यवन !—तुम्हारे सौभाग्य पर मुझे ईर्ष्या होनी चाहिए। तब तो मुझे छोड़ने में तुम्हे कोई कठिनाई नहीं होगी; और यदि तुम्हारे भविष्य के आसार ऐसे स्वर्णिम हैं, तो कदाचित् मुझे पाँच हजार से अधिक ही देकर मेरी चिन्ता को भी दूर कर सकोगे।"

लम्बी साँस लेकर च्यवन ने कहा, "सोने के अण्डे का सौभाग्य तो मिलेगा तभी मिलेगा, किन्तु इस लडकी से विवाह करने को तुम क्यों मेरा सौभाग्य समझती हो, डीयर ?—मैं उसे प्रेम नहीं करता, पर क्या करूँ, मेरी आवश्यकताओं की पूर्ति का भी तो और कोई साधन नहीं है !"

"क्यों ? क्या लड़की सुन्दर नहीं है ?"

"सुन्दर तो है, परन्तु सुन्दर होने ही से तो प्यार नहीं हो जाता। यह दरिद्रता न होती तो तुम्हारे प्रेम के सम्मुख उस प्रेम की क्या बराबरी हो सकती है !—हसी में मत उड़ाओ डोरा, सच कहता हू, तुमसे मैं इतना प्यार करता हूँ कि शब्द उसे व्यक्त नही कर सकते ! तुमसे विवाह कर एक अविच्छेद्य बन्धन मे बँधजाने की कितनी बड़ी साध है,यह तुम नहीं समझ सकतीं ! पर मेरा प्यार इतना अंधा नहीं है कि वह तुम्हारे भविष्य ही को अंधकार मय कर दे"।

"सो कैसे ?"

"मैं स्वयम् बड़ा गरीब हूँ, डोरा, तुमसे विवाह कर लेने के बाद, मैं फिर वैसा ही गरीब रह जाऊँगा। इससे मैं अपने लिए कोई कठिनाई नहीं देखता, किन्तु तुम्हारे इलाज की सामर्थ्य भी तो नहीं रहेगी। बिना इलाज मैं तुन्हे मरने नहीं दे सकता, इसीलिए तुम्हारी भलाई के लिए, केवल तुम्हारे जीवन के लिए मुझे अपने अरमानों का गला दबा देना होगा। और वस्तुतः इसी इरादे से, चाहे पहले कुछ दुविधा भी हो, मुझे इस प्रस्तावित विवाह को स्वीकार करना पड़ेगा !"

"तुम्हारे त्याग की कीमत मैं समझती हूँ, च्यवन ! तुम्हारे दिए हुए दान से स्वास्थ्य-लाभ करके मैं तुम्हारी प्रसन्नता की कामना करती रहूँगी।"

"वही नहीं; तुम आशा करो डोरा, कि अवसर मिलते ही मैं अपने इस अवांछित बंधन को तोड़कर तुमसे आ मिलूँगा। पर तुम्हें तब तक प्रतीक्षा करना पड़ेगी।"

"मैं समझी नहीं, च्यवन ! अवसर से तुम्हारा मतलब ?"—डोरा च्यवन

का तात्पर्य तो समझ गई थी किन्तु चाहती थी कि नमिता बाथरूम में स्वयम् अपने कानों से सब बात स्पष्ट सुन ले।

च्यवन ने कहा, "मतलब कोई विशेष तो है नहीं। बूढ़ा आखिर कितने दिन तक जिएगा, फिर उसके बाद मुझे सम्पत्ति से बेदखल कौन कर सकता है?"

"तुम्हारी प्रीति का प्रमाण पाकर मुझे कितनी प्रसन्नता हुई, च्यवन, मैं कल ही से चिकित्सा शुरू करवा लेती हूँ। मुझे जीवित रहने मे अब उत्साह हो चला है!—तुम्हारा विवाह कब हो रहा है?"

"अभी तारीख निश्चित नहीं हुई। अगले माह की दस-बारह के लगभग तय होगी।"

"तब तक तो मैं इतनी स्वस्थ हो जाऊँगी कि शायद तुम्हारे विवाह में सम्मिलित हो सकूँ। लेकिन एक बात है। मुझे कुछ रुपया अधिक देना होगा, केवल पचास रुपए, ताकि तुम्हारे लिए एक तोहफा तो मैं खरीद सकूँ।"

"लेकिन—" बड़े गम्भीर होकर च्यवन ने कहा

"क्या?"

"जैसा कि मैंने कहा मैं स्वयम् तो बड़ा गरीब हूँ।—"

"और तुम्हारी फिआन्सी सोने की चिड़िया है।"

"पर उससे तो मैं यह बात कह नहीं सकता। बूढ़ा रायबहादुर भी बहुत मक्खीचूस है। वह एक पैसा देने के लिए तैयार नहीं होता। कहा कि विवाह के लिए मुझे भी तो कुछ तैयारी करना पड़ेगी, तो बोला कि जो चाहिए बाजार से खरीद लो, बिल चुका दिया जाएगा। इसलिए मानो तो मेरी एक राय है।"

"क्या?"

"हमारी शादी हो जाने दो। उसके बाद पैसे का मेरे पास अभाव नहीं रहेगा।"

"किन्तु तब तक मेरे दावे के लिए मेरे पास क्या प्रमाणों का अभाव नहीं हो जाएगा?"

"तुम्हें मुझ पर क्या थोड़ा-सा भी विश्वास नहीं होता?—मैं इस विवाह का यह त्याग केवल तुम्हारे लिए स्वीकार कर रहा हूँ!"

डोरा च्यवन की बात सुन कर मन ही मन मुस्करा उठी, कितना छली होता है पुरुष!—नमिता को क्या इस उच्छृंखल युवक की बेवफाई का और अधिक प्रमाण पाना शेष रह जायगा?

"मुझे क्या करने को कहते हो?-कल मेरा सलाहकार मेरी अन्तिम राय के लिए व्याकुल रहेगा।"

"डार्लिंग, मैं सारी बात तुम्हारे ऊपर छोड़ता हूँ। यदि तुम चाहती हो कि हमारे भावी-जीवन के सब सुनहरे सपने समाप्त हो जाएँ, तो तुम अपने सलाहकार से यही कह देना कि मैं पैसे का प्रबन्ध नहीं कर सका। और सच कहता हूँ, तुमसे विवाह करने के बाद तुम्हारी मृत्यु पर मुझे भी जहर खाकर सो रहने के सिवा और कुछ शेष न रहेगा।"

डोरा ने फ्रॉक के नीचे छिपे हुए नमिता के हार पर हाथ रख कर कहा : "नहीं डार्लिंग, ऐसी बात मत कहो।"

"पर इसके सिवा तो कुछ चारा दीखता नहीं। पर क्या डॉक्टर कुछ पेशगी पाने पर शुरू नहीं कर सकता? शेष रुपया उसे बाद मे मिल जायगा। यदि यह हो सके डोरा, तो वादा करता हूँ कि शादी होते ही मैं कहीं से भी पाँच हजार का प्रबन्ध कर लूँगा। अब तक मैं सौ रुपए का प्रबन्ध तो कर सका हूँ।"

"केवल सौ रुपए का?" मानो कुछ सोचती-सी रहने के उपरान्त डोरा ने कहा : "डॉक्टर से कल कह देखूँगी शायद सौ रुपए पेशगी पाकर वह सहमत हो जाए।"

"तो क्या यह जानने के लिए मुझे फिर यहाँ आना पड़ेगा? डार्लिंग, इस अवस्था में बार बार यहाँ आने का क्या नतीजा हो सकता है, यह जानती हो? यदि उन लोगों को मालूम पड़ गया—"

"अच्छा, तो मैं तुम्हें खबर भेज दूँगी।"

"तब तक तुम्हारे सलाहकार—"

"उसे मैं सब समझा दूँगी।"

"पर यदि वह न समझा? मैं सोचता हूँ यदि तुम किसी के नाम एक ऐसा पत्र लिख दो जिसका आशय यह हो कि मेरे और तुम्हारे बीच किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध न था, सिवा इसके कि मैंने तुमसे नृत्य के कुछ ट्यूशन्स लिए थे, तो मैं समझता हूँ मेरी परिस्थिति काफी साफ हो जाएगी।"

"पर यह पत्र मैं लिखूँ किसे?"

"मान लो, मेरी होने वाली पत्नी के नाम?"

"पर उसे तो मैं जानती ही नहीं, उसका नाम तक जानने का सौभाग्य मुझे नहीं है।"

"उसे जानने से कोई विशेष सुविधा नहीं होगी, और नाम है उसका नमिता।—यदि तुम तैयार हो, तो पत्र मेरे पास लिखा लिखाया मौजूद है, तुम केवल दस्तखत कर दो—"और उसने जेब से एक लिफाफा निकाल कर डोरा की ओर बढा दिया, कहते कहते, "मैं जानता था कि तुम अस्वस्थ हो, और शायद लिखना-पढ़ना डॉक्टर ने बन्द कर रक्खा हो?"

डोरा ने पत्र ले लिया, और लिफाफे में से मसविदा निकाल कर पढने लगी। च्यवनकी बुद्धि पर उसे तरस भी आया और उसकी दुरभिसंधि पर क्रोध भी।

पत्र पढ़ चुकने पर डोरा ने कहा, "पर क्या इसकी सचमुच जरूरत है? मैं तुम्हारा यदि विश्वास करती हूँ, तो क्या तुम मेरा इतना भी विश्वास नहीं कर सकते?"

"तुम्हारा विश्वास तो कर रहा हूँ, डीयर। यह तो तुम्हारे उस सलाहकार से बचने के लिए है।"

"और यदि मेरी सलाहकार मैं स्वयम् होऊँ?"

खिसिया कर मुस्कराते हुए च्यवन ने कहा, "मेरा मतलब था कि यदि 'कभी मेरी होनेवाली पत्नी को भी किसी कारण वश कोई सन्देह हो जाए तो वह इससे मिट जायगा?"

"तो ठीक है मै वादा करती हूँ कि इसे मैं नमिता देवी के पास दस्तखत करके पहुँचा दूँगी।"

"मुझे दे दो मैं पोस्ट करदूँगा; हाथ से देने से तो शंका बढेगी ही।"

डोरा ने मुस्कुरा कर कहा, "सन्देह तुम्हारा बना हुआ है, डीयर! खैर, लाओ, पेन दो, मै दस्तखत कर देती हूँ। पर बिना प्रसग के यदि मुझे यह पत्र मिलता, तो स्पष्ट होने की अपेक्षा मेरा सन्देह बढ़ ही जाता।"

च्यवन ने हर्षित होकर पेन निकाली, और आगे बढ़ाई।

डोरा ने कहा—"और वे सौ रुपए? कल मुझे उस डॉक्टर को भी तो फुसलाना है।"

च्यवन ने मुस्कुराते हुए जेब में हाथ डाला, "ओह, वह तो मैं भूल ही गया था!" और दस-दस रुपए के दस नोटों की एक गिड्डी उसने डोरा को फैलाए हुए हाथ पर रख दी।

डोरा ने रुपयों के साथ उस पत्र को भी जब फ्रॉक की जेब के हवाले किया तो च्यवन ने कहा, "वह पत्र तुम्हारे लिए नहीं, मेरे लिए रुपयों से कहीं अधिक मूल्यवान है।"

डोरा ने कहा, 'मैं सोचती हूँ च्यवन, कि यह पत्र तुम्हे मेरे पास छोड़ जाना चाहिए! मैं आज बहुत थक गई हूँ। कल डॉक्टर से जो बात होगी, वह भी मैं इसी के साथ भेज दूँगी। आशा है, तुम इतना विश्वास तो कर ही सकते हो!"

च्यवन ने भावशून्य चेहरे से डोरा की ओर देखा, डोरा मुस्करा उठी।—डोरा ने देखा कि च्यवन की आँखों में एकाएक रग बिखर गया। अवश्य ही

च्यवन समझ गया होगा कि जिस स्त्री से उसका पाला पड़ा है, वह उससे कम खतरनाक किसी तरह नहीं है।

च्यवन ने घड़ी की ओर दृष्टि डाली, आठ बज चुके थे।—उठते हुए वह बोला, "मुझे तुम्हारे ऊपर पूरा विश्वास है। मैंने तो अपना सारा जीवन ही तुम्हारे ऊपर न्योछावर कर रखा है। मेरी इच्छा ही—मेरा मतलब है तुम्हारी इच्छा ही मेरे लिए सर्वोपरि है। तुम भी बहुत थक गई मालूम देती हो। मैं भी दिन भर की दौड़ धूप के बाद काफी थकावट महसूस कर रहा हूँ। तो मैं इजाजत लूँ?—आशा है, तुम धीरज नहीं छोड़ोगी। और अपनी सेहत की खबर बराबर देती रहोगी, वरना मैं परेशान रहूगा।"

डोरा ने कहा, 'बाई बाई; विश यू ए व्हेरी हैपी हनीमून।"

च्यवन बोला—"मे आइ नॉट हैव्ह दी प्रिव्हिलेज ऑफ गिव्हिंग यू ए पार्टिंग किस?" (एक बिदाई के चुम्बन का अधिकार ले सकता हूँ?)

च्यवन आगे बढ़ा, डोरा डर गई—नमिता क्या समझेगी? उसने कहा, "नहीं नहीं, डीयर— आएम टू सिक टु बी किस्ड; फॉर योर सेक आइ एम नॉट गोइंग टु बी किस्ड बाइ यू!" (नहीं, मैं बहुत बीमार हूँ, कम से कम तुम्हारी कारण मैं ऐसा नहीं चाहतो।)

"मैं अपने आपको नहीं रोक सकता डीयर!"—

और बाथ रूम मे कुर्सी पर छिपी बैठी नमिता ने महसूस किया कि डोरा के मना करने पर भी च्यवन आगे बढ़ा, कुछ सरसराहट सी हुई, कुछ गों गों—शायद डोरा ने रोकने का पुनः प्रयत्न किया, किन्तु शायद च्यवन ने आखिर उसे चूम ही लिया, चूमने की आवाज भी उसे सुनाई दी, शायद डोरा ने आत्म समर्पण कर दिया, आखिर वह है तो एक नारी ही!—दोनों शायद आलिंगन-पाश मे बँधे स्वप्न लोक की रंगीनी में भूल गए! कैसी शाति हो गई है, जैसे कहीं कोई हो ही नहीं!—इसी शाति मे दो मिनट खिसक गए!

—पर एँऽ यह क्या?—

उसने सुना—"कर अपने सलाहकार से सलाह!"—फिर जैसे कोई वस्तु पलंग पर गिर पड़ी।

नमिता के हृदय मे कँपकँपी छूट गई, एक क्षण भर मे सारे शरीर में पसीना छूट गया, शीघ्र ही उसने बाथ रूम का दरवाजा खोल दिया। देखा कि चौंक कर एकाएक च्यवन हाथ मे छुरी लिए उसी की ओर उन्मत्त जैसा लपक रहा है!

नमिता ने कहा, "मैं हूँ नमिता, च्यवन! मैं हल्ला करती हूँ!"

च्यवन के होश गुम हो गए। वह रुक गया, और भय से थर थर

काँपते हुए वह नमिता के पैरों मे गिर पड़ा। इतनी ही देर मे नमिता ने कमरे में घटे हुए काण्ड का निरीक्षण कर लिया। डोरा अपने पलंग पर निश्चेष्ट पड़ी हुई थी, खून उसके हृदय से निकल कर सारे बिस्तर को तर कर रहा था। सारा बिस्तर रँग गया था, सामने की दीवार पर भी खून की एक धारा फैल गई थी। रक्त अब भीं निकल रहा था, लेकिन च्यवन के कपडे साफ थे।

नमिता को गश आने लगा, सामने वाली दीवार का सहारा लेकर वह किसी तरह खड़ी रह पाई। च्यवन उठ खडा हुआ और बोला, "मैं समझा, कोई दूसरी आफत है, पर तुम यहाँ कैसे नमिता ?—"

नमिता के मुँह से शब्द नहीं निकले। उसकी वाणी रुद्ध हो गई थी। किसी क्षण में उसे भी बाधा-मुक्ति का यह उपाय सूझा था, किन्तु अब परिस्थिति बिलकुल दूसरी थी।

च्यवन ने कहा, "यह सब तुम्हारे प्रेम की खातिर है नमिता! सुनी होगी न इस हरामजादी की स्पर्द्धा तुमने ? क्या करूँ, इसके सिवा कोई चारा ही न था! सौ रुपए भी—"

नमिता के शब्द लौट रहे थे, "किन्तु—किन्तु—तुम उसे—म्‌मार कैसे सके ?"

"चूमने का बहाना करके मैंने उसका गला दबा दिया, डेढ पसली तो थी ही, चीख भी न सकी, और यह छुरी का काण्ड तो बाद मे सन्देह न रहने के लिए किया है।—पर अब यहाँ अधिक ठहरना निरापद नहीं। हमे जल्दी ही यहाँ से भाग चलना है, वरना—जहाँ तक मैं जानता हूँ, दस बजे नर्स अपने दैनिक दौरे पर आएगी। तब भी अभी सवा आठ बजे हैं! पौने दो घटे हम बहुत दूर निकल जाएँगे।"

"मुझे बड़ा डर लग रहा है च्यवन, यह—यह छुरा—"

"यहीं छोड़ना पड़ेगा। जरा ठहरो!"

—और उसे दीवार के सहारे छोड़ च्यवन फिर बिस्तर की ओर गया। रक्त की धारा बन्द हो रही थी। गला दबाकर हत्या करने के कारण शव की आँखें फटी हुईं मानों उसको निगलना चाहती थीं। दर्द से विकृत मुँह च्यवन को मानों भस्म कर देना चाह रहा था, पर उस शुष्क, काले, डरावने चेहरे पर कोई चेष्टा शेष नहीं थी। डर कर च्यवन ने आँखें बन्द कर लीं।

पर उसे जो कुछ करना था, उसके लिए अधिक समय न था। उसने बिस्तर पर छुरी रख दी। फ्राक की जेब से सौ रुपए के नोट और कागज का वह ड्राफ्ट जो वह डोरा के हस्ताक्षर के लिए ले आया था, निकाल कर उसने अपनी जेब मे डाले। और एक काम किया च्यवन ने। अपना दिया हुआ पुराना

हार पाने के लिए साहस कर उसने शव के गले मे हाथ डाला, उसे एक बहु-मूल्य हार फ्राक के नीचे सीने पर लटकता हुआ मालूम दिया। रक्त में रंग गया था,पर उसने उसे निकाल लिया। निश्चय ही हार बहुत कीमती है। उसे भी उसने जेब के हवाले किया, और फिर नमिता के पास आकर बोला—

"साहस से काम लो, नमिता। यह जीवन और मरण की घड़ी है। यदि जरा सी भी घबरा गई तो हम-तुम फाँसी के मुजरमि बनेंगे—"

"पर मैंने तो हत्या नही की।"

पर हम दोनों मे से ही किसी ने की है! यही प्रमाणित होगा, यदि हम पकड़ लिए गए। चलो, चुपके से निकल जाएँ!"

"लेकिन दरवाजे पर—"

"नहीं, दरवाजे से नहीं,मैंने अस्पताल का सारा कम्पाउण्ड देख रखा है। यह काम तो में करना ही चाहता था। दक्षिण दिशा मे जहाँ मेहतर का क्वार्टर है वहाँ कम्पाउण्ड वाल थोड़ी नीची है, और मेहतर लोग उधर से ही आते जाते हैं। इस समय वहाँ अधेरा होगा, चलो!"

उसने नमिता का हाथ पकड़ा, और प्राय, घसीटता हुआ उसे दरवाजे तक ले गया। एक क्षण के लिए कुछ सोचकर उसने कमरे की खिड़की बन्द की तथा रोशनी बुझा दी। अधकार मे दोनों बाहर निकले, दरवाजा बन्द किया। बाहर कोई न था—दक्षिण दिशा की ओर अधकार मे दोनों अदृश्य हो गए।

लगभग एक घटे बाद जब निर्मल ने सदर फाटक से प्रवेश किया, तो उसके मन की विचित्र उदासीन अवस्था थी। मन के मनसूबे मिट्टी में मिलते चले जा रहे थे। मानों अंतरिक्षमें बैठा कोई उसके विरुद्ध घटनाओं का जाल बुनता चला जा रहा है, और उससे निकलने के लिए भरसक प्रयत्न करने पर भी उसका वश नहीं चलता, उसे हार माननी ही पड़ती है! कैसे सुन्दर सुनहरे जगत मे उसकी आँखें खुली थीं! सम्पन्न पिता, सुन्दर स्वस्थ शरीर, प्रतिभा-शील मस्तिष्क, उन्नति के समस्त अवसर सुलभ, और भविष्य के स्वप्नों को सार्थक करने के लिए ऐसी अप्सरा के समान नमिता की अनुकूलता—किन्तु उस छलिया के मानों भ्रू-सकेत मात्र से सब कुछ जादू के महल के समान क्षणभर में तिरोहित हो गया!—उसने चेष्टा की कि कल्पना का सम्बल ही उसे यदि मिल जाए तो इस दुरूह जगत् की कठिन राह मे वह फूल पैदा कर लेगा, पर उधर फिर वह रहस्य मय जादूगर मुस्करा उठा!—तब उसकी अतल सिन्धु में पड़ी हुई निमज्जमान नौका एक तिनके की ओर बढ़ी,—डोरा ने आश्वासन दिया; अपनी गरीबी मे ही निर्मल कुछ पैबन्द लगाना चाहता था, कि उस पैबन्द ही के रंग बिखर गए! क्या चाहता है आखिर वह रहस्य-मय

पुरुष ?— कौन है वह, जो इस तरह उसके विरुद्ध पग पग पर घटनाओं को मोड़ता चला जा रहा है ?

नहीं; अब किसी मे आसक्ति नहीं ! डोरा ने जो कुछ किया, चाहे वह परिस्थिति के वश किया, या स्वेच्छा से, उसके कामों का लेखा-जोखा वह नहीं करेगा ।—उसके ऊपर डोरा का यदि कुछ ऋण था, तो वह पाँच हजार रुपए से चुक जाएगा । पाँच हजार का उसकी जेब में चेक है । सब व्यवस्था कर कल उसे रंग मंच से हट जाना चाहिए ।

और यह च्यवन ?—याद आया उसे वह पहला दिन, जब कॉलिज में सबसे पहले उसने निर्मल की प्रीति सम्पादित की थी । और फिर किस तरह एक के बाद एक वह उसका आसन छीनता चला गया ! यह संतोष तो उसे है कि इस जीवन मे चाहे जितना दुःख, चाहे जितनी विडम्बना उसे उठानी पड़ी हो, उसने किसी का कुछ छीना नहीं । घोर परिश्रम कर जो कुछ पाया उसी मे उसने संतोष किया है । यदि कहीं कोई भगवान है, और वह चाहे न हो, वह रहस्यमय जादूगर भी यह तो स्वीकार करेगा कि उसने अगर किसी से कुछ पाया है तो वह दुःख ही है, जिसे पुनः कोई लौटना नहीं चाहेगा !

उसने सोचा कि डॉक्टर के कमरे मे होता चले । उससे कहेगा कि डोरा का विधिवत उपचार प्रारंभ किया जा सकता है, बल्कि यह चेक वह सीधा डॉक्टर ही को क्यों न दे दे, ताकि डोरा के पास और अधिक जाकर मोह बढाने की आवश्यकता ही न हो ?—यह भी नहीं पता कि कौन डॉक्टर ड्यूटी पर होगा !—नहीं, डोरा से मिलना तो पड़ेगा ही !

कमरे मे देखा तो डॉक्टर आराम कुर्सी पर पड़ा सो रहा है, घड़ी की की ओर दृष्टि गई तो नौ बज कर पैंतीस मिनिट हो रहे थे । क्या वह उसे जगाए ?—डॉक्टर कोई नया छोकरा है, शायद पूरा केस उसे मालूम न हो । सबेरे उसे मुख्य डॉक्टर से बात करना ही पड़ेगी, और यदि डोरा सारा दायित्व अपने ऊपर ले ले, तो आज की रात उसके डोरा के सम्पर्क की आखिरी रात हो जायगी । निर्मल दरवाजे से लौट कर वार्ड की ओर बढ़ गया ।

जनरल वार्ड के एक कोने मे एक नर्स अपने दैनिक चक्कर के लिए तैयारी कर रही थी । कुछ रोगी सो चुके थे, कुछ कराह रहे थे, और कुछ बरामदे में बैठे अपने तीमारदारों से गप शप लड़ा रहे थे । यद्यपि तीमारदारों को आवश्यकता से अधिक यहाँ रहने नहीं दिया जाता था, फिर भी तीमारदार जब हों तो वे केवल बीमार की परिचर्या स्वीकार कर नहीं सकते । तीमारदारी के बाद उन्हें अपना काम करना ही है । बरामदे में कुछ ऐसे लोग ताश खेल रहे थे !

आगे बढ़ने पर उसे कुछ अजीब मनहूसियत फैली मालूम दी । वह

मुस्कराया, मानों उसके मन की दशा के साथ तालमेल बिठाने के लिए ही किसी ने प्राइव्हेट वार्ड के कमरों के बरामदे की रोशनी बन्द कर दी थी। उसने स्विच दबा कर उजाला कर दिया। मानों अपने मन के ऊपर से उसने एक शिला को हटाने की कोशिश की।

और आगे बढ़ा। यह कमरा—नहीं नहीं; आखिर के कमरे से दो कमरे इस तरफ—सभी कमरे एक जैसे, इसलिए पहचानने मे थोड़ी कठिनाई होती ही है। प्रति दिन इसलिए नहीं होती कि वह अधिक से अधिक साढ़े आठ तक यहाँ आ जाता है, उत्सुक प्रतीक्षा मे डोरा खिड़की ही मे आ बैठती है। उसका उल्लास, उसके शरीर के समान कभी मन्द नहीं हुआ! आज वह शीघ्र क्यों सो गई?—च्यवन से भेंट मे क्या पाया उसने?—यद्यपि उसे विलम्ब हो गया है, पर इतना नही कि वह सो जाय!—क्याच्यवन अभी तक भीतर ही है?—खिड़की भी इसीलिए तो कहीं बन्द नहीं?—परशीघ्र ही तो नर्स आने वाली है!

दरवाजे पर एक क्षण खड़े रह कर उसने धड़कते हुए हृदय को सम्हाला। उस नीरव शाति मे उसके हृदय की धड़कन ही मानों उसके कानों में हथौड़ों की चोट मारने लगी। उसने दरवाजे पर हाथ रखा, कि भीतर वाला प्राणी सावधान हो जाए, पर उसके साधारण-से धक्के से किवाड़ खुल गए। भीतर अंधकार के सिवा कुछ न था।

उसने आवाज दी, "डोरा!"—एक क्षण तक जब कोई आवाज नहीं सुनाई दी, तो उसे अनुभव हुआ कि मानों कोई तीव्र अपरिचित गन्ध उसके नाक को छाए लेना चाहती है। टटोलते हुए आगे बढ़ कर उसने स्विच दबाया, क्षणाश-भर में कमरे में विद्युत् प्रकाश भर गया!

—और जैसे ही बिस्तर पर उसकी दृष्टि गई, वह एकदम से जड़ हो गया, उसकी साँस रुक गई। सारे शरीर में रक्त के स्थान पर मानों शीशा भर कर जम गया! वह हिल-डुल भी न सका!

पलग पर डोरा का पता न था, थी केवल एक लाश, आँखें फटी हुईं, जीभ निकली हुई, रक्त से लाल बिस्तर और वस्त्र, रक्त जम कर काला पड़ने लग गया था, सम्भवतः उसी की गन्ध सारे कमरे में फैली हुई थी!—कमरे की नीरवता उसके अभिज्ञान पर इतने जोरों से मुखर हो उठी थी कि विश्व का कोई भी स्वर मानों सुनाई पड़ना असम्भव था।—

कहाँ है वह?—यह क्या है?—डोरा क्या हुई?—इस पलंग पर यह रक्त-वेशी पिशाचिनी कौन है?—दिन है या रात्रि?—वह जीवित है या मृत या सोया हुआ स्वप्न देख रहा है?—वह स्वयम् कौन है!—निर्मल या निर्मल का प्रेत?—या?—

अस्पताल का कमरा है, वही कमरा है, यह सचमुच ही डोरा का कमरा है, यह उसके वस्त्र, उसका तौलिया, यह—यह लाश भी उसी डोरा की है, डोरा की है ? तो क्या—क्या किसी ने उसकी हत्या कर दी ?—क्यों, किसने कैसे ?

आज सन्ध्या को च्यवन को उसने निमंत्रित किया था, पाँच हजार, उसके विवाह को चुनौती—एँ—क्या च्यवन ने इसे मार्ग की बाधा समझ कर समाप्त कर दिया ? समाप्त कर दिया ?—च्यवन ने ?—डोरा समाप्त ?

निर्मल आगे बढ़ा ! उसने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई, दीवार पर रक्त की धारा के चिह्न मौजूद थे, जिसमे हत्या की गई थी, वह छुरी वहीं पास पड़ी हुई थी। वह और आगे बढ़ा, पलग के पास, जो लाश दूर से बड़ी भयानक दिखाई दे रही थी, निर्मल को अब उसमें भय नहीं दिखाई दिया; अब उसमे दैन्य था, फटी हुई आँखों में मानों करुणा की भीख थी, जो बर्त्तन के फूट जाने से सब बह गई थी। मनुष्य का ऐसा अन्त ? निर्मल की आँखों में आँसू भर गए। उसने दोनों हाथों से डोरा का मुँह पकड़ा, उसके गाल से अपने कपोल छुआ दिए !—जगत के समस्त विरोधी तत्वों से बहादुरी के साथ लड़ना, दुःख को कभी पास न फटकने देना, जीवन के वर्त्तमान को सब कुछ समझना, यह था इस नन्ही सी औरत का चरित्र ! आज कल्पना ने उसकी भर्त्सना की थी, मजाक उड़ाई थी—सैकड़ों कल्पनाओं ने उसकी भर्त्सना की होगी, हजारों निर्मल उसे समाज की आवर्जना कहा करें, उसे किसी की चिन्ता न थी। यदि किसी को उसके मार्ग मे आना हो, तो वह शक्ति भर सहयोग के लिए तैयार है, वरना आपका रास्ता है, आप जाइए और मन मे आए सो बकिए !

यन्त्रचालित-सा वह उठा, उसने सारे कमरे को ध्यान से देखा, मानों खोजना चाहता था कि क्या उसके पूर्व व्यक्तित्व का परिचय देने के लिए कोई वस्तु इस कमरे में अवशिष्ट रही है ?—उसने बाथ-रूम खोला, भीतर यह कुर्सी ?—यह क्या ? एक नीचे पड़ी हुई स्लिप उसने उठाई। लिखा था च्यवन का नाम !—सो च्यवन यहाँ पर अवश्य है। इस पुर्जे से उसे क्या कुछ सहायता नहीं मिल सकती ? इस बाथरूम मे कुर्सी पर बैठा वह क्या कर रहा था ?

उसके मन ने कहा, क्यों न वह भाग चले ?—पर क्यों ?—हत्या उसने नहीं की। यदि भाग गया तो सन्देह उसीके ऊपर होगा। क्या पता, कब तक वह बच सके ? और इस तरह वह कम से कम च्यवन को तो इस हत्या के लिए जिम्मेदार ठहरा सकता है !

पुनः वह लाश के पास लौटा, दोनों हथेलियों से उसने आँखों के पलक गिराए, किन्तु वे पूरी आँखों को ढँक नहीं सके! जीभ को भी उसने भीतर घुसाने का प्रयान किया, किन्तु बत्तीसी ऐसी कठोर हो गई थी कि उसे डिगाना भी कठिन था। हूँ ?—उसके गले में जो हार था ? अवश्य च्यवन का दिया हुआ था! तो वह भी गायब है ?—और यह स्लिप ? उसने सिरहाने की उस स्लिप को उठाया, पढ़ कर वह दंग रह गया, नाम था उस पर नमिता का, और उस पर डॉक्टर के इनीशियल्स मौजूद थे। ओह, तो क्या नमिता भी यहाँ विद्यमान थी ?—क्या दोनों ने मिल कर हत्या की है ?

निर्मल ने पुनः जेब से च्यवनवाली स्लिप निकाली, देखा उस पर डॉक्टर के हस्ताक्षर नहीं थे। यानी, पत्र मे डोरा ने जो लिखा था कि वह दरबान से कह देगी; सो डॉक्टर इस बात को जानता भी नहीं कि च्यवन आया भी था। च्यवन को स्लिप में केवल उसके नाम के प्रथमाक्षर हैं। तारीख आदि कुछ नहीं। बड़ी सरलता से वह कह सकता है कि, यह उसकी स्लिप नहीं है, किसी दूसरे दिन उसने लिखी, या—और कुछ भी कह सकता है! तब क्या नमिता स्वयम् ही दोषी नहीं हो उठेगी ? नमिता यदि उसने हत्याकारी का साथ पसन्द किया है, तो उसका वजन भी क्यों न बँटाए

यदि यह प्रमाणित हो गया, तो क्या नमिता को फाँसी लगा दी जाएगी ? -नमिता, जो कभी उसके स्वप्नों की रानी रही है, जिसके लिए वह प्राण तक दे देना अपना कर्त्तव्य समझता था! क्या हुआ, यदि वह बदल गई! क्या वह भी उसी तरह बदल जाए ? उसका प्रेम नमिता के लिए कभी कम नहीं हुआ, नमिता ही ने उसे योग्य नहीं समझा—शायद इसीलिए नहीं समझा कि उसकी आर्थिक स्थिति बिगड़ गई थी! उस दिन पुलिस के चंगुल से नमिता ने उसे बचाया था अवश्य, किन्तु—तो क्या वह अपनी गर्दन आगे बढ़ा दे ?—

उसके मन ने कहा, अब भी समय है निर्मलकुमार, भाग चलो।

पर कहाँ ?—किस लिए ? किसके लिए ?—कल्पना के लिए ?—उसने कहा था, यदि कोई निमल का भार नहीं उठाता, तो वह स्वयम् उसका भार उठाने के लिए तैयार है। पर भार ?—आखिर निर्मल को भार ही होना पड़ेगा ?—भार के अतिरिक्त वह था ही क्या ?—जन्मते ही मा का भार बना, फिर पिता का; उन्होंने दूर रखने के लिए पैसे से कीमत चुकाई, और फिर जब उस कीमत का सहारा नहीं रहा, तो किसने उठाया उसे ?—इस डोरा ने उठाना चाहा था, तो इसकी यह अवस्था हुई, और अब कल्पना उठाएगी ? किस लिए ?

वह अब आवारा प्रसिद्ध हो चुका है, रही-सही नेकनामी इस काण्ड के प्रकट होते ही साफ हो जाएगी। उसका डोरा का सम्बन्ध तो विश्रुत हो ही जाएगा, चाहे वह हत्या के लिए उत्तरदायी न ठहराया जाए! क्या वास्तव मे कल्पना, इस दुर्वाद के गीले चिथड़े से लिपटे अकर्मण्य निर्मल का बोझ उठाने के लिए तैयार मिलेगी?

यदि मिल ही गई, तो उसकी सामाजिक स्थिति क्या हो जाएगी? क्या उसके माता-पिता सहमत हो जाएँगे? क्या उनकी प्रतिष्ठा यह सब सहन कर लेगी?—क्या वह इतना मुँहफट हो सकेगा कि तब भी जीवित रहने का लोभ बनाए रखे?—माना कि कल्पना का प्रेम यह सब कुछ सहन कर लेगा, पर निर्मल किस बात के लिए उससे इतनी बड़ी कीमत की अपेक्षा करना चाहता है?

तो क्या यहाँ से भाग चला जाए?—अब भी समय है!

च्यवन को इस आग मे घसीटने से क्या मिलेगा?—वह निकल भी सकता है; यदि नमिता उसकी पीठ पर हुई, तो अर्थ की शक्ति से इस दुनिया मे क्या नहीं किया जा सकता?—इधर निर्मल को प्रमाणित करना पड़ेगा कि हत्या के समय निर्मल कहीं होटल मे कल्पना के साथ प्रेमालाप कर रहा था!—कल्पना ने अनुरोध किया था कि इसकी सूचना कहीं बाहर नहीं जानी चाहिए।—क्या वह उस अनुरोध की रक्षा कर सकेगा, इस तरह?—नहीं, और यदि यह सारी बात बाहर प्रकाशित हो गई तो क्या सम्भव नहीं है कि उसे अदालत मे गवाही देना पड़े?—उसकी हिताकाक्षा का यह पुरस्कार?

उसने उठकर सिरहाने रखे हुए डोरा के सिगरेट केस को निकाला! डॉक्टर के मना करने पर भी वह एकाध सिगरेट पिए बिना रह नहीं सकती थी। उसने उस दोनों स्लिपों को तथा जेब से पाँच हजार के चेक को निकाल कर सिगरेट केस में बन्द किया; लेकिन इसके साथ ही वह मुस्करा उठा! क्यों?—किस लिए वह इन सबको बचाए रखना चाहता है?—कि किसी औपन्यासिक रहस्य के समान कोई आकर इन्हें पाले, और जब कि वह फाँसी पर चढ़ाया जा रहा हो, तो देवदूत सा आकर वह उसे बचा ले!—खूब!!

उसने सिगरेट केस को पुनः उसी जगह रख दिया। और पाँच हजार के बेअरर चेक, तथा दोनों स्लिपों को उसने फाड़ना शुरू किया, यहाँ तक कि वे छोटे छोटे बिन्दुओं में बदल गए। फिर उन्हे बाथ रूम के कमोड में डाल कर उसने पानी का फ्लश खोल दिया।

फिर आकर वह बाहर कमरे में कुर्सी पर बैठ गया, तैयार—उसे दो मिनिट भी नहीं हुए होंगे कि बाहर से नर्स की पदचाप सुनाई दी।

: २० :

अठारह की रात किसी तरह शेष होते ही नमिता ने उस प्रातःकाल जितने भी दैनिक समाचार पत्र प्रकाशित हुए, सब को खरीद लेने की व्यवस्था कर ली। सभी समाचार पत्रों में कमो-बेश रूप से मिशन-हॉस्पीटल मे घटी हुई रात की हत्या का उल्लेख था, और सब समाचारों को पढ़ कर नमिता के आश्चर्य, घबराहट, उलझन, सब बढ़ गए।

पहला और सबसे अधिक आश्चर्य तो यह हुआ कि हत्या के अभियोग मे गिरफ्तार हुआ एक युवक निर्मल कुमार, जिसका एक पत्र में चित्र भी छपा था, और इसमे कोई सशय नहीं कि निर्मल कुमार वही युवक है, जिसे नमिता आवश्यकता से अधिक जानती है। दूसरी आश्चर्यजनक बात यह थी कि यद्यपि स्पष्ट रूप से नहीं, तो भी अभियोगी ने अपराध की स्वीकृति व्यक्त कर दी थी! विस्तृत-समाचार इस दिशा मे प्राप्त नहीं हुए थे, किन्तु यह स्पष्ट है कि हत्याकारी शव के पास किंकर्त्तव्य विमूढ़ पाया गया, विमूढ़ इसलिए कि उसने भागने की कोई चेष्टा नहीं की, और पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए जाने पर बचाव का कोई प्रयत्न नहीं किया!

अस्पताल के कर्मचारियों ने बताया कि अभियुक्त मृत-लड़की का साथी है, अस्पताल में टी० बी० के उपचार के लिए वही उसे भरती करा गया था, और उसकी तीमारदारी के लिए प्रति रात्रि वही नौ बजे के बाद आया करता था। अभियुक्त दिन में किसी टैक्सटाइल मिल्स मे मजदूरी करता है।

यद्यपि अभियुक्त ने कुछ भी निश्चित रूप से स्वीकार नहीं किया, किन्तु

घटनाक्रम से स्पष्ट है कि हत्यारा वही है। अस्पताल के नियमों के अनुसार संध्या को पाँच बजे के पश्चात् कोई मिलने नहीं जा पाता, उस संध्या को, कर्मचारियों ने बताया, कि किसी भी बाहरी व्यक्ति को भीतर नहीं जाने दिया गया। फाटक के दरबान ने बताया, कि निर्मल कुमार हमेशा के मुताबिक शाम के बाद अस्पताल में आए, ठीक समय का उसे पता नहीं। अँधेरा हो गया था, अतः अनुमान है कि आठ बजे के लगभग आए होंगे। नर्स ने बताया था कि मृत-स्त्री जिसका नाम डोरा स्पर्जन था, एक सोने का हार पहने रहती थी, शव के गले मे वैसा कोई हार नहीं था। यह अनुमान किया जाता है कि हत्या उसी हार के लिए की गई है, यद्यपि उस हार का कोई पता नहीं लग सका है। डोरा के बारे में उसकी सूरत-शक्ल के अलावा और भी समाचार थे कि वह टी॰ बी॰ की बीमार थी। डॉक्टर ने आपरेशन की सिफारिश की थी, खर्चे की रकम का अनुमान कर दोनों व्यक्तियों के कथन पर आपरेशन स्थगित कर दिया गया था। आज शव का पोस्ट मार्टम होगा, उसके बाद पुलिस संबंधित व्यक्तियों के बयान लिखेगी। विस्तृत रिपोर्ट की प्रतीक्षा है।' आदि आदि।

नमिता और च्यवन का कहीं पर उल्लेख नहीं था। च्यवन ने कहा : "देखा, किस सफाई से काम हुआ ? हमलोगों तक किसी का सन्देह भी नहीं हो सकता है!—व्यर्थ ही तुम इतना डर रहीं थी, और मुझे भी तुमने डरा दिया था! लेकिन एक बात विचारणीय है। यह निर्मल इस काण्ड में कहाँ से फँस गया ? क्या यही उसका प्रेमी था ?— एक जमाने में वह हम लोगों का मित्र रह चुका है। कहीं उसके पूर्व संबंधों की छान-बीन करने के लिए यदि पुलिस यहाँ भी आ धमके, तो आश्चर्य करना नहीं चाहिए। नमिता, हमें उस क्षण के लिए काफी सावधान रहना चाहिए यद्यपि मैं प्रयत्न करूँगा कि तुम तक कोई बात आए ही नहीं, फिर भी तुम्हें अपने आपको काफी दृढ़ बनाए रखना होगा।"

नमिता ने बात का उत्तर देने का कोई प्रयत्न नहीं किया। वह भविष्य की अन्धकारमयी दुरन्त गुहा में आँखें गड़ाए थी।

च्यवन ने कहा : "तुम अभी तक डरी हुई हो, डीयर! मैं स्वीकार करता हूँ कि वह दृश्य तुम जैसी कोमल-भावनावाली ललनाओं के लिए नहीं था। किन्तु अब हमें, मैं सोचता हूँ, कोई डर नहीं है। यह सचमुच बड़ा दुर्भाग्य था कि किसी काली घड़ी में मेरा डोरा से साक्षात्कार हुआ, किन्तु इतनी सरलता से उसका जाल उच्छिन्न हो सकेगा, इसकी मुझे आशा न थी! अब तुम हृदय का सारा भय निकाल दो।"

नमिता ने फिर भी कुछ न कहा !

चाय की चुस्कियाँ लेते हुए च्यवन कहता रहा, मानो इस तरह बोल कर वह अपने हृदय के पास किसी भय के भाव को आने से रोक रहा था—

"हमें आपने कार्य-क्रम मे कोई तूल-अरज नहीं होने देना चाहिए। हमें दिखाना चाहिए मानो कोई बात ही नहीं हुई। यह अवश्य है कि हमारी आशा के बिलकुल विपरीत इसमें निर्मल फँस गया है, और उससे पूर्व संबंधों के कारण हमे उस विषय मे कुछ बोलना पड़े या राय जाहिर करनी पड़े ! किन्तु यहीं पर हमारे साहस की परीक्षा है। कॉलेज तो हम जाएँगे ही।— अच्छा नमिता एक बात बताओ, जब तुम वहाँ पर मौजूद थी, तो यह तो स्पष्ट है कि तुमने डोरा का पत्र पढ़ लिया था। वह पत्र है कहाँ अब ?—शायद वही एक डॉक्यूमेंट है, जो कुछ सन्देह उत्पन्न कर सकता है।"

"वह पत्र ?"—नमिता को स्मरण हुआ। वह तत्काल उठी, और उसने उस पत्र को खोजना प्रारम्भ कर दिया। पर पत्र नहीं मिलना था, नहीं मिला।

च्यवन ने कॉलेज जाते समय कहा : "क्या नहीं मिला पत्र ?—डोण्ट बॉदर—शायद कहीं कचरे मे चला गया होगा। तुम्हारे सामान की क्या हालत होती, यदि हरि की मा जैसी सुगढ़ नौकरानी तुम्हें न मिली होती ! शायद उसने कहीं सम्हाल कर रख दिया हो, शाम को पूछ लेना। तब क्या पता था कि यह पत्र भी इतना महत्वपूर्ण हो सकता है।"

पत्र की तो चिन्ता थी ही, नमिता को एक और घबराहट हो गई। पत्र, हो सकता है, उसने कहीं फाड़-फूड़ कर समाप्त कर दिया हो। या कहीं रखकर भूल गई हो। वह किसी के हाथ पड़ नहीं सकता। किन्तु उस पत्र के बारे में एक और लड़की है, जो जानती है, और उसका यह जानना और भी अधिक भयावह है इसलिए कि उसकी निर्मल कुमार मे आसक्ति है, जो कि इस समय इस काण्ड का अभियुक्त ठहराया गया है। यदि कहीं वह भण्डाफोड़ करदे तो ?

च्यवन को यह सारी बात कहने से कोई लाभ न होगा, किन्तु उसे एक बार कल्पना से मिलना अवश्य होगा, जितनी जल्दी हो सके उतनी, ताकि उसके मन में क्या है; यह टटोला जा सके !

क्लास में कोई विशेष बात नहीं हुई। ये लोग कक्षा में पहुँचे ही तब, जब कि प्राध्यापक ने उपस्थिति-पत्रक पुकारना प्रारंभ कर दिया था। मध्यान्तर में एकाध विद्यार्थी ने कुछ नाम लिया भी तो दोनों ने नितान्त उपेक्षा दिखाई ! और संध्या को कक्षा समाप्त होते ही नमिता स्वयम ही च्यवन को पीछे छोड़ कर मोटर से रवाना हो गई !

पर वह सीधी घर नहीं गई कल्पना के यहाँ पहुँची। कल्पना अपने

कमरे में बैठी जरी की किसी पोशाक पर, जो शायद पत्थर के भगवान् के निमित्त तैयार की जा रही थी, कसीदा काढ रही थी। स्पेनियल जिमी—उसके घुटने से अपनी पीठ सटाए, बैठा हुआ फर्श को मक्खियों का शिकार कर रहा था। कल्पना अपने ध्यान मे इतनी व्यस्त थी कि नमिता का आना एकाएक मालूम ही नहीं हुआ। पर जिमी एकदम चौंक कर उठ खड़ा हुआ।

मुड़कर देखा तो नमिता थी, कल्पना ने धागे को दाँतों से तोड़ते हुए उल्लास के स्वर मे कहा :

"ओह, नमिता बहन, आओ आओ ! तुम्हारी प्रतीक्षा ही थी। कहो रात को कैसी गुजरी ?"

नमिता ने आश्चर्य से कल्पना के मुँह की ओर देखा !—क्या सारी घटना को जान लेने के बाद भी इतना भोला बना जा सकता है ? कल्पनाके पास फर्श पर ही बैठते हुए नमिता ने कहा : "जैसे तुम जानती ही नहीं।"

"जानती हूँ, पर अपनी ही बात तो !—कल पूर्णिमा थी, लक्ष्मीनारायण के शृङ्गार की रात्रि थी, किन्तु गोपिका के शरीर को एक ग्वाले ने अपने ही घर की चारदीवारी मे अटका लिया !—खैर, गोपिका शरीर से न सही, आत्मा से तो वह अपने प्रियतम से मिली ही—अलग ही कब थी ?—पर अपनी कहो तुम, उस चुड़ैल से छुट्टी तो मिली न ?"

नमिता ने एक लम्बी साँस ली : "चुकाई हुई कीमत की बात क्यों भूलती हो ?"

"क्या चुकाया ?—पूरे पाँच हजार ?"

—तो क्या कल्पना कुछ नहीं जानती ?—या बनती है ?—शहर के सारे समाचारपत्र तो इस समाचार से भरे पड़े थे !—हो सकता है, न भी जानती हो ! कल्पना आजकल पढ़ने के नाम पर धर्मग्रन्थ ही तो पढ़ती है। तो क्या खुद ही वह सारी बात कह दे ?—आखिर एक दिन तो कल्पना जानेगी ही।

नमिता ने कहा : "क्या तुमने आज का अखबार नहीं पढ़ा ?"

"फ़ुरसत ही कहाँ मिलती है बहन ! सबेरे से इस दुपट्टे में लगी हूँ, इस मोर की गर्दन में ये सब नीलम टाँगने बाकी हैं !—पर अखबार—क्या तुम्हारी मुलाकात अखबार में प्रकाशित हो गई ?—वण्डरफुल !"

"तो शायद तुम कुछ नहीं जानती ! डोरा की हत्या होगई !"

"हत्या ?—बड़ी साहसवाली हो दीदी !—किसके द्वारा कराई ?—पकड़ा तो नहीं गया वह बेचारा ?"

"हत्या मैंने नहीं कराई ! मैं तो उससे मिल ही नहीं पाई।"

"तो क्या च्यवन ने ?"

"नहीं; वे भी उससे नहीं मिल सके !"

"फिर ?—क्या धरती उसे निगल गई ? बड़ी रहस्यमय बात है !—ठहरो, मैं नीचे से आज का अखबार मँगवाती हूँ —अरे रामू—"

"ठहरो, बात तो पूरी सुन लो । रहस्य तो जो मैं कहती हूँ, उसमें है !—हत्या के अपराध मे गिरफ्तार हुए हैं, अपने निर्मलकुमार !"

"निर्मल कुमार ?—"

"हाँ; और उन्होंने अपराध स्वीकार कर लिया है !"

"नहीं नहीं, यह कभी नहीं हो सकता । हत्या जरूर च्यवन प्रकाश ने की है । तुम बात छिपाना चाहती हो !"

"छिपाऊँ तो तब, जब कि जानती होऊँ ! पर हत्या का अपराध स्वयम् कौन मिथ्या स्वीकार करता है ?"

"करके ही कितने स्वीकार करते हैं ?—अच्छा, यह तो बताओ, हत्या कितने बजे हुई ?"

"यही सात-साढ़े सात बजे हुई होगी !—जब मैं पहुँची तो दूर ही से उधर हल्ला-गुल्ला सुनकर पूछ-ताछ की ।—मालूम होने पर सिवा लौट आने के चारा ही क्या था ?-च्यवन से पूछने में कोई मतलब न था, व्यर्थ मे उसे मालूम हो जाता कि मैं उसका राज जान गई हूँ । किन्तु स्पष्ट है कि वह भी उससे नहीं मिल सका । मैं जब हॉस्पिटल के लिए घर से चली थी, तो वे हजरत घर पर ही बैठे थे और लौटने पर मैंने उसी हालत में उन्हें वहाँ पाया ।"

कल्पना के हाथ से पोशाक कब छूटकर नीचे गिर गई थी, इसे किसी ने नहीं जाना । नमिता की बात का ढग, उसकी अनावश्यक कैफियत,जो नमिता के स्वभाव से बिलकुल मेल नहीं खाती थी, घटनावली की विषमता, सबने मिलकर बुद्धिमती कल्पना पर एक क्षणांश में व्यक्त कर दिया कि रहस्य काफी गहरा है, और उसे बड़ी सावधानी बरतनी चाहिए। यदि हत्या सात-आठ बजे हुई, तो निर्मलकुमार कभी हत्यारा नहीं हो सकता, वह तो नौ बजे तक उसके साथ ग्रेट ईस्टर्न में रहा है, और यदि उसने अपराध स्वीकार कर लिया है तो किसी कारण से ही !

कल्पना ने रामू को आवाज देकर अखबार मँगवाया, और एक ही निगाह में सारे सम्वाद को पढ़ गई ! सम्वाद पढ़ने के बाद कल्पना अनावश्यक रूप से गम्भीर होगई, मानो उसे बाहर के वातावरण की सुधि ही नहीं थी ! नमिता कल्पना के चेहरे की रेखाएँ पढ़ना चाहती थी, पर उसे सफलता नहीं मिली ।

नमिता ने बात चलाते हुए कहा : "यह निमलकुमार तो बड़ा ही विचित्र प्राणी निकला—आइ मीन दी डीजेनरेशन ऑन हिज पार्ट हैज बीन सो

स्टुपेण्डस, एज द सेन्स ऑफ़ प्रपोर्शन टू वीट ऑल—मेरा मतलब है, इस व्यक्ति का पतन इतना आकस्मिक और आश्चर्यजनक है, कि इसने सबको मात—"

कल्पना ने कहा : "नमिता दीदी, और कोई चाहे जानता हो या नहीं, किन्तु डोरा की कहानी तुम से तो छिपी हुई नहीं है। यदि निर्मलकुमार ही उसका अभिभावक और प्रेमी रहा हो, जैसा कि अखबार की रिपोर्ट कहती है, तो निर्मल को डोरा की हत्या करने की क्या आवश्यकता पड़ गई?"

नमिता ने कहा : "शायद इस अखबार में यह नहीं लिखा कि डोरा एक हार पहना करती थी।"

कल्पना ने कहा : "लिखा है; यह भी जानती हूँ कि शायद यह वही हार था, जो उसे च्यवन से मिला था। उसके लिए निर्मलकुमार को डोरा की हत्या करनी पड़ेगी, यह और कोई मान ले, पर तुम भी मान लोगी, यह विश्वास नही होता।—फिर रिपोर्ट मे ही शायद तुमने यह भी पढ़ा होगा कि हार कहीं पाया नहीं जा सका। यदि निर्मल को हार कहीं छिपाने की सुविधा मिल गई होती, तो भाग जाने की सुविधा भी मिल ही गई होती। और यदि वह इरादतन नहीं भागा, तो स्पष्ट है कि हार छिपाने के उसके उद्देश्य में कोई सार्थकता नहीं है!"

"पर स्पष्ट स्वीकृति तो उसने अभी की नहीं है।"

"स्पष्ट अस्वीकृति भी तो नहीं की है।"

"कुछ भी कहो कल्पना, सारा मामला इतना वीभत्स है, आइ मीन, डोराके साथ उसके संसर्ग की कहानी ही निर्मल के इतने बड़े पतन की कहानी है, कि समझ मे नहीं आता किस तरह उससे सहानुभूति की जा सकती है।"

"डोरा के साथ ससर्ग?—इसी बात की तुम्हारी सहानुभूति को यदि कोई दूसरा हड़प ले, तो निर्मल को मिल ही कैसे सकती है! पर उसके साथ क्या न्याय भी नहीं किया जा सकता? यदि निर्मल ने डोरा की हत्या नहीं की है, तो क्या डोरा के प्रति च्यवन की आसक्ति का मूल्य भी निर्मल को नहीं मिल सकता?—हाँ, जवानी की झोंक में रस लूट कर फिर दूसरी कली पर मँडराने वाले पुरुष के भ्रमर-न्याय को यदि तुम्हारा समर्थन हो, तो शायद बात दूसरी है।"

"किन्तु उसने हत्या के आरोप को अस्वीकृत क्यों नहीं किया?"

"सो, मैं क्या जानूँ?- किन्तु, देखती तो हो, परिस्थितियाँ कैसी थीं कि उसके इनकार से कुछ होता!—शायद चुप रहने के सिवाय उसके पास कोई चारा नहीं था!"

नमिता ने चुटकी ली : "चूँकि निर्मल का अब पता लग गया है, क्या तुम उससे मिलने की चेष्टा नहीं करोगी ?"

कल्पनाने कहा : "यह तो दीदी, तुम्हारी ही आदत है, गई बार भी तो जेल ही में मिली थी उनसे ! किन्तु तब शायद सहानुभूति का ज्वार कम नहीं था !"

"तुम्हारी राय का सुयोग भी तो नहीं था ! इस बार तुम्हारी क्या राय है ?"

"हृदय का कहना मानोगी या बुद्धि का ?"

"पर इन परिस्थितियों मे तो बुद्धि ही का कहना मानना उचित है !"

"मेरी राय की तो आवश्यकता ही क्या है ?—बुद्धि मे तुम्हारी समता ही कहाँ है ?"

"नहीं नहीं; तुम कोई कम बुद्धिमति नहीं हो ! दूसरे, तुम सारी ही तो बातें जानती हो !—मैं सोचती हूँ, डोरा के उस पत्र के बारे में अब हम तीन के सिवा शायद कोई नही जानता। कोई जान न ले, इसलिए मैंने उसे नष्ट कर दिया है—"

"नष्ट कर दिया ?"—कल्पना ने आश्चर्य का भाव व्यक्त करते हुए दुहराया !

"नहीं तो क्या जोखिम लेती ?—च्यवन की तो आदत तुम जानती ही हो। किसी के हाथों पड़ सकता था !"

"तो फिर उस बात को जानने वाली तीसरी व्यक्ति मैं ही हूँ ! अगर मुझे भी नष्ट कर—" नमिता ने कल्पना के मुँह पर हाथ रख दिया !

कल्पना ने किंचित् हँस कर कहा : "मान लो दीदी कहना, राह बहुत साफ हो जाएगी ! और तुम्हारा सितारा तो बुलन्द है ही। इच्छा की कि च्यवन का मार्ग साफ हो, तो बिजली पड़ी बेचारे निर्मल पर, चाहा कि डोरा स्टेज से परे हो जाए, वह दुनिया ही से चली गई ; निर्मल को एक बार और च्यवन का मार्ग साफ करना पड़ा ; रह गई मैं, सो इच्छा करो—"

नमिता ने कहा : "तुम्हारा मतलब, कल्पना ?"

कल्पना बोली : "कुछ भी तो नहीं, दीदी ! बात तो साफ है, लाइन क्लीयर—

"नहीं; तुमने कहा न कि निर्मल को एक बार और च्यवन का मार्ग साफ करना पड़ा !—यानी, शायद, तुम सोचती हो कि हत्या च्यवन ने की है ?"

"जिसकी पीठ पर तुम जैसी महिमामयी देवी हो, वह हत्या नहीं कर सकता !—पर यदि उस पत्र की किसी को खबर हो, तो वह और क्या सोचेगा ?—राह साफ करने के लिए उस पत्र को तुमने साफ कर ही दिया है। और वह फिर मुस्करा उठी !

हारे हुए खिलाड़ी की भाँति नमिता बोली : "इसीलिए तुम्हारे पास आई

हूँ कल्पना ! यदि चेष्टा करके भूल सको उस पत्र को तो मैं जीवन भर एहसान मानूँगी।"

"पत्र का स्मरण बने रहने से भी कोई खास हानि तो हो नहीं सकती। कहने भर से कोई विश्वास कब करता है ?"

"पर तुम्हारी सहानुभूति की तो मुझे आवश्यकता है।"

"शायद निर्मल को भी हो !—पर यह तो अभी देखना है कि वास्तव में हत्या किसने की ? अच्छा देखती हूँ कॉलेज से सीधी आ रही हो। क्या पियोगी, चाय या काफी ?"

नमिता उठ खड़ी हुई, बोली : "आज कुछ नहीं; अभी चल रही हूँ। शायद फिर मिलना हो जाए।"

"जरूर; कल जरूर आना। इस मामले में आगे बात करने को बहुत कुछ नया मसाला कल तक मिल जाएगा।"

नमिता ने अधिक राह न देखी। वह उद्विग्न तो थी ही; धैर्य को अब अधिक रोकना उसके लिए कठिन हो गया था। कल्पना से उसे कोई आश्वासन नहीं मिला। यदि कुछ मिला, तो आशंका ही। पर अभी से वह अपने पत्ते खोलना नहीं चाहती थी; उसे कल्पना के इरादों और निश्चयों को मालूम करना आवश्यक था !

इधर नमिता के जाते ही कल्पना के हाथ-पैर फूल गए ! इस नए गुल को उसे देखने का अवसर ही नहीं मिला था ! कैसे निर्मल इसमे फँस गया ? क्या सचमुच ही उसने डोरा की हत्या की ?—क्यों की ?—यदि हत्या उसने की तो वह नौ के बाद ही की होगी।—किन्तु हत्या वह करने क्यों लगा ? डोरा से मुक्ति पाने के लिए ?—डोरा ने उसे कभी बाँध रखा हो, ऐसा प्रतीत तो नहीं हुआ।—फिर क्या पाँच हजार रुपयों के लिए ?—पर वह तो उसकी हत्या के बिना भी पा सकता था। रुपया यदि वह पा गया तो वह उसी के पास तो थे ! रुपयों की कोई चर्चा ही नही है !—नहीं, निर्मलकुमार हत्या नहीं कर सकता। हत्या करने के संकल्प के कोई भी तो चिन्ह उसके चेहरे पर रात्रिको देखे नहीं गए।—फिर उसने यदि आरोप का प्रतिवाद नहीं किया तो क्या केवल इसलिए कि वह कल कल्पना के साथ ग्रेट ईस्टर्न में था ?—सचमुच प्रतिवाद के साथ ही, वह कहाँ था, वह कहानी उसे बतानी ही पड़ेगी, और तब कल्पना, कल्पना का घराना, उसकी प्रतिष्ठा—

तो क्या निर्मलकुमार ओठ सिए फाँसी पर चढ़ जाएगा ?—और केवल कल्पना की प्रतिष्ठा के लिए ? नमिता—यदि निर्मल ने यह हत्या नहीं की तो अवश्य ही नमिता ने या च्यवन प्रकाश ने, या दोनों ने मिलकर की है।

नमिता और च्यवन के पहुँचने के पहले ही डोरा की हत्या हो गई, सात बजे के पहले, इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। डोरा का च्यवन को लिखा हुआ पत्र अभी तक कल्पना के पास है। नमिता अवश्य उस बात को भूल गई। तब उस पत्र का महत्व ही क्या था?—पर अब?—वही पत्र तो है जो निर्मल को बचा सकता है!—कल्पना उठी, उठकर उसके टेबल का ड्रावर खोला, एक पत्र निकाला, पढ़ा, विश्वास हो गया कि यह वही पत्र है, तो उसने सेफ खोलकर उसमे सुरक्षित रख दिया।

नमिता चाहती है कि उन लोगों को आँच न आए। उस पत्र की बात मैं जानती हूँ, इसलिए कहीं से आँच पहुँचती है, तो मेरी ओर से ही! किन्तु क्या सचमुच कल्पना निर्मल को बचा सकती है? यदि वह नहीं बचाएगी तो उसीके लिए वह डूबेगा!—क्या उसे डूबने दिया जाए?—उसका वंश प्रतिष्ठा, माता-पिता!—कैसी विवशता है?—क्या करे वह?

और कुछ अँधेरा हुआ, तो उसके चाचाजी ने उसे एकान्त में आ घेरा। ये ही प्रधान रोकड़िया थे। खुद निस्संतान, मैट्रिक तक अग्रेजी भी पढ़े थे, कल्पना के ऊपर उनका विशेष अनुराग था।

बोले: "बिटिया, वह, रात को तुम्हारी स्लिप लेकर कौन लड़का आया था?"

"एक मेरा सहपाठी था चाचाजी, बेचारा बड़ा गरीब है! कहता था, उसकी मा को टी० बी० होगई है! क्या रुपए ले गया?" कल्पना का कलेजा मुँह को आ लगा।

'नहीं; रुपए नहीं ले जा सका। रात के नौ बजे पहुँचा था, जब कि रोकड़ बन्द हो चुकी थी। पर तुम्हारी स्लिप थी; पूछा, चेक से काम चल जाएगा?—हाँ कहाँ उसने, और चेक ले गया!—पर जानती हो?—आज का पर्चा देखा है? उसने कोई हत्या कर डाली है! वह गिरफ्तार हो गया है! एक पर्चे में उसका फोटो भी था। वही आदमी है!"

"अरे? यह तो बड़ा बुरा हुआ, चाचा जी? रुपए डूब गए तब तो! चेक तो सेल्फ के नाम का था न?"

"रुपए तो नहीं डूबे कल्पना! बैंक से पता लगवा लिया है, ऐसा कोई चेक भुनाया नहीं गया!"

"तो क्या आपने चुकती रोकने की कार्यवाही कर ली?"

"पागल हूँ बिटिया,? खामखा आफत मोल लेता?—चेक का साहारा खुलासा हो जाने पर तो पुलिस कभी की न आ धमकती?—पर अगर चेक उस भलेमानस के पास बरामद हो गया तो पक्की मुसीबत है!

इसलिए अभी तो हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने के सिवा कोई चारा नहीं दिखाई देता! पर बिटिया, जो हुआ सो हुआ, अब ऐसे आदमी से कोई वास्ता मत रखो। यह लो तुम्हारी स्लिप!—और कहीं इसका जिक्र मत करना। हाँ जो हो चुका है, देखता हूँ, उसे किस तरह निपटाया जा सकता है।"

दूसरे दिन और भी समाचार प्रकाशित हुए। लाश की जाँच की गई थी! जाँच से मालूम हुआ कि हत्या लगभग आठ बजे हुई थी। गले के ऊपर निशान और दूसरी परीक्षाओं से पता लगा कि हत्या तो गला दबा कर दम घोटने से ही की गई थी। छुरे का प्रयोग बाद में शायद मृत्यु के बारे मे निस्संशय होने के लिए किया गया था।

अभियुक्त निर्मल कुमार ने कहा है कि हत्या उसने नहीं की, किसने की यह वह नहीं जानता, किसीके ऊपर उसका सन्देह भी नहीं है! यह वह बहुत अच्छी तरह समझता है कि जिन परिस्थितियों में वह आ फँसा है, उनसे वही हत्यारा प्रमाणित होता है, इसे वह ईश्वर की इच्छा समझ कर उसका फलाफल भोगने को तत्पर है। अपनी आत्मरक्षा के बारे मे उसे कुछ नहीं कहना है। —शव के गले पर पाए गए अँगुलियों के निशान अभियुक्त की अँगुलियों के निशानों से मिलाने के लिए विशेषज्ञ के पास भेजे गए हैं!

पुलिस ने पता लगाकर मालूम किया है कि अभियुक्त ने उस दिन अपने काम से अवकाश ले लिया था। दिन भर कहाँ रहा, इसका कोई पता नहीं है। अभियुक्त ने केवल इतना ही बताया कि उसने एक दिन पहले ही अवकाश ले लिया था, उसे कुछ मित्रों से मिलना था, पर अवकाश मिल जाने के बाद में उसे किसीसे मिलने की इच्छा नहीं रही! वह दिन भर बाजार मे घूमता फिरा, शाम उसने पार्क की बेंच पर बैठकर बिताई। डाक्टरी जाँच से अभियुक्त मन और शरीर से स्वस्थ पाया गया! पुलिस अभियुक्त के विगत जीवन के बारे में छानबीन कर रही है।—अखबारों में कुछ समाचार डोरा के सम्बन्ध मे भी व्यक्त किए गए थे।

संध्या को नमिता कॉलेज से सीधी ही कल्पना के घर पर आ टपकी। आज कल्पना कल से बड़ी ही बदली हुई मालूम दी। मानो उसका उल्लास, चापल्य, लालिमा कोई चुरा ले गया!—शायद वह नमिता की प्रतीक्षा ही कर रही थी! फिर भी उसके चेहरे पर एक दृढ़ता थी, शुष्क-दृढ़ता, जिससे नमिता को भी भय उत्पन्न हो गया!

आते ही नमिता ने कहा : "एक और बात सुनोगी, जो समाचार-पत्रों मे नहीं मिलेगी।"

"कहो !"—बिना पूर्वापर सम्बन्ध के ही दोनों ही जानती थीं कि बात किस सम्बन्ध मे है।

"तुम्हें स्मरण होगा, डोरा ने अपने पत्र मे लिखा था कि वह च्यवन के सन्तान की माता होनेवाली थी, वह सब कुछ सफेद झूठ थी, केवल च्यवन को फँसाने का उसका छल मात्र !"

"तुम्हे कैसे मालूम हुआ ?"

"मैंने एक चर भेज कर पोस्ट मार्टम करनेवाले डॉक्टर से खोज कराई थी।"

"चलो, तुम्हारे मन पर से एक बोझ हटा !"

"कल्पना, मैं एक बात जानना चाहती हूँ, उस दिशा में निश्चिन्त होना चाहती हूँ।—आज जो समाचार प्रकाशित हुए हैं, वह तुमने पढ़े ही होंगे। डॉक्टर की राय है कि हत्या आठ-साढे आठ बजे की गई। उसकी इस राय के क्या कारण हैं, यह मैं प्रयत्न करके भी नही जान सकी ! पर मैं तुम्हे यह विश्वास दिलाना चाहती हूँ कि हत्या वास्तव मे सात बजे से पहले हो गई थी, वरना मैं उससे सात बजे क्यों नहीं मिलती ?"

"मेरे विश्वास करने से तुम्हारा क्या बनता-बिगड़ता है ?"

"तुम जो उस पत्र की बात जानती हो ! जो भी कोई उस पत्र की बात जानता है, वह बड़ी सरलता से निष्कर्ष निकाल सकता है, कि हत्या करने वाला यदि निर्मल नहीं है, तो वह या तो च्यवन है या मैं।"

"पर इस निष्कर्ष से क्या होगा ?—मेरी बात का प्रमाण क्या है ?—पत्र तो तुमने नष्ट कर दिया !"

"फिर भी तुम मेरी सहेली हो; तुम्हारा विश्वास मेरे लिए बड़ी शक्ति की वस्तु है। इसके अलावा एक बात और है ? पुलिस निर्मल के विगत जीवन के बारे में छानबीन करना चाहेगी। मेरा और उसका पूर्व सम्बन्ध तो जग-जाहिर है, तुम भी पूछी जाओ शायद !—तब यदि तुम्हारी ओर से एक शब्द भी उस पत्र के बारे में निकला तो हम लोगों की जान पर आ बनेगी। मैं इस दिशा में तुम्हारा आश्वासन चाहती हूँ।"

"मेरी और निर्मलकुमार की कुछ ऐसी मैत्री हो, यह तो तुम्हारे सिवा और कोई नहीं जानता, दीदी ! मुझसे वे लोग पूछने ही क्यों लगे ?"

"तुम वादा करो, तो मैं भी वादा करती हूँ कि तुम्हारी उस भेंट का मैं किसी से उल्लेख नहीं करूँगी। आखिर इस तरह चोरी-चोरी छिप कर मिलने की बात से तुम्हारी प्रतिष्ठा को भी तो खतरा है, कल्पना !"

कल्पना ने मुस्करा कर कहा : "पर यदि तुम वादा कर लेती हो, तो मेरे

वादा करने की आवश्यकता ही क्या है ? फिर पुलिस मेरे पास पूछने आएगी ही क्यों ?—और वह कुटिल हँसी से दीप्त हो उठी !

नमिता अप्रतिभ हो गई; फिर भी वह आश्वासन चाहती ही थी। उसने कहा : "तो मैं तुम्हारा वादा मान लेती हूँ।"

"मैंने वादा किया तो नहीं, दीदी। पर एक बात बताओ, बेचारे निर्मल के ऊपर तुम्हारी ऐसी वक्र दृष्टि क्यों है ? यदि हत्या तुम लोगों ने नहीं की है, तो तुम्हे डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। वादा तो तुम मुझसे इस तरह माँग रही हो, जैसे हत्या तुमने ही की हो। तुम्हारे इस रुख को देख कर तो प्रतीत होता है, बेचारे का भाग्य फाँसी के लिए निश्चित हो गया है। यदि पुलिस उसके विगत जीवन के बारे मे तुमसे पूछ-ताछ करने आई ही, तो कदाचित् तुम उसे बुरे से बुरा चित्रित करने से नहीं चूकोगी।"

"इसके सिवा चारा ही क्या है ? और है भी वह और किसके योग्य ?"

"जिसके योग्य च्यवन हो !—आखिर च्यवन से उसमे अभाव क्या हैं, यह तो बताओ, दीदी ? डोरा की हत्या को छोड़ भी दो, इसके बारे मे तुम्हारी या मेरी राय अन्तिम नहीं है। किन्तु डोरा का संसर्ग ही यदि तुम्हारे लिए आक्षेप्य है, तो च्यवन भी उससे बच नहीं सकता। रूप-गुण-शिक्षा—"

"इस बात को छोड़ो कल्पना," मानो क्षणार्ध के लिए उसकी दृष्टि अपने अतीत की ओर गई, कितनी दूरी उसने पार कर ली है। तबसे उठती हुई एक लम्बी साँस को दबाकर उसने कहा : "मँझधार मे नाव बदलना क्या खतरनाक नहीं है ? जिस पर चढ़ी हुई हूँ, चाहे विश्वासयोग्य न हो, फिर भी नाव बदलने का खतरा लेने का साहस नहीं है !"

"और तुम यह भी सोच चुकी हो कि बिना उस नाव को डुबोए तुम्हारी नाव सुरक्षित नहीं है।"

"परिस्थितियाँ जो ऐसी ही हैं।"

"तुममें दया-माया कुछ नहीं है, बहन।—" और कुर्सी पर से उठकर उसने कहा : "केवल साधनों के अभावसे ही बेचारे युवक को मरजाना पड़ेगा; तुम यह कर सकती हो, पर क्या मैं भी कर सकूँगी ?"

"साहस से काम लो, कल्पना ! भावुकता तुम्हारे भविष्य को बिगाड़ देगी। जानती हो, यदि तुम्हारे और निर्मल के सम्बन्ध प्रगट होगए, तो तुम्हारी, तुम्हारे माता-पिता की, तथा तुम्हारे वंश की क्या प्रतिष्ठा रह जाएगी ?"

"सौदा करना चाहती हो बहन ?–मालूम पड़ता है कि डॉक्टर की राय

गलत नहीं है, और मुझे स्वीकार करना चाहिए कि डोरा का हत्यारा शायद तुम्हारे बोध के अम्बार में छिपा दिया गया है।"

"तुम्हारा मतलब ?"—और नमिता भी उठखड़ी हुई।

"उस पत्र की कथा जानने वाले का जो मतलब हो सकता है, वह तो तुम्हीं कह चुकी हो।"

"तुम्हारा मतलब है कि हत्या हम लोगों ने की है ?"

"यदि यह मतलब स्वाभाविक हो तो इसमे मेरा क्या दोष है ?"

"और शायद तुम निर्मल को बचाने का प्रयत्न भी करोगी ! तो सुन लो कल्पना, तुम्हारे प्रयत्न का कुछ न होगा। केवल तुम अपना अहित ही करोगी। तुम्हारे कथन का तुम्हारे पास कोई प्रमाण नहीं है; स्वयम् एक ऐसी वीभत्सता में से तुम्हे गुजरना होगा, जिसकी तुम कल्पना नहीं कर सकती हो। रहा सवाल निर्मल का, सो तुम नहीं जानती, पर मैं जानती हूँ कि उसने हत्या क्यों की, और कल से पुलिस, कोर्ट, सारी दुनिया जानेगी।"

"केवल मैं ही नहीं जानूँगी ?"

"तो जानो कि निर्मल मेरा प्रेमी हैं, और मेरा लोभ कभी नहीं छोड़ सका। प्रेमी की निराशा मे उसका पतन हुआ, यह भी पुलिस के कागजों से प्रमाणित है, उसकी ओर ध्यान भी मुझे खींचना पड़ेगा, और अपनी सहानुभूति की चर्चा भी मुझे करनी पड़ेगी कि किस तरह मैंने तब पैसा खर्च कर पुलिस से उसकी रक्षा की ! शायद तुम नहीं जानती कि मेरे विवाह की चर्चा सुनकर निर्मल फिर मेरे निकट प्रणय की भिक्षा के लिए उपस्थित हुआ था, और जब मैंने डोरा के साथ उसके संबंध की चर्चा की तो जानती हो उसने क्या कहा था ?"

कल्पना केवल मुँह बाए देखती रही।

"कहा था कि अठारह तारीख के बाद वह पुनः मुझसे मिलेगा ! उसे आशा है कि तबतक वह इस कलंक को पोंछ डालेगा। और इस तरह उसने इस कलक को पोंछा है।"

"दीदी !—"

"और इस तरह लड़कियों को मसल देना उसका पुराना धंधा है, यह भी पुलिस को बताना होगा। मुझ से अधिक उसके बारे में कौन जान सकता है ?—जब मुझे वह प्राप्य ही समझता था, तब उसकी दृष्टि एक दूसरी लड़की पर गिरी थी, उसका नाम है कल्पना, जो उसके जाल में फँसकर उसके गाँव के घर तक खिंची पहुँच गई थी, और माता-पिताकी दृष्टिकी ओटमे रँगरेलियाँ मनाती रही।—तुम नहीं जानती कल्पना, पर अठारह की संध्या ही को छः

बजे श्रीमान् निर्मलकुमार मेरे कक्ष में आ मौजूद हुए थे, जहाँ स वे साढ़े सात बजे रवाना हुए, मेरे प्रति अपने प्रेम की शपथों को हजार गुना दुहराकर! इसके प्रमाण हैं मेरे पास मे, उन प्रमाणों को भी कोर्ट जानेगी। शायद यह तुम नहीं जानतीं कि जबसे निर्मल आवारा होकर पुलिस थाने की हवा खा चुका था, तब से वह अपने पास सदैव ही एक छुरा छिपाए रहता था!—तुमने तो उसे देखा भी नहीं, पर मुझसे तो वह यदा-कदा मिलता जो रहता था!—"

कल्पना ने मस्तक हिलाया, और बोली: "उस छुरे को शायद तुम पहचान भी लोगी!—और भी आगे कहा जाए तो जहाँ से वह छुरा खरीदा गया है, उस दूकान को भी तुम जानती हो। है न?—पर दीदी, तुम अपना ही विश्वासघात कर सतोष पाना चाहती हो!—मैं तो तुम्हें अशेष बुद्धिशालिनी समझती थी।"

नमिता का क्रोध आँखों मे आ चढ़ा था! बोली: "मैं मूर्ख ही सही। पर यह तो देखना शेष है कि हम दोनों में से कौन अधिक मूर्ख बनता है। शायद मुझे तुम्हारी मा से भी मिलना पड़ेगा।"

और नमिता नीचे उतर गई, खट खट, खटाखट, कल्पना दिग्मूढ़, दीवार के उस पार क्षीण अदृष्ट में शून्य आँखों को पसारे—

●

: २१ :

केस दौरा सिपुर्द कर दिया गया। इसी बीच पुलिस ने अपनी सब प्रकार की जाँच समाप्त कर केस को मुकम्मिल कर लिया था। खास गवाह थी सुश्री नमिता कुमारी, जिनकी प्रणय-प्राप्ति को चरितार्थ करने के लिए ही निर्मल कुमार हत्या के इस नृशंस-काण्ड में प्रवृत्त हुए थे। हत्या के दो दिन पूर्व ही उनकी नमिता से भेंट हुई थी। प्रारम्भ में नमिताकुमारी का भी निमलकुमार से प्रेम था! वह उन्हें सच्चरित्र, सुशील, सुसंस्कृत, और कुलीन समझती थी; किन्तु वस्तुतः बात ऐसी नहीं थी; नमिता को सबसे पहले इसका पता तब लगा जब निर्मलकुमार के पिता का उनके गाँव मे अकस्मात् देहान्त हो गया। सहानुभूति के लिए नमिता भी अपने पिता के साथ वहाँ गई थी। वहीं पर उसे निर्मल की चरित्र हीनता के प्रमाण मिले। इस बात को सारा गाँव जानता है; किसी एक लड़की को घर में डाले हुए, बाहर से अपने पिता का मातम मना रहे थे। उनकी असीम स्नेहशीला बुआ से भी वस्तुतः इसीलिए उनकी नहीं बनी। वह लड़की कौन थी, यह नमिता नहीं जानती, जानने की उसने जरूरत भी नहीं समझी गाँव में जब मन नहीं लगा तो शहर भाग आए, और आवारागर्दी का जीवन अख्तियार कर लिया।—गाँव की सब सम्पत्ति उन्होंने बुआ को बेच दी।

एक बार बीच में पुलिस द्वारा निर्मल के शासित होने की बात बताना भी नमिता नहीं भूली। किन्तु पुलिस को तत्संबंधी कागज-पत्र उपलब्ध नहीं हो सके। नमिता से रुपया पाकर उस थाने की पुलिस को संबंधित कागज-पत्रों को गायब करने के सिवा और कोई चारा नहीं था, जिससे कि

निर्मलकुमार को बेदाग छोड़ दिया जाता। अतः पुलिस आज चाह कर भी उस घटना का लाभ नहीं उठा सकी।

आवारगी के जीवन में जो तत्व बाधा उपस्थित करते थे, निर्मल ने उनको छोड़ दिया, जैसे अध्ययन, यद्यपि स्कूल के दिनों मे वे एक जहीन विद्यार्थी के रूप मे प्रख्यात थे। अपनी प्रतिभा को उन्होंने दूसरी दिशा मे लगाया। जब तक पैसे पास मे थे, खूब गुलछर्रे उड़ाए, पैसा खत्म होने पर कुछ करना जरूरी था, फिर उनकी दृष्टि नमिता पर पड़ी, प्रेम के नए-नए वादे किए जाने लगे, नमिता अपने पिता की इकलौती संतान जो है। उधर नेपथ्य मे डोरा के साथ तथा डोरा के माध्यम से डान्स-रूम की अन्य प्रतियोगिनियों के साथ भी उनका रहस्यालाप चलता रहा। डोरा बीमार हुई, तो अस्पताल में प्रविष्ट करादी गई। निर्मलकुमार तब डोरा के साथ रहने लग गए थे, किन्तु नमिता से उन्होंने यह बात भी छिपाई।

नमिता का मन तभी से निर्मलकुमार से विरक्त हो चुका था। वह निर्मल-कुमार की भेंटों से तंग आ चुकी थी, आखिर उसने कह दिया कि वह अब च्यवनप्रकाश से विवाह करना चाहती है, और विवाह की बात भी निश्चित हो चुकी है। इसी बीच मे किसी तरह नमिता को निर्मल और डोरा के सम्बन्ध का भी पता लग चुका था! अतः जब निर्मल ने नमिता से गिड़गिड़ाना शुरू किया, तो नमिता ने कहा कि डोरा उसकी प्रणयिनी है, और निर्मल को उससे विवाह कर लेना चाहिए। उनके सम्बन्ध जिस सीमा तक पहुँच चुके हैं, इस अवस्था मे यही मार्ग सबसे उचित है और कानूनन सही भी है। उस पर डोरा का अधिकार है निर्मल ने इसे स्वीकार नहीं किया तो डोरा का पक्ष लेकर नमिता ने यह भी कहा कि यदि वह कोर्ट की शरण ले तो निर्मल को इनकार करना भारी पड़ जाए!

मालूम पड़ता है, इस संभावना से निर्मल डर गया था। उसने कहा भी था कि डोरा अधिक दिनों की मेहमान नहीं है। तब उसके कथन से नमिता यही समझी थी कि चूँकि डोरा बीमार है, इसलिए ऐसा हो सकता है। पर अब यह समझा जा सकता है कि निर्मल का क्या तात्पर्य था!

पुलिस ने इस बयान का पूरा उपयोग किया। सरकारी वकील नें निर्मल को अभियुक्त प्रमाणित करने में कोई बात उठा न रक्खी; मानों सारी घटनावली का वह चश्मदीद गवाह था।—चश्मदीद तो नहीं, पर और कई गवाहियाँ मिल गई थीं, जिनमे से एक ने अठारह की संध्या को निर्मलकुमार को संध्या के छह बजे से ही वार्ड में घुसते देखा था। एक ने उसके पास दूर से छुरा भी देखा था। यद्यपि पास से वह नहीं पहचान सका, किन्तु दूर से वह वैसा ही लगता

था, जैसा कि इस समय पुलिस के कब्जे मे है। इससे अधिक पुलिस और क्या चाह सकती थी।

निर्मलकुमार का बयान भी प्रकाशित हुआ। उसने कहा कि हत्या उसने नहीं की, किसने की यह भी वह नहीं जानता। यदि उसकी अपने आप को निरपराध प्रमाणित करने की शक्ति के अभाव मे ही उसे कोई अपराधी मान ले, तो वह अपराधी है। और यदि अपराध स्वीकार करने मात्र से ही सारी बहस की इति श्री हो जाती हो, तो वह अपराध स्वीकार करने के लिए तैयार है, क्योंकि स्वीकृति से सम्बन्धित अन्य प्रश्नों का, जैसे हत्या क्यों की, कैसे की, आदि का उत्तर देने मे वह असमर्थ है।—वह इस अपराध के नतीजे से परिचित है और उस दण्ड को स्वीकार करने मे उसे कोई झिझक नहीं है।

नमिता के बयान के बारे मे उसने कहा कि वह सच हो या झूठ, उसकी परिस्थिति मे कोई अन्तर नहीं पड़ता, और इसलिए उसके बारे मे अपनी राय प्रदर्शित करना वह व्यर्थ समझता है। आखिर किसी ने यदि उसके बयान को सही समझा है, चाहे वह पुलिस ही हो, तो उसके लिए उनके पास कारण रहे ही होंगे, उन कारणों की छीछालेदार करना न तो उसके लिए सम्भव ही है, न काम्य ही। कानून किसी को बिना आत्मरक्षा का अवसर दिए दण्ड नहीं देता, इसलिए दया कर सरकार एक वकील की भी व्यवस्था कर दी ताकि वह निर्मल के केस की पैरवी करे। पर निर्मल ने जैसा बयान दिया है, उस बेचारे के पास उससे आगे साबित करने को है ही क्या ?—फिर भी वह सरकार से तनख्वाह पाता है कुछ काम तो उसे करना ही पड़ेगा!—और कुछ नहीं, नाटक ही सही, पर नाटक में भी रिवाज तो असल की असल-जैसी नकल करने ही का है!

बातचीत के दौरान मे कुछ ऐसा सूत्र पाने के इरादे से कि जिससे पुनः परीक्षण की अपनी बहस को कुछ बल दे सके, जब उस दिन वह वकील निर्मलकुमार से मिलने के लिए पहुँचा, तो निर्मलकुमार के चरित्र का एक नया पहलू ही उसे मिला!

"मिस्टर निर्मलकुमार, सरकार ने मुझे आपके केस की पैरवी करने का दायित्व दिया है। केस सम्बन्धी समस्त उपलब्ध सामग्री को मैं देख गया हूं, और मुझे विश्वास-सा हो रहा है कि हत्या के इस काण्ड में आप सचमुच निर्दोष हैं। मैं आपकी सहायता करना चाहता हूँ, किन्तु बिना आपके सहयोग के मेरे लिए यह बड़ा ही कठिन काम है, बल्कि असम्भव ही समझिए।"

निर्मलकुमार मुस्करा दिया: "वकील साहब, आपको धन्यवाद तो मुझे देना ही चाहिए, किन्तु क्या आप असाध्य-साधन मे प्रवृत्त नहीं हो रहे हैं?

जिस सामग्री का आपने पारायण किया है, मुझे तो कहा गया है, कि उससे मेरे लिए अपराधी होने में रंच मात्र भी संशय नहीं हो सकता।"

"किन्तु, आपने तो कहा है कि आप निर्दोष हैं।"

"कहा भर है; कहने से से क्या होता है, प्रमाणित तो मैं नहीं कर सकता।"

"शायद मैं कर सकूँ, यदि आप कुछ सूचनाएँ ठीक-ठीक रूप से मुझे बता सकें!"

"पर उससे लाभ?"

"आप कानून के जूए से बचाए जा सकेंगे!"

निर्मलकुमार ने मुस्करा कर कहा : "तो आप स्वीकार करते हैं कि कानून के जूआ भी है, और कोई उसके नीचे जुत भी जाता है!" वकील ने कहा : "कानून तो सबके लिए समान है मिस्टर निर्मलकुमार, जो उसकी अवहेलना करते हैं, उन्हीं को वह धर दबाता है। हम वकीलों का काम यही है कि निर्दोष मनुष्यों के कन्धों को कहीं वह न पकड़ ले।"

"तो वह वकील के इशारों पर चलता है! तब तो आदमी को वकीलों ही से डरना चाहिए।" और उसका चेहरा मुक्त हँसी से भर गया।

—मृत्यु के झूले मे झूलने वाले व्यक्ति के चेहरे पर जीवन के हलकेपन की यह मुस्कराहट वकील के लिए सवथा नई बात थी! उसने कहा : "आपको भय नहीं लगता?"

"भय? किससे?"

"मृत्यु से!"

"क्यों?"

"यह तो शायद आप अच्छी तरह समझ गए होंगे कि यदि आप निर्दोष प्रमाणित नहीं हो सके, तो सम्भवतः आपको मृत्यु-दण्ड मिलेगा।"

"यदि निर्दोष प्रमाणित हो गया तो क्या, आप विश्वास दिलाते हैं वकील साहब, कि मुझे मृत्यु-दण्ड कभी प्राप्त नहीं होगा?"

वकील ने निर्मल की ओर देखा, उसकी आँखों मे वही रहस्यमयी निश्छल मुस्कराहट तैर रही थी! वकील ने कहा : "मृत्यु के ऊपर तो किसका वश है, निर्मल बाबू!"

"कानून का भी नहीं?—फिर मृत्यु-दण्ड देकर क्या कानून अपनी ही मजाक नहीं उड़ाता?—और जब मृत्यु से छुटकारा आप नहीं दिला सकते, मेरा खयाल है कोई नहीं दिला सकता, तो फिर इसे दण्डित क्यों कहते हैं आप?"

"बात यह है कि इस तरह असमय में मृत्यु —"

निर्मलकुमार हँस दिया : "असमय में मृत्यु?—पता नहीं, असमय से

आपका क्या तात्पर्य है ! यों तो हर उम्र का व्यक्ति मरता हुआ देखा जा सकता है, उसके ऊपर किसी का वश जो नहीं है; परन्तु यदि अस्सी वर्ष की अवस्था मे भी मैं नहीं मरना चाहूँ, और मरने के लिए विवश हो जाऊँ, तो क्या उसे असमय-मृत्यु नहीं कहा जाएगा ?—"

"एक तरह से आपका कहना भी ठीक है।"

"और अंक-शास्त्र से तो भारत वर्ष की औसत आयु ही सत्ताईस वष प्रमाणित है। आपका कानून क्या उसमें कोई हेर-फेर नहीं कर सकता ?"

वकील ने मुस्कराकर कहा : "अद्भुत व्यक्ति हैं आप निर्मल बाबू ! बिना सच्चा दार्शनिक हुए, ऐसे गहरे समय मे कोई व्यंग नहीं कर सकता। पर क्या सचमुच आपको जीवन से कोई मोह नहीं है ?"

"मोह क्यों नहीं है ?—जीवन से मोह है इसीलिए तो मृत्यु को भी प्यार करना चाहता हूँ ! मृत्यु है तो जीवन ही की वस्तु न। मैं यदि चमन को प्यार करता हूँ तो खाली फूलों से ही प्यार करने के क्या मानी ?—मैं काँटों से भी निबाह किए जा रहा हूँ।"

"फूल, फूल हैं, और काँटे, काँटे ! यदि बिना काँटों के फूल मिलना सम्भव हो, तो काँटों की ओर कोई क्यों प्रवृत्त होगा ?"

"काँटों के अभाव मे, कौन जाने फूल की मनमोहकता स्थिर रहे या न रहे—घर की मुर्गी दाल बराबर हो जाती है न ! पर फिर भी आपकी बात मान लेता हूँ। मैंने कहा था कि अस्सी वर्ष की अवस्था पाकर भी यदि कोई मरना न चाहे,और मरने के लिए विवश होजाए,तो क्या उसे अकाल मृत्यु नहीं कहा जाएगा ?—कहा जाएगा, उसी तरह यदि कोई पचीस वर्ष का युवक किसी कार्य में असफल होकर आत्म हत्या कर लेता है तो स्पष्ट है कि जीवन से असंतोष पाकर वह मृत्यु में संतोष पाना चाहता है। पाता है या नहीं, यह दूसरी बात है। मतलब यह कि वह जीवन से विवश होगया है। आप चाहे उसे मृत्यु कहें, पर वह तो उसके लिए वरणीय है। सो आप देखते हैं कि प्रश्न तो केवल विवशता का है ! मैं मरना नहीं चाहता,केवल इसलिए कि साधारणतया कोई मरना नहीं चाहता, परन्तु जब मृत्यु आती ही हो तो उससे क्यों डरूँ ?—खासकर तब, जब कि जीने के लिए कोई आकर्षण मेरे लिए न हो !" और इस आखिरी वाक्य से जो कुछ गम्भीरता छा गई उसे उड़ाने के लिए वह मुस्कराकर बोला : "बल्कि, अपने ही प्रेम की देवी के प्रयत्न से लाई हुई यह मृत्यु तो विशेष-रूप से मेरे लिए अपरिहार्य हो गई है, वकील साहब !"

"तो गोया आप आत्म हत्या कर रहे हैं !"

निर्मल ने हँसकर कहा : "आगे कहिए कि कानून से बचने के लिए

कानून की शरण लेकर इस तरह आत्महत्या कर रहा हूँ! है न ?—पर आत्म-हत्या जैसा निषेधात्मक शब्द तो कानून ने गढ़ लिया, जीवन की दिशा में जीवन से चिपके रहने की दशा का कोई धारा-विधान न सही, शब्द भी आप नहीं गढ़ सके ?"

"पर जीवन कोई इतनी छोटी-सी चीज तो नहीं कि एक लड़की के प्रेम की असफलता ही उसकी असफलता हो जाए। जग में अनेक लड़कियाँ हैं, एक से एक सुन्दर—जग में एक-से-एक अद्भुत वस्तुएँ हैं, कार्य करने को असीम क्षेत्र है, आखिर मनुष्य जीवन की कुछ सार्थकता तो है ही।"

"मनुष्य जीवन की सार्थकता है, इससे मैं इनकार नहीं करता, वकील साहब; किन्तु क्या उसका समस्त बोझ मेरे ही निर्बल कंधों के लिए है ?—व्यक्तिगत रूप से तो मनुष्य एक बहुत ही छोटी इकाई है।"

"आप विचारवान्, आदर्शवान् और बुद्धिमान् हैं मिस्टर निर्मलकुमार, आपकी बातों से शालीनता, और सच्चरित्रता भी टपकती है। आश्चर्य है, आप इस समस्त झमेले में कैसे आ पड़े! हो सकता है, नमिता देवी का निराश-प्रेम ही इसका कारण हो, किन्तु—"

"कहिए रुक क्यों गए, वकील साहब ?"

"सोचने के लिए कि जो कहना चाहता हूँ, वह उचित है या नहीं, यद्यपि प्रतिश्रुत हूँ कि कहूँ नहीं।"

"तो न कहिए।"

"आप से बातें करने के बाद आपका एक नया परिचय मुझे मिला है। आपकी प्रतिरक्षा का केस तैयार करना मेरा कर्त्तव्य है किन्तु अब वह मेरी कामना भी हो गई है, निर्मल बाबू। इसलिए क्या यह मैं कह सकता हूँ कि आपके लिए इस दुनिया में केवल नमिता कुमारी ही नहीं; एक और लड़की है जो रूप में शायद नमिता की समता न कर सके, किन्तु गुणों में उससे कई गुना आगे है, जिसकी आँखों की आकुल दृष्टि आपके लिए व्यथा के समुद्र में ज्वार बन कर ऊपर उठ-उठ कर गिर रही है! शायद आप उसके लिए ही जीवित रहना चाहें।"

निर्मल की आँखों के आगे वाष्प छा गई। कल्पना का आग्रह, कि ग्रेट ईस्टर्न की वह भेंट एकान्त रहे, और उसका आश्वासन उसे स्मरण हो आए। फिर ?

"इस लड़की का पता आपको कैसे लगा ?"

"शायद उसीने मेरा पता लगाया! कल रात्रि को वह मेरे घर पर उपस्थित हुई थी, यह जानने के लिए मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ।"

"उसने आपको नहीं बताया कि आप मेरे लिए क्या कर सकते हैं ?"

"वह बेचारी क्या जानें—'

निर्मल ने आँखें बन्द कर लीं। कल्पना का अन्तसंघर्ष उसकी शून्य आँखों की दीवार पर छा गया।—एक क्षण के लिए जीवन की रंगीनी उस पर छाने लगी, किन्तु सम्हल कर वह बोला: "मैं ही क्या जानता हूँ सिवा इसके कि मैं निर्दोष हूँ।"

"यदि हत्या आपने नहीं की, तो हत्या के समय यानी अठारह की संध्या को छः से आठ बजे तक अवश्य ही आप अस्पताल मे नहीं थे। यदि आप होते तो हत्या कैसे हो पाती। नहीं न ?"

"नहीं, मैं अस्पताल में नहीं था।"

"तो आप कहाँ थे उस समय ?"

एक क्षण के लिए निर्मल चुप रहा, फिर बोला, और मुस्कराते हुए: "क्या यह पर्याप्त नहीं है कि उस समय मैं घटनास्थल पर नहीं था ?—क्या वह घटनास्थल इतना बड़ा है कि मेरे अन्यत्र रहने की समस्त संभावना को ढँक ले ?—छः और आठ के बीच हवाई जहाज यदि मेरे पैरों तले हो तो दो-तीन सौ मील की लम्बाई-चौड़ाई मैं नाप सकता हूँ, पर इन खाली पैरों से भी चार-पाँच मील तो पीछे छोड़े ही जा सकते हैं। वार्ड के एक कमरे की लम्बाई-चौड़ाई की तुलना मे यदि आपका कानून इस लम्बाई-चौड़ाई को भी स्वीकार नहीं करे, तो मैं कहूँगा कि कानून को मुझ से ईर्ष्या है।"

वकील ने निर्मल के कन्धे पर हाथ रख कर कहा: "ईर्ष्या नहीं है, भाई, बात केवल इतनी ही है कि संभावना तुम्हारे वहाँ रहने ही की है, और किसी ने इस बात की गवाही तक दे दी है।"

मुस्करा कर निर्मल ने कहा: "तो उस लड़की ही से यह गवाही देने को क्यों नहीं कह देते कि उस समय मैं उसी के पास था ?"

"निर्मल बाबू!"

"नाराज न होइए, वकील साहब, मैं उस लड़की के प्रति दुर्विनीत नहीं होना चाहता। उसने आपके निकट मेरे लिए अनुरोध किया, उसके लिए मैं उसके निकट और आपके निकट अनुगृहीत हूँ।—पर मैं इसके सिवा कुछ नहीं जानता कि मैं निर्दोष हूँ।"

वकील साहब ने एक लम्बी साँस ली, बोले: "आप से यदि मैं फिर कभी मिलूँ तो नाराज तो न होंगे ?"

"नहीं वकील साहब, आप मेरा उपकार करना चाहते हैं। मैं आपसे क्यों

नाराज होने लगा, किन्तु यदि आप यह जान गए हों कि आपकी ये मुलाकातें व्यर्थ ही होने जा रही हैं तो क्यों कष्ट करना चाहते हैं ?"

उठकर वकील साहब ने कहा : "मुझे आपसे कुछ लगाव हो गया है निर्मल बाबू।"

दूसरे दिन निर्मल को बड़ा ही आश्चर्य हुआ जब कि उसके सामने मुलाकात के कमरे में कल्पना कुमारी अपनी म्लान मुख-मुद्रा में स्वागत करने के लिए उद्यत दिखाई दी।

"तुम ?—कल्पना ?"

उत्तर मे कल्पना की आँखें केवल डबडबा आईं !

"यह तो तुमने बहुत बड़े साहस का काम किया है। यदि तुम्हारे माता-पिता को मालूम हो गया तो ?"

"होजाए तो क्या करूँ ? आखिर एक दिन उन्हे मालूम तो होगा ही ?"

"क्यों ?-तुम्हारे चाचा का दिया हुआ चेक मैं काम मे नहीं ले सका; किन्तु उसको नष्ट मैंने कर दिया है, ताकि किसी को उपलब्ध न हो सके ! इस बारे मे तुम निश्चिन्त रहो ! और देख ही तो रही हो, प्राणों के मूल्य पर भी मैं इस भेद को कभी प्रकट नही करूँगा।"

कल्पना की आँखें बहने लग गईं : "इस अभागिनी के लिए तुम यह सब कुछ क्यों करोगे ?"

"इसलिए कि इस भाग्य के समस्त जीवन में तुम्हारी स्मृति का सौभाग्य ही तो शेष रहा है। उसे भी क्यों खो दूँ ?"

कल्पना अपने आपको अधिक रोक न सकी, उसने निर्मल के कंधों पर अपने हाथ रख दिए, और उसके फैले हुए वक्ष में अपना मस्तक छिपाकर बोली : "नहीं निर्मल, तुम आत्महत्या नहीं कर सकोगे।"

कल्पना के घने- बालों पर अपना हाथ फेरते हुए मुस्कराकर निर्मल ने कहा : "इस जीवन पर किसी ने अभी तक अधिकार नहीं जताया। चाहता था कि किसी को भी सौंपकर अपने आप से निश्चिन्त हो जाऊँ, पर सभी ने शायद कचरा समझ कर इसे ठुकरा दिया, तो मैं ही इसे क्यों सहेज कर रक्खूँ ?—कचरा सहेजने से तो गन्दगी ही फैलती है, कल्पना !"

"मैं इस झूठी प्रतिष्ठा के बोझ से बहुत पिस चुकी निर्मल ! मैं माता-पिता से स्पष्ट कह दूँगी, तुम चिन्ता न करो। आज से, इसी क्षण से तुम्हारा दायित्व मैं लेती हूँ।"

निर्मल कुमार मुस्कराता रहा, बोला : "पर मेरे कंधों पर निर्दोष हत्या का बोझ तो तब भी रहेगा !"

"कैसे ? च्यवन के कंधे यदि छोटे हों, तो उसके मस्तक को इस अपराध के लिए क्या जगह नहीं करना पड़ेगी ?"

"उसे तुम नहीं जानती, पर मैं जानता हूँ—वह प्रयत्न करेगा कि अपराध गिरे नमिता के कंधों पर, और तुम नहीं जानती, कह नहीं सकता च्यवन भी जानता है या नहीं, किन्तु कानून च्यवन की सहायता करेगा।"

"यह कैसे ?"

"इसलिए कि नमिता की उस समय डोरा से भेंट प्रमाणित की जा सकती है, च्यवन की नहीं।"

"स्पष्ट कहो न ?"

"उस अस्पताल का नियम है कल्पना, कि पाँच बजे के बाद किसी को बिना आज्ञा के भीतर प्रवेश नहीं करने दिया जाता। ड्यूटी पर तैनात डॉक्टर एक व्यक्ति भर को अपने अधिकार से आज्ञा दे सकता है, इससे अधिक नहीं। तुम जानती हो, डोरा ने च्यवन की भेंट की व्यवस्था कर दी थी, इसलिए वह तो सरलता से भीतर प्रवेश कर गया, पर नमिता नहीं जा सकी। उसे उसी तरह ड्यूटी वाले डॉक्टर से आज्ञा लेनी पड़ी। ऐसी मुलाकातों का लेखा रजिस्टर मे किया जाता है। नमिता बच नहीं सकती। हाँ, यह हो सकता है कि नमिता स्वयम् इस मुद्दे से परिचित न हो ; हो सकता है, च्यवन भी नहीं जानता हो।"

"तुम्हें यह सब कैसे मालूम हुआ ?"

"नमिता की मुलाकात की स्लिप जिस पर डॉक्टर के हस्ताक्षर थे, बाथ रूममे मुझे मिल गई थी।"

"कहाँ है वह ?"

मुस्कराकर निर्मल ने कहा : "पाँच हजार के चेक के साथ वह भी हल हो गई।"

"पर यह तो तुम्हारी रक्षा का बड़ा सबल माण था।"

"सबल प्रमाण तो और भी हैं कल्पना, पर—नहीं, अधिकार हो तो भी उनका प्रयोग करने की इच्छा नहीं है। जीवन को जब उसका मूल-सत्व ही नहीं मिला, तो सूखे वृन्त को धरती की छाती पर गड़ाए रखने का मोह मुझे नहीं है।"

"जीवन का मूल-सत्व ? क्या है वह ?—तुम्हीं ने तो कहा था निर्मल कि, तुम नमिता से पहले कभी प्यार करते रहे होगे, पर अब तुम्हारे हृदय मे उसके लिए कोई आसक्ति नहीं है। मैं एक अकिंचन लड़की हूँ। स्पर्द्धा नहीं कर

सकती, कि मैं किसी स्थान की पूर्ति कर सकूँगी, किन्तु" —आगे कल्पना कुछ नहीं कह सकी। अश्रु, लज्जा-न जाने क्या-क्या उसकी जीभ पर आ बैठे।

किन्तु निर्मल को अधिक कहने की आवश्यकता भी न थी। उसने एक लम्बी साँस ली, स्वप्न-से जागे हुए के समान वह बोला :

"तुम मेरे लिए क्या नहीं हो कल्पना !—तुम मेरा स्वप्न ही नहीं, मेरी तपस्या हो ! स्वप्न को सत्य में पाने की तृष्णा होती है, किन्तु तपस्या मे सत्य को भी विसर्जित कर दिया जाता है ! जीवन की इन पार्थिव शृंखलाओं मे बँधने के लिए तुम नहीं हो, जीवन उतने बड़े उत्कर्ष को वहन नहीं कर सकता !—मेरा यह जीवन बड़ा तुच्छ है, इसकी वासनाओं और कामनाओं ने इसकी पात्रता नष्ट कर दी है। तुम अति प्रभात की वह मुग्ध ओस-बिन्दु हो, जो सूर्य की किरणों के लिए नहीं है।"

"मेरी आशा ?"

"तुम्हारे लक्ष्मीनारायण की शक्ति अपर्याप्त नही है कल्पना—"

"लक्ष्मीनारायण—किन्तु स्वयम् तो तुम उनमे विश्वास नही करते ?"

"एक दिन था जब नहीं करता था, तब मेरे अहम् की सीमाएँ नहीं थीं। किन्तु देखा कि यह अहम् कितना तुच्छ है ! एक तुच्छ-सी वस्तु की चुनौती तक को यह नहीं पा सका।—आज मुझे अपने मे विश्वास नहीं है कल्पना, विश्वास के लिए तो लक्ष्मीनारायण जैसे निश्चल, ठोस आधार की ही आवश्यकता है।"

"वह तुच्छ-सी वस्तु क्या है जिसकी चुनौती तुम नही पा सके ?"

निर्मलने इतस्ततः करना चाहा, पर बोला : "तुम पर आक्षेप बिलकुल नहीं है कल्पना, पर जानती हो कि इस जीवन का अन्यतम-सत्व है अर्थ। उसकी सिद्धि के बिना यह जीवन व्यर्थ है, नितान्त व्यर्थ ! बड़े से बड़ा महत्व क्यों न हो, अर्थ की सीढ़ी के बिना वह चढ़ नहीं सकता। खाली पैर होने से कुछ नहीं होता, क्योंकि इस युग मे जीवन का अभियान लम्बाई में नहीं, प्रत्युत चढाई में है ! देख तो रही हो न मुझे! आकाक्षाओं ने मेरे लिए कौन-सा पथ निर्दिष्ट किया था और अर्थ की विवशताएँ कहाँ घसीट ले गईं मुझे।"

"पर अर्थ को इतना महत्व देना क्या अनिवार्य है ?"

"बिलकुल नहीं !—इसीलिए तो जिस जीवन मे यह इतना महत्वशील हो उठा है, उसी को मैं तुच्छ मानना चाहता हूँ !"

"तब, दया, माया-सत्य-प्रेम-न्याय-करुणा आदि—"

"इन्हें हम गुण कहने के आदी हो गए हैं कल्पना ! और इतना अभावशील हो गया है मनुष्य, कि इनकी ओर वह ऐसे सतृष्ण नेत्रों से देखता है,

मानो ये उसकी अन्न-वस्त्र की आवश्यकताए हों। यदि सच्चे रूप मे जानना चाहो तो ये हैं धनी, समर्थ और निश्चिन्त व्यक्ति के ऐश्वर्य के उपकरण, जिनका वितरण करके वह आनन्द पाता है, और अपना श्रेय प्रतिस्थापित करता है। अर्थहीन व्यक्ति कहाँ से इनको प्राप्त करे? यदि इस जीवन की कुछ सार्थकता पानी है तो दारिद्रय को आशीर्वाद मानने की भ्राति दरिद्र ही के लिए रहने दो; दया-रहम आदि के लिफाफे में अपनी कायरता का ढिढोरा-कायर ही पीटते रहते हैं, च्यवन इन सबसे अधिक जानता है, जीवन सचमुच उसके लिए है। मैं यदि भावुक हूँ तो पागल हूँ—और यह जीवन मेरे लिए नही है।"

"मैं एक अर्थ-सम्पन्न पिता की पुत्री हू, क्या तुम मुझे घृणा करते हो?"

"अपने हृदय से पूछ देखो न, कल्पना!"

"पर करना तो घृणा ही चाहिए तुम्हे, यदि तुम अपनी बात मानते ही हो?"

"तुम्हें तो मैंने जीवन से बाहर की वस्तु मान लिया है!"

"अर्थ को मैं भी तुच्छ समझती हूँ, पर जीवन को उतना नहीं, जितना तुम समझे बैठे हो।—खैर, अब जेल मे भेंट नहीं कर सकूँगी। पर भेंट करूँगी अवश्य, कहाँ और कैसे, यह अभी नहीं बता सकती—पर—"

"पर क्या—"

"तुमने तो अपना जीवन एक तरह से विसर्जन ही कर दिया है, यदि इसे लौटा लाई, तो उस पर स्वत्व मेरा होगा, और किसी का नहीं!"

"किन्तु—"

चलते-चलते कल्पना ने कहा: "समय हो गया, बात का उत्तर नहीं दे सकूँगी", इसलिए किन्तु पर ही अपनी बात अटका रखो, जब तक की उत्तर न मिल जाए!"

और निर्मल को वितृष्ण नजरों से अपनी ओर देखता हुआ छोड़कर कल्पना बाहर हो गई।

●

: २२ :

जैसी कि आशा की जा सकती है, निर्मल से कल्पना की इस भेंट के समाचार को नमिता तक पहुँचने मे कोई समय नहीं लगा ! आशका की बात थी ही, अतः उसी दिन संध्या को, जब कि कल्पना के घर पर रहने की सम्भावना नहीं थी, नमिता ने उसकी माता जी को जा घेरा। आवश्यकता के अनुसार नमक-मिर्च के साथ कल्पना और निर्मल के बीच बढी तथा चढी हुई प्रणय के बाढ़ की सूचना देकर नमिता ने चित्र का दूसरा पहलू भी ऐसे स्पष्ट शब्दों में उस धर्म-भीरु, पुत्री-वत्सला मा के सामने रक्खा कि अपने कुल, प्रतिष्ठा, इहलोक, परलोक, कन्या आदि के सभी के सर्वनाश में तनिक भी उसे सन्देह न रहा। असीम बेदना तथा अनुपायिता की चरम-सीमा मे जब उसकी आँखें छलछला उठीं, तो नमिता ने उस अनन्त-असीम जल राशि में अपने ही थामे हुए तिनके को बुढ़िया की ओर भी बढ़ा दिया ! बात इतनी दूर बढ़ चुकी थी, और कल्पना का मन उस क्षेत्र तक पहुँच चुका था कि उसके ऊपर अधिक शब्द व्यय करना, न केवल शब्दों का व्यय था, किन्तु बहुमूल्य समय का भी व्यय था, और जिसके एक बार व्यय हो जाने पर पुनः प्राप्त होना असम्भव था। अतः आक्रमण का मोर्चा निर्मलकुमार चुने गए, कि दूसरे दिन प्रातःकाल ही कल्पना की मा जेल में निर्मलकुमार से मिले, इस मिलाप की व्यवस्था करने का दायित्व भी नमिता ने ले लिया; कि निर्मलकुमार की शिक्षा, दीक्षा, सभ्यता की दुहाई दी जाए, सबसे अधिक कल्पना के प्रति उसके प्रेम को, और स्वयम् कल्पना के भविष्य और उसकी भलाई को दाँव पर रख कर निर्मल से बाजी बदी जाए; तो बहुत सम्भव है

कि यह चाल काम कर जाए और स्वयम् निर्मलकुमार अपने आपको कल्पना के मार्ग से हटाले !—एक और भी मार्ग सुझाया गया कि कल्पना के घर से बाहर निकलने पर रोक लगा दी जाए, और उसकी डाक पर नजर रक्खी जाए, पर माता को इस विषय में अपनी स्थिति बड़ी डाँवाडोल लगी; एक तो यह कि कल्पना उसके पिता की इकलौती लड़की है, उनको उस पर अमित विश्वास है। यों वह स्वयम् भी बाहर कहीं जाती नहीं, और जब नमिता ने इस बात का खण्डन किया, तो उन्होंने स्वीकार किया कि कम-से-कम उन्हे तो उसके बाहर निकलने का कुछ ज्ञान नहीं है, फिर भी वे चेष्टा करेंगी। रहा चिट्ठी-चपाती डाक का झगड़ा, सो वे खुद तो पढी- लिखी हैं नहीं; घर की सारी व्यवस्था का दारोमदार जब से कल्पना ने कॉलिज छोड़ा, तब से उसी पर है। पर फिर भी, कल्पना के हित की दृष्टि से ही सही, उसकी माता का अपने आप को इतना निरुपाय महसूस करना उचित नहीं है। वह इस दिशा मे भी नमिता की बात मानने के लिए तैयार हो गई।

नमिता लौट कर घर आई, तो भी उसका चित्त हलका नहीं हो सका। वह सीधे च्यवन के कमरे मे पहुँची, पहुँचते ही वह चौंक उठी, उसके पिता सुमनबाबू च्यवन से कुछ बातचीत कर रहे थे, वह उल्टे पैरों लौट आना चाहती थी, परन्तु सुमनबाबू ने उसे देख लिया था, बोले : "आओ, आओ, नमू। कहाँ गई थी तुम ?—सचमुच तो तुम्हारे बिना सारी बातचीत ही अधूरी थी! आने के पहले तुम्हारे कमरे मे झाँका, पता लगा कि तुम—"

"जरा टहलने गई थी, पापा।—अकेली इसलिए कि च्यवन कॉलिज से ही जरा देर से लौटे!"

—और वह भी सुमनबाबू के पास ही पलंग पर बैठ गई।

"क्या बात है, पापा ?"

"यही, विवाह की बात है, आज प्रातःकाल च्यवन मुझसे कह गया था कि यदि विवाह से इसी सप्ताह निपट लिया जाए तो क्या हर्ज है। बाद में तुम लोगों की परीक्षाएँ आजाएँगी, और तब अभ्यास में बाधा पड़ सकती है। कहते हैं, तुम भी इस प्रस्ताव से सहमत हो गई हो!"

"इसी सप्ताह ?"—नमिता ने च्यवन की ओर देखा। च्यवन किसी दूसरी ही चीज को देख रहा था, बढ़े ने नमिता की दृष्टि को पकड़ने-पहचानने मे भूल नहीं की! नमिता ने बात पूरी की : "किन्तु शायद, आपको सुविधा नही होगी!"

"मेरी सुविधा का क्या है ?—न हुआ कुछ भाग-दौड़ अधिक कर लूँगा ! उससे भी कुछ ताजगी ही मिलेगी। महीना न हुआ हफ्ता हुआ, उसमें फर्क क्या पड़ता है ।—आजकल के विवाह का है ही क्या ?—दो प्राणियों को हाँ भर कर देना आवश्यक है, बहुत हुआ तो तीसरा आदमी गवाह हो जाए। बस ?" और वे स्वयम् मुस्करा दिए।

नमिता ने नमित दृष्टि से कहा : "यों तो मुझे कोई बाधा नही होती पिता जी, किन्तु यह निर्मलकुमार का मुकदमा ऐसा आ फँसा है कि सोचती हूँ यह टल जाए, तो ही किसी काम के लिए साँस ले सकूँ।"

"निर्मलकुमार की चर्चा से तुमने, मुझे एक बात और स्मरण दिला दी, बिटिया। यों तो तुम जानती ही हो, मैंने निर्मलकुमार के मामले मे प्रारम्भ ही से बड़ी उदासीनता बनाए रखी है ! तुम इस दिशा मे क्यों स्वयम् प्रवृत्त हुई यह भी मैंने कभी जानना नहीं चाहा—"

"स्वयम् प्रवृत्त हुई पापा ?—क्या कहते हैं आप ?—जब पुलिस ने छान-बीन की और सब कुछ जान लिया, तो मैं ही कैसे अपने आप बच पाती ?—और अब मैं मिथ्या बोलूं, यह तो शायद आपका मत नही है।"

"अवश्य नहीं है, नमिता। मेरी इच्छा भी नहीं है कि मैं इस मामले में आलोचना करूँ। केवल एक बात है कि आज की सूचना के अनुसार केस में कुछ नया मोड़ आने की आशंका है ! जब तुम कॉलिज गए हुए थे, उस अस्पताल से कोई लड़का—शायद विलियम या ऐसा ही कुछ नाम था, तुम्हारी खोज करता हुआ आया था—"

च्यवन ने चौंक कर मस्तक उठाया : पूछा "मेरी ?"

"तुम्हारी नही, नमिता की ! कहता था कि उस दिन हत्या की संध्या को नमिता देवी वहाँ अस्पताल मे गई थीं, वहाँ के जिस रजिस्टर मे उनकी भेंट का जिक्र है,वह रजिस्टर पुलिस के कुछ व्यक्ति वहाँ से थाने ले गए हैं। मैं इस पर विश्वास नहीं कर सका, पर नमिता ?—क्या यह सच बात है ?"

नमिता का चेहरा सफेद पड़ गया। च्यवन ने नमिता की दृष्टि से दृष्टि मिलानी चाही, किन्तु नमिता की दृष्टि का संधान वह भी नहीं पा सका।

आखिर कुछ सोच कर नमिता ने कहा : "पर इससे केस को क्या नया मोड़ मिलेगा, पापा ?"

"सो मैं नही जानता; पर क्या तुम सचमुच गई थी वहाँ, नमिता ?"

"मैं—और उस लड़के ने क्या कहा पापा ?"—

"वह तुम्हें खोजने आया था, मुझसे कुछ नहीं कहा उसने। हाँ मैंने

उससे यह अवश्य कहा, कि नमिताकुमारी मेरी ही लड़की का नाम है, पर वह कभी उस मिशन अस्पताल मे नहीं गई।"

नमिता एका एक उठ खड़ी हुई, बोली : "मुझे उस लडके से बात करना है। पापा, मैं सब बात जानना चाहती हूँ, अभी!—मैं चली—मैं" और वह कमरे से बाहर हो गई! सुमनबाबू तथा च्यवन देखते ही रह गए! मौका देखकर च्यवन ने कहा : "आज्ञा हो तो मैं नमिता के साथ—"

"नहीं, तुम बैठो च्यवन मुझे तुमसे भी बातें करनी हैं। नमिता के लिए डरने की कोई बात नही। यदि मैंने उसे स्वतन्त्रता दी है, तो इसीलिए कि वह सीखे, यद्यपि ठोकर खाकर सीखना कुछ अच्छा सीखना नहीं होता, फिर भी सच्चा सीखना वही है! उस लड़के के बारे मे तुम भी कुछ जानते हो?"

"किस लड़के के?"

"वही जिससे बात करने के लिए नमिता इस तरह चली गई है! शायद विलियम नाम बताया था उसने।"

"जी नहीं, मैं कहाँ से जानने लगा उसे?"

"पर तुम्हें तो वह बहुत अच्छी तरह जानता मालूम दिया।"

"मुझे?—सो कैसे?—यह कैसे हो सकता है?—नहीं, वह झूठा है, सरासर झूठा है, मै विलियम नाम के किसी लड़के को नहीं जानता।"

सुमनकुमार किंचित मुस्कराकर बोले : "तुम उसे जानो या न जानो, किन्तु यदि वह तुम्हे जानता है तो हानि तुम्हारी ही है च्यवन!–प्रेक्टिस अवश्य मैंने छोड़ दी, पर बैरिस्टर की बुद्धि तो मरने पर ही जा सकती है। छः बजे नमिता अस्पताल मे गई, साढ़े छः या सात के बाद च्यवन प्रकाश नामक एक और युवक गया—दोनों ही मकतूला से मिलने के लिए; एक का गवाह है अस्पताल का रजिस्टर और दूसरे का यद्यपि इतना पुख्ता सबूत नहीं, किन्तु अस्पताल का दरबान दोनों को पहचान सकता है। हत्या हुई लगभग आठ बजे, डॉक्टर की रिपोर्ट कहती है। दोनों भीतर जाकर कब लौटे इसका पता नहीं। दरबान यह भी कहता है कि जब वह च्यवन प्रकाश की खबर लेकर भीतर जाता है तो देखता है कि भीतर मकतूला के पास वही लड़की नमिता मौजूद है!—क्या मतलब हो सकता है इस समस्त घटनावली का मिस्टर च्यवन?"

च्यवन की अवस्था भी बदल गई, मुखमंडल विवर्ण हो गया हृदय की धडकन चार गुना हो गई। किन्तु किसी तरह साहस एकत्रित कर उसने कहा : "किन्तु निर्मल—मैं सब कुछ स्पष्ट तो नहीं जानता, किन्तु हो सकता है निर्मल भीतर छिपा हुआ नमिता और डोरा की बातें सुन रहा हो, और तीसरे व्यक्ति के आकर बाधा देने की आशंका से उसके आने के पहले ही डोरा की हत्या कर डाले—"

"हो क्यों नहीं सकता ?—किन्तु तब नमिता का क्या होता है ?—क्या वह खड़ी-खड़ी केवल हत्या की क्रिया को देखती रहती है ?—कोई बाधा उपस्थित नहीं करती ?—और हत्या के बाद भाग जाती है कि आने पर पुलिस उसे पा न सके, चाहे हत्यारा स्वयम् न भागा हो, और पुलिस को पा गया हो ?—नमिता भागे तो भी क्या केवल यह कहने के लिए, कि इस काण्ड के बारे में वह कुछ नहीं जानती ?—"

"शायद—"च्यवन ने कुछ कहने का प्रयत्न किया।

"कहो, शायद नमिता सच बात नहीं कह रही है, क्योंकि उसके सच बात कह देने से निर्मल की रक्षा का आखिरी उपाय भी नहीं रहेगा, क्योंकि नमिता के हृदय में निमल के लिए शीतल-आश्रय था। शायद यह भी कहना चाहो कि नमिता ने निर्मल से मिलकर डोरा की हत्या कर दी, और अब नमिता को बचाने के लिए निर्मल ने—"

च्यवन सुमनबाबू के व्यंग्य को समझ गया। उसने कहा : "आपका मतलब क्या है, पापा ? आप तो जैसे निर्मल के वकील बनकर बहस कर रहे है, और गोया में प्रतिवादी हूँ।"

"अबोध लड़के ! यह तुम्हारा सौभाग्य है कि यह बहस मैं ही कर रहा हूँ ! दो दिन से शायद अधिक नही लगेंगे जब तुम्हे पता लगेगा कि सचमुच सरकारी वकील तुमसे यही बहस करेगा; और यदि कहीं से तुम्हे सहायता नहीं मिली तो निर्मल की जगह कठघरे में तुम्हे खड़ा होना पड़ेगा।"

"मुझे ?—मैं हत्यारा हूँ !—हत्या के समय यदि कोई वहाँ मौजूद था तो मैं नहीं, नमिता देवी थी यह आप क्यों भूलते हैं ?"

"और यह विलियम नामका दरबान जो कुछ कह रहा है ?"

"अगर थोड़ा पैसा उसे दे दिया जाए तो वह जो आप चाहेंगे, वही कह देगा।"

"यानी ?—" सुमनबाबू का मुँह क्रोध से लाल हो उठा : "क्या तुम यह कहना चाहते हो, कि जो कुछ वह कह रहा है, रिश्वत पाकर कह रहा है?"

"यदि मैं सचमुच वहाँ नहीं था, और कोई इसके बावजूद यदि मेरे वहाँ होने की बात कहे, तो मैं समझता हूँ, उसके ऐसा कहने के मूल मे यही तो स्वार्थ हो सकता है !"

"पर तुम वहाँ थे तो ?"

च्यवन हँस पड़ा : "इन बेकार की बातों को क्यों सोचते हैं, पापा ! यदि आपकी बैरिस्टर की बुद्धि गई नहीं है, तो उसे दूसरी दिशा में उपयोग कीजिए। मुझे फँसाने की चेष्टा में आप नमिता को फँसा देंगे। कुछ

करना हो तो यही कीजिए कि जिससे हम दोनों बच जाएँ।"

सुमनबाबू कुछ देर तक खड़े सोचते रहे। फिर बोले : "तुम चाहे जिसको धोखा दे पाए हो, पर मुझे नहीं दे सकते, च्यवन। मुझे विश्वास हो गया है कि हत्या तुमने की है! और इस सारी बातचीत से मुझ पर यह भी स्पष्ट हो गया है कि नमिता के लिए तुम्हारे मन मे कोई लगाव नहीं है, यह जानकर भी क्या तुम सोचते हो मैं तुम्हारी शादी की स्वीकृत दे दूँगा?"

"मैं समझता हूँ, कदाचित् यह प्रश्न नमिता देवी के सोचने का है।"

"है, पर मैं उसका पिता हूँ!"

च्यवन ने सुमनबाबू की ओर देखा, फिर कहा : "नारी, और जवान हो तो उसकी इच्छा पर किसी का अंकुश नहीं रहता, एक उमर पा लेने पर तो कानून का भी नहीं, यह क्या आप ही नहीं जानेंगे?"

"पर मैं उसे राय तो दे सकता हूँ?"

"वह भी कर देखिए। पर यदि आप मेरी बात मानें, तो इस व्यर्थ के कार्य मे क्यों शक्ति व्यय करते हैं, पापा?"

"इस सम्बोधन पर तुम्हारा मैं अब कोई अधिकार नहीं समझता!"

"न सही!—विवाह के बाद—"

"मालूम पड़ता है, च्यवन, कि तुमने नमिता के ऊपर किसीत रह का जाल बिछा रक्खा है, जिसे शायद चाह कर भी वह उच्छिन्न नहीं कर सकती। पर कोशिश तो कर देखूँगा कि वह इस भयानक मार्ग से लौट सके। कह नहीं सकता, किस बन्धन के द्वारा वह तुमसे बँधी हुई है। जवानी अन्धी होती है, किन्तु एक भूल को शाश्वत मान कर भूल पर भूल करते जाने का कोई तात्पर्य नहीं है। इतना पढ़-लिख कर भी यदि नमिता ने यह नहीं सीखा, तो उससे कहूँगा कि उसने कुछ नहीं सीखा। और मिस्टर च्यवन प्रकाश, तुम जो इस बूढ़े पर दाँव खेलना चाहते हो, देखता हूँ, वह कहाँ तक तुम्हारी सहायता करता है।"—और सुमनबाबू चल देने को उद्यत हो गए!

च्यवन ने एक क्षण भर में भविष्य का बहुत कुछ अन्तर स्पष्ट कर लिया, बोला—"पापा,—"

सुमनबाबू ने कहा कुछ नही, केवल मुँह फेर कर खड़े हो गए!

च्यवन ने कहा · "मैं स्वीकार करता हूँ कि हत्या मैंने की, किन्तु—"

सुमनबाबू ने कहा : "मैं इसे प्रमाणित कैसे कर सकूँगा, यह कहना चाहते हो?"

"नहीं; कहना मैं कुछ और ही चाहता हूँ। यदि आप कुछ समय यहाँ बैठ सकें, तो मैं कुछ कहूँ।"

"बैठने की मैं आवश्यकता नहीं देखता, पर क्या कहना चाहते हो तुम ?—कहो।"

सुमन प्रकाश निस्तब्ध-भाव से अपनी दोनों आँखों की तीक्ष्ण दृष्टि को च्यवन के ऊपर गड़ाए हुए खड़े रहे, और नीची दृष्टि किए हुए च्यवन ने कहना प्रारम्भ किया :

"आज से बीस माह पूर्व जब मैंने इस शहर मे पाँव रखे थे, मैं नहीं जानता था कि अर्थ के स्पर्श से मेरा इतना परिवर्तन हो जायेगा ! शायद तब मैं इस परिवर्तन को पतन कह कर पुकारता, किन्तु आज वह प्रवृत्ति भी नहीं है ! हो सकता है कि कोई इसे अर्थ का अभिशाप कहे, मैं इसे अर्थ का वरदान कहता हूँ ! जो जीवन इस समाज मे जिया जा रहा है, वह या तो भय का जीवन है, जिसे अर्थाभाव की काली छाया अपने कठिन पजे मे जकड़े हुए है, या वह मुक्त निर्बाध जीवन है, जो अर्थ की छत्रछाया मे मुक्त क्रीड़ा करता है—"

सुमनबाबू की आँखों की कोरें इषत् हास्य से सिकुड़ गईं, बोले : "दूसरों के अनुग्रह से मिले हुए अर्थ पर अर्थ का दर्शन नहीं चलता। पहले अपनी बाहुओं से अर्थ का अर्जन तो कर लो—"

"अर्थ के ऊपर स्वामित्व उपभोक्ता का होता है, अर्जक का नहीं ! अर्थ को क्या एक निरपेक्ष-मान नहीं कहना चाहिए ? कुठौर में पड़े हुए कंचन को कौन छोड़ देता है, उसे छोड़ देना क्या बुद्धिमानी है ?—छोड़ता ही कौन है ? दुनिया के दूसरे गुण इतने निरपेक्ष नहीं हैं। उनकी स्वीकृति के लिए भी अर्थ की शक्ति चाहिए !—बल्कि जिन्हें हम दुर्गुण कह कर पुकारने के आदी हैं, उनकी सत्ता केवल तभी दिखाई देती हैं, जब अर्थ की शून्यता व्यक्ति के अन्तराल को नगा करके हमारे सामने रख देती हैं !"

"तो तुम अर्थ के अर्जन की चिन्ता नहीं करते, केवल उसे स्वायत्त करने से तात्पर्य रखते हो ?"

"उसे स्वायत्त करना ही तो उसे अर्जन करना है ?"

"तो तुम्हारी दृष्टि मेरे अर्थ पर थी ?"

"दृष्टि हो या न हो, यह अर्थ किसी का होकर तो रहेगा ही, मेरा न सही, किसी दूसरे का सही। इसके ऊपर किसी की दृष्टि हो ही तो वह अन्याय क्यों है ?—आपकी कन्या के ऊपर किसी की दृष्टि हो, वह आपके लिए काम्य है। अर्थ भी आपही का है, उसके ऊपर किसी की दृष्टि आपको

सत्य नहीं ?–फिर भी कोई इसीलिए तो अपनी आँखें बन्द नहीं कर लेगा।"

"किन्तु इस सिद्धि के लिए मैं अपनी कन्या को साधन नहीं बनने दे सकता। मेरी कन्या मेरे लिए मेरे धन से बहुत अधिक है।"

"आप शायद इसे ही बुद्धिमानी समझते हों।"

"तुम इसे मूर्खता कहते हो ?"—और क्रोध मे सुमनबाबू ने आगे कहा, "मेरी कन्या के ऊपर मेरा कोई वश न रहा हो, पर इस अर्थ पर तो मेरा ही दावा है, मैं किसी भी तरह इसकी अन्य व्यवस्था कर सकता हूँ ! पर यह तुम्हे कभी नहीं मिलेगा।"

"तो आप कन्या ही को अपने धन के ऊपर बलिदान कर देंगे ?"

"क्या सोच कर फिर नमिता तुम्हें वरण करेगी ?"

"तो फिर आपको कह ही दिया जाए कि कार्यतः हमारा विवाह हो चुका है, गई गरमियों में जब हम पहाड़ों पर गए हुए थे, तब ! अब तो केवल उसका सामाजिक दिखावा भर करना शेष है, किन्तु यदि आप इस सामाजिक दिखावे ही को सब कुछ समझते हों तो आप अपनो कन्या को पुँश्चली बनने दे सकते हैं—"

"च्यवन—"वृद्ध ने गरज कर कहा।

च्यवन भी उठ खड़ा हुआ, बोला : "निष्फल क्रोध से क्रोध करने वाले ही की हानि होती है पापा ! आपको क्रोध नहीं करना चाहिए, खास कर इस वृद्ध ऊमर मे। यों, यदि आप व्यवहारतः देखें तो बिगड़ा ही क्या है ? आपके भावी जामातृ के रूप मे मैं प्रसिद्ध हूँ ही, इसीलिए वस्तुतः नमिता की और मेरी स्वाधीनता को समाज सहन करता आया है। सामाजिक दिखावा भी तो हो चुका है, क्या हुआ यदि वह अनौपचारिक ही हुआ हो ! पर अब आप और औपचारिक दिखावा करके भी उस अनौपचारिक दिखावे को निरस्त नहीं कर सकेंगे।—आप खड़े क्यों हैं ?—बैठ जाइए, शायद जाने कितनी देर हमें और बात करने मे लग जाए।"

—और च्यवन ने सुमनबाबू की रक्त-हीन निस्तेज होती हुई देह को कन्धे से छूं लिया। निर्जीव-से सुमनबाबू एक कुर्सी पर बैठ गए। उनका मुखमण्डल सफेद हो गया। जिन आँखों से रक्त उछलता मालूम दे रहा था, वहाँ निरुपायिता की तरल-आर्द्रता छाने लगी, उनके सामने मानो एक गहरा अन्धकार फैलने लगा।

च्यवन भी उनके सामने बैठ गया, बोला : "पैदा हुआ प्राणी मरता ही है- मैं भी मरूँगा ही एक दिन। मरने से मैं नहीं डरता। पर खाली मरने ही के लिए कोई पैदा नहीं होता ! जीवन का अधिकार सभी को है। डोरा

को मरना पड़ा, और मेरे ही हाथों, इसलिए कि वह केरे अस्तित्व ही के ऊपर दाँव लगा बैठी थी ।—साथ ही मैं दरिद्र का जीवन भी नहीं जीना चाहता; उससे तो मृत्यु लाख गुना अधिक श्रेष्ठ है। अतः आपकी सहायता न पाकर भी, या आपका विरोध पाकर भी जीवित रहने की चेष्टा तो मुझे करनी ही होगी ! जो प्रमाण अभी तक मेरे विरोध मे उपलब्ध हुए हैं, उससे मेरी कोई हानि नहीं हो सकती। आपकी कन्या नमिता के फँसने के आसार अवश्य हैं। आपको जान कर शायद विश्वास हो जाए, जो हार डोरा के पहने रहने की रिपोर्ट है, वह हार सरलता से नमिता देवी के पास बरामद हो सकता है। और डोरा को मार डालने मे नमिता का क्या उद्देश्य हो सकता है, बेहतर यह है कि मैं आपसे न कहूँ। पर नमिता सब कुछ जानती है, शायद वह इनकार करने की मूर्खता नहीं करेगी !—यही क्यों ?—यदि आज रात्रि ही को मैं गायब हो जाऊँ,तो मुझे कोई पा नहीं सकता, किन्तु मेरे अदृश्य होते ही नमिता कुमारी की रक्षा के सब द्वार भी बन्द हो जाएँगे। घर पर मेरी एक विधवा मा को कोई नहीं जानता ! मेरे सामने सारी दुनिया फैली हुई है, यौवन के घोड़े पर सवार, जीवित रहने की अदम्य इच्छा का चाबुक मेरे हाथ मे, मेरे स्वर्णिम-भविष्य को मुझसे कोई नहीं छीन सकता। मैं सिंह की तरह रहने की विद्या सीख चुका हूँ, सिंह पुरुष ही को लक्ष्मी वरण करती है। मेरा भविष्य मेरे हाथ मे है !"

सुमनबाबू गहरी चिन्ता मे डूब गए। यह उद्धत युवक, जो कुछ कह रहा है उसमें मिथ्या क्या है ?—और क्या है असम्भव इसके लिए—इस भयानक लड़के को आश्रय देकर उन्होंने जो विपत्ति मोल ली है, उससे कौन करेगा उनकी रक्षा ? नमिता के जीवन को यह मिट्टी मे मिला चुकेगा यदि इसकी बात पर ध्यान नहीं दिया जाएगा। च्यवन की ओर उन्होंने देखा, वह कहता जा रहा था :

"दूसरी ओर आपका मार्ग है नमिता को बचा कर मेरे साथ विवाह कर देना। बचा देना कोई कठिन कार्य नहीं ! नमिता कुमारी का नाम उस दिन दवाखाने के रजिस्टर में लिखा गया है ! इसके कोई विशेष मानी नहीं होते। नमिता को फँसाने के लिए कोई भी औरत यह कार्य कर सकती है, खास कर तब जब कि नमिता को वहाँ कोई नहीं पहचानता। रहा प्रश्न विलियम तथा डॉक्टर का, सो कुछ अधिक पैसा दे कर उन्हे अनुकूल करने मे कोई कठिनाई नहीं हो सकती। पुलिस अनुकूल है ही, उसे कुछ और पैसा देना पड़ेगा ! वे नमिता नाम की किसी और ही स्त्री की उद्भावना कर सकते हैं ! आप तो बैरिस्टर रह चुके हैं, मैं नहीं मान सकता कि ये सम्भावनाएँ आप के ध्यान में न

होंगी। हत्या के समय नमिता की कहीं दूसरी जगह उपस्थिति प्रमाणित कर देने ही से काम चल जाएगा! फिर रहे हम और हमारा भविष्य! मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ, कि जो कुछ हो चुका है, वह उच्छृंखलता अब न होगी। आपकी सम्पत्ति का केवल साधनवत उपयोग किया जाएगा। मुझ मे शक्ति है, साहस है और विश्वास है कि जितना धन मुझको आपसे मिलेगा उससे कई अधिक गुना आपके खजाने मे जमा रहेगा। मेरा भविष्य मेरे हाथ मे है, पर नमिता का भविष्य आपके हाथ में है। आप उसे सुखी बना सकते हैं, आप उसे जहन्नुम के हवाले कर सकते हैं। यही समय है, जब कि आप एक इशारे से जो चाहे सम्पन्न कर सकते हैं।"

"नमिता यह सब कुछ जानती है ?"

"एक बात को छोड़ कर सब कुछ जानती है। केवल नहीं जानती कि उसको फँसाने के लिए मैं तत्पर हो सकता हूँ। मेरे ऊपर उसका अटूट विश्वास है, और यदि कभी उसे यह विश्वास खोना पडा तो उसका दायित्व आप पर होगा।"

"पर यह तो तुम जानते हो कि उसका यह विश्वास झूठा है ?"

"वह तो नहीं जानती। उसके प्रेम के लिए इतना ही तो पर्याप्त है।"

"और तुम्हारे प्रेम के लिए ?"

"मैं भी इस बात को समझता हूँ पापा! लेकिन कायर की मौत मरना नहीं चाहता। मैं जीना चाहता हूं, और केवल अपने लिए नहीं, अपितु उसके लिए जिसे मुझे अपना जीवन साथी बनाना पड़ेगा। यदि वह जीवन साथी नमिता कुमारी न हुई तो यह मेरे लिए कोई कम परिताप की बात न होगी। पर मैं अपनी ही प्रवृत्तियों का दास भी तो नहीं होना चाहता! प्रेम एक बहुत उत्तम गुण है, उससे जीवन जीने योग्य बनता है, तब भी प्रेम ही जीवन के लिए है, प्रेम के लिए जो जीवन को समझते हैं, वे मूर्ख हैं।"

"तो तुम्हारा मतलब है यह मूर्खता नमिता ही करेगी ?"

"नहीं, नमिता को यदि जीवन नष्ट करना पड़ा तो वह प्रेम के लिए नहीं। यदि आप मुझे कहने दें, तो कहूँगा कि वह होगा आपके बुर्जआपन के कारण।"

"बुर्जुआपन ?"

"और क्या कहूँ उसे ?—कहना चाहता था बौड़मपन, किन्तु उससे आज का समाज तत्व ग्रहण करने की अपेक्षा भड़कता ही अधिक है। आप ही कहिए मैं नमिता के उपयुक्त क्यों नहीं हूँ ?—रूप, गुण, शिक्षा, दीक्षा,—किसका अभाव है मुझमें ? फिर भी आप मुझको जो उपयुक्त नहीं समझते, वह क्या केवल इसीलिए नहीं, कि मैं सिंह की तरह जीवित रहना चाहता हूँ, गीदड़

की तरह नहीं ? इसे सिवा बौड़मपन के और क्या कहा जा सकता है ?"

सुमनबाबू अपनी जगह से पुनः उठ चुके थे, और कमरे में व्यस्त होकर इधर-उधर घूम रहे थे। चिन्ता की घनी रेखाएँ उनके मस्तक पर नए-नए खेल बना—बिगाड़ रही थी। निष्फल क्रोध में उनके ओंठ रह-रह कर काँप उठते थे, और हाथों की मुट्ठियाँ बँध-बँध कर अपने ही पड़ोसी से भिड़ कर लौट पड़ रही थीं। च्यवन ने कहा—

"आपको सोचने-विचारने के लिए शायद अवकाश की कमी नहीं है, किन्तु मुझे तो किसी दिशा को अभी स्वीकार करना है पापा !"

"क्या चाहते हो तुम ?"

मुस्करा कर च्यवन ने कहा : "आप ही चाह लीजिए न कुछ !—नमिता देवी को आप सुखी बनाना चाहते हैं, या उन्हें नष्ट कर देना ?"

"सुखी बना सकता हूँ या नहीं, कहना कठिन है पर जो उसका यह नाश निकटतर होता दिखाई दे रहा है, उसे जरूर दूर हटाने की चेष्टा करूँगा।—"

च्यवन ने उठ कर शीघ्र ही बाहर जाते हुए सुमनबाबू के पैर पकड़ लिए।

●

: २३ :

किन्तु, इसी बीच नदी का कितना ही पानी बह गया। कोर्ट को पक्के प्रमाण मिल गए कि हत्या के समय अभियुक्त निर्मलकुमार घटना स्थल पर विद्यमान नहीं थे। ग्रेट ईस्टर्न का रेकार्ड ही इसके लिए पर्याप्त था ; फिर सेठ रमणलाल के फर्म से उस दिन रात्रि को नौ बजे एक चेक दिया गया था, जिसको लेकर निर्मलकुमार ने पाने के हस्ताक्षर किए थे। चेक सेल्फ के नाम था। यदि अभियुक्त साढ़े आठ बजे से पहले दूकान पर पहुँच जाता तो उसे नगद रुपया मिल जाता, पर साढ़े आठ बजे उस दूकान मे खाता बन्द कर दिया जाता है। चेक भुनाया नहीं जा सका, क्योंकि उसके बाद ही रात्रि को उस हत्या के सिलसिले में निर्मलकुमार गिरफ्तार हो गया था। यह भी मालूम हुआ कि चेक बरामद नहीं हो सकता, क्योंकि अनावश्यक समझ कर अभियुक्त ने उसे फाड़ डाला था। चेक क्यों और कितने का था, इसकी कथा भी प्रगट हुई, जिसका मृत व्यक्ति डोरा की चिकित्सा से सम्बन्ध है। घटना यों तो बड़ी साफ है, पर एक मजेदार बात लोगों को और मालूम हुई, कि अभियुक्त के उस समय के इस कार्यक्रम में सेठ रमणलाल की इकलौती कन्या कल्पना कुमारी की बड़ी भूमिका है। धर्म-प्राण, शिक्षित और सम्माननीय इस लड़की का ऐसे उच्छृंखल, हत्याके अपराधी युवक से कैसे और क्या सम्बन्ध हो गए, यह लोगों की आलोचना का सहज ही उत्तम विषय बन गया।

लोगों की आलोचना जो हो, इतने प्रमाण मिलने पर निर्मलकुमार को कानूनन बन्दी गृह में नहीं रखा जा सकता था। प्रकृत हत्यारे को पा सकने की राह भी साफ हो गई दिखाई दी। अभियुक्त निर्मलकुमार के वकील ने

एक बड़ा महत्वपूर्ण पत्र उपस्थित किया, जो, कहा जाता है कि मृत व्यक्ति डोरा स्पर्जन ने किसी च्यवनकुमार को मरने के पूर्व लिखा था। उक्त पत्र से इस हत्या के रहस्य पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। पत्र रजिस्टर्ड पोस्ट द्वारा प्रेषित किया गया था, अतः उसके जाली होने मे भी कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। लिफाफे के तथा पत्र के हस्ताक्षर भी मिला लिए गए थे, और उन अक्षरों की जाँच भी कर ली गई थी।

हत्यारा कहीं भाग न जाए, इसलिए जल्दीकी गई। निर्मलकुमार प्रातःकाल छोड़े जाएँ, उसके पहले ही च्यवन प्रकाश कारागृह मे ठूँस दिए गए। च्यवन प्रकाश सुमनप्रकाश से छुट्टी लेकर आजादी और धन का सपना देखते-देखते ही सो गए थे, जब नींद खुली तो सिपाही सामने मौजूद थे, और हाथ मे उनके वारण्ट था। नमिता तब तक तो समझ भी न सकी कि उसने जिस पत्र को फटा हुआ या खोया हुआ समझ लिया था, वह सचमुच कल्पना के पास ही रह गया था, और उसने उस पत्र को प्रगट करने का साहस भी कर लिया था, अपनी बदनामी तथा माता-पिता की अप्रतिष्ठा की तनिक भी चिन्ता नहीं करते हुए! सब काम इतनी शीघ्रता से हुआ कि बेचारे अखबार वाले भी पूरे सम्बाद नहीं छाप सके, और तख्ता पलट गया।

निर्मलकुमार जब बाहर निकले, तो उनके वकील ने उनका अभिनन्दन किया। टैक्सी उनकी राह देख रही थी।

इधर राय बहादुर सुमन प्रकाश बैरिस्टर के घर मानो सूर्योदय हुआ ही नहीं सुमन प्रकाश प्रायः आठ बजे उठा करते हैं, जब कि सूर्योदय हो लेता है। च्यवन प्रकाश उससे भी बाद मे उठते हैं, जब कि बिस्तर पर ही उनकी चाय पहुँच जाती है। बस, फिर सीधा बाथरूम, शेविंग, बाथ, ब्रेक-फास्ट और कॉलेज। शाम की दिनचर्या प्रकाशित करने की अब कोई आवश्यकता नहीं रही। और नमिता, वह अवश्य छः बजे तक उठ जाती है, यदि रात्रि को उसे देर से न सोना पड़ा हो! रात्रि को वह काफी देर से सोई थी, क्योंकि उसे एकाएक ही बहुत व्यस्त हो जाना पड़ा था। वह विलियम से मिलने गई; उसका कोई पता नहीं लगा। डाक्टर की उसने तलाश की, ड्यूटी पर तब कोई दूसरा ही डॉक्टर था। घर का पता लगाया, वहाँ पर भी वह नहीं मिला। और इस तरह जब रात को निराश लौटना पड़ा, तो दूसरे दिन के कार्यक्रम को तै करने की चिन्ता मे तीन प्रहर रात्रि आँखों ही आँखों में बीत गई।

पर सात के बाद हरी की मा और राह न देख सकी, उसने नमिता को

जगा कर कह दिया कि रात को लगभग चार बजे पुलिस छोटे बाबू को गिर-फ्तार कर ले गई ! छोटे बाबू गिरफ्तार—

उन्हीं कपड़ों मे नमिता अपने पिता के कमरे में पहुँच गई। सुमनबाबू तब किसी स्वप्न का आनन्द उठा रहे थे। आँखें मसलते हुए जब उन्हें उठना पड़ा, तो सामने नमिता खड़ी थी। नमिता ने कहा :

"उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।"

"—किसे ?—"फिर एक क्षण रुक कर सुमनबाबू ने कहा : "क्या च्यवन को ?"

"हाँ !"

"पर—"सुमनबाबू आगे कुछ न कह सके। जो सामग्री अब तक उनके ज्ञान मे कानून को उपलब्ध थी, उसके आधार पर च्यवन को गिरफ्तार करना उचित न था, पर उनके ज्ञान के बाहर क्या हो सकता है, यह कौन जानता है ?

"कब ले गए उसे ?"

"मुझे नहीं मालूम ! हरी की मा कहती है चार बजे ले गए। उन्होंने हम लोगों में से किसी को जगाने से मना कर दिया था।"

"किन लोगों ने, पुलिस ने ?"

"नहीं; च्यवन ने।"

"तो कारण भी मालूम नहीं हो सकता। अखबार मे भी शायद अभी कुछ न होगा। देखा है अखबार तुमने ?"

नमिता दौड़ी गई, सारा समाचार पत्र टटोल डाला। चार बजे जिसका वितरण प्रारम्भ हो जाता है, उसे छापने के लिए चार बजे की घटना कहाँ से उपलब्ध होती !

बिना चाय पिए ही सुमन प्रकाश को बाहर जाना पड़ा। ड्राइवर न था, किन्तु शीघ्र ही नमिता तैयार हो गई। उसके मन की उथल-पुथल को स्वयम् सुमन प्रकाश न समझ सके। क्या वह व्यग्रता च्यवन के लिए है, या स्वयम् की रक्षा के लिए?—यदि च्यवन के लिए है तो अवश्य चिन्ता की बात है !

दिन भर की दौड़-धूप के पश्चात् सध्या को फिर पिता और पुत्री दोनों आमने-सामने बैठे हुए छत की कड़ियाँ गिन रहे थे। सुमनबाबू के मुँह पर चिन्ता की रेखाएँ घनी हो उठी थीं, थकावट की छाया ने उन्हें और भी गहरा कर दिया था, फिर भी निराशा का वह अन्धकार उस चेहरे पर नहीं था, जो नमिता के सुन्दर मुँह पर अधिकार जमा बैठा था। इसके साथ ही पराजय की ग्लानि भी उसके मुँह पर पढ़ी जा सकती थी !

सुमनबाबू ने कहा : "यद्यपि मैं प्रसन्न होना चाहता हूँ कि तुम केवल इसी

लिए च्यवन से चिपकी रहना चाहती हो कि हिन्दू-स्त्री जिसे वरण कर लेती है, उसे सदा के लिए वरण कर लेती है, बाद में वह चाहे जैसा ही प्रमाणित क्यों न हो, किन्तु नमिता, मैं इस बात से भी इतना ही सन्तुष्ट होता, प्रत्युत् अधिक ही, यदि तुम इस बार भी वही बात कह सकती जो निर्मल के अपने सम्बन्ध पर तुमने कही थी।''

नमिता नीचा मस्तक किए बैठी रही, बोली कुछ नहीं।

सुमनबाबू ने फिर कहा : "मैं तुम्हे निर्मल और च्यवन की तुलना करने के लिए नहीं कहूँगा। मैं समझ गया हूँ कि निर्मल शायद केवल तुम्हारी घृणा का या क्रोध का पात्र रह गया है! पर फिर भी तुम्हारे लिए योग्य लड़कों का अभाव नहीं है! तुम यदि स्वयम् तलाश न करना चाहो तो मैं—"

"पापा, इन बातों से अब कुछ लाभ नहीं है! आप निर्मलकुमार की बात मेरे सामने मत कीजिए। मेरे साथ उसकी केवल मित्रता थी, जैसी कि दो सहपाठियों मे हो सकती है। यदि लोगों ने और आप ने भी हमलोगों के बीच किसी भाव की कल्पना कर ली हो तो क्या यह भी मेरा ही दोष होगा? फिर भी, जो हो, वह अध्याय समाप्त हो चुका है। और रहा सवाल च्यवन कुमार का, सो—मैं इतनी आगे पहुँच गई हूँ, कि वहाँ से लौटना नहीं हो सकता।''

सुमनप्रकाश ने एक लम्बी साँस छोड़ी, और आँखें बन्द करके वे शायद भविष्य की खोज करने लग गए। फिर धीरे-धीरे बोलने लगे, मानो अपने ही आप से, पर नमिता सब कुछ सुन रही थी!

"कानून को मैंने कभी पदस्थ नहीं किया, यद्यपि उसे पदस्थ होते हुए मैंने एकाधिक बार देखा है। इस केस को भी यदि तटस्थ दृष्टि से देखना सम्भव हो, तो अपराधी के साथ न्याय की किसी प्रकार की सहानुभूति होने का कोई कारण नहीं है! इस रूप में मुकद्मा इतना साफ हो चुका है कि रक्षा का सूत्र कहाँ मिल सकेगा, यही नहीं दिखाई देता! समझ मे नहीं आता, क्या किया जाए?"

नमिता ने भी एक लम्बी साँस ली ; उसकी आँखों मे शायद गीलापन भी भर गया था। मानो अपना अन्तिम शस्त्र लेकर उसने पिता के दुर्बल-मोर्चे पर आघात किया, और बोली—

"तोभी एक बात तो सम्भव है।''

सुमनबाबू ने आँखें खोलीं, और प्रश्न सूचक दृष्टि को नमिता पर आरोपित कर दिया।

नमिता ने कहा : "पता नहीं, च्यवन अपराध के प्रतिविधान मे क्या

कहेगा, किन्तु यदि जो कुछ आपने कहा वही होना है तो नमिता भी हत्या का अपराध स्वीकार करने को स्वतत्र है। नमिता की स्वीकृति मे तो वह पत्र भी बाधा उपस्थित नहीं करेगा। मेरे पास वह हार भी मौजूद है, और उस छुरी का इतिहास भी मुझ से छिपा नहीं। च्यवन के अभाव मे मैं जीवित नहीं रह सकती।" — और वह अपने कमरे मे जाने के लिए उठ खड़ी हुई।

सुमनबाबू ने व्यंग से मुस्करा कर कहा : "पर च्यवन तुम्हारे अभाव मे खूब अच्छी तरह जीवित रह सकता है, यह भी तुम्हें जान लेना चाहिए।"

"अपने ही मन की बात जान लूँ, यही मेरे लिए काफी है।"

"सो भी तुम नहीं जानती नमिता—" पर नमिता तब दरवाजे के बाहर हो गई थी। जो कुछ उसके पिता ने कहा, वह सुन उसने अवश्य लिया। अपने कमरे मे जाकर वह पलंग पर औंधी गिर पड़ी।

प्रारम्भ ही से नमिता जानती थी कि सुमनप्रकाश च्यवन के अनुकूल नहीं हैं। निर्मलकुमार उनकी पसन्द का युवक था। शायद उसके निष्कासन का कारण होने से ही च्यवन उनका विश्वास खो बैठा! इसीलिए च्यवन की इस दुर्दशा से उन्हें आन्तरिक पीड़ा नहीं हुई। किन्तु अपनी कन्या भी उनके लिए कम महत्व की वस्तु नहीं थी। उसको उन्होंने समस्त विधि-निषेधों से मुक्त रक्खा है, वह अपनी इच्छानुकूल ही आचरण करती आई है। अच्छे-बुरे के लिए यदि कोई जिम्मेदार है तो वह स्वयम्!

पर क्या सचमुच नमिता च्यवन के लिए प्राण दे देगी? च्यवन उसे पसन्द है, एक तो वह उसीका निर्माण है, दूसरे उसके हाथों मे खेल कर भी उससे जिस तरह चाहे खेला जा सकता है। उसमे विशेषता नहीं है, माना, पर अभाव ही क्या हैं? देखने-सुनने मे बुरा नहीं, लिखने-पढ़ने मे बुरा नहीं; और उसकी उतावली तथा क्षिप्रता? वही तो उसके यौवन का प्रमाण है!—वह कष्ट देती है, पर उस कष्ट के बिना आनन्द का मूल्य ही क्या है? सँकरे मार्ग में यदि नदी न बहे तो गति में तेज कहाँ से आएगा?—पत्थरों से यदि वह न टकराए तो उसमें संगीत कहाँ से हो? ऊँचाइयों से खेल कर न गिरे तो प्रपात की भयानक सौन्दर्य-राशि कहाँ से प्राप्त हो?

और निर्मल?—तुलना से लाभ ही क्या है?—वह अब क्या प्राप्य हो सकता है?—और जिससे बदला लेना चाहा, क्या उसीको वह समर्पण कर सकेगी? बदला—नहीं, प्राण चले जाएँ, किन्तु नमिता पराजय नहीं मानना चाहती, चाहे वह कल्पना के सम्मुख हो, या निर्मल के सम्मुख! वह निमल के सिवा नफरत के और कुछ नहीं करती, कुछ नहीं करती। निर्मल महान है तो हुआ करे, समुद्र है तो हुआ करे, हिमालय है तो हुआ करे, वह उसकी

पृष्ठ-भूमि में क्षुद्र होना नहीं चाहती, न समुद्र मे उसे डूबना है, न हिमालय की चोटी पर से उसे कूदना ! उसका च्यवन ही उसे वह सब कुछ बना सकता है, जो वह बनना चाहती है। उसे महान नहीं, क्षुद्र चाहिए, जिसे उठा कर वह स्वयम् महान बन सके, वह समुद्र मे निर्जन द्वीप चाहती है, जिस पर अपना झंडा गाड़ कर राज्य कर सके, उसे चढ़ने के लिए पहाड़ की जान लेवा ऊँचाई नहीं, घोड़े की पीठ चाहिए जिस पर चढ़ कर वह सर-पट भाग सके !

—और उसे स्मरण हो आया कि वह च्यवन से एक बार मातृत्व का प्रसाद भी पा चुकी है, एक लोक-दिखावे की प्रथा का अभाव न होता तो वह वरदान मूर्त्त हो चुका होता, यदि नमिता यों नहीं कहना चाहती कि निर्मल पर चढ़ाने के लिए उसके पुष्प की पवित्रता नष्ट हो चुकी है, तो यह तो वह कह ही सकती है कि जिस कुसुम को उसने धूल मे फेंक दिया, उसे पुनः उठा कर मस्तक पर नहीं रखेगी, वह चाहे जितना ही सुन्दर क्यों न हो !

पीठ पर किसी के हाथका स्पर्श पाकर सह चौंक उठी और बोली: "कौन ?"

पर उठ कर देखा तो उसके पिता सुमनप्रकाश थे। वह उठ कर बैठ गई। सुमनबाबू भी उसके पास ही बैठ गए। नमिता की वितृष्ण दृष्टि बूढ़े के हृदय में घाव कर गई। उसकी रूक्ष बिखरी केश-राशि पर अपने शीर्ण करतल को अरोपित कर सुमनप्रकाश ने कहा :

"जो कुछ तू चाहती है नमिता, उसमे बाधा नहीं दूँगा। अब तक अपनी इच्छाओं की बागडोर जब तू खुद सम्हालती आई है, तो आज मैं अपनी इच्छा को तुझ पर नहीं थोपूँगा, उससे यदि मेरे हृदय को ठेस भी पहुँचेगी तो वह उससे अधिक असह्य न होगी।"

नमिता ने वृद्ध के वक्ष मे अपना मुँह छिपा लिया मानो कहना चाहती थी कि अपने पिता की इच्छा को अमान्य करने मे क्या उसका हृदय चोट अनुभव नहीं करता ?—किन्तु वह निरुपाय है, और यदि उसकी निरुपायिता को उसके पिता ही नहीं समझेंगे तो और कौन समझेगा ?

सुमनप्रकाश ने कहा : "चेष्टा करूँगा कि च्यवन प्रकाश मौत के मुँह से लौट आए।—पर मनुष्य चेष्टा ही तो कर सकता है !—मैं चेष्टा करूँगा, भरसक चेष्टा करूँगा। पर यदि तुम इस तरह निराश हो उठोगी, तो मेरे साहस को सहारा नहीं मिल सकता !—मुझे भी सहारा चाहिए नमिता।"

किन्तु नमिता ने केवल अपने हाथों से सुमनप्रकाश के कन्धों को अधिक दृढ़ता से पकड़ लिया, और उसका मुँह मानो सीधे उनके हृदय ही से बातचीत करने के लिए उत्सुक हो उठा।

सुमनबाबू ने कहा : "क्या तुम डोरा के पत्र की बात बिलकुल ही भूल चुकी थी ?"

नमिता ने महसूस किया कि पिताजी अब काम की बात कर रहे हैं, वह एक बैरिस्टर के सामने है। उसने पिता के कन्धों को छोड़ दिया, और बोली, "भूली तो नहीं थी, पर मेरा अनुमान था कि वह पत्र मैंने कहीं नष्ट कर दिया था। जिस दिन उसे कल्पना को बतलाया गया था, उस दिन वह इतना महत्वपूर्ण था भी नहीं। यही कैसे जान सकती थी कि च्यवन ही तब क्या करने की सोच चुके थे ?"

"हूँ !—उस पत्र में लिखी एक बात की ओर तुमने ध्यान दिया है ?"

"क्या ?"

"कि डोरा गर्भवती थी !"

"हाँ, पत्र मे लिखा तो था। बल्कि यही तो उसका ट्रम्पकार्ड था जो वह च्यवन के विरोध मे प्रयोग करना चाहती थी।"

"किन्तु, पोस्ट मार्टम की रिपोर्ट में यह कहीं नहीं पाया गया कि वह गर्भवती थी। डाक्टर की रिपोर्ट मैं सरसरी निगाह से देख चुका हूँ, पर जहाँ तक मेरा खयाल है, यह बात सही है।"

"डॉक्टर की पोस्ट मार्टम रिपोर्ट को मैंने नहीं देखा, किन्तु यदि यह न भी हो तो ?"

"अभी कुछ कहा नहीं जा सकता।—बात सिर्फ इतनी ही होगी कि डोरा ने च्यवन को विवश करने के लिए एक मिथ्या का आश्रय लिया था, और इस मिथ्या ने ही च्यवन को इस हत्या के लिए प्रेरित किया।"

किंचित उत्साह से नमिता ने कहा : "यह बात तो बिलकुल ठीक है पापा !—किन्तु इससे " —और आगे वह क्या कहे, खुद समझ न सकी।

सुमनबाबू ने कहा : "इससे होता तो कुछ नहीं, किन्तु कानून केवल कार्य ही को नहीं देखता, उसे उसके कारण को भी देखना पड़ता है ! हत्या अवश्य हुई, किन्तु इसके पीछे मोटिव्ह, उद्देश्य क्या था, अगर यह कानून न देखे, तो वह कभी पूर्ण नहीं कहा जा सकता।"

"तब तो कानून को यह अवश्य ही देखना चाहिए कि हत्या करने को च्यवन क्यों मजबूर हुए थे !—और जब अदालत को यह मालूम हो जाए कि मकतूला ने एक मिथ्या कलक इस सच्चरित्र युवक पर लगाना चाहा था, जिससे कुपित होकर उसने यह कार्य कर डाला तो—"

"इतना शीघ्र निष्कर्ष न निकालो बिटिया ! मिथ्या कलंक और सच्चरित्र युवक इतनी सरलता से प्रमाणित नहीं किए जा सकते, जितना तुम सोचती

हो। प्रकृतवादी इस प्रकरण मे मर चुका हो, पर सरकार इस मुकदमे की पैरवी कर रही है, और केवल मेरे कहने से अदालत यह नहीं मान लेगी कि कलंक मिथ्या था, और च्यवनप्रकाश सच्चरित्र हैं।"

"पर क्यों नहीं ?—प्रत्येक व्यक्ति स्वभावतः तो सच्चरित्र ही मानाजाता है।"

सुमनबाबू ने हँस कर कहा : "यह तो तुम जानती हो कि पत्र मे एक हारकी बात का भी उल्लेख है, जो च्यवन ने डोरा को दिया था। मैंने मुकदमे से सम्बन्धित सभी कागज देखे हैं। च्यवन का डोरा के साथ सम्बन्ध था, उसे एक हार भी च्यवन से मिला था, यह सब नृत्यशाला की अन्य अध्यापिकाओं से प्रमाणित हो चुका है। उन लोगों ने उस हार को देखा भी था, उस पर कहीं 'एन' लिखा हुआ था, यह भी वे जानती हैं, और यह भी कि मूलतः वह हार नमिता कुमारी का था जो उसे उसके पिता ने दिया था। इतना जान लेने के बाद तो तुम सोच सकती हो, उस जौहरी का भी पता लगाया जा सकता है, जहाँ वह हार बना था और फिर मैं और तुम या तो उस हार को बताने के लिए विवश हो जाएँगे या यह स्वीकार करने के लिए कि वह खो गया है।—दोनों ही विकल्प च्यवन के प्रतिकूल ही पड़ेंगे।"

नमिता का मुँह फिर उतर गया। वह कुछ बोली नहीं, केवल पिता की ओर देखती रही। कुछ देर तक सोचते-से रह कर किंचित मुस्कुराते हुए हुए सुमनप्रकाश बोले :

"कानून स्वयम् ही सत्य को विकृत करता देखा गया है, यद्यपि अपने स्वरूप की रक्षा के लिए सत्य को शायद कानून ही के निकट उपयाचित होना चाहिए।—पर मैं भूल जाता हूँ कि यह युग मनुष्य का है, सत्य का नहीं !—सम्भवतः इसे भूल कर इस प्रकरण मे आगे बढ़ भी नहीं सकता, इसलिए स्नेह की खातिर अब मुझे अपना दृष्टिकोण भी बदल देना पड़ेगा।—कानून ही कहाँ तक इस प्रकरण में सत्य को विद्रूप कर सकता है, यह तो देखना ही पड़ेगा, पर अभी तो, दिखाई देता है, स्वयम् मिथ्या की भी सृष्टि करना पड़ेगी।"

"वह क्या ?"

"यह तो मान कर चलना पड़ेगा कि च्यवन का डोरा के साथ सम्बन्ध था—"

"च्यवन को यह स्वीकार करना पड़ेगा ?"

"यही नहीं, हत्या भी उसे स्वीकार करना पड़ेगी। इसके सिवा चारा जो नहीं है। यह ठीक है, कि इन स्वीकृतियों से उसका सामाजिक मूल्य बहुत घट जाएगा। पर जीवन के बड़े भारी लाभ की तुलना में यह घाटा कोई बहुत बड़ा नहीं है।"

नमिता पिता के व्यंग्य को समझ गई, किन्तु बोली कुछ नहीं।

सुमनबाबू ने कहना जारी रखा : "च्यवनबाबू को कहना चाहिए कि डोरा के गर्भ की बात उनके लिए इतनी अप्रत्याशित थी कि वह एकदम से डोरा के दाक्षिण्य को शंका की दृष्टि से सोचे बिना रह न सके। इस आघात की तीव्रता तब और भी सरलता से समझी जा सकती है, जब कि वे डोरा से सचमुच विवाह करना चाहते थे। विवाह के लिए वे केवल उसके स्वस्थ होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे दरिद्र हैं, यह बात डोरा भली भाँति जानती थी, पर वह चाहती थी कि वैध या अवैध तरीके से वह नमिता के यहाँ रहने का लाभ उठाएँ, और इसके लिए जिस क्षुद्रतापूर्ण बहाने का उसने आश्रय लिया उससे च्यवन के दिल को बहुत आघात पहुँचा! इसी तरह का कुछ बयान देना होगा, जो उस पत्र की प्रत्येक बात से मेल खा सके।"

"किन्तु उस पत्र मे हमारे विवाह के बारे मे जो सकेत है।"

"हूँ ?—इससे हमारे चुनाव की क्षुद्रता पर प्रकाश पड़ेगा!—और इसके बाद भी जब तुम्हारा उसके साथ विवाह होकर रहेगा, तो सचमुच दुनिया की दृष्टि मे हम बहुत गिर जाएँगे।" एक लम्बी साँस लेकर सुमनप्रकाश ने कहा : "इसके सिवा चारा क्या है!—जिस कहानी को च्यवन की रक्षा का आधार बनाना है, उसका परिष्कार तो बहुत कुछ करना होगा, और साफ है कि इतने मात्र से ही सब कुछ सिद्ध हो जाएगा, ऐसी आशा नहीं की जा सकती। जिस पर मुझे निर्भर करना है, वह है अर्थ के प्रभाव की परीक्षा! और तो केवल आधार हैं, जिससे बचाव के सम्भव तरीकों की खोज की जाएगी!"

—और एक बार और उनके अलक्ष्य मे एक लम्बी साँस निर्गत हो गई।

नमिता ने कहा :"क्या आप मेरे लिए सचमुच इतनी ग्लानि सहन करेंगे ?"

सुमनप्रकाश ने कन्या के चेहरे पर दृष्टि डाली : "वह ग्लानि मेरी और तुम्हारी दोनों की होगी। समाज की मैं चिन्ता नहीं करता। समाज अर्थ की ओर देखता है, और अर्थ मे इतनी चमक होती है, कि उससे आस-पास के अँधेरे गढ़े छिप जाते हैं! चन्द्रमा के पूर्ण प्रकाशित स्तर पर उसके मुर्दा समुद्रों को देखना हमारी आँख के लिए सम्भव नहीं है! मैं केवल आन्तरिक ग्लानि की बात कर रहा हूँ। पर मुझे यह भूल जाना होगा कि मैं प्राचीन युग की धरोहर हूँ! अच्छा, यह तो हो जाएगा, इसमें मुझे अधिक निराशा नहीं है। अब मुझे सोचना है, तुम्हारे बयान के सम्बन्ध मे। तुम्हे भी कुछ भी तो कहना ही होगा।—कुछ सोच सकती हो कि निर्मल के सम्बन्ध मे

दिए गए तुम्हारे प्राचीन वक्तव्य की क्या सम्मति थी ?"

"मैं कुछ नहीं सोच पाती पापा !"

"निर्मलकुमार के बारे मे जो कुछ कहा जा चुका है—"

"उसके बारे में भी कुछ कहना पड़ेगा ?—जरूरत है क्या उसकी पापा ?"

"जरूरत तो कुछ दिखाई नहीं देती !—जो कुछ तुमने कहा, वह निर्मल ही के प्रकरण से सम्बन्ध रखता है। कहना है एक तो इस सम्बन्ध मे कि तुम उस संध्या को वहाँ पर क्यों गई थी! यदि च्यवन ने सब कुछ स्वीकार कर लिया तो यह प्रश्न ही अप्रासंगिक हो उठता है, तब तुम्हें कुछ नहीं कहना पड़ेगा, किन्तु यदि च्यवन प्रकाश हत्या स्वीकार न करे तो ?"

"यदि आप उन्हे विश्वास दिला देंगे तो वे जरूर मान जाएँगे।"

सुमनप्रकाश ने किंचित हँस कर कहा : "मेरे विश्वास पर निर्भर रहने वाला व्यक्ति च्यवन नहीं रह गया, यह तुम चाहे न जानों, पर मैं जानता हूँ। पर इससे कोई शंका नहीं। मेरे ऊपर विश्वास करने के सिवा उसके पास और कोई चारा नहीं है, यदि तुम मेरे दल मे मिल जाओ।"

"आपके दल मे—यानी !"

"मैं च्यवन को छोड़ देने के लिए तुम्हे नहीं कहूँगा। केवल यही कहूँगा कि तुम्हें मेरा विश्वास कर लेना चाहिए। तब तुम जैसा बयान दोगी, वह मेरे कहे अनुसार होगा, और च्यवन को अपनी ओर से तुम्हे मेरे बताए हुए बयान की सार्थकता बता देनी होगी। यदि वह मेरी बात मान लेता है तो मैं उसका केस लड़ूँगा, और यदि नहीं मानता, तो मेरे किए क्या हो सकता है।"

"मैं उनसे कहूँगी पापा।—किन्तु—"

सुमनबाबू ने फिर मुस्करा कर कहा : "बाप के ऊपर विश्वास करने को जी नहीं चाहता ?" सुमनप्रकाश उठ खड़े हुए बोले : "तो फिर नमिता, शायद तुम अपने ही ऊपर विश्वास करना न चाहो। पर मुझे इसके सिवा गति नहीं दीखती।" और जब वे चल देने को उद्यत हो गए तो उठ कर नमिता ने उनके पैर पकड़ लिए।

उसे उठाते हुए सुमनप्रकाश ने कहा : "घबराने से काम नहीं चलेगा, काम चलेगा साहस रखने से और आशा बनाए रखने से। मेरी सम्पत्ति, मेरा धर्म, मेरा जीवन, मेरा सुख सभी कुछ तुम हो नमिता, और तुम्हारे लिए ये सब कुछ दाँव पर हैं।"

●

: २४ :

ग्रेट ईस्टर्न का ३८ नम्बर का कमरा तब भी श्री निर्मलकुमार के नामसे आरक्षित था। अतः मुक्त होते ही निर्मलकुमार के वकीलने उनको यहीं परला टिकाया। अभिनन्दन-प्रत्याभिनन्दन-धन्यवाद और चाय-पान आदि औपचारिक बातों के बाद वकील महाशय ने निर्मलकुमार से अवकाश लिया, ताकि निर्मलकुमार जेल के परिश्रम और क्लेद के उपरान्त विश्राम कर सकें। उनको भी बहुत व्यस्तता थी। मुकदमे का केवल एक अध्याय निपटा था, अभी-अभी दूसरा आरम्भ हुआ है ; यदि च्यवनकुमार ने स्वयम् कोई वकील नहीं किया तो यह भार भी उन्हींको उठाना पड़ सकता है, किन्तु इसकी आशंका नहीं है। उनकी पीठ पर बैरिस्टर सुमन प्रकाश हैं ही। यद्यपि उन्होंने प्रेक्टिस छोड़ दी है, किन्तु यह घरका मामला जो ठहरा।

इसी बीच वकील साहब के जाते-न-जाते कल्पनाकुमारी दौड़ी चली आई। आँधी की तरह, कमरे मे घुस कर उसने कहा : "अभिनन्दन!"

निर्मल ने देखा, अधरों पर मुस्कान, आँखों मे आँसू, ललाट पर पसीना- उठ कर उसने कहा : "अभिनन्दन की पात्री तो तुम हो। तुम्हारी ही कृपा का तो फल है। पर इतनी व्यग्रता—"

"क्षमा कर देना होगा कि तुम्हारा स्वागत करने मे इतनी देर हो गई। माताजी कहीं जाना चाहती थीं, इसलिए उनकी अनुपस्थिति की राह देखनी पड़ी।"—और आगे बढ़ कर उसने निर्मल के पैर छू लिए!

"हैं हैं हैं!—यह क्या करती हो कल्पना!"—और उसने झुक कर कल्पना को ऊपर उठाया। कल्पना की आँखों में तब भी आँसू थे। निर्मलने

कहा : "छिः छिः रोती हो ?—यदि यह प्रसन्नता का अवसर है, तो तुम्हे खुश होना चाहिए कि रोना ?"

"क्या करूँ, यह आँसू तो रुकते ही नहीं।"—और मानो यह आघात पाकर उसके आँसू और भी तेज हो गए।

"तो बह लेने दो इनको। पर इन मोतियों को इस तरह व्यर्थ बह जाने देना क्या उत्तम होगा ?—मेरे पास तो कोई वैसा रूमाल भी नहीं है, यदि अपने ही रूमाल मे बटोर कर, और कोई न सही, मुझ गरीब ही को दे दोगी, तो मेरा दारिद्रय कट जाएगा।"—और वह अपनी कुर्सी पर बैठ गया।

कुछ समय तक दोनों ही मौन रहे। कहने के लिए विषय खोज रहे थे या शब्द, कहना कठिन है, किन्तु जब निर्मल ने बातचीत शुरू की, तो कल्पना प्रकृतिस्थ हो चुकी थी।

निर्मलने कहा : "स्मरण है ? इसी कमरे मे तुमने कहा था कि तुम्हारी मुझसे भेंट गुप्त रहे। इतनी जल्दी यहाँ आकर तुमने एक बड़े संकट को अपने मस्तक पर ले लिया है। मैं अब तक की साधना के बल पर दुनिया के लिए एक कौतुक की वस्तु बन चुका हूँ। एक तो तुमने मुझे यहाँ पकड़ मँगवाया, दूसरे खुद ही इतना जल्दी आ टपकी। अब यदि तुम्हारी यह भेंट गुप्त न रह सके तो ?"

"वैसी कोई पाबन्दी अब तुम्हारे लिए नहीं है।"

"ओह, धन्यवाद। पर इतने ही से तो मेरा दायित्व कम नहीं हो जाता।"

"तुम मुझे भगा देना चाहते हो, पर इतनी सरलता से अब तुम्हे मुक्ति नहीं मिलने की।"

"सो तो समझता हूँ ! मुक्ति की मुझे चिन्ता नहीं होनी चाहिए, कम-से कम मेरी मुक्तिके लिए तो नहीं। पर, माताजी चाहे अभी घर पर न हों तो भी लौट कर जब तुम्हे घर पर न पाएँ तो ?"

"तो कोई चिन्ता नहीं। मेरे चाचाजी सारी बात जान गए हैं, वही जिनसे तुमने चेक लिया था। यदि आवश्यक हुआ तो आज ही माताजी को सारी बात मालूम हो जाएगी।"

"सारी बात, यानी ?"

"कि आज से मैं तुम्हारा भार ले रही हूँ ताकि तुम्हारे भरोसे मैं अपने जीवन मे निश्चिन्त हो सकूँ।"

निर्मलने मुँह उठा कर देखा, कल्पना की दृष्टि नत थी। जो कुछ उसने कहा उसके लिए उसे प्रयत्न करना पड़ा था।

निर्मलने कहा : "क्या तुम मजाक कर रही हो ?"

"जीवन में इससे अधिक गम्भीर होकर मैंने कभी कोई बात नहीं की।"

निर्मलकुमार ने कुर्सी को और पास खींच लिया! धीरे-धीरे मानो शब्दों को पकड़-पकड़ कर वे कहने लगे :

"शायद इससे अधिक सुख का क्षण भी मेरे जीवन में कभी नहीं आया, यह तुम जानती हो कल्पना! किन्तु काश, इस क्षण को मैं पकड़े रह सकता। मैं अपने लिए नहीं कहता। अपने बारे मे तो मैंने सोचना ही छोड़ दिया है। मैं अपना जीवन जी ही कहाँ रहा हूँ? एक बार नहीं, दो-दो बार तुमसे जीवन पाया है। यह तुम्हारी ही वस्तु है, और इसीलिए तुम्हारे बारे में ही सोचना मेरा परम कर्तव्य है।"

"कर्त्तव्य ही नहीं, मैं कहती हूँ, यह तुम्हारा अधिकार भी हो जाए।"

मानो अपनी दृष्टि को साफ करते हुए निर्मल ने कहा : "कर्त्तव्य और अधिकार एक हो जाते हैं, तो उसे करने में और भी अधिक बल मिलता है। तुम मुझे सुखके लिए पाना चाहती हो, पर देखता हूँ कि तुम्हारे लिए मैं दुःख का ही उद्गम हो सकता हूँ! मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ कल्पना!—तुम्हे चाहे यह बात न दिखाई दे, पर मुझे खूब अच्छी तरह दिखाई देती है। समाज में, कुटुम्ब मे, तुम्हारी जो स्थिति है, वह ऐसी तो नहीं है कि भुलाई जा सके। मैं अभावों से घिरा हुआ एक पदस्थ व्यक्ति हूँ! बन्धु-बान्धवों से हीन, कौलीन्य तक का सहारा मुझे नहीं है। समाज ने मेरी खूब परीक्षा ले ली है, और प्रमाणित कर दिया है कि सामाजिक मूल्यों के लिए मैं कितना निकम्मा हूँ।"

"किन्तु इस परीक्षा में समाज ही की पोप लीला क्या प्रकट नहीं होती? मैं ऐसे समाज से विद्रोह करूँगी।"

"पर क्यों? समाज की बुराइयों से विद्रोह करना उत्तम है किन्तु यदि स्वार्थ की सीमाएँ उस विद्रोह को घेर लें, तो वह भी एक बदनामी का कारण बन जाता है। उसमे त्याग नहीं, प्रत्युत् भोग जो है!"

कल्पना ने मुँह उठा कर निर्मल की ओर देखा, उसकी आँखों में वाष्प छाई हुई थी, आँखें चार होते ही उनका बरसना अनिवार्य होगा!

निर्मल ने निगाह नीची कर ली। उसके हृदय को बड़ी ठेस पहुँची, एक लम्बी साँस-सी लेकर उसने कहा : "अपने बारे मे भी सोचता हूँ, यद्यपि सोचने का कोई अधिकार हो ऐसा दीखता नहीं। पर मनुष्य का जीवन विचित्र वस्तु जो है! और अनासक्त होकर यदि वह जीवन की गहराइयों मे से अछूता निकल सकता, तो शायद हम उसे स्पष्टतः पत्थर ही की संज्ञा देते! मैं अपने जीवन मे दो ही तो बातें चाहता हूँ! जिस अर्थ के अभाव ने मेरे जीवन के साथ खिलवाड़ किया है, मैं देखना चाहता हूँ कि उसका

प्रभाव इस युग में नष्ट किया जा सकता है या नहीं !—दूसरे, जब तक इसका प्रभाव नष्ट नहीं किया जा सकता, तब तक चाहता हूँ कि जीवन की नई पौध इस अभाव से ग्रस्त न हो। यह भी जानता हूँ कि यह काम कोई एकाध जीवन-अवधि का नहीं, प्रत्युत् कई जीवन-अवधियों का है ! फिर भी यदि मेरे ही भाग्य मे नींव का पत्थर होने का यश या विडम्बना होना बदी हो तो मैं ही क्या कर सकता हूँ।—पर यह तो कर ही सकता हूँ कि तुम्हारे जीवन के प्रकृत विस्तार को अपनी ओर से मैं कोई बाधा नहीं पहुँचने दूँ !"

"पर तुम अकेले ही क्या कर सकोगे ? जो कुछ करना चाहते हो, वह क्या एक आदमी के बस का है ?"

"नहीं है ! इसके लिए एक विराट् अग्नि की आवश्यकता है, और उस अग्नि को प्रज्वलित करने के लिए राशि-राशि समिधा की आवश्यकता होगी। इस परिवर्त्तन को—काया-पलट को सम्पन्न करने के लिए एक क्रान्ति की आवश्यकता होती है, यह मैं समझता हूँ। मैं अपने आपको इसी निमित्त समर्पण करना चाहता हूँ !"

"तुम्हारे इस समर्पण मे क्या मैं बाधा बनूँगी ?"

"सो तो मैंने कभी नही कहा। किन्तु वह जीवन तो कष्ट का जीवन होगा, जानते-बूझते मैं कैसे तुम्हे उस निपट अन्धकार मे घसीटूँ ? फिर सुख और समृद्धि मे पलने का जिसे वरदान प्राप्त हुआ हो—"

निर्मलकुमार का कथन एकाएक रुक गया, किसी ने एकाएक ही जाली के किवाड़ों को थपथपाया।

निर्मल ने कहा : "यस, कौन है ?"

और परदा हटा कर जिन महाशय ने भीतर प्रवेश किया उससे कल्पना और निर्मल दोनों ही चौंक पड़े। कल्पना ने उठ कर कहा : "चाचाजी, आप ?"

"हाँ मैं हूँ कल्पना, जल्दी करो तुम्हारी मा आई हुई हैं। जाने क्यों निर्मलकुमार से मिलना चाहती हैं। मैं जानता था इसलिए उन्हें गाड़ी ही में छोड़ कर तुम्हें सूचना देने आ गया हूँ !—"

कल्पना ने एक क्षणांश के लिए निर्मलकुमार के ऊपर दृष्टि डाली और कहा : "तो आ जाने दीजिए न चाचाजी !"

"किन्तु उन्हें यह नहीं मालूम होने दिया गया है कि तुम यहाँ पर हो।"

"मालूम तो आगे-पीछे होना ही है—"

निर्मलकुमार ने कहा : "पर क्या आवश्यक है कि उचित समय से पहले ही उन्हें सब बातें मालूम हों ?"

"फिर कर ही क्या सकती हूँ मैं ?"

"बाथ रूम में बैठ सकोगी ? यह भी तो नहीं मालूम कि उनको मुझ से मिलने की क्या जरूरत आ पड़ी। मैं पहले तो कभी उनसे मिला नहीं हूँ।"

चाचा जी ने कहा : "निर्मलकुमार की बात मान लेने मे बुद्धिमानी है ! कल्पना ! तुम बाथरूम मे चली जाओ, इसमे कुछ बिगड़ेगा नहीं !"

"पर माताजी को खबर कैसे लगी ?"

"ओह, शायद भाभी गई थीं जेल पर निर्मल से मिलने। क्यों गई थीं, सो भी जानना चाहती हो ? तुम्हारी सखी नमिता ने सुझाया था कि निर्मल से मिल कर तुम्हारे भविष्य की बात की जाए तो शायद ये ही तुम्हारे मार्ग से हट जाएँ। जेल पर पता लगा कि निर्मल को मुक्ति मिल गई है, और वे इस होटल मे ठहरे हुए हैं। जेल से इन्हें मुक्ति मिल गई, इसलिए और भी शीघ्रता से निर्मल से मिलना उनके लिए जरूरी हो गया है। समझी तो ?—अच्छा, तुम बाथरूम मे बैठो मैं—"

एक क्षण के लिए कल्पना ने निर्मल के मुँह की ओर देखा, निर्मल के ऊपर से मानो कुछ बोझ हट गया था। कल्पना ने कहा : "नहीं चाचाजी, मैं यहीं बैठी हूँ, आप माताजी को ले आइए!"

चाचाजी दुविधा मे पडे मालूम दिए। निर्मल ने कहा : "बचपन नहीं करते कल्पना ! माताजी क्या कहती हैं, यह तो सुन लेने दो ! भीतर बैठ कर तुम भी सुन सब कुछ सकोगी, और तुम्हें बाहर आने से तब तो कोई रोक नहीं सकेगा ! आप चलिए चाचाजी, हम दोनों जा कर उन्हें लिवा लाते हैं।"—और कल्पना को सोचती हुई छोड़ कर दोनों कमरे से बाहर निकल गए। एक लम्बी साँस लेकर कल्पना उनके आने की राह देखने लगी। उसका हृदय उछल रहा था। ठीक जब उसे पदचाप सुनाई दी, तो एक कुर्सी लेकर वह बाथरूम मे प्रविष्ट हो गई !

कल्पना की मा एक प्रौढ़ महिला थीं। नाटा कद, भरा हुआ बदन, साँवला रग—देह काफी स्वस्थ, किन्तु मस्तक के बाल सफेद होने जा रहे थे ! आँखों पर सुनहरा चश्मा, जिसके भीतर से झाँकती हुई आँखों मे नारी की सहज शालीनता छाई हुई थी। माथे पर चौड़ी बिंदिया, नाक भरे हुए चेहरे के मुकाबले में पतली, कुछ-कुछ सूखे-से ओंठ, मुख पर क्षिप्रता का भार, कुलीनता की द्योतक धीर-मन्थर गति, हाथों मे केवल दो-दो जड़ाऊ की चूड़ियाँ, गले में सोने का एक सादा किन्तु कीमती हार, देख कर एक सहज आकर्षण उत्पन्न होता था !

निर्मल ने आगे बढ़ कर जाली के किवाड़ खोल दिए। पहले माताजी फिर चाचाजी और किवाड़ अटकाता हुआ निर्मल, तीनों ने कमरे मे प्रवेश किया !

"माताजी, हुकुम पहुँचा दिया होता,तो खुद खिदमत मे पहुँच गया होता! पहले तो कभी आपके दर्शन करने का सौभाग्य ही नहीं मिला।—और आज—अभी कुछ ही देर हुई है, मैं जेल से छूटकर आया हूँ।"

चाचाजी ने कहा : "मिलने तो हम तुम से जेल पर ही गए थे। वहीं पता लगा कि तुम छूट कर यहाँ आ गए हो।"

"क्या आज्ञा है मेरे लिए माताजी?"

माताजी ने एक बार कमरे के चारों ओर देखा, फिर चाचाजी की ओर जाकर एक क्षण भर के लिए उनकी दृष्टि अटक गई। स्पष्ट था कि मामले को जितना सरल उन्होंने समझा था, उतना सरल नहीं था!

"बैठ जाओ बेटा, खड़े क्यों हो?—जल्दी तो नहीं है न तुम्हे?"

मुस्कराकर निर्मल एक कुर्सी पर बैठते हुए बोला : "मुझे क्या जल्दी है माताजी! अभी तो अपने डेरे पर ही हूँ! खयाल तो मैं आप ही की असुविधा का कर रहा था!"

"जेल से तुम छूट आए, यह बड़ी खुशी की बात है। मैंने सुना, तुम्हारे मा नहीं हैं। होती तो बहुत ही खुश होती! किस मा को अपने बेटे के सुख से सुख नहीं होता?"

"मा मेरे नही है! पर आप जैसी माताओं के होने से वह अभाव भी नहीं खटकता। मेरे जेल से छूट कर आते ही जो आपने यहाँ आकर मुझे आशीर्वाद दे दिया, वह क्या मा के आशीर्वाद से कम है? और बिना यह जाने हुए कि क्या अपराध था, क्यों जेल जाना पड़ा, कैसे जेल से मुक्ति हुई!—सिवा मा के ऐसी प्रीति और मिलती ही कहाँ है माताजी?"

माताजी ने चश्मे की ओट से निर्मलकुमार की ओर देखा। कितना अच्छा बोलता है!—बेटा हो तो ऐसा! प्यार करने को जी चाहता है! देखने-सुनने मे भी सुन्दर है। किन्तु—निर्मल ने भी दृष्टि उठा कर तभी माताजी की ओर देखा। देखा कि वे कुछ कहना चाहती हैं, पर कह नहीं पा रही हैं। तो वही बोला, पर अब की बार चाचाजी को सम्बोधन करके :

"आपने जो कष्ट किया, वह मेरा सौभाग्य है। जेल से चाहे मैं निर्दोष ही छूटा होऊँ, फिर भी जेल जाने वाले की कोई अच्छी ख्याति नहीं होती। राजनैतिक कारणों से जेल जाना और बात है, मैं तो एक हत्या के मामले में कैद हुआ था। आप बड़े आदमी हैं। यद्यपि आपको कोई दोष न दे, फिर भी ऐसे व्यक्ति मिलने योग्य नहीं होते।"

चाचाजी ने कहा : "नहीं; ऐसी तो कोई बात नहीं। कानून हमेशा अपराधी को ही पकड़ पाता हो, यह तो कोई बात नहीं है। कई बार निरपराध भी

फँस जाते हैं। फिर तुम तो छूट भी गए हो! यदि खुद तुमने कोई अपराध नहीं किया, तो मन को तुम्हें छोटा नहीं करना चाहिए। क्यों न भाभी?"

माताजी ने सिर हिलाते हुए कहा: "ठीक है! तुम्हे मन छोटा नहीं करना चाहिए! परन्तु फिर भी ऐसा हुआ कैसे?"

मुस्कराकर निमल ने कहा: दृष्टि उसकी तब भी फर्श पर ही झुकी हुई थी: "किस्सा बहुत लम्बा है माताजी, किन्तु यदि थोड़े ही में कहा जाए तो कहना होगा कि दुनिया में सबसे बड़ा कसूर गरीब होना है!"

"यह क्या कहते हो बेटा, मैं तो सुनती आई हूँ कि सब झगड़ों की जड़ ही यह धन है! आदमी खाता तो यही दो मुट्ठी अनाज है चाहे गरीब हो चाहे अमीर। गरीब अपनी झोंपड़ी मे सुख की नींद तो सोता है, धनवाले को यह भी नसीब कहाँ है?"

निर्मल किंचित मुस्करा दिया: "गरीब न होने का मतलब धनवान होना तो नहीं है माताजी! और यह भी सही है कि खाने के लिए तो हर आदमी को, चाहे गरीब हो या अमीर, यही दो मुट्ठी अनाज की दरकार है! लेकिन दो मुट्ठी अन्न की जरूरत होने पर भी कोई तो कोठा भर ले, और बाकी दूसरे हजारों को एक दाना भी मुयस्सर न हो! तब वे बेचारे करें क्या?—या तो भूख के मारे पटापट मरते जाएँ, या फिर चोरी करें।"

"तो तुम क्या चोरी के अपराध में जेल गए थे?—मैंने तो सुना था—"

निर्मल ने आँख उठा कर देखा, किन्तु शीघ्र ही फिर आँखें नीची कर के बोला: "जेल तो हत्या के आरोप मे गया था माताजी! पर चोरी के आरोप में भी जेल हो आया हूँ! और मजे की बात यह कि न मैंने हत्या की, न चोरी ही! हाँ, जैसा कि मैंने कहा गरीबी का कसूर मेरा जरूर हुआ है!"

"पर तुम तो पढ़े-लिखे हो!"

"बहुत-कुछ! जितना की शिक्षा पढ़ा सकती है!—और यों एकाएक गरीब भी पैदा नहीं हुआ था! बहुत धनवान तो नहीं—धनवान होने की सीमा ही कहाँ है कि किसी को धनवान कहा जाए!—पर इतना खाता-पीता था कि धनसे वैसे ही उबकाहट आगई थी, जैसी आपको या और धन वालोंको हो आती है! धन कमाया भी बाप का था। एकाएक बाप मर गए, पाप के कमाए पैसे को रखने के लिए भी पाप की सहायता लेनी पड़ती है माताजी, वह मुझ बेवकूफ से नहीं ली जा सकी, इसलिए उसे एक हा झटके में तोड़ आया!—"

"तोड़ आया?"

"हाँ माताजी! बुआजी को मैं मा के अभाव में मा ही समझता था!

पिता के पैसे का मालिक अगर मैं हो जाता तो उन्हें कष्ट पहुँचता, इसलिए मैंने सारी सम्पत्ति उन्हीं के लिए छोड़ दी।"

"पर बाप की सम्पत्ति का तो बेटा ही वारिस होता है!—कानून भी इस चीज़ को मानता है।"

निर्मल के अधरों पर फिर क्षीण मुस्कराहट दीप्त हो उठी—और हरबार इस मुस्कराहटके साथ निर्मल की दीप्ति सौगुनी अधिक होकर महिला के चश्मे से टकरा उठती थी! निमल बोला:

"जैसा कि आपने अभी कहा है माताजी, हक तो आदमी का केवल दो मुठ्ठी अन्न पर होना चाहिए, शेष पर उन्हीं लोगों का जिनके पास वह भी नहीं है।—कभी इसको भी कानून मजूर करेगा। खैर, तो भी कानून ने मुझे भी बाप का वारिस करार दे दिया था!"

"फिर?"

"जानता नहीं था कि दुनिया मे मा के प्यार सेज्यादा कीमत धन की है! बुआजी को अप्रसन्न तथा निराश नहीं करना चाहता था, इसलिए कानून को धता बताकर सारी सम्पत्ति उन्हीं पर छोड़ दी।"

"तो यह पाप का पैसा कैसे हुआ?"

"जब जरूरत से ज्यादा इकठ्ठा किया जाता है, तो वह दूसरे की गिरह काटे बिना सम्भव नहीं होता! पैसा वास्तव मे है क्या?—आदमी की मेहनत का ही तो नतीजा है। उससे आदमी की मेहनत ही तो नापी जाती है! एक आदमी आठ घण्टा मेहनत करके भी उतना क्यों नहीं पाता, जितना दूसरा पाँच मिनिट केवल बात करके पा लेता है? मेरे पिता वकील थे, और बात करने का पैसा कमाते थे!"

"परन्तु बेटा, सब मेहनत तो एक जैसी नहीं होती!"

"फिर भी जिन जरूरतों के लिए मेहनत की जाती है, वे तो सब लोगों के लिए बराबर है। जरूरत तो है केवल दो मुट्ठी अन्न की!—तन ढँकने को कुछ गज कपड़े की, और रहने के लिए एक छत की!—जब तक ये कुछ जरूरी चीजें हर आदमी को नहीं मिल जातीं,तब तक किसी को दो मुट्ठी से अधिक अन्न इकट्ठा करना, रेशमी और मलमल के थानों से सन्दूकों को भर रखना, और महलों में रहना पाप के सिवा और क्या कहा जा सकताहै? आप तो जानती ही हैं, कि महात्मा गाँधी इसीलिए दो गज की लँगोटी से अधिक कुछ पहनते न थे, रहने को उन्होंने झोंपड़ी के सिवा कुछ न चुना, और फिर खाने के लिए वही दो मुट्ठी अन्न! वे महात्मा जो थे!"

"पर अगर कोई मेहनत ही न करे?"

"उन्हें भूखों मरने दीजिए न।—पर जो काम चाहते हैं, और उन्हें काम नहीं मिलता, उनका क्या हो!—दूसरे, जो बेचारे चौबीस घंटों में १८ घंटे हड्डी तोड़ मेहनत करें, और फिर भी पेट को पीठ से जुदा न रख सकें, उनका क्या हो?"

"अगर तुम्हारी बात ही सच हो, बेटा तो—"

"वह तो सच है ही माता जी! आपको संयोग से सब कुछ मिला हुआ है, पर आपके मकान के सामने ही फ़ुटपाथ पर कितने आदमियों की जिन्दगी बसर हो जाती है, यह क्या आप नहीं देखतीं? आप कहेंगी, वे भीख माँग कर खाने के आदी हैं, काम करने के नहीं। पर जो रेस के मैदान मे दौड़ते घोड़ों पर बाजी बद कर हजारों रुपए गमा-कमा आते हैं, काम न करने के मानी में वे क्या इन भिखमंगों से बेहतर हैं?—और उधर रिक्शा खींचने वाले, डेढ़ पसली के नगे बदन आदमी को देखिए, जो ढाई मन की जीवित लाश को खींच कर अपनी मजदूरी के नाम पर दो आने से अधिक नहीं पाता।"

"पर हम-तुम क्या कर सकते हैं?—महात्मा गाँधी ही कितना-कुछ कर सके कि—"

"सभी काम एक ही आदमी नहीं कर सकता! और महात्मा जी ने कुछ न किया हो सो बात भी नहीं है! वे तो दलितों ही के देवता थे! और मैं ही क्या कर सकूँगा, यह कह कर ही यदि हाथ पर हाथ धर कर मैं बैठ जाऊँ तो दुनिया मे क्या कोई काम कभी होगा?"

चाचाजी ने कहा: "लेकिन निर्मल, इस सारे किस्से से तुम्हारा क्या सम्बन्ध रहा, यह तो तुमने कहा ही नहीं।"

"इसलिए चाचा जी, कि मेरे किस्से से मुझे कोई शिकायत नहीं है! मुझे पैसे का मोह नहीं है। जब पैसा मुझे प्राप्त हो रहा था, मैंने स्वेच्छा से उसे छोड़ दिया। किन्तु दारिद्र्य के चाबुक भी मेरी नंगी पीठ पर कम नहीं पड़े, तभी मैंने समझा कि समाज मे एक दुर्भाग्य घुस गया है भीषण रूप से, जो अर्थ को व्यर्थ महत्व देता है; श्रम को नहीं, जो अर्थ का उत्पादक है। इसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि व्यक्ति श्रम को बचाना चाहता है, और अर्थ को दाँत से पकड़ना चाहता है। फिर भी यह सत्य तो कहीं जा नहीं सकता कि अर्थ की उत्पत्ति श्रम ही से होती है, अतः व्यक्ति दूसरों के श्रम को चुराने लग गया! यह श्रम की चोरी ही तो कानूनन दण्ड की पात्र है। अगर मैं आपका रुपया चुराऊँ, तो रुपया तो आपका नहीं, वह तो आपने नहीं बनाया, उस पर आपका नाम तो नहीं लिखा

हुआ है। अगर मैं आपको अपने रिक्शे मे बैठा कर दो मील की सैर करा लाता, तो शायद वही रुपया आप मुझे दे देते। मगर यह दो मील का श्रम बचा कर जो रुपया मैं आपसे ले रहा हूँ, वही तो चोरी है! तो फिर आप दफ्तर मे बैठ कर खाली दस्तखत करने का दस रुपया लेकर दिन भर एड़ी-चोटी एक करने वाले मजदूर को केवल एक रुपया देते हैं तो क्या आप नौ रुपए के चोर नहीं हुए? और मजा यह कि उस मजदूर का एक रुपए में जब पेट न भरे तो वह क्या करे? यदि वही मजदूर उन नौ रुपयों मे से एक रुपया अपने लिए चुरा ले तो उसे जेलखाने की हवा खानी पड़े। इसीलिए तो ये समाज में इतने अपराध भरे पड़े हैं! हमने पुलिस रख छोड़ी है उन लोगों के लिए जो पैसा चुराते हैं, पैसा जो सबका है, पर उन लोगों को खुला छोड़ दिया है जो दूसरों का श्रम चुराते हैं, मुनाफा कमाते हैं, और खून चूसते रहते हैं।"

माता जी की समझ मे कितना-कुछ आया, यह कहना कठिन है। किन्तु वे एकटक निर्मल की ओर देखती रहीं। इस लड़के ने अपनी खुशी मे आई हुई दौलत को त्याग दिया! कौन कर सकता है यह? या तो कोई पहुँचा हुआ महात्मा, या कोई पागल ही! और पागल तो यह लड़का हर्गिज नहीं है, कितनी अकल की बात कर रहा है। दूसरों का दुख बेचारे से देखा नहीं जाता। और वह नमिता जो इसके लिए इतना कुछ कह गई। यह हत्यारा—कैदी—

निर्मल ने देखा कि वह अप्राकृतिक रूप से भावाविष्ट हो गया। कम-से कम एक कुलीन किन्तु अज्ञ महिला के सम्मुख इन बातों का न तो कोई महत्व है न उपयोग ही, तो वह बोला मुस्करा कर—

"माफ कीजिएगा माताजी, मैं बहुत कुछ बक गया? आपका कीमती समय बर्बाद करने का मुझे कोई अधिकार नहीं है, लेकिन मैंने यह जानने तक की कोशिश नहीं की कि आप ने यह तकलीफ क्यों की?"

"नहीं, कोई बात नहीं बेटा! तुम्हारी बातें बड़ी अच्छी लग रही थीं। तुम सच ही तो कह रहे थे। जो भी हो, तुम्हारी बहुतेरी बातें मेरी समझ मे न आई हों, परन्तु जो कुछ समझ सकी, वह तो सच ही था। मगर यह तो तुमने बताया ही नहीं बेटा, कि यह हत्या का मामला क्या है? सचमुच तो मैं यह पूछना भी नहीं चाहती थी। पर तुम्हारी बातों से ही तो मुझे मालूम हुआ कि तुम एक बहुत अच्छे सुशील पढ़े-लिखे होनहार लड़के हो! तुम कैसे इस काण्ड मे फँस गए?"

"यह भी मेरा दुर्भाग्य ही है। यदि मैं गरीब के घर पर ही जन्म लेता

तो शायद भाग्य की यह विडम्बना मुझे न भोगनी पड़ती। पैदा हुआ और पाला-पोसा गया एक अच्छे सम्पन्न वातावरण में। उन लोगों में उठने-बैठने से उन लोगों को मुझसे कुछ आशा हो चली, किन्तु ठीक इसके बाद ही मैं हो गया दर-दर का भिखारी! उनके अरमान, उनकी आशाएँ उनकी प्यास जब मुझसे न बुझ सकी, तो उन्हें क्रोध हो आना स्वाभाविक ही था। इधर एक और बात हो गई, अपनी छोटी चादर ही में पैर सिकोड़ कर जब मैं निश्चिन्त हो गया तो उन्हें नहीं भाया। क्या चाहते थे वे लोग, पता नहीं। पर उन्होंने वह चादर भी झपट ली, और उसका दोष भी मेरे ही माथे पटक दिया! क्या करता मैं?—गरीब को पूछता ही कौन है माता जी।—यह भी एक दयालु धनवान् मित्र ही की कृपा का फल है कि छूट गया, वरना बिना पूछे ही फाँसी पर लटका दिया जाता। कोई जान भी नहीं पाता।"

"कुछ समझ सकी होऊँ, ऐसा नहीं दीखता। पर, तुम तो अभी जवान हो। कहीं भी काम-धन्धा करके मालदार बन सकते हो।"

"मालदार बनना चाहूँगा माताजी?—नहीं; दो मुट्ठी अन्न ही तो चाहिए। उसे मेहनत से प्राप्त करने की दिशा मालूम हो गई है। कुछ दिनों तक शर्म और भ्रम था कि पढ़ा-लिखा हूँ, कुर्सी-टेबल के आस-पास ही घूमूँ, और क्लर्की करके ही पेट भरलूँ। दुनिया ने इस भ्रम को भी जल्दी से मिटा दिया, इसकी कोई शिकायत नहीं कि किसी का साला-बहनोई न होने से ऐसी कोई सुविधा मुझे नहीं मिली। मिलमें काम करता था, वह अब यदि नहीं भी मिला, तो मजदूरी के और बहुत रास्ते हैं, जहाँ दो मुट्ठी अन्न की व्यवस्था में गड़-बड़ी न हो। लेकिन मालदार बनना?—माताजी, मेरी तकदीर में तो नहीं ही है, मेरी नसों में भी नहीं है!" और वह फिर हँस दिया।

"कैसे?"

"तकदीर में तो इसलिए नहीं है कि कानूनन आई लक्ष्मी को मैंने ठुकरा दिया! इधर एक विवाह की बात चली थी, जिससे पैसे की काफी जुगत जम सकती थी, पर वह भी मैंने स्वीकार नहीं की।"

"विवाह की बात? और तुमने स्वीकार नहीं की बेटा?—शायद तुम नहीं जानते कि समाज में जेल गए हुए लोगों के लिए एक दुर्भाग्य पैदा हो जाता है, जिससे उन्हे लड़की देने को कोई सरलता से तैयार नहीं होता! तुमने उसे स्वीकार न करके बड़ी गलती की! क्या लड़की में कुछ ऐब था?"

हँस कर निर्मल ने कहा: "मैं ही कौन बे-ऐब हूँ माताजी।—पर समझ लीजिए, एक तो यही वजह है मैं जेल गया हुआ हूँ, समाज की माप में मैं

छोटा पड़ गया हूँ, तब फिर मुझे विवाह जैसी बड़ी चीज का खयाल ही क्यों हो ?—चाँद को छूना नहीं कहेंगी इसे ?"

माताजी को अपनी बात पर आजाने का बहुत अच्छा अवसर मिल गया था, यद्यपि वह उत्साह उनमे नहीं था, बोली : "रायबहादुर सुमन प्रकाशजीकी लड़की नमिता कुमारी को जानते हो ?"

निमल कुमार अपनी कुर्सी से उठ खड़ा हुआ, एक लम्बी साँस लेकर बोला : "जानता हूँ माताजी ! वे और मैं साथ पढे हुए हैं ! यदि अर्थ ने मेरे साथ आँख मिचौनी न खेली होती, तो मेरा विवाह उन्हीं के साथ होने वाला था। और मुझे फाँसी के तख्ते पर पहुँचाने का पुण्य-काय भी वही कर रही थीं, केवल इसलिए कि उनका नया मित्र कही इस हत्या के आरोप मे फाँसी पर न पहुँचा दिया जाए।"

माताजी ने चश्मे को हाथों से पकड़ कर कहा : "कहते क्या हो निमल—क्या नमिता—"

हँसकर निर्मल ने कहा : "घबराइए नहीं माताजी, वे धनवान हैं, पैसे वाले हैं। कानून उनको भी बचा लेगा। और यह भी आप देख लेंगी कि जब वे दोनों विवाह-संबन्धमें बँध जाएँगे तो उनका पैसा हत्या जैसे कलंक को भी धो-पोंछ कर साफ कर देगा। जेल मे जाने की कालिख तो अवास्तविक भी हो सकती है, किन्तु अपराध की प्रकृत कालिख को भी अर्थ चमका देता है !" निर्मल कुमार कमरे मे घूम रहा था अपनी बात पूरी करनेके लिए वह एकाएक कुर्सी की पीठ को पकड़ कर खड़ा हो गया और बोला—

"और माताजी यह आपका मेरे ऊपर अनुग्रह है कि आप जो कहने के लिए यहाँ आई हैं, वह अभी तक कह नहीं सकीं ! मेरे ऊपर आपको दया आ गई ! धनवान हैं तो क्या हुआ, मा तो हैं आप ! यह धन ही तो प्रकृत मनुष्य के ऊपर छा जाता है !—यदि मैं आप ही का पुत्र होता तो क्या आपके मन में तब भी मेरे लिए यही विरोध की भावना रहती ?—और क्या मैं आपका पुत्र नहीं हो सकता था ?—लेकिन धनवान माताएँ गरीबों के पुत्र को अपना पुत्र मानना नहीं चाहती।"—और निर्मल की आँखें डबडबा आईं !—माताजी से क्या यह छिपा रह सकता था ?

"नहीं निर्मल, ऐसा न कहो ! तुम पर मेरा पुत्र जैसा ही स्नेह हो गया है। विश्वास करो मेरा। परन्तु—"

"नहीं माताजी, आगे नहीं कहिए ! आप मेरी ही नहीं, कल्पना कुमारी की मा भी हैं, और उनके भले का सोचने का सबसे पहला भार आप का है ! उनके सामने सारा जीवन पड़ा हुआ है, उनका भविष्य क्यों धुँधला हो ? मैं

उनको पूजा करता हूँ, और पूजा करता हूँ इसलिए चाहता हूँ कि उनका सुख का जीवन हो—"

"ओर निमल, आज से तुम मेरे बेटे हुए। तुम्हारे मा नहीं है, पर आज से मैं तुम्हारी मा हूँ !"

तभी बाथ रूम का दरवाजा खुल गया और बाहर निकल कर रोरुद्यमान कल्पना ने अपनी मा के पैर पकड़ लिए। मा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा : "कौन तुम कल्पना ?—"

उत्तर निर्मल ही ने दिया : "यही मैं इन्हें समझा रहा था माताजी, ये पढ़ी-लिखी हैं, योग्य हैं ! इनके लायक लड़कों की कमी नहीं है दुनिया में ! और मैं ?—मैं वादा करता हूँ माताजी, कि इनके लिए योग्य लड़के की खोज कर दूँगा।"

कल्पना के अश्रु केवल मा के पैरों को धोते रहे, वह कुछ बोल नहीं सकी ! मा किंकर्त्तव्य विमूढ़ बैठी रही।

चाचाजी ने कहा : "भाभी।"

"कहो !"

"निर्मल को अपना बेटा मान ही चुकी हो ! बाँध क्यों नहीं लेती—"

"नहीं चाचाजी ! मेरा व्रत भग न कोजिए !" निर्मल ने कहा।

"तुम्हें क्या कल्पना से कुछ शिकायत है ?" चाचाजी ने पूछा ?

"शिकायत ?—आप नहीं जानते चाचाजो, मैं उनके निकट कितना ऋणि हूँ। दो-दो बार उन्होंने मेरे प्राण बचाए हैं। यदि जन्म मे मैं किसी का ऋणि हूँ तो केवल उन्हीं का। किन्तु इसीलिए तो मैंने समझ पाया कि उनके उतने बड़े दान को ग्रहण करने की पात्रता मुझ मे नहीं है ?"

चाचाजी अपने आसन से उठ खड़े हुए : और बोले : "तुम्हारा व्रत चाहे जो हो, तुम्हारी पात्रता चाहे जो हो ; कल्पना के लिए तुमसे बढ़ कर लड़का नहीं है, और तुम्हारे लिए कल्पना से बढ़ कर लड़की नहीं है ! मुझे विश्वास है यह आदर्शों का मेल है। तुम्हें अपने व्रत में इससे शक्ति और बल मिलेगा, और कल्पना को मिलेगा सुख !—उठो बेटा," और पीठ से पकड़ कर कल्पना को उन्होंने उठाया तथा उनका हाथ पकड़ कर निमल के हाथ में थमा दिया। बाले : "पहले मा का आशीर्वाद ग्रहण करो। और भाभी ! सुख से आशीर्वाद देने का इसमे उत्तम अवसर और नहीं मिलेगा !"

दोनों माताजी के चरणों मे प्रणिपात हुए, और मा ने समस्त मनसे उन्हें आशीर्वाद दिया।

●